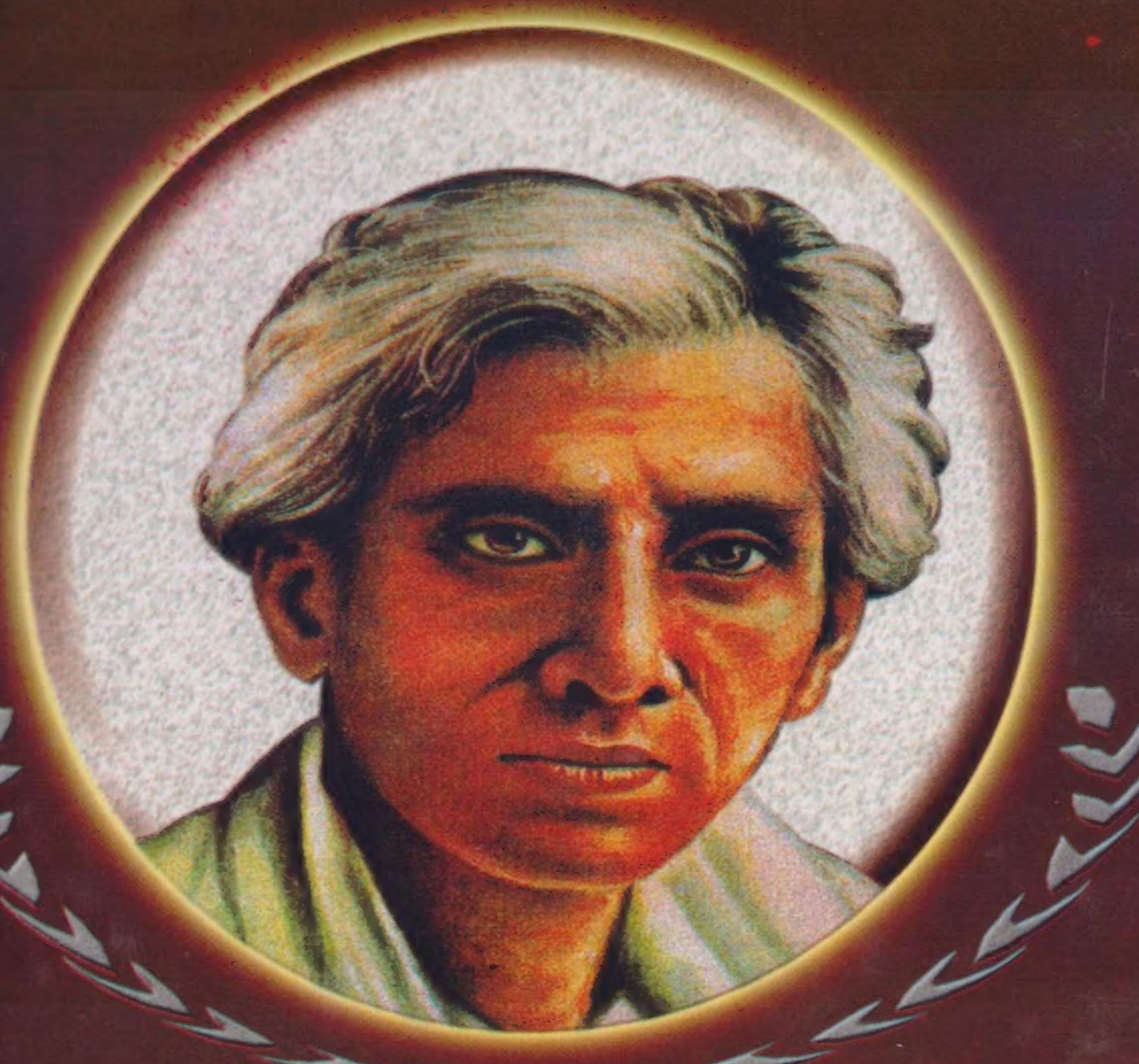
चरित्रहीन



शरतचंद्र चट्टोपाध्याय

चरित्रहीन

शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय

प्रभात प्रकाशन
ISO 9001 : 2015 प्रकाशक

दो शब्द

पुस्तक के संबंध में—

एक बार शरत् की अन्य पुस्तकों के साथ उनकी चरित्रहीन की पांडुलिपि, जो लगभग पाँच सौ पृष्ठों की थी, जल गई। इससे हताश वे अवश्य ही बहुत हुए, परंतु निराश नहीं। अपने असाधारण परिश्रम से उसे पुनः लिखने से समर्थ हुए। प्रस्तुत रचना उनकी बड़ी लगन और साधना से निर्मित वही कलाकृति है।

शरत् बाबू ने अपनी इस अमर कृति के संबंध में अपने काव्य-मर्मज्ञ मित्र प्रमथ बाबू को लिखा था, ''केवल नाम और प्रारंभ को देखकर ही चरित्रहीन मत समझ बैठना। मैं नीतिशास्त्र का सच्चा विद्यार्थी हूँ। नीतिशास्त्र समझता हूँ। कुछ भी हो, राय देना, लेकिन राय देते समय मेरे गंभीर उद्देश्य को याद रखना। मैं जो उलटा-सीधा कलम की नोक पर आया, नहीं लिखता। आरंभ में ही उद्देश्य लेकर चलता हूँ। वह घटना-चक्र में बदला नहीं जाता।''

अपने दूसरे पत्र में शरत् बाबू प्रस्तुत पुस्तक के संबंध में लिखते हैं—

''शायद पांडुलिपि पढ़कर वे (प्रमथ) कुछ डर गए हैं। उन्होंने सावित्री को नौकरानी के रूप में ही देखा है। यदि आँख होती और कहानी के चरित्र कहाँ, किस तरह शेष होते हैं, किस कोयले की खान से कितना अमूल्य हीरा निकल सकता है, समझते तो इतनी आसानी से उसे छोड़ना न चाहते। अंत में हो सकता है कि एक दिन पश्चात्ताप करें कि हाथ में आने पर भी कैसा रत्न उन्होंने त्याग दिया! किंतु वे लोग स्वयं ही कह रहे हैं, 'चरित्रहीन का अंतिम अंश रवि बाबू से भी बहुत अच्छा हुआ है, (शैली और चरित्र-चित्रण में) पर उन्हें डर है कि अंतिम अंश को कहीं मैं बिगाड़ न दूँ। उन्होंने इस बात को नहीं सोचा, जो व्यक्ति जान-बूझकर मैस की एक नौकरानी को प्रारंभ में ही खींचकर लोगों के सामने उपस्थित करने की हिम्मत करता है, वह अपनी क्षमताओं को समझकर ही ऐसा करता है। यदि इतना भी मैं न जानूँगा तो झूठ ही तुम लोगों की गुरुआई करता रहा।''

बँगला के सफल लेखक श्री रमेंद्र बनर्जी अब कई वर्ष से हिंदी में लिख रहे हैं। आशा है, उनका प्रस्तुत अनुवाद पाठकों को विशेष रुचिकर होगा।

—प्रकाशक

चरित्रहीन

पश्चिम हिंदुस्तान के एक बड़े नगर में जाड़े की ऋतु लगभग आ पहुँची थी। रामकृष्ण परमहंस के एक नए शिष्य को किसी एक शुभ कार्य की भाषण-सभा में उपेंद्र को सभापति बनाया जाए, और उस पद की मर्यादा के अनुकूल जो कुछ कर्तव्य है, उनका भी अनुष्ठान पूरा करा लिया जाए, इसी प्रस्ताव को लेकर एक दिन सवेरे कॉलेज के विद्यार्थियों का दल उपेंद्र के पास पहुँच गया।

उपेंद्र ने पूछा, "शुभ कार्य क्या है, जरा मैं भी तो सुनूँ।"

उन लोगों ने बताया कि अभी तक इस बात को वे भी नहीं जान पाए। स्वामीजी ने कहा है, इसी बात को वे सभा में ठीक तरह से समझाकर बताएँगे और सभा बुलाने की तैयारी और आवश्यकता बहुत अंशों में इसी के लिए है।

उपेंद्र इस बात पर सहमत हो गए। ऐसी ही थी उनकी आदत। विश्वविद्यालय की परीक्षाओं को उन्होंने इतनी अच्छी तरह उत्तीर्ण कर लिया था कि छात्रों की मंडली में उनकी प्रतिष्ठा की कोई सीमा नहीं थी। इसलिए काम-काज, आपद-विपद में वे लोग जब कभी आ जाते थे, तब वे उनके निवेदन और अनुरोधों की उपेक्षा, उनके प्रति ममता के कारण नहीं कर सकते थे। विश्वविद्यालय की सरस्वती को पार करके अदालत की लक्ष्मी की सेवा में नियुक्त हो जाने के पश्चात् भी, लड़कों के जिमनास्टिक के अखाड़े से लेकर फुटबॉल, क्रिकेट और डिबेटिंग क्लब तक के ऊँचे स्थान पर उनको ही बैठना होता था।

लेकिन इन स्थानों पर सिर्फ चुपचाप बैठे रहना ही नहीं था, कुछ बोलना आवश्यक था। एक लड़के की ओर देखकर उन्होंने कहा, "कुछ बोलना तो अवश्य पड़ेगा। सभापति बनकर सभा के उद्देश्य के संबंध में एकदम ही अनभिज्ञ रहना तो मुझे अच्छा नहीं लगता, क्या कहते हैं आप लोग?"

यह बात ठीक भी थी, लेकिन उनमें से किसी को भी कुछ मालूम नहीं था। बाहर के आँगन में, फलों से लदे एक पुराने उड़हल के पेड़ के नीचे, लड़कों का यह दल जब उपेंद्र को बीच में बैठाकर दुनिया के सभी संभव-असंभव अच्छे कामों की सूची तैयार करने में व्यस्त हो उठा था, उसी समय दिवाकर के कमरे से एक आदमी सबकी नजरों से बचकर बाहर चला आया। दिवाकर उपेंद्र का ममेरा भाई है। बचपन में मातृ-पितृहीन होकर मामा के घर रहकर गुजारा कर रहा था। बाहर की एक छोटी सी कोठरी उसे दे दी गई थी। अवस्था प्रायः उन्नीस की थी। एफ.ए. उत्तीर्ण करके वह बी.ए. में पढ़ रहा था।

इस भगोड़े पर उपेंद्र की ज्यों ही नजर पड़ी, त्यों ही उन्होंने पुकारकर कहा, "सतीश, तू भागा कहाँ जा रहा है? इधर आ!"

पकड़ में आ जाने पर सतीश भयभीत सा पास आकर खड़ा हो गया। उपेंद्र ने पूछा, "इतने दिन तुम थे कहाँ?"

भय का उपक्रम छोड़ सतीश हँसकर बोला, "इतने दिन मैं यहाँ था ही नहीं, उपेन भैया। अपने चाचा के यहाँ इलाहाबाद गया हुआ था।"

बात ठीक तरह पूरी भी न हो सकी थी कि एक युवक, जिसकी दाढ़ी-मूँछ सफाचट थीं और बाल सँवारे हुए थे, आँखों को तनिक दबाकर, दाँत निकालकर बोल उठा, "मन के

दुःख के कारण ही क्या सतीश?''
हाईस्कूल की परीक्षा में इस बार भी उसे भेजा नहीं गया, इस बात को सभी जानते थे। इसलिए यह बात ऐसी भद्दी सुनाई पड़ी कि सभी उपस्थित लोगों ने लज्जा से मुँह नीचे झुका लिया, लेकिन सतीश अपना हँसीभरा मुँह लेकर बोला, ''भूपति बाबू, मन रहने से ही मन में दुःख होता है। पास करने की आशा कहिए या इच्छा ही कहिए, मैंने ठीक तरह होश सँभालते ही छोड़ दी थी। केवल बाबूजी ही छोड़ नहीं सके थे। इस कारण मन के दुःख से किसी को यदि देश छोड़ना पड़े तो उनका ही छोड़ना उचित होता, फिर भी वे अटल रह अपनी वकालत का पेशा चलाते रहे हैं! लेकिन तुम कुछ भी क्यों न कहो, उपेन भैया, इस बार उनकी आँखें खुल गई हैं।''

सब लोग हँस पड़े।

उपेंद्र ने पूछा, ''क्या इस बार तूने पढ़ना-लिखना छोड़ दिया?''

सतीश ने कहा, ''मैंने उसे कब पकड़ रखा था कि आज छोड़ देता? मैंने नहीं उपेन भैया, लिखने-पढ़ने के धंधे ने ही मुझे पकड़ रखा था। इस बार मैं आत्मरक्षा करूँगा। ऐसे देश में जाकर रहूँगा, जहाँ स्कूल ही न हों।''

उपेंद्र ने कहा, ''लेकिन कुछ करना तो आवश्यक है, मनुष्य एकदम चुपचाप रह भी नहीं सकता। यह भी ठीक नहीं है।''

सतीश बोला, ''नहीं, चुपचाप नहीं बैठूँगा। इलाहाबाद से एक नया उद्देश्य प्राप्त करने आया हूँ। इस बार ठीक तरह प्रयत्न करके देखूँगा कि उनके लिए मैं क्या कर सकता हूँ।''

यह जानकर कि इसका विवरण सुनने के लिए सभी उत्सुक हो रहे हैं, वह लज्जायुक्त हँसी के साथ बोला, ''मेरे गाँव में जिस तरह मलेरिया है, उसी तरह हैजा भी है। पाँच-सात गाँवों में ठीक वक्त पर शायद एक भी डॉक्टर नहीं मिलता। मैं उसी स्थान पर जाकर होम्योपैथी चिकित्सा शुरू कर दूँगा। माँ अपनी मृत्यु के पहले मुझे कई हजार रुपया दे गई हैं। उन्हीं से अपने गाँव के घर पर बैठकखाने में, एक चिकित्सालय खोल दूँगा। हँसो मत, उपेन भैया, तुम देख लेना, इस काम को मैं अवश्य करूँगा। बाबूजी को मैंने राजी कर लिया है। एक महीना बीत जाने के बाद ही मैं कलकत्ता जाकर होमियोपैथी स्कूल में दाखिल हो जाऊँगा।''

उपेंद्र ने पूछा, ''एक महीने के बाद ही क्यों?''

सतीश ने कहा, ''कुछ काम है। दक्खिन टोले में नवनाट्य समाज को तोड़कर एक अलग दल निकल पड़ा है। हमारे विपिन बाबू उस दल के नायक हैं। तार पर तार भेजकर उन्होंने ही मुझे बुलाया है। मैंने कह दिया है कि उनकी कंसर्ट पार्टी को ठीक करके ही किसी दूसरे कार्य में जुटूँगा।''

यह सुनकर सभी ठहाका मारकर हँसने लगे। सतीश भी हँसने लगा। थोड़ी देर में हँसी का वेग जब शांत पड़ गया, तब सतीश बोला, ''एक बंसी-वादक का अभाव था, इसलिए मैं आज दिवाकर के पास यहाँ आया था। अगर नाटक की रात को वह मेरा उद्धार कर दे तो और अधिक दौड़-धूप नहीं करनी पड़ेगी।''

उपेंद्र ने पूछा, ''वह कहता क्या है?''

सतीश ने कहा, ''वह कहेगा ही क्या? कहता है कि परीक्षा नजदीक है। यह बात मेरे

दिमाग में घुसती नहीं उपेन भैया, कि दो साल तक पढ़ने-लिखने के बाद दी जानेवाली परीक्षा किस तरह लोगों की एक ही रात की अवहेलना से नष्ट हो जाती है। मैं कहता हूँ, जिनकी सचमुच ही नष्ट हो जाती है, उनकी वह नष्ट हो जाए तो उचित ही है। इस तरह पास करने की मर्यादा जिनके लिए हो, उनको ही रहे, मेरे लिए तो नहीं है। तुम इस बात से रुष्ट न हो सकोगे उपेन भैया, मैं तुमको जितना जानता हूँ, ये लोग उसका चौथाई भी नहीं जानते। जिमनास्टिक अखाड़े से लेकर फुटबॉल, क्रिकेट तक बहुत दिन मैंने तुम्हारी शागिर्दी की है, साथ-साथ घूमकर बहुत दिन, बहुत तरह से, तुम्हारा समय नष्ट होते मैंने देखा है, अनेक परीक्षाओं में भाग लेते भी तुमको देखा है और विधिपूर्वक स्कॉलरशिप के साथ पास करते भी देखा, लेकिन किसी दिन तुमको परीक्षा की दुहाई देते नहीं सुना।"

इस बात को यहीं समाप्त कर देने के उद्देश्य से उपेंद्र ने कहा, "मुझे तो बाँसुरी बजाना नहीं आता।"

सतीश ने कहा, "लेकिन छोड़ो इस बात को दुपहरिया की धूप में तुम लोगों की यह बैठक किसलिए?"

जाड़े की धूप की तरफ पीठ किए माथे पर चादर लपेटकर सभी बैठे थे। इन लोगों की यह बैठक खूब ही जम गई थी। दिन इतना चढ़ आया है, इस ओर किसी ने भी लक्ष्य नहीं किया था। सतीश की बात से समय का ध्यान आते ही सभी एक साथ चौंककर खड़े हो गए। सभा भंग होते भूपति ने पूछा, "उपेंद्र बाबू, तो अब कैसे होगा?"

उपेंद्र ने कहा, "मैंने तो कह दिया है, मुझे कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन तुम लोगों के स्वामीजी का उद्देश्य अगर पहले ही कुछ मालूम हो जाता तो बड़ा अच्छा होता। एकदम मूर्ख की तरह कहीं जाने में संकोच लगता है।"

भूपति ने कहा, "लेकिन एक भी बात वे नहीं बताते, बल्कि कहते हैं कि जो विषय जटिल और दुर्बोध्य है, उसको विशद रूप से साफ तौर से समझकर बताने का अवसर और सुविधा न मिलने तक बिल्कुल ही न बताना अच्छा है, अन्यथा इससे अधिकांश में सुफल के बदले कुफल ही मिलता है।"

चलते-चलते बातचीत हो रही थी। इतनी देर में सभी बाहर आ खड़े हुए।

सतीश ने कहा, "क्या बात है उपेन भैया?"

भूपति बीच में बोल पड़ा, "सतीश बाबू, आपको भी चंदे के खाते में दस्तखत करना पड़ेगा। इसका कारण इस समय हम लोग ठीक तौर से बता न सकेंगे। परसों अपराह्न में कॉलेज के हॉल में स्वामीजी खुद ही समझाकर बताएँगे।"

सतीश ने कहा, "तब तो मेरा समझना नहीं होगा भूपति बाबू। परसों हम लोगों का रिहर्सल होगा। मेरे अनुपस्थित रहने से काम न चलेगा।"

आश्चर्य में पड़कर भूपति ने कहा, "यह कैसी बात आप कह रहे हैं सतीश बाबू! थिएटर की मामूली हानि होने के डर से ऐसे महान् कार्य में आप सम्मिलित न होंगे। लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे?"

सतीश बोला, "लोग न सुनने पर भी बहुत सी बातें करते रहते हैं। दूसरों की बात छोड़िए, अपनी हालत देखिए, कुछ भी जानकारी न रहने पर भी आप लोग संदेह छोड़ इस अनुष्ठान को जितना महान् कहकर विश्वास कर सके हैं, यदि मैं उतना न कर सकूँ तो मुझे

आप लोग दोष मत दीजिएगा, बल्कि, जिसको मैं जानता हूँ, जिस काम की भलाई-बुराई को समझता हूँ, उसकी उपेक्षा करके, उसको हानि पहुँचाकर, एक अनिश्चित महत्त्व के पीछे-पीछे दौड़ना मुझे अच्छा नहीं मालूम देता।''

उपस्थित छात्र-मंडली में आयु और शिक्षा की दृष्टि से भूपति ही सबसे अधिक श्रेष्ठ थे, इसलिए वे ही बातचीत कर रहे थे। सतीश की बात सुनकर उन्होंने हँसकर कहा, ''सतीश बाबू, स्वामीजी की तरह महान् व्यक्ति अच्छी ही बात कहेंगे, उनका उद्देश्य अच्छा ही होगा, पर इस पर विश्वास करना तो मुश्किल नहीं।''

सतीश ने कहा, ''व्यक्ति विशेष के लिए यह कठिन नहीं है, मैं मानता हूँ। यही देखिए न, हाईस्कूल पास कर लेना कोई कठिन काम नहीं है, फिर भी पास करना तो दूर रहा, तीन-चार वर्षों में मैं उसके पास तक भी पहुँच न सका! अच्छा, बताइए तो, स्वामीजी नामक मनुष्य को पहले कभी आपने देखा है या इनके संबंध में किसी दिन आपने कुछ सुना है।''

किसी को भी कुछ मालूम नहीं है, यह बात सभी ने मान ली। सतीश बोला, ''यह देखिए, एक गेरुआ कपड़े के अलावा उनका और कोई सर्टिफिकेट नहीं है, फिर भी आप लोग पागल से हो उठे हैं और मैं स्वयं अपने काम को नुकसान पहुँचाकर उनका भाषण सुनना नहीं चाहता, इसके लिए आप नाराज हो रहे हैं।''

भूपति ने कहा, ''पागल क्या यों ही हो रहे हैं। ये गेरुआ वस्त्रधारी संसार को बहुत कुछ दे गए हैं। जो कुछ भी हो, मैं नाराज नहीं होता, दुःख अनुभव करता हूँ। संसार की सभी वस्तुएँ सफाई और गवाही साथ लेकर हाजिर नहीं हो सकतीं, इस कारण अगर उन्हें झूठ समझकर छोड़ देना पड़े, तो बहुत सी अच्छी चीजों से ही हम लोगों को वंचित रह जाना पड़ेगा। भला, आप ही बताइए, जिस समय आप संगीत में सा-रे-गा-मा साधते थे, उस समय आपको कितने रस का स्वाद मिलता था? उसकी कितने अच्छाई-बुराई आपकी समझ में आती थी?''

सतीश बोला, ''मैं भी यही बात कह रहा हूँ। संगीत का एक आदर्श यदि मेरे सामने न रहता, मीठे रस का स्वाद पीने की आशा यदि मैं न करता, तो उस दशा में इतना कष्ट उठाकर मैं सा-रे-गा-मा को साधने नहीं जाता। वकालत के पेशे में रुपए की गंध अगर आप इतने अधिक परिमाण में नहीं पाते, तो एक बार फेल होते ही, रुक जाते, बार-बार इस तरह जी-तोड़ मेहनत करके कानून की किताबों को कंठस्थ नहीं करते। उपेन भैया भी शायद किसी स्कूल में अध्यापकी पाकर ही इतने दिनों में संतुष्ट हो गए होते।''

उपेंद्र हँसने लगे, लेकिन भूपति का मुँह लाल हो गया। तिल का जवाब ताड़ से दिया था। यह बात वे सभी समझ गए।

क्रोध दबाकर भूपति ने कहा, ''आपके साथ बहस करना बेकार है।''

सब लोग रास्ते के किनारे बैठ गए थे। सतीश उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर बोला, ''क्षमा कीजिए भूपति बाबू! छह तरह के प्रमाणों और छत्तीस प्रकार के प्रत्यक्षों की आलोचना इतनी धूप में सही नहीं जा सकती। इससे तो अच्छा यही है कि संध्या के बाद आप बाबूजी की बैठक में आइएगा, जहाँ आधी रात तक तर्क-वितर्क चल सकेंगे। प्रोफेसर नवीन बाबू, सदरआला गोविंद बाबू और घर के भट्टाचार्यजी तक ऐसे ही विषयों पर आधी रात तक बहस किया करते हैं। उनके पासवाले कमरे में मैं रहता हूँ। तर्क-वितर्क के दाँव-पेंच

की बातों से मेरे कान अभी तक पूरे पके तो नहीं हैं, लेकिन मुझ पर रंग चढ़ने लगा है, लेकिन असमय में पेड़ों के नीचे गिरकर, सियार-कुत्तों के पेट में जाना मैं नहीं चाहता। इसलिए इस विषय को छोड़कर अगर और कुछ कहना हो तो कहिए, नहीं तो आज्ञा दें, चलूँ।''

सतीश का हाथ जोड़कर बातें करने का तरीका देखकर सभी हँसने लगे। नाराज भूपति दोगुने उत्तेजित हो उठे। क्रोध के आवेश से तर्क का सूत्र खो गया, और ऐसी दशा में जो ही मुँह से निकला, उसी की गर्जना करके वे कह उठे, ''मैं देख रहा हूँ आप ईश्वर को भी नहीं मानते।''

यह बात बहुत ही असंबद्ध और बच्चों की सी निकल पड़ी। स्वयं भूपति बाबू के भी कानों में यह बात खटके बिना न रह सकी।

भूपति के लाल चेहरे पर एक बार तीक्ष्ण दृष्टि डालकर फिर उपेंद्र के चेहरे की तरफ देख सतीश खिलखिला कर हँस पड़ा और भूपति की तरफ देखकर वह बोला, ''आपने ठीक ही किया है भूपति बाबू, 'चोर-चोर' के खेल में दौड़ने में लाचार होने पर 'बुढिया' को छू देना ही अच्छा होता है।''

इस कड़ी बात से आग-बबूला होकर भूपति ज्यों ही उठ खड़े हुए, त्यों ही उपेंद्र ने हाथ पकड़कर कहा, ''तुम चुप रहो भूपति, मैं अभी इस मनुष्य को ठीक करता हूँ। बुढिया को छू देना, ठिकाने जा पहुँचना, ये सब कैसी बातें हैं रे सतीश! वास्तव में तेरा जैसा संशयी स्वभाव है, इससे संदेह हो ही सकता है कि तू ईश्वर तक को भी नहीं मानता।''

सतीश ने आश्चर्य प्रकट कर कहा, ''हाय रे मेरा भाग्य! मैं ईश्वर को नहीं मानता! खूब मानता हूँ। थिएटर का खेल समाप्त होने के बाद आधी रात को कब्रिस्तान के पास से लौटता हूँ। कोई भी आदमी नहीं रहता, डर के मारे छाती का खून बर्फ बन जाता है। हँस रहे हो उपेन भैया, भूत-प्रेत मानता हूँ और ईश्वर को मैं नहीं मानता?''

उसकी बात सुनकर कुरुद्ध भूपति भी हँसने लगे। बोले, ''सतीश बाबू, भूत का भय करने से ही ईश्वर को स्वीकार करना होता है, ये दोनों बातें क्या आपके विचार से एक ही हैं?''

सतीश ने कहा, ''हाँ, एक ही हैं। आसपास रख देने से पहचानने का उपाय नहीं है। केवल मेरे लिए ही नहीं, आपके लिए भी यही बात लागू है, उपेन भैया के लिए भी, बल्कि जो लोग शास्त्र लिखते हैं, उनके लिए भी! वह एक ही बात है। नहीं मानते तो अलग बात है, लेकिन मान लेने के बाद जान नहीं बचती है। अभाव में, दुःख में, विपद में, बहुत तरह से मैंने सोचकर देख लिया है, वाग्वितंडा भी खूब सुन लिया है, लेकिन जो अंधकार पहले था, वही अंधकार अब भी है। छोटा सा एक निराकार ब्रह्म मानो या हाथ-पाँवधारी तैंतीस करोड़ देवताओं को ही स्वीकार करो, कोई युक्ति ही इसमें नहीं लगती। सभी एक ही जंजीर में बँधी हुई हैं। एक को खींचने से सभी आकर उपस्थित हो जाते हैं। स्वर्ग-नरक आ जाएँगे, इहकाल परकाल आ जाएँगे, अमर आत्मा आज जागी, तब कब्रिस्तान के देवताओं को किस चीज से रोकोगे? कालीघाट के कंगालों की बात लो। चुपके-चुपके तुम किसी एक आदमी को कुछ देकर क्या छुटकारा पा जाओगे? पल भर में बहुत से कंगले आकर तुमको घेर लेंगे? ईश्वर को मानूँ और भूत से डरूँ नहीं...?''

जिस ढंग से उसने बातें की, उससे सभी ठठाकर हँसने लगे।

झगड़े के जो बादल घिर आए थे, इस सब हँसी की आँधी से न जाने कहाँ विलीन हो गए।

किसी को होश नहीं आ रहा कि दुपहरिया बहुत पहले बीत चुकी है और इतनी देर हो जाने से घर के भीतर भूख-प्यास से बेचैन नौकरानियाँ आँगन में चिल्लाहट मचा रही थीं और रसोईघर में रसोइया काम छोड़ देने के दृढ संकल्प की बार-बार घोषणा कर रहा था।

दो

तीन महीने के बाद कलकत्ता के एक मकान में एक दिन सवेरे नींद टूटने पर सतीश ने करवटें बदलते हुए अचानक यह निश्चय कर लिया कि आज स्कूल न जाऊँगा। वह होमियोपैथिक स्कूल में पढ़ रहा था। गैरहाजिर रहने की इस प्रतिज्ञा ने उसके तन में अमृत की वर्षा कर दी और दमभर में उसने अपने विकल मन को सबल बना डाला। वह प्रसन्न चित्त से उठकर बैठ गया और तंबाकू के लिए पुकार करने लगा।

सावित्री कमरे में आकर पास ही फर्श पर बैठ गई। हँसते हुए उसने पूछा, ‘‘नींद खुल गई बाबू?’’

सावित्री इस घर की नौकरानी और गृहिणी दोनों है। चोरी नहीं करती थी, इसलिए खर्च के रुपए-पैसे सब उसी के पास रहते थे। बदन का एकहरा अत्यंत सुंदर गठन था। उम्र इक्कीस-बाईस की रही होगी, लेकिन चेहरा देखने से और भी कम उम्र की मालूम होती थी। सावित्री सफेद वस्त्र पहनती थी और दोनों होंठ पान और तंबाकू के रस से दिन-रात लाल बनाए रहती थी। वह हँसकर बातचीत करना तो जानती ही थी, उस हँसी का मूल्य भी ठीक उसी तरह समझती थी। गृहसुख से वंचित डेरे के सभी लोगों पर उसके मन में एक आंतरिक स्नेह-ममता थी। फिर भी, कोई उसकी प्रशंसा करता तो वह कहती कि आदर न करने की दशा में आप लोग मुझे रखेंगे क्यों बाबू! इसके अलावा घर जाकर स्त्रियों से निंदा करके कहेंगे, डेरे पर ऐसी दाई है कि भरपेट खाने को भी नहीं देती। उस अपयश की अपेक्षा थोड़ी सी मेहनत अच्छी है। यह कहकर वह हँसती हुई अपने काम को चली जाती थी। डेरे में एक सतीश ही ऐसा था, जो उसका नाम लेकर पुकारता था। जब-तब उसके साथ हँसी-मजाक करता था और मन में आता तो कभी इनाम भी दे देता था। उसका भी सतीश पर स्नेह कुछ अधिक मात्रा में था। सारा दिन सभी कामकाजों में व्यस्त रहने पर भी इसीलिए सदा एक आँख और एक कान सुगठित सुंदर युवक की तरफ लगाए रहती थी। डेरे पर सभी लोग इस बात को जानते थे और कोई-कोई कौतुक के साथ इसका इशारा करने से भी बाज नहीं आता था। सावित्री जवाब देकर, मुसकराती हुई काम पर चली जाती थी।

सतीश ने कहा, ‘‘हाँ नींद खुल गई।’’ इतना कहकर तकिए के नीचे से उसने एक रुपया निकालकर उसके सामने फेंक दिया।

सावित्री ने रुपया उठाकर कहा, ‘‘सवेरे ही फिर क्या ले आने की जरूरत हो गई?’’

सतीश ने कहा, ‘‘संदेश! लेकिन मेरे लिए नहीं। अभी तुम रख लो, रात को अपने बाबू के लिए खरीदकर ले जाना।’’

सावित्री ने नाराज होकर रुपए को बिछौने पर फेंककर कहा, ‘‘यह लीजिए अपने रुपए को। मेरा बाबू संदेश नहीं खाता।’’

रुपए को फिर फेंककर अनुरोध के स्वर में सतीश ने कहा, "मेरे सिर की सौगंध सावित्री, इस रुपए को तुम किसी प्रकार भी वापस न कर सकोगी। मैंने सचमुच ही तुम्हारे बाबू को संदेश खाने के लिए दिया है।"

सावित्री ने मुँह उदास बनाकर कहा, "जब-तब आप स्त्रियों की तरह सिर की सौगंध दिलाते रहते हैं, यह बड़ा अन्याय है। बाबू-बाबू मेरे नहीं हैं। मेरे बाबू आप लोग हैं।"

सतीश ने हँसकर कहा, "अच्छा दे दो रुपया, लेकिन बताओ, मेरे सिवा अगर और कोई बाबू हो तो मैं उसका सिर खाऊँ।"

सावित्री हँसकर बोली, "मेरा बाबू क्या आपकी सौत है, जो सिर खा रहे हैं?"

सतीश ने कहा, "मैं उनका सिर खा रहा हूँ, या वे ही मेरे सिर खा रहे हैं? बल्कि मैं तो उनको संदेश खिला रहा हूँ।"

सावित्री ने अपनी हँसी को रोककर कहा, "नौकर-नौकरानियों के साथ इस तरह बातचीत करने से छोटे आदमियों को प्रश्रय मिल जाता है, फिर वे मुँह लग जाते हैं, जरा समझ-बूझकर बातें करनी होती हैं बाबू, नहीं तो लोग निंदा करते हैं।" यह कहकर रुपया उठा लिया और फिर कमरे से बाहर चली गई। थोड़ी ही देर बाद फिर लौटकर बोली, "इस समय क्या बनेगा?"

भोजन संबंधी सभी बातों में सतीश एक गुणवान आदमी है, इसका परिचय सावित्री पहले ही पा चुकी थी। इसी के लिए प्रतिदिन प्रातःकाल वह एक बार आ जाती थी और सतीश की आज्ञा लेकर चली जाती थी और खुद ही खड़ी रहकर महराज से सभी कामों में खूब अच्छी तरह पूरा करा लेती थी। इस समय नौकर तंबाकू दे गया था, सतीश फिर एक बार करवट लेकर बोला, "जो मन हो, वही बनवाओ।"

सावित्री बोली, "फिर क्रोध भी मौजूद है, देखती हूँ।"

दीवाल की तरफ मुँह फेरकर तंबाकू खींचते हुए सतीश बोला, "पुरुष ही ठहरा, क्रोध क्यों नहीं रहेगा? आज मैं भोजन भी नहीं करूँगा।"

सावित्री बोली, "शायद और कहीं ठिकाना लग गया है, किंतु कुछ भी हो, सतीश बाबू, स्कूल आपको जाना पड़ेगा, कहे देती हूँ।"

इतने थोड़े समय के बीच ही नियमित रूप से स्कूल जाने का धंधा फिर सतीश को भार सा बनकर दबाता जा रहा था और तरह-तरह के बहाने, तरह-तरह के कारण निकालकर उसने अनुपस्थित होना शुरू कर दिया था। आज उस बहानेबाजी की पुनरावृत्ति का सूत्रपात होते ही वह समझ गई।

सतीश हड़बड़ाकर उठ बैठा और बनावटी क्रोध के स्वर में बोला, "शुभ कार्य के शुरू में ही टोको मत।"

सावित्री ने कहा, "यह तो आप कहेंगे ही, लेकिन एंट्रेंस पास करने में चौबीस साल बीत गए, यह डॉक्टरी पास करने में चौंसठ बीत जाएँगे।"

सतीश ने क्रोध भाव से कहा, "झूठी बात मत कहो सावित्री। मैंने एंट्रेंस पास नहीं किया।"

सावित्री हँसने लगी। बोली, "इसको भी पास नहीं किया?"

सतीश ने गरदन हिलाकर कहा, "नहीं। ईर्ष्यालु मास्टरों ने मुझे पास करने के लिए

परीक्षा में बैठने ही नहीं दिया।''

सावित्री ने हँसकर कहा, ''तो क्या इसकी भी वही हालत होगी?''

''किसकी?''

''इस डॉक्टरी की?''

सतीश ने कहा, ''अच्छा सावित्री, गधों की तरह जितने लोग हैं, वे परीक्षा पास करके क्या करते हैं, तुम बता सकती हो?''

सावित्री हँसी के वेग को दबाकर बोली, ''गधों की तरह, लेकिन गधे हैं नहीं। जो लोग वास्तव में गधे हैं, वे पास ही नहीं कर सकते।''

सतीश ने दरवाजे से झाँककर एक बार देख लिया। फिर स्थिर भाव से बैठ गया और गंभीर होकर बोला, ''अगर कोई सुन लेगा तो वह सचमुच ही निंदा करेगा। मेरे मुँह पर ही मुझे गधा कह रही हो।''

हाय रे! कर्मों के दोष से आज सावित्री घर की सेविका है। इसी कारण वह इस आघात को सहकर बोली, ''ठीक ही तो है।'' यह कहकर वह चली गई।

सतीश फिर आलसी की भाँति बिछौने पर लेट गया। उसके मन में कर्मविहीन समूचे दिन का जो चित्र उज्ज्वल होकर उठ रहा था, सावित्री की बातों की चोट से उसका अधिकांश मलिन हो गया और मन की जिस व्यथा को लेकर सावित्री स्वयं चली गई, वह भी उसकी छुट्टी के आनंद को बढ़ाकर नहीं गया और यद्यपि वह मन ही मन समझ गया, आज फिर नागा करने से लाभ नहीं होगा, तो भी कुछ न करने का लोभ भी वह छोड़ न सकने पर आलस्यभरे विरक्त चेहरे से बिछौने पर ही लेट रहा, लेकिन ठीक समय पर स्नान के लिए तकाजा आ पड़ा; लेटे-लेटे बोला, ''जल्दी क्या है? आज तो मैं बाहर जाऊँगा नहीं।''

सावित्री ने कमरे में घुसकर कहा, ''यह नहीं हो सकता।'' आपको स्कूल जाना ही पड़ेगा। जाइए, स्नान करके भोजन कीजिए।''

सतीश ने कहा, ''तुमको क्या मेरा संरक्षक नियुक्त किया गया है, जो जिद कर रही हो। आज मैं पादमेकं न गच्छामि।''

सावित्री तनिक हँसकर बोली, ''नहीं जाना है तो स्नान तो कर लीजिए। आपके आलस्य से नौकर-नौकरानियों को दुःख होता है, इसे क्या आप नहीं देखते?''

सतीश ने कहा, ''ऐ कैसे नौकर-नौकरानियाँ हैं, जो नौ बजते न बजते ही दुःख पाने लगते हैं। इस डेरे को मुझे बदल देना पड़ेगा।''

सावित्री ने हँसकर कहा, ''तब तो मुझे भी बदल ही देना पड़ेगा! लेकिन तुरंत ही वह बात को दबाकर बोल उठी, ''तब तक आपको इसी डेरे का नियम मानकर चलना पड़ेगा, स्कूल में भी जाना पड़ेगा। उठिए, दिन चढ़ता जा रहा है।'' इतना कहकर सतीश की धोती और अँगोछा स्नानघर में रख आने के लिए चल पड़ी।

सतीश नियमित संध्या-वंदन किया करता था। आज वह स्नान करके आया और पूजा के आसन पर बैठकर देर करने लगा। सावित्री दो-तीन बार आकर देख गई और दरवाजे के बाहर से पुकारती हुई बोली, ''अब देर क्यों, परोसा हुआ भात ठंडा होकर पानी हो रहा है। स्कूल जाना नहीं पड़ेगा। दो कौर खाकर हम लोगों को जरा फुरसत तो दीजिए।''

सतीश और भी पाँच मिनट चुपचाप बैठा रहा, फिर खड़ा होकर बोला, ''संध्या-पूजा के

समय गड़बड़ी मचाने से जानती हो, क्या होता है?"
सावित्री ने कहा, "गंगाजली और पंचपात्र सामने रखकर ढोंग रचाने से क्या होता है, जानते हैं?"
सतीश ने आँखें फैलाकर कहा, "मैं ढोंग रच रहा था! कदापि नहीं।"
सावित्री कुछ कहने जा रही थी, फिर रुक गई। उसके बाद बोली, "इसे तो आप ही जानते हैं, लेकिन आपको भी तो किसी दिन इतनी देरी नहीं होती थी। जाइए, भात परोस दिया गया है।" यह कहकर चल दी।
आज जाड़े के मधुर मध्याह्न में डेरा निर्जन और निस्तब्ध था। इस डेरे में रहनेवाले सभी नौकरी करते हैं। वे लोग दफ्तर गए हैं। रसोइया घूमने गया है, बिहारी बाजार से सौदा लाने गया है, सावित्री की भी कोई आहट-आवाज नहीं सुनाई पड़ती। सतीश ने अपने कमरे में पहले दिवा-निद्रा की मिथ्या चेष्टा की। फिर उठकर बैठ गया और कुछ सोचने लगा। सिरहाने की खिड़की बंद थी। उसको खोलकर सामने की खुली छत की तरफ देखते ही उसी क्षण उसने उसको बंद कर दिया। छत के एक छोर पर बैठकर सावित्री अपने बाल सुखा रही थी और झुककर कोई पुस्तक देख रही थी। खिड़की खोलने, बंद करने की आवाज से उसने चौंककर माथे पर आँचल डालकर खड़ी होकर देखा, खिड़की बंद हो गई थी। थोड़ी देर बाद उसने कमरे में प्रवेश कर कहा, "बाबू, आप मुझे बुला रहे थे?"
सतीश ने कहा, "नहीं।"
"आपके लिए पान और जल ले आऊँ?"
सतीश ने सिर हिलाकर कहा, "ले आओ।"
सावित्री ने पान और जल लाकर बिछौने पर रख दिया और फर्श पर बैठते हुए कहा, "जाऊँ, आपके लिए तंबाकू लाऊँ।"
सतीश ने पूछा, "बिहारी कहाँ है?"
"बाजार गया है।" कहकर सावित्री चली गई और थोड़ी देर के बाद तंबाकू भरकर ले आई। बोली, "आज झूठ-मूठ आपने नागा कर दिया।"
सतीश ने कहा, "ठीक है। मेरा स्वभाव कुछ स्वतंत्र है, इसलिए बीच-बीच में ऐसा न करने से बीमारी पकड़ लेती है। इसके सिवा मैं विधिवत् डॉक्टर बनना भी नहीं चाहता। इधर-उधर की कुछ बातें सीखकर अपने गाँव के मकान पर एक बिना पैसेवाला मुफ्त दवाखाना खोल दूँगा। चिकित्सा के अभाव से देश-गाँव के गरीब दुःखी हैजे की बीमारी से उजड़ते जाते हैं, उन लोगों की चिकित्सा करना ही मेरा उद्देश्य है।"
सावित्री ने कहा, "बिना पैसे की चिकित्सा में शायद अच्छी तरह सीखने की आवश्यकता नहीं है! अच्छे डॉक्टर केवल बड़े आदमियों के लिए होते हैं और गरीबों के लिए गँवार? लेकिन ऐसा भी होगा कैसे? आपके चले जाने से विपिन बाबू भारी कठिनाई में पड़ जाएँगे?"
विपिन बाबू का जिक्र होने से सतीश लज्जित होकर बोला, "मेरे जैसे मित्र उनको बहुत मिल जाएँगे। इसके अलावा अब मैं वहाँ जाता भी नहीं।"
सावित्री ने आश्चर्य के साथ पूछा, "जाते नहीं हैं! तो फिर उनको गाना-बजाना सिखाता कौन है?"

सतीश ने कहा, “गाना-बजाना क्या मैं सिखाता हूँ?”
सावित्री बोली, “क्या मालूम बाबू, लोग यही कहते हैं।”
“कोई नहीं कहता, यह तुम्हारी मनगढ़ंत बात है।”
“आपको बिपिन बाबू का मुसाहिब कहते हैं। यह भी क्या मेरी मनगढ़ंत बात है?”
यह बात सुनकर सतीश आपे से बाहर हो उठा। इसका कारण था विपिन के साथ घनिष्ठ संबंध। बाहर के लोगों की चर्चा का विषय होने पर उसका फल साधारणतः क्या होता, इसकी जानकारी उसको थी। कलकत्तावासी विपिन की सांसारिक अवस्था और उसके आमोद-प्रमोद की अत्यधिक सजावट-बनावट के बीच प्रवासी सतीश का स्थान नीचे ही उतर आएगा, सतीश के दिल का यह संदेह सावित्री के तीक्ष्ण प्रहार से बिल्कुल ही उग्र मूर्ति धारण करके बाहर निकल आया। वह दोनों नेत्रों को सतेज बनाकर गरज उठा, “क्या मुसाहिब हूँ? कौन कहता है, बताओ तो?”
“किसका नाम बताऊँ? जाऊँ, राखाल बाबू का बिछौना धूप में डाल आऊँ।”
“बिछौना छोड़ो, नाम बताओ।”
“कुमुदिनी।” सावित्री ने हँसकर कहा।
सतीश ने आश्चर्य में पड़कर कहा, “उसको तुम किस तरह जान गईं?”
सावित्री बोली, “उन्होंने मुझे काम करने के लिए भुला भेजा था।”
“तुमको? साहस तो कम नहीं है। तुमने क्या कहा?”
“अभी तक मैंने कुछ कहा नहीं है, सोच रही हूँ, वेतन ज्यादा है, काम कम है, इसीलिए लोभ हो रहा है।”
सतीश की आँखों से आग की चिनगारियाँ निकलने लगीं। उसने कहा, “यह है विपिन की करतूत! तुम्हारा नाम वह अकसर लेता रहता है।”
सावित्री ने हँसी को रोककर कहा, “लेते रहते हैं? तब तो मालूम पड़ता है मेरे ऊपर दिल लग गया है?”
“अच्छा तुम जाओ!”
सावित्री चली गई। राखाल के बिछौने को धूप में डालकर झटपट वापस आकर खिड़की के सुराख से झाँककर उसने देखा, सतीश कुरता पहन चुका है और बक्स में से एक बंडल नोट जेब में रख रहा है। सावित्री दोनों चौखटों पर हाथ रखकर रास्ता रोककर खड़ी हो गई। बोली, “कहाँ जाइएगा?”
“काम है, रास्ता छोड़ दो।”
“क्या काम है, सुनूँ तो।”
सतीश ने नाराज होकर कहा, “हटो!”
सावित्री हटी नहीं। हँसकर बोली, “भगवान् ने आपको किसी गुण से वंचित नहीं रखा है। इसके पहले आप जुर्माना भी दे चुके हैं?”
सतीश ने आँखें तरेर लीं, कुछ बोला नहीं।
सावित्री बोली, “यह आपका भारी अन्याय है। कहाँ मैं काम करूँ, कहाँ न करूँ, यह मेरी इच्छा पर है, आप क्यों झगड़ा करना चाहते हैं।”
सतीश बोला, “मैं झगड़ा करूँ या न करूँ, यह मेरी इच्छा की बात है, तुम क्यों रास्ता

रोक रही हो?”
सावित्री ने हाथ जोड़कर कहा, “मेरे आने पर जाइएगा!”
सतीश ज्यों ही लौटकर खटिया पर बैठ गया, त्यों ही सावित्री ने बाहर जाकर दरवाजे की जंजीर चढ़ा दी। धीरे-धीरे कहती गई, “जब तक आप शांत न होइएगा, दरवाजा न खोलूँगी।”
यह कहकर वह चली गई। बाहर न जा सकने के कारण सतीश अपने कुरते को जमीन पर फेंककर लेट गया।
विपिन के साथ उसका परिचय इलाहाबाद में हुआ था। कलकत्ता जाकर यथेष्ट घनिष्ठ हो जाने पर भी उस डेरे में उसका जब-तब आना-जाना बढ़ता चला जा रहा था। सावित्री की बातों से वह कारण बिल्कुल ही स्पष्ट हो उठा। सतीश का मित्र और बड़ा आदमी होने से इस डेरे में उसका बहुत सम्मान था। सतीश की अनुपस्थिति में भी उसके प्रति आदर-सत्कार की जिससे त्रुटि न होने पाए, इसका भार सतीश ने सावित्री को सौंप दिया था। इस आदर-सत्कार को विपिन बाबू पूरी मात्रा में वसूल करते जा रहे थे, यह खबर डेरे पर लौट आने पर सतीश जब-तब पा रहा था। अपने मन की इस सरल उदारता की तुलना में विपिन की उस भद्दी क्षुद्रता ने भारी कृतघ्नता की भाँति आज उसको बाँध दिया और सभी निमंत्रण-आमंत्रण, सौहार्द, घनिष्ठता एक ही पल में उनके लिए विष के समान बन गए। बाहरी तौर से वह चुपचाप बना रहा, लेकिन मर्मांतक क्रोध, पिंजड़े में बंद हिंस्र पशु की भाँति उसके हृदय में इस कोने से उस कोने तक घूमने लगा।
एक घंटे के बाद वापस आने पर सावित्री ने खिड़की के बाहर से धीरे-धीरे पूछा, “क्रोध शांत हो गया बाबू?”
सतीश चुप रहा।
दरवाजा खोलकर सावित्री कमरे में आकर बोली, “अच्छा, यह कैसा अत्याचार है, बताइए न?”
सतीश ने किसी तरफ न देखकर पूछा, “कैसा अत्याचार?”
सावित्री ने कहा, “सभी अपनी भलाई खोजते हैं, मैं भी अगर कहीं कोई अच्छा काम पाऊँ, तो उसमें आप नाराज क्यों होते हैं?”
सतीश ने उदास भाव से कहा, “नाराज क्यों होऊँगा? तुम्हारी इच्छा होगी तो जरूर जाओगी।”
“फिर मेरे नए मालिक को मारने-पीटने की तैयारी आप क्यों कर रहे हैं?”
“यदि तुम्हारी चीज को कोई भुलावा देकर ले जाए, तुम क्या करोगी?” सतीश बोला।
“लेकिन मैं क्या आपकी चीज हूँ?” कहकर सावित्री हँस पड़ी।
सतीश ने लजाकर कहा, “धत्! यह बात नहीं है, लेकिन...।”
सावित्री ने कहा, “लेकिन की अब जरूरत नहीं है, मैं जाऊँगी नहीं।”
सतीश का कुरता धरती पर पड़ा था, सावित्री ने उसको उठा लिया और जेब से नोटों का बंडल निकाल लिया। बक्स में चाबी लगी हुई थी, नोटों को अंदर रखकर ताला बंद करके चाभी अपने रिंग में पहनाते हुए बोली, “मेरे ही पास रहेगी। रुपए की जरूरत पड़ने पर माँग लेना।”

सतीश ने कहा, "अगर तुम चोरी करो तो?"
सावित्री हँस पड़ी, आँचल में बँधे हुए चाभियों के गुच्छे को पीठ पर फेंककर बोली, "मैं चोरी करूँगी तो आपको कोई चोट न पहुँचेगी।"
सतीश सावित्री के चेहरे की तरफ थोड़ी देर तक ताकता रहा। उस क्षण-काल की दृष्टि से उसने क्या देख लिया, वही जानता है, चौंक उठने पर वह बोल उठा, "सावित्री, तुम्हारा घर कहाँ है?"
"बंगाल में।"
"इससे ज्यादा और कुछ न बताओगी?"
"नहीं।"
"घर कहाँ है, भले ही न बताओ, जाति क्या है, यह तो बताओ।"
सावित्री ने तनिक हँसकर कहा, "यह जान लेने से भी क्या होगा? मेरे हाथ का पकाया भात तो आप खाएँगे नहीं।"
थोड़ी देर तक सोचकर सतीश बोला, "संभव नहीं है, लेकिन जोर के साथ बिल्कुल 'नहीं' भी मैं नहीं कर सकता।"
अपनी चमकीली आँखों को सतीश के चेहरे पर एकटक डालकर क्षण भर बाद ही वह हँस पड़ी। बालिका की तरह सिर हिलाकर अपने कंठ-स्वर में अनिर्वचनीय प्यार घोलकर बोली, "नहीं कह नहीं सकते, क्यों, बताइए न?"
सतीश के सिर पर मानो भूत सवार हो गया। उसकी छाती का रक्त उथल-पुथल करने लगा। वह बोल उठा, "क्यों, मैं जानता नहीं हूँ सावित्री, लेकिन तुम पकाकर दोगी तो मैं खाऊँगा नहीं, यह कह देना कठिन है।"
"कठिन है? अच्छा, यह एक दिन देख लिया जाएगा। ओह! छोड़ो, राखाल बाबू का तकिया धूप में डालना भूल गई।" कहकर चल पड़ी।
"एक बात सुनती जाओ।" कहकर सतीश एकाएक सामने की ओर झुक पड़ा और हाथ बढ़ाकर उसके आँचल का छोर उसने थाम लिया।
अपनी आँखों से बिजली की वर्षा करती सावित्री बोली, "छिह! आ रही हूँ।" और झटके से आँचल छुड़ा लेने के बाद ओझल हो गई।
अचानक मानो कोई एक कांड हो गया। उसका यह अकस्मात् त्रासयुक्त पलायन, यह दबे हुए कंठ की 'आ रही हूँ' की आवाज और इस आँख की बिजली ने वज्राग्नि की तरह सतीश की समस्त दुर्बुद्धि को एक ही पल में जलाकर राख बना डाला। कुत्सित लज्जा के धिक्कार से उसका सारा शरीर शूल से बिंधे हुए साँप की भाँति मरोड़-मरोड़कर उठने लगा। उसके मन में यह खयाल आया कि इस जन्म में वह फिर सावित्री को अपना मुँह न दिखा सकेगा। किसी जरूरत से वह फिर आ न जाए, इस आशंका से वह उसी क्षण एक शाल खींचकर तूफान के वेग से बाहर निकल गया। तीन-चार सीढ़ियाँ बाकी ही थीं कि उसी समय सतीश ने सावित्री के कंठ की आवाज फिर सुन ली। वह रसोई-घर से दौड़कर चली आई थी और पुकारकर कह रही थी, "एक साथ ही खाना खाकर घूमने जाइए बाबू, वरना वापस आने में देर होने से सब नष्ट हो जाएगा।"
मानो सुनाई ही नहीं पड़ा, इस रुख से सतीश बाहर चला गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल जिस समय सावित्री रसोई के बारे में पूछने के लिए आई, सतीश ने धीरे-धीरे कहा, ‘‘मन में कुछ खयाल मत करना।’’

सावित्री ने आश्चर्य के साथ पूछा, ‘‘क्या खयाल मन में न लाऊँगी?’’

सतीश सिर झुकाकर चुप हो रहा।

मीठी हँसी हँसकर सावित्री ने कहा, ‘‘अच्छा, जो कुछ भी हो, मेरे पास समय नहीं है, क्या रसेई बनेगी, बताइए न?’’

‘‘मैं नहीं जानता, तुम्हारी जो इच्छा हो।’’

‘‘अच्छा!’’ कहकर सावित्री चली गई, उसने फिर नहीं पूछा।

दो घंटे के बाद लौटकर बोली, ‘‘कैसा कांड मचा रखा है, बताइए तो! आज भी ‘पदमेकं न गच्छामि’ ही रहेगा?’’

सतीश फिर भी चुप रहा।

सावित्री ने कहा, ‘‘नौ बज चुके हैं।’’

समय बीत जाने की खबर से सतीश रत्ती भर भी घबराहट न दिखाकर बोला, ‘‘बज जाएँ, मुझे और कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।’’

आलस्य में बेकार समय नष्ट करना सावित्री बिल्कुल ही सह नहीं सकती थी। इसी कारण वह कुछ दिनों से भीतर ही भीतर कुपित और असहिष्णु होती जा रही थी। जरा रूखे कंठ से उसने पूछा, ‘‘क्या अच्छा नहीं लग रहा है? पढ़ने जाना?’’

सतीश भी स्वयं मन ही मन चिढ़ता जा रहा था। उसके चेहरे की तरफ देखकर सावित्री यह समझ गई और एक क्षण चुप रहकर अपने कंठ के स्वर को कोमल बनाकर बोली, ‘‘लिखना-पढ़ना अच्छा नहीं लग रहा है! अब शायद किसी औरत का आँचल पकड़कर खींचातानी करना अच्छा लग रहा है। स्कूल जाइए। बेकार उपद्रव मत कीजिए।’’

उसके तिरस्कार में यद्यपि हार्दिक स्नेह और एकांत कल्याणेच्छा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था, किंतु बातों के तरीके ने सतीश के समूचे अंक में मानो काँटेदार लता को लपेट दिया। देखते-देखते उसकी आँखें और चेहरा क्रोध से लाल हो उठा। वह बोला, ‘‘जो भी बात मुँह में आता है, तुम वही कह डालती हो। प्रश्रय पा लेने पर केवल कुत्ते ही सिर पर नहीं चढ़ जाते, मनुष्य को भी वह बात याद दिलानी पड़ती है।’’

‘‘यह तो है गाली-गलौज!’’ सावित्री पल भर चुप रही, फिर कंठ-स्वर को और धीमा कर बोली, ‘‘पड़ता तो है जरूर! नहीं तो आपको ही याद दिलाने की क्यों जरूरत पड़ेगी कि यह है भले आदमियों का मकान, वृंदावन नहीं है।’’

इतना कहकर वह तेज कदम बढ़ाए चली गई। आश्चर्य से सतीश स्तंभित हो रहा। सावित्री उसको इस तरह बींध सकती है, इस बात को तो वह अपने मन में स्थान भी नहीं दे सकता था। कुछ देर तक एक ही दशा में बैठा रहकर वह हठात् उठ खड़ा हुआ और किसी तरह स्नान-भोजन करके पढ़ने के बहाने बाहर निकल गया।

उस दिन उसका अपमान से आहत चित्त उसकी प्रवृत्तियों पर शासन करने लगा और वह जितना ही अपने अचिंतनीय अद्‌भुत व्यवहार का तात्पर्य खोजकर भी न पा सका, उतना ही उसके मन में एक बात बार-बार चक्कर काटने लगी। किसलिए उसने आँचल पकड़ लिया था, कौन सी बात उसको कहने की आवश्यकता पड़ी थी और सावित्री इस तरह भागकर न

चली जाती तो वह क्या कहता? क्या करता? इसी प्रकार सारा दिन वह अपने ही हथियार से स्वयं क्षत-विक्षत होकर संध्या समय गंगाजी के किनारे जाकर निर्जीव की भाँति एक पत्थर पर बैठ गया।

कल जिस समय सावित्री के सामने मन की दुर्बलता अचानक प्रकट हो जाने पर वह लज्जा के मारे मकान से लंबी साँस भरता हुआ भाग गया था, इस समय उस लज्जा में मानो कुछ मिठास मिली हुई थी। मानो आड़ में रहकर किसी ने उसमें भाग ले लिया था, लेकिन आज सावित्री के व्यंग्य-वचन की आग से उस रस की अंतिम बूँद तक सूख गई और निस्संग लज्जा बिल्कुल ही शुष्क कठिन होकर उसके हृदय में बद्धमूल होकर बैठ गई। उस दिन उसके आत्म-सम्मान ने केवल सिर झुका दिया था, आज वह उसके कंधे पर टूट पड़ा और सबसे बढ़कर यह दुःख चोट पहुँचाने लगा कि इस स्त्री से उसने इतने दिन जितने परिहास किए हैं, उन सभी का आज एक गंदा अर्थ निकाला जाएगा। कल प्रातःकाल तक सचमुच ही उसके परिहासों में व्यंग्य के अलावा कोई दूसरा अर्थ नहीं था, निर्जन मध्याह्न के इतने ही असमय के बाद उस बात को तो मुँह में लाने का भी अब उपाय नहीं रहा। आसक्ति बहुत दिनों से छिपी हुई दशा में प्रतीत नहीं कर सकती थी, इस बात पर तो सावित्री किसी तरह भी विश्वास न करेगी। वह कहेगी, इसके मन में यही बात थी! लेकिन उसके मन में तो कुछ भी नहीं था। इस सत्य को समझाकर बता देने का सुअवसर उसको कब मिलेगा?

वह अच्छा लड़का नहीं है, इसकी लज्जा भी उसको बहुत अधिक नहीं थी, लेकिन पाखंडी समझा जाने को निंदा वह कैसे सहेगा, उसने मन-ही-मन कहा, "यदि वह चोर है तो चोर की तरह सेंध काटते समय ही रँगे हाथों क्यों न पकड़ लिया गया। सावित्री मानो मन-ही-मन हँसकर कहेगी, यह साधु जटा-कमंडल पीठ पर लादे त्रिशूल से सेंध काट रहा था, पकड़ा गया है। इस अपवाद की कल्पना उसको जलाने लगी। इसी प्रकार बैठे रहने पर रात कितनी बीत गई, इसको वह जान भी न सका। जाड़े का कोप होने से जब उसको जाड़ा लगने लगा और उस पर चटकल की घड़ी में जब बारह बज गए, तब सतीश उठ पड़ा और अपने घर की तरफ रवाना हो गया। कुछ क्षण के लिए मानो वह अपनी काल्पनिक बातों को भूल गया था, लेकिन चलते-चलते मकान की दूरी जितनी ही घटने लगी, उसका मन फिर उसी अनुपात से छोटा होने लगा। अंत में गली के मोड़ के पास आ जाने पर उसके कदम उठ ही नहीं रहे थे। धीरे-धीरे किसी तरह वह मकान के दरवाजे के सामने आकर चुपचाप खड़ा रहा। कहीं भी कोई भी जाग रहा है, ऐसा मालूम नहीं हुआ और यद्यपि वह जानता था कि इतनी रात को सावित्री अवश्य ही अपने घर लौट गई होगी तो भी दरवाजा खटखटाने, पुकारने का साहस उसको नहीं हुआ। भय होने लगा कि, कहीं वही आकर दरवाजा न खोल दे। ठीक उसी समय किवाड़ आप ही खुल गए। एक क्षण सतीश चुप रहा। फिर बोला, "बिहारी है?"

"हाँ बाबू!"

"सब खा चुके?"

"जी, हाँ!"

"नौकरानी चली गई?"

"जी हाँ, मुझे बैठे रहने को कहकर अभी चली गई।"

यह सुनकर सतीश मानो बच गया। खुश होकर उसको दरवाजा बंद करने को कहकर ऊपर चला गया।

बिहारी आकर बोला, ‘‘बाबू आपका खाना?’’

‘‘मैं खाकर आया हूँ।’’

बिहारी ने कहा, ‘‘आपके लिए पान और जल इस मेज पर रखा है।’’

‘‘अच्छा, तू जाकर सो जा।’’

बिहारी चला गया। सतीश बिछौने पर पड़कर सो गया।

झगड़ा कर चुकने के बाद सावित्री का भी मन अच्छा नहीं था। सतीश की कटूक्ति का उत्तर देना उचित काम नहीं हुआ है, यह अनुपात सारी दुपहरिया उसको क्लेश देता रहा। इसलिए दिन में किसी समय एकांत में क्षमा-याचना कर लेने की आशा-आशंका में परिणित होने लगी। वह जानती थी कि इस कलकत्ता में विपिन के यहाँ जाने के सिवा सतीश के लिए और कोई स्थान नहीं है। इसलिए सबसे पहले यह भय उत्पन्न हो गया कि वह उसी दल में सम्मिलित हो गया होगा। क्रमशः रात बढ़ने लगी। सतीश नहीं आया। वह और कहीं जा सकता है, ऐसा विचार भी उसके मन में नहीं आया। संदेह दृढ होकर जब विश्वास में परिणत हो उठा, तब प्रतीक्षा करना भी उसके लिए असंभव हो उठा। वास्तव में उसको घृणा होने लगी कि क्षमा माँगने के लिए वह ऐसे आदमी की भी राह देख रही है। इसी कारण बिहारी को बैठने को कहकर सावित्री बड़ी रात को घर लौट गई। अपने घर जाकर वह बिस्तर पर लेट तो रही, लेकिन आँखों में नींद नहीं आई! प्रभात के लिए और प्रतीक्षा न कर सकने पर अँधेरा रहते ही वह चली गई। रास्ते में उस समय मारवाड़ी स्त्रियाँ गाते-गाते गंगा स्नान करने जा रही थीं। सावित्री ने कहा, ‘‘गंगा मैया, जाकर सब अच्छा ही देखूँ।’’

उसके दोनों होंठ काँपने लगे। आँसू से दोनों आँखें भर गईं और इस कल्पित आशंका से अपने संपूर्ण मन को भर वह राह में तेज कदम से चलते-चलते हजारों बार मन-ही-मन उच्चारण करने लगी, ‘‘सकुशल रहें। जो भी मन हो, करें, लेकिन अच्छे रहें।’’ मकान पर पहुँचने पर पुकारन के बाद बिहारी ने दरवाजा खोलने के साथ ही कहा, ‘‘सतीश बाबू बड़ी रात को आए और मालूम नहीं कहाँ से खाना खाकर आए।’’ यह खबर पहले ही देने की जरूरत है, यह बात इस बूढ़े से छिपी नहीं थी। सावित्री ऊपर जा रही थी, ठिठुरकर खड़ी हो गई। भौंहों को सिकोड़कर उसने कहा, ‘‘शायद बाबू ने खाया नहीं?’’

‘‘नहीं, उनका खाना तो ढका हुआ रखा है।’’

सावित्री ‘हूँ’ कहकर ऊपर चली गई। उसका दुश्चिंता से ग्रस्त मन निर्भय होने के साथ फिर ईर्ष्या से जल उठा।

प्रातः दिन चढ़ आने पर जब सतीश की नींद टूटी, ठीक उसी समय सावित्री आ खड़ी हुई। उसके मुँह की तरफ देख लेने के साथ ही सतीश ने सिर झुका लिया। कुछ देर बाद सावित्री ने कहा, ‘‘क्या रसोई बनेगी, यह जान लेने के लिए आई हूँ।’’

‘‘रोज जो बनती है, वही बनने दो।’’

‘‘अच्छा!’’ कहकर सावित्री जाने को तैयार होते ही फिर खड़ी हो गई। बोली, ‘‘लिखने-पढ़ने की तरह बाबू को क्या खाना-पीना भी अब अच्छा नहीं लगता?’’

सतीश ने धीरे से कहा, ‘‘मैं खा आया था।’’ उसने डर से झूठी बात कह दी, लेकिन कहाँ,

इस बात को भी सावित्री ने घृणा के कारण नहीं पूछा। थोड़ी देर चुप रहकर बोली, "आज दो दिन से आप भागते हुए घूम रहे हैं, किस बात के डर से, सुनूँ तो? मेरे कारण अगर असुविधा होती हो तो आप जवाब दे सकते हैं।"

सतीश ने मुँह ऊपर उठाकर कहा, "तुम्हारा अपराध क्या है? इसके अलावा मैं तो जवाब देने का मालिक भी नहीं हूँ, यह मकान तो केवल मेरा अकेले का नहीं है।"

सावित्री ने कहा, "अकेले का होता तो शायद जवाब दे देते। अच्छा, तो मैं खुद ही चली जा रही हूँ।"

सतीश चुप ही रहा। यह देखकर सावित्री मन ही मन और भी जल उठी, बोली, "मेरे जाने से आप खुश होते हैं? आपके पैरों पर गिरती हूँ सतीश बाबू, हाँ या नहीं, एक जवाब दीजिए।"

फिर भी सतीश चुप ही रहा। सावित्री इस मकान पर अपना कितना हक रखती है, इस बात को वह जानता था और इस प्रकार उसके चले जाने से कोई भी बात छिपी न रहेगी, तब सभी बातें एक मुँह से दूसरे मुँह में बढ़ते-बढ़ते कैसी घृणित आकृति धारण कर लेंगी, इसका निश्चित अनुमान करके वह डर गया।

क्षण भर चुप रहकर उसने मीठे स्वर से कहा, "मुझे क्षमा करो सावित्री! जब तक मैं यहाँ हूँ, कम से कम तब तक तो कभी मत जाओ।"

कोई दूसरा समय होता तो वह तुरंत क्षमा कर देती, लेकिन सतीश के संबंध में वह शायद एक निराधार संदेह का मन ही मन पोषण कर रही थी, इसलिए इस मृदु कंठ-स्वर को कपटाचरण समझकर वह निर्दय हो उठी और उसके ही गले का अनुकरण करके वह उसी क्षण बोल उठी, "आप इतना आडंबर करके क्षमा माँगकर साधु बनने जा रहे हैं, किसलिए? मुझ जैसी नीच स्त्री का आँचल पकड़कर ऐसा क्या आपने नया काम किया है कि लज्जा से बिल्कुल ही मरते जा रहे हैं! इससे अच्छा यह है कि आप अपने घर चले जाइए। लिखना-पढ़ना आपका काम नहीं है।"

जो सतीश उग्र स्वभाव के कारण किसी की भी परवाह नहीं करता था, बातों को सह लेना जिसका स्वभाव नहीं था, वह इस समय इतने बड़े अपमान की बात से चुप हो रहा।

उसका अपराधी मन भारी बोझ से दबे हुए बोझ ढोनेवाले पशु की तरह इस प्रकार निरुपाय दशा में राह में संकोच से पड़ा हुआ था कि सावित्री के इस बार के निष्ठुर आघात से भी वह किसी तरह अपना मस्तक ऊपर उठाकर खड़ा न हो सका।

सावित्री की चौंक टूट गई। उसकी स्पर्धा क्रोध को भी पार कर गई, यह बात उसके अपने कानों में भी जा लगी। बड़ी देर तक वह चुपचाप खड़ी रही, फिर धीरे-धीरे बाहर निकल गई।

तीन

सावित्री आज भी काम-धंधों में लगी तो रही, लेकिन उसके मन में दिन भर एक उत्कंठा बनी रही। सतीश यदि कल की तरह आज भी क्रोध करता अथवा एक भी बात का जवाब देता तो अच्छा होता, लेकिन उसने कुछ भी नहीं किया। उदास मुख से नियमानुसार भोजन

करके पढ़ने चला गया और ठीक समय पर लौट आकर चुपचाप अपने कमरे में बैठा रहा। आड़ में रहकर सावित्री सब कुछ लक्ष्य करने लगी, लेकिन इस तरह का बहाना करके भी आज उसके कमरे में घुसने का उसने साहस नहीं किया। प्रतिदिन संध्या के बाद वह उसके कमरे में झाड़ू लगा आती थी, आज उसने बिहारी को भेज दिया और संध्या के बाद वही बत्ती जला आया।

इसी समय राखाल बाबू के कमरे में शतरंज का अड्डा जमता था, आज भी जम गया। सामने की खुली छत पर कोई भी नहीं था। सावित्री इधर-उधर देखकर अपने सारे संकोच को बलपूर्वक हटाकर चुपके-चुपके पैर बढ़ाती हुई सतीश के कमरे में जा पहुँची। सतीश बिछौने पर चित लेटा हुआ शायद छत की कड़ियों को गिन रहा था। अब उठकर बैठ गया। सावित्री ने कहा, "आपके लिए संध्या-पूजा का स्थान ठीक कर दूँ।"

सतीश ने कहा, "अच्छा, कर दो।"

फिर सावित्री को चुप हो जाना पड़ा, लेकिन कुछ देर बाद ही वह बोल उठी, "अच्छा, लोग क्या कहेंगे बताइए तो?"

सतीश ने कुछ जवाब न दिया।

सावित्री बोली, "आपने मुझे रहने को कहा, लेकिन स्वयं कैसा उत्पात मचा रहे हैं, बताइए तो?"

सतीश ने गंभीर भाव से कहा, "मैंने कोई भी उत्पात नहीं मचाया, चुपचाप पड़ा हुआ हूँ, बस इतना ही।"

सावित्री बोली, "यही चुपचाप पड़ा रहना तो सबसे अधिक बुरा है। सभी चुपचाप पड़े नहीं हैं, तब आपके चुपचाप पड़े रहने से ही चर्चा होने लगेगी, यही क्या आपकी इच्छा है?" थोड़ी देर चुप रहकर वह फिर बोली, "वही जो चुभोकर घाव कर देने की कहावत है, आप ठीक वही कर रहे हैं। दोष नहीं है, फिर भी दोषी बनकर बैठे हुए हैं। इस बात को लेकर पाँच आदमी कानाफूसी करेंगे, हँसी-मजाक करेंगे, यह आप सह सकेंगे, मुझसे तो सहा न जाएगा। मुझे यहाँ से चला जाना पड़ेगा।"

सतीश ने मन में सोचा, "दोष क्या, मैंने तो कुछ भी नहीं किया?"

सावित्री ने कहा, "नहीं! अच्छी तरह विचार कर देखिए तो, मन आप ही आप साफ हो जाएगा। मेरे संबंध में आपकी तरह दोष...।" सावित्री फिर कुछ बोल न सकी। दौड़ता हुआ घोड़ा अचानक गहरी खंदक के किनारे जाकर अपने दोनों पैरों को गड़ाकर जिस तरह जी-जान से रुककर खड़ा हो जाता है, सावित्री की चलती हुई जबान ठीक उसी तरह रुक गई। उसकी इस आकस्मिक निस्तब्धता से आश्चर्य में पड़ा हुआ सतीश ज्यों ही मुँह ऊपर उठाकर देखने लगा, त्यों ही आपस में आँखें लड़ गईं। अपनी लज्जा से सावित्री आप ही मर गई। वह जो यही बात कहने गई थी कि उसकी तरह नारी के संबंध में इस प्रकार के अपराध में लज्जा का कारण नहीं है, इसी लज्जा से उसके केश तक काँप उठे।

सतीश कोई बात कहने जा रहा था, लेकिन सावित्री ने उसको रोककर कहा, "चुप रहिए, आप भी समझ लें। झूठ-मूठ तिल का ताड़ बनाकर कष्ट मत भोगिए। ऐ बिहारी, बाबू के लिए संध्या-पूजा का स्थान जरा जल्दी से धो डालो, मैं देर से आसन लिए खड़ी हूँ।"

बिहारी किसी काम से इसी तरफ आ रहा था, उसी दम जल लाने के लिए जब वह लौट

गया, तब सावित्री ने लांछित अपमान के स्वर में कहा, “आपके बरताव से आज दो दिनों से मैं कितनी परेशान हो उठी हूँ, इसको क्या आप आँखें उठाकर एक बार देख भी नहीं पा रहे हैं? आश्चर्य है!”

उसकी इतनी शीघ्रता में कही हुई बातों को ठीक से समझ लेने का अवकाश सतीश को मिला नहीं, तो भी उसके अंदर की ग्लानि मानो स्वच्छ होकर चली आई और दूसरे ही क्षण क्षमा पाए हुए अपराधी की भाँति पछतावे के स्वर में उसने कहा, “लेकिन मैंने क्या तुम्हारा अपमान नहीं किया?”

सावित्री ने कहा, “न समझने से मैं आपको समझाऊँगी कैसे? हजार बार कहती हूँ, उससे मेरी तरह की स्त्रियों का कोई अपमान नहीं होता। कृपा करके शांत हो जाइए, केवल इतनी ही आपसे विनती कर रही हूँ।

सतीश कुछ कहने जा रहा था, लेकिन सावित्री अपनी दोनों भौंहों को सिकोड़कर संकेत में मना करके बोली, “बिहारी आ गया!”

बिहारी लोटे में पानी लेकर आ गया था। सावित्री ने उसके हाथ से लोटा लेकर, कमरे के एक कोने को अच्छी तरह धोकर आँचल से पोंछकर सतीश से कहा, “आप जाइए, हाथ-पाँव धोकर संध्या करने के लिए बैठ जाइए। पूजा की सामग्री आदि उस ताख में है।”

इतना कहकर बिहारी को साथ लेकर वह धीरे-धीरे बाहर चली गई।

ध्यान लगाकर सांध्यकृत्य समाप्त करके उठने के साथ ही सतीश ने देखा, इस बीच कोई चुपके से बाहर आकर आसन बिछाकर उसके लिए भोजन रख गया है। यद्यपि मकान में आज कोई नहीं था, तो भी वह निश्चिंत रूप से समझ गया कि वह अकेला नहीं है। इस आसन पर बैठकर उसने कहा, “अभी इतना अखिक खा लेने से फिर तो रात को न खा सकूँगा।”

बाहर से उत्तर आया, “खाना भी न पड़ेगा, विपिन बाबू के यहाँ से आदमी निमंत्रण दे गया है।”

सतीश हँस पड़ा। बोला, “लाओ, जलाओ मत, मैं कहीं भी जा न सकूँगा।”

सावित्री आड़ से ही बोली, “ऐसा भी क्या होता है। कह गए हैं, शायद कहीं जाना होगा, आप जानते ही होंगे और न जाने से उन लोगों का सबकुछ चौपट हो जाएगा। गाना-बजाना।”

“होने दो।”

इतना कहकर सतीश इस विषय की चर्चा बंद करके चुपचाप भोजन करने लगा और समाप्त हो जाने पर बिछौने के सिरहाने बत्ती लाकर भले लड़के की भाँति एक डॉक्टरी की किताब खोलकर लेट गया, लेकिन उस तरफ किसी भी दशा में मन न लग सका। उसका व्याकुल मन बंधन से छूटे हुए घोड़े की तरह बेकार सर्वत्र दौड़ने लगा।

रसोई को ढककर रसोइया महराज बिहारी से गाँजा मँगवा रहा था और राखाल बाबू के कमरे में शतरंज खेल का कोलाहल बढ़ता ही जा रहा था।

सतीश ने पुकारा, “सावित्री!”

सावित्री उस समय भी चौखट के बाहर बैठी थी, बोली, ‘‘कहिए!’’

सतीश बोला, ‘‘विपिन बाबू के निमंत्रण में जाना महापाप है। बिना समझने पाप कर डाला है अवश्य, लेकिन समझकर न करूँगा।’’

सावित्री ने बाहर से पूछा, ‘‘पाप क्यों?’’

सतीश ने कहा, ‘‘मैं जानता हूँ किस स्थान पर उनके गाने-बजाने की तैयारी चल रही हैं, केवल उस स्थान पर जाना ही पाप का काम है।’’

‘‘ठीक बात है।’’

सतीश उत्तेजित होकर बोला, ‘‘सचमुच ही न जाऊँगा, लेकिन वे लोग सहज ही में मुझे छुटकारा देंगे, ऐसा मालूम नहीं होता। अगर कोई आए, तो कह देना मैं घर पर नहीं हूँ, रात को भी न जाऊँगा। समझ गई न!’’

सावित्री बोली, ‘‘समझ गई।’’

क्षण भर चुप रहकर सतीश ने कहा, ‘‘कहाँ से तेज हवा आ रही है सावित्री, खिड़कियाँ बंद कर दो।’’

सावित्री आकर खिड़कियाँ बंद करने लगी। सतीश एकटक देखता रहा। देखते-देखते अकस्मात् कृतज्ञता से उसका हृदय भर गया। बोला, ‘‘अच्छा, सावित्री, तुम अपने को नीच स्त्री क्यों कहा करती हो?’’

सावित्री बोली, ‘‘जो बात सच है, वह क्या कहूँगी नहीं?’’

सतीश ने कहा, ‘‘यह बात किसी तरह भी सच नहीं है, तुम गले तक गंगाजल में खड़ी होकर बोलोगी तो भी मैं विश्वास न करूँगा।’’

सावित्री मुसकराकर बोली, ‘‘क्यों नहीं करोगे?’’

‘‘यह नहीं मालूम। शायद सच नहीं है, इसलिए। नीच की तरह तुम्हारा व्यवहार नहीं है, बातचीज का तरीका नहीं है, आकृति नहीं है, इतना लिखना-पढ़ना भी तुमने कहाँ सीखा?’’

सावित्री हँसकर बोली, ‘‘इतना, कितना, सुनूँ तो?’’

सतीश कुछ कहने ही जा रहा था कि उन्मत्त कंठ से पुकार आई, ‘सतीश बाबू!’

सतीश जान गया, यह विपिन का दल है, उसको ही पकड़ने आया है और कोई बात उसने नहीं सोची। बत्ती बुझाकर, शरीर ढककर सो रहा। पास ही फर्श पर बैठी हुई सावित्री बोली, ‘‘यह क्या कर डाला?’’

दूसरे ही क्षण अँधेरे दरवाजे के सामने दो मूर्तियाँ आकर खड़ी हो गईं। एक ने कहा, ‘‘यही तो कमरा है सतीश बाबू का!’’

दूसरे ने कहा, ‘‘नौकर ने कहा कि बाबू कमरे में हैं।’’

पहले व्यक्ति ने क्रोध करके कहा, ‘‘कमरे में तो अँधेरा है। कोई भला आदमी क्या कभी शाम को डेरे पर रहता है? तुम्हारा जितना...।’’

दूसरा व्यक्ति उसके उत्तर में धीमी आवाज में कुछ कहकर जेब टटोलकर दियासलाई निकालकर बत्ती जलाने को तैयार हुआ।

इधर बिछौने के भीतर सतीश के शरीर का खून पानी हो गया। वह विलायती कंबल ओढ़कर पसीने से तरबतर होने लगा और फर्श के ऊपर सावित्री लज्जा और घृणा से काठ सी बनकर बैठी रही।

दीपशलाका जल उठी। यहाँ यह कौन बैठा हुआ है? पहले व्यक्ति ने ज्यों ही कमरे में घुसकर ढूँढ़कर बत्ती जलाई, त्यों ही सावित्री उठ खड़ी हुई।

दूसरे व्यक्ति ने कुछ हटकर खड़े होकर पूछा, "कहाँ हैं सतीश बाबू।"

सावित्री इशारे से बिछौना दिखाकर चली गई। उसके चले जाने के साथ ही दोनों मतवालों ने ठठाकर हँसना शुरू किया। उस हँसी की आवाज और उसका अर्थ सावित्री के कानों में जा पहुँचा और कंबल में पड़ा हुआ सतीश बार-बार अपनी मृत्यु की कामना करने लगा।

उन लोगों ने सतीश को खींचकर उठा लिया और बलपूर्वक पकड़कर उसे ले चले और जब तक इन लोगों की विकट हास्य-ध्वनि मकान के बाहर पूर्णरूप से विलीन न हो गई, तब तक सावित्री एक अँधेरे कोने में दीवाल पर माथा धरकर वज्राहत की भाँति कठोर होकर खड़ी रही।

लेकिन उस मकान का कोई भी कुछ न जान सका। रसोईघर में रसोइया महराज अभी गाँजे की चिलम खत्म करके इसमें मोक्ष प्रदान करने की आश्चर्यजनक शक्ति वेद में किस तरह लिखी हुई है, यही बात भक्त बिहारी को समझाकर कह रहा था और उस कमरे में राखाल बाबू का दल हड्डी का पासा मनुष्य की चिल्लाहट सुन सकता है या नहीं, इसकी ही मीमांसा में लगा था।

बाहर आकर तीनों एक गाड़ी पर बैठ गए। इन लोगों की उन्मत्त हँसी को सहन न कर सकने के कारण सतीश ने तीखे स्वर से कहा, "या तो आप लोग चुप हो रहिए, या माफ कीजिए, मैं उतर जाऊँ।"

पहला व्यक्ति, "अच्छा" कहकर भयंकर रूप से हँस पड़ा और उसका साथी उसको धमकाकर रुक जाने को कहकर उससे भी अधिक जोर लगाकर हँस उठा। इन दोनों शराबियों के साथ बात करना बेकार समझकर सतीश निष्फल क्रोध से खिड़की से बाहर झाँकने लगा।

रात में अँधेरे में सावित्री चुपचाप बैठी हुई थी, शायद संध्या काल की लज्जाजनक घटना की वह मन ही मन आलोचना कर रही थी। उसी समय बिहारी आकर बोला, "माँजी, सबका खाना हो चुका, महराजजी आपको जलखावा के लिए बुला रहे हैं।"

सावित्री ने उदास भाव से कहा, "आज मैं खाऊँगी नहीं बिहारी।"

बिहारी सावित्री को स्नेह करता था, सम्मान करता था। चिंतित होकर उसने पूछा, "खाओगी क्यों नहीं माँ, क्या तबीयत ठीक नहीं है?"

"ठीक है, किंतु खाने की इच्छा नहीं है। तुम लोग जाकर खा लो।"

बिहारी ने कहा, "तो चलो, तुमको पहुँचा आऊँ।"

सावित्री ने कहा, "अच्छा, चलो, लेकिन एक बात है बिहारी, सतीश बाबू अभी तक लौटकर आए नहीं हैं, तुम लोग जागते रह सकोगे न?"

बिहारी घबराकर बोला, "मैं! लेकिन मेरी कमर में तो वह गठिया का दर्द...।"

"तब क्या होगा बिहारी?"

बिहारी ने तनिक सोचकर कहा, "रसोइया महराज को हुकुम देकर...।"

सावित्री ने झटपट कहा, "यह नहीं होगा बिहारी। ब्राह्मण आदमी को मैं जाड़े में कष्ट न दे

सकूँगी।''

इच्छा न रहने पर भी बिहारी कुछ देर चुप रहकर बोला, ''अच्छा, तो मैं ही रह जाऊँगा। चलो, तुमको पहुँचा आऊँ।''

सावित्री उठ खड़ी हुई। दो-एक कदम आगे बढ़कर रुककर वह बोली, ''जरूरत नहीं है बिहारी, तुम जाओ, खा लो, मैं उसके बाद ही जाऊँगी।''

बिहारी के चले जाने पर सावित्री उसी स्थान पर वापस आकर बैठ गई और अँधेरे आकाश की तरफ देखकर चुप हो रही। आज सतीश के संबंध में उसके मन में यथेष्टा आशंका थी। वह शराबियों के हाथ में पड़ गया है, इस घटना को, अपनी आँखों से देखकर उसको किसी तरह भी घर वापस जाने की इच्छा नहीं हो रही थी। यद्यपि उसकी ही बुद्धिहीनता से घोर लांछित होकर जलन से छटपटाते हुए उसने खूब भोर में ही काम छोड़ देने का दृढ निश्चय कर लिया था, तथापि आज रात भर के लिए इस आदमी को मन ही मन क्षमा न करके, उसकी अवश्यंभावी दुर्दशा का कोई एक उपाय किए बिना वह किसी प्रकार भी अपने घर जाने को तैयार न हो सकी।

बिहारी खाकर आया तो उसने कहा, ''तुम सोने के लिए चले जाओ बिहारी, मैं ही यहाँ रहती हूँ।''

बिहारी ने आश्चर्य से कहा, ''तुम क्या अपने घर जाओगी नहीं?''

''बाबू को लौट आने दो। उसके बाद क्या तुम मुझे पहुँचाने न जा सकोगे?''

''पहुँचा क्यों न सकूँगा माँजी? अवश्य ही पहुँचा सकूँगा।''

''तो फिर वही अच्छा है। मैं ही यहाँ हूँ, तुम जाकर सो जाओ।''

बिहारी के खुश होकर चले जाने पर सावित्री वहाँ ही एक रैपर ओढ़कर बैठ गई। दोनों शराबी जो कुछ देख गए हैं, उसे वे लोग खोलकर कह देंगे ही, इसमें भी कोई लेशमात्र भी संदेह नहीं रहा। इस घटना का दूसरा अर्थ भी कोई न लगाएगा, इसमें भी उसको कोई संदेह नहीं रहा। विपिन बाबू कैसा आदमी है, यह बात सावित्री जानती थी। वह इस बात को अवश्य सुनेगा और इस मकान में, जबकि उसका आना-जाना है, तब कोई भी जाने बिना न रहेगा। उसके बाद भी फिर किस मुँह से सतीश एक क्षण भी रहेगा। इस निंदा की लज्जा वह किस तरह सहेगा। संयोगवश, जो कुछ हो गया, वह तो हो ही गया। अपने संबंध में वह यहीं तक सोचकर रुक गई जरूर, लेकिन बार-बार आलोचना करके भी सतीश के संबंध में कोई उपाय खोजने पर उसे नहीं मिला।

धीरे-धीरे रात बढ़ने लगी, लेकिन सतीश दिखाई नहीं पड़ा। किसी पड़ोसी के मकान की घड़ी में टन्-टन् करके दो बज गए। निस्तब्ध गंभीर रात्रि में वह आवाज साफ सुनाई पड़ी। अस्तव्यस्त बहनेवाली ठंडी हवा खुली छत के ऊपर से आकर उसकी दोनों आँखों को नींद से दबाने लगी, तो वह जागती रहकर बाहरी दरवाजे पर कान लगाए रही। इसी तरह लेटकर, बैठकर, समय बिताने पर जब रात अधिक नहीं रही, तब एक गाड़ी की आवाज से वह चौंककर ज्यों ही उठ बैठी, त्योंही समझ गई कि गाड़ी उसी मकान के सामने खड़ी हुई है। सावित्री चुपचाप नीचे उतर गई और दरवाजे के पास जाकर सावधान होकर खड़ी हो गई। पीछे कोई दूसरा आदमी न हो, इस भय से एकाएक द्वार खोल देने का उसको साहस नहीं हुआ। देर होने लगी, किसी ने दरवाजा खटखटाया नहीं। जो गाड़ी आई थी, वह भी लौट

गई। अकस्मात् आशंका से परिपूर्ण होकर सावित्री ने सिटकनी खोल दी। सतीश बाहर की चौखट पर ओठंग कर पीले मुख, बंद किए हुए बैठा हुआ था। उसके कपड़े और चादर पर कीचड़ भरा था, माथे पर लहू की रेखा के पास ही गैस के प्रकाश से देख लेने पर सावित्री रोने लगी। सामने आकर घुटने टेककर वह बैठ गई। अपने हाथों से सतीश के मुँह को ऊपर उठाकर बोली, "बाबू, चलिए ऊपर।"

सतीश ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं, मैं अच्छी तरह हूँ।"

सावित्री ने आँख पोंछकर कहा, "कहीं चोट तो नहीं लगी।"

"नहीं लगी है, ठीक हूँ।"

"यह तो रास्ता है, घर चलिए।"

सतीश ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं, जाऊँगा नहीं, अच्छी तरह हूँ।"

सावित्री ने डाँटकर कहा, "उठिए, कह रही हूँ।"

डाँट खाकर सतीश विह्वल लाल आँखों से थोड़ी देर तक देखता रहा, उसकी तरफ अपने दोनों हाथ बढ़ाकर बोला, "अच्छा, चलो।"

तब उसके कंधे पर हाथ टेककर सतीश उठ खड़ा हुआ और बहुत कष्ट से हिलते-डुलते अँधेरे में सीढ़ियों से चढ़कर कमरे में जाकर लेट गया। भर्राई आवाज से वह बोला, "सावित्री, मैं तुम्हारा ऋण किसी जन्म में भी न चुका पाऊँगा।"

सावित्री ने कहा, "अच्छा, आप सो रहिए।"

सतीश उठकर बोला, "क्या? मैं सोऊँगा? कभी नहीं।"

थोड़ी देर लेटे रहने के बाद बोला, "लेकिन तुम्हारा ऋण...।"

सावित्री "अच्छा" कहकर उठ गई और चिराग उसके पास लाकर जख्म की जाँच करके उसको धोकर उसने पूछा, "गिर कहाँ गए थे।"

सतीश सिर हिलाकर बोला, "नहीं, गिरा तो नहीं।"

सावित्री ने व्यथित कंठ से कहा, "फिर कभी शराब न पीजिएगा, नहीं तो आपके पैरों पर सिर पटककर मर जाऊँगी।"

सतीश ने कहा, "अब कभी न पीऊँगा।"

"मेरी शपथ लीजिए।" कहकर अपना दायाँ हाथ बढ़ा दिया।

सतीश ने हाथ को खींचकर कहा, "शपथ ले रहा हूँ।"

सावित्री अपना हाथ खींचकर बोली, "याद रहेगी न यह बात?"

"याद न रहने पर तुम दिला देना।"

"अच्छा, मैं जा रही हूँ, आप सो रहिए।"

इतना कहकर सावित्री धीरे से किवाड़ बंद करके बाहर जा खड़ी हुई। शुक्रतारे की तरफ देखकर सावित्री अपने दोनों हाथ जोड़कर रोती हुई बोली, "देवता! तुम साक्षी हो।"

उस समय अंधकार स्वच्छ होता जा रहा था। सावित्री नीचे उतरकर रसोईघर में एक कोने में रैपर ओढ़कर सो रही।

चार

दिन के दस बजने के बाद किसी तरह स्नान-पूजा समाप्त करके दिवाकर रसोईघर के सामने खड़ा होकर पुकारने लगा, "ऐ महराजजी, जल्दी भात परोसिए, काफी दिन चढ़ आया है।"

पास भंडारघर था। उसकी आवाज सुनकर उसकी ममेरी बड़ी बहन महेश्वरी बाहर आकर बोली, "ऐ दीबू, मैं तेरी ही प्रतीक्षा कर रही हूँ, भैया, ठाकुरजी की पूजा तो कर आओ!"

महेश्वरी इस घर की बड़ी लड़की है और मालकिन है। चार वर्ष पहले विधवा होकर पिता के घर आ गई है।

दिवाकर स्तंभित हो गया। कुछ देर चुप रहकर बोला, "मैं यह काम न कर सकूँगा। मेरे कॉलेज का पहला घंटा जाता रहेगा।"

महेश्वरी हँसकर बोली, "तेरा पहला घंटा जाता रहेगा, इसलिए क्या ठाकुरजी की पूजा होगी नहीं?"

दिवाकर ने पूछा, "भट्टाचार्यजी कहाँ हैं? उनको क्या हो गया है?'

महेश्वरी बोली, "वह बाबूजी के साथ चौसर खेलने के लिए बैठे हुए हैं। अब कितना दिन चढ़ने पर वे उठेंगे, इसका ठिकाना क्या है?"

दिवाकर ने कहा, "मझले भैया से कह दो, आज कचहरी बंद है।"

महेश्वरी ने कहा, "कल से धीरेंद्र की तबीयत ठीक नहीं है। वह स्नान करेगा नहीं, पूजा करेगा तो किस तरह?"

"तब तुम छोटे भैया से कहो। वह बारह बजने के बाद कचहरी के लिए निकलते हैं, अभी उनको बहुत देर है।"

महेश्वरी ने दुःखी होकर कहा, "तू कैसा तर्क करने लगता है, इसका कोई ठिकाना ही नहीं। कल रात को उपेन थिएटर देखने गया था, अभी तक वह सोकर नहीं उठा। रातभर जागने से क्या उसकी तबीयत ठीक है? इसके सिवा वह किसी दिन पूजा करता है, जो आज पूजा करेगा?"

इधर रसोइया भात परोसकर पुकार रहा था। दिवाकर ने कहा, "किसी काम में एक न एक बाधा आ पड़ने से प्रायः मेरा पहला घंटा जाता रहता है, मैं परीक्षा दूँगा तो कैसे?"

महेश्वरी का क्रोध बढ़ता जा रहा था, वह बोली, "परीक्षा न देने से भी काम चल सकता है, देवता की पूजा न होने से चल नहीं सकता। तुम्हारे साथ तर्क करने का वक्त मेरे पास नहीं है और भी काम हैं।"

रसोइया चिल्लाकर बोला, "दिवाकर बाबू, भात परोसकर मैं खड़ा हूँ, जल्दी आइए!"

महेश्वरी ने झिड़ककर कहा, "तुमको कुछ भी समझ नहीं है महराज! मैं इसको पूजा के लिए भेज रही हूँ, तब पुकार मचा रहे हो। भात ले जाओ, पूजा करके आने पर देना।" कहकर भंडारघर में चली गई।

दिवाकर कुछ देर चुप रहा, फिर धीरे-धीरे ऊपर चला गया। वहाँ पूजा की सामग्री थी। घर में शालिग्राम शिला की प्रतिष्ठा हुई थी। उनकी नित्य पूजा के लिए एक पुजारी नियुक्त हैं। वे इसी घर में रहते हैं। मालिक शिवप्रसाद की तरह उनकी भी चौसर की तरफ दिलचस्पी है। कुछ दिन हुए शिवप्रसाद सरकारी नौकरी से पेंशन लेकर अपने पश्चिमी प्रदेश के मकान पर आकर रहने लगे हैं। सवेरे चाय पी लेने के बाद ही पुजारीजी की बुलाहट

होती है, ''भूतो, भट्टाचार्यजी को एक बार बुलाओ। एक बाजी हो जाए।'' बाद को एक बाजी, दो बाजी करते-करते दिन चढ़ जाता है, पुजारीजी को पूजा करने का समय नहीं मिलता। महेश्वरी नौकर को भेजा करती थी, लेकिन उठता हूँ, उठता हूँ, करते-करते भी उठना नहीं होता था, पूजा का समय बहुत बीत जाता था, किसी को होश नहीं रहता था। इन दिनों पिता की तबीयत ठीक नहीं है, फिर भी खेल की धुन में लगे रहते हैं। इस खयाल से अब महेश्वरी पुजारीजी को नहीं बुलाती, इनसे-उनसे, जिस किसी से अर्थात् दिवाकर से पूजा करा लेती है।

प्रातः चाय पीने का अभ्यास और अवकाश दिवाकर को नहीं था, क्योंकि इस समय उसको नौकर के साथ बाहर जाना पड़ता था। आज बाजार से लौटकर नित्यकर्म पूरा करके वह भात खाने के लिए आया था।

दिवाकर पूजा के लिए चला गया, लेकिन आसन पर बैठकर सोचने लगा, दूसरे के घर में रहने का सुख यही है। यद्यपि अच्छी तरह होश सँभालने के बाद ही दूसरे के घर में रहता आया है और उसे अनेक दुःखों को सह लेने की आदत भी पड़ गई है, लेकिन मनुष्य की जो वस्तु किसी दुःख से भी नहीं मरती, वही भविष्य की आशा, आघात खाकर उसके हृदय से बाहर निकल सिर उठाकर खड़ी हो गई। क्रोध से उसकी सारी देह जल रही थी, सिंहासन से ठाकुरजी को उतारकर उसने ताम्रकुंड के ऊपर फेंक दिया और मंत्र पढ़े बिना शरीर पर जल डालकर भीगे हुए देवता को उठाकर रख दिया। फूल चढ़ाने, तुलसीपत्र सजाकर रखने, घंटी बजाने आदि हाथ के काम अभ्यास के अनुसार होने लगे अवश्य, किंतु विद्वेष की जलन से उसके कंठ से एक भी मंत्र नहीं निकला।

इस तरह पूजा का तमाशा खत्म करके जब उठ खड़ा हुआ, तब यह ध्यान आया कि पूजा बिल्कुल नहीं हुई, फिर से पूजा करने बैठ जाऊँ या नहीं, यह दुविधा एक बार उसके मन में जाग उठी, किंतु उसके साथ ही उसको यह बात याद पड़ गई कि कॉलेज का पहला घंटा बीत रहा है, वह तेज कदमों से सीढ़ियों से नीचे उतरकर सीधे बाहर जा रहा था, महेश्वरी ने भंडारघर से उसे देखा तो बुलाकर कहा, ''बिना भोजन किए जा रहा है?''

''भोजन का समय नहीं है।''

महेश्वरी ने कहा, ''तो कॉलेज से कुछ समय पहले ही लौट आना।''

दिवाकर ने कोई उत्तर न दिया। वह अपनी बाहरी कोठरी में आकर कपड़े पहनने लगा तो नेत्रों में जल भर आया।

दिवाकर ने पीछे घूमकर देखा, नौकरानी खड़ी है। नेत्र पोंछकर उसने पूछा, ''क्या बात है?''

नौकरानी बोली, ''छोटी बहू ने आपको बुलाया है।''

''चलो, मैं आ रहा हूँ।''

सुरबाला अपने कमरे के सामने ही दिवाकर की प्रतीक्षा कर रही थी। दिवाकर ने आकर कहा, ''क्या बात है?''

सुरबाला प्रकट रूप से नहीं, आड़ में रहकर बातें करती थी। सिर के कपड़े को जरा खींचकर बोली, ''जरा कमरे में आओ।''

इतना कहकर कमरे में जाकर उसने दिखा दिया—फर्श पर आसन बिछा हुआ था, एक

कटोरा दूध, तश्तरी में दो-चार संदेश रखे हुए थे।
सुरबाला ने कहा, "खाकर ही कॉलेज जाना।"
दिवाकर चुपचाप खाने के लिए बैठ गया।
पास ही बिछौने पर उसके भाई उपेंद्रनाथ उस समय भी निद्रित मनुष्य की भाँति लेटे हुए थे। दिवाकर के खाना खाकर चले जाने के बाद ही सिर ऊपर उठाकर पत्नी को बुलाकर कहा, "यह फिर क्या?"
सुरबाला ने चौंककर पूछा, "क्या तुम जाग रहे हो?"
"दो घंटे से जाग रहा हूँ, ग्यारह बजे तक कोई मनुष्य सो सकता है?"
सुरबाला हँसकर बोली, "तुम सब कर सकते हो। वरना कोई मनुष्य क्या ग्यारह बजे तक पड़ा रह सकता है?"
उपेंद्र ने कहा, "सभी नहीं कर सकते, लेकिन मैं कर सकता हूँ। इसका कारण यह है कि लेटकर पड़े रहने जैसी अच्छी वस्तु मैं कुछ भी जगत में नहीं देख पाता। कुछ भी हो, दिवाकर के...।"
सुरबाला ने कहा, "बबुआजी क्रोध करके बिना खाए कॉलेज जा रहे थे, इसी से मैंने उनको बुलाया था।"
"इसका कारण?"
सुरबाला ने कहा, "क्रोध ठीक ही होता है। उस बेचारे को प्रातः पढ़ने का समय नहीं है, बाजार जाना, लौटकर ठाकुरजी की पूजा करनी पड़ती है। किसी दिन ग्यारह-बारह बजे आता है। बताओ तो किस समय वह खाना खा ले और किस समय पढ़ने जाए?"
"बात ठीक समझ में नहीं आई? भट्टाचार्य को बुखार है क्या?"
सुरबाला ने कहा, "बुखार क्यों होगा! बाबूजी के साथ चौसर पर बैठे हैं! और उनका भी क्या दोष है? बाबूजी के बुलाने पर वह न तो कर सकते नहीं।"
उपेंद्र ने कहा, "यह तो वह नहीं कर सकते, लेकिन पहले वह नौकर के साथ सबेरे बाजार जाया करते थे न?"
सुरबाला बोली, "कुछ दिनों तक शौक करके जाया करते थे। नहीं तो बबुआजी को ही बाहर जाना पड़ता है।"
उस दिन ठाकुरजी की पूजा नहीं हुई, यही सोचते-सोचते दिवाकर मलिन मुख से धीरे-धीरे कॉलेज जा रहा था। मकान में अभी-अभी जो सब घटनाएँ हो गईं, उस आलोचना को छोड़कर उसे बड़ी चिंता यह थी कि ठाकुरजी की पूजा आज नहीं हुई। बहुत दिनों की, बहुत असुविधाओं के रहने हुए भी इस काम की अवहेलना नहीं की थी, करने की बात भी मन में किसी दिन उठी नहीं थी। यद्यपि युक्ति तर्कों से वह बारंबार अपने मन को सांत्वना देने लगा कि भगवान् केवल एक ही स्थान में आबद्ध नहीं हैं, इसलिए एक स्थान में भोग न लगा तो भी अन्यत्र लगा होगा, लेकिन वही, जो उनके बिना खाए हुए गृहदेवता अपनी नित्यपूजा और भोग से वंचित होकर क्रोधायुक्त मुख से सिंहासन पर बैठे रह गए, उनकी प्रतिहिंसा की आशंका उसके मन से किसी प्रकार भी हटना नहीं चाहती थी।
प्रोफेसर की तबीयत खराब हो जाने के कारण पहले घंटे में क्लास नहीं लगी, सुनकर दिवाकर को खुशी हुई। परीक्षा निकट आ रही है, इस कारण छात्रों ने हाजिरी के हिसाब के

लिए कॉलेज के क्लर्क को तंग कर डाला है। आज दूसरे छात्र जब इसी उद्देश्य से ऑफिस के कमरे की तरफ जाने की तैयारी कर रहे थे, तब दिवाकर भी तैयार हो गया, लेकिन ऑफिस के सामने आकर ठाकुरजी की पूजा न करने की बात याद करके वह ठिठककर खड़ा हो गया।

एक ने उससे पूछा, "खड़े क्यों हो गए?"

दिवाकर ने उत्तर दिया, "रहने दो आज।"

"रहेगा क्यों, चलो, आज देख लें।"

"नहीं, रहने दो" कहकर वह लौट गया। हाजिरी के संबंध में उसके मन में बहुत संदेह था, उस संदेह की मीमांसा करने का साहस आज उसे नहीं हुआ।

भोजन न करके आने पर भी उसको घर लौटने की कोई जल्दी नहीं थी। छुट्टी के बाद कॉलेज के फाटक के पास आकर उसने देखा, बी.ए. क्लास के छात्रों का दल दूर खड़ा तर्क-कोलाहल कर रहा है, दिवाकर दूसरी ओर मुँह फेरकर हट गया और जो रास्ता सीधा गंगाजी की तरफ गया है, उसी तरफ चल दिया। टूटा हुआ पक्का घाट मुर्दे के कंकाल की भाँति पड़ा हुआ है। किसी दिन इसका शरीर था, सौंदर्य था, प्राण था, जगह-जगह पड़ी हुई टूटी-फूटी ईंटों के ढेर यही बात कह रहे थे। कब किसने बनवाया था, कौन लोग आकर बैठते थे, कौन लोग स्नान करते थे, कहीं भी कोई साक्षी मौजूद नहीं है। जाड़े के दिनों की पतली गंगा उसी के किनारे से अविराम समुद्र की ओर चली जा रही है। किनारे पर खेतों में जौ के बाल सिर उठाकर धूप की गरमी और गंगाजी की वायु सेवन कर रहे हैं। उसके ही एक तरफ रेतीला तंग रास्ता पकड़कर चलता हुआ दिवाकर घाट पर आ पहुँचा। जूता खोलकर रख दिया। उसके बाद पंजाबी कुरते को उतारकर भारी जिल्ददार किताबों से दबा दिया। फिर जल में उतरकर हाथ-मुँह धोकर सिर पर गंगाजी का जल छिड़ककर उसने बिना खाए हुए गृह देवता, को स्मरण किया। आदि से अंत तक सभी मंत्रों को सावधानी से उच्चारण करके गंगाजी में जलांजलि प्रवाहित करके प्रणाम करके जब वह उठा, तब उसके हृदय का बोझ बहुत हलका हो गया था। कुरता पहनकर, किताब लेकर जब वह चला, तब दिन ढल रहा था। उस वक्त भी हिंदुस्तानी स्त्रियाँ घाट के एक किनारे पर बैठकर सिर पर सज्जी मिट्टी मल रही थीं।

पाँच

छोटी बहू सुरबाला के पिता ने ठेकेदारी के काम में काफी दौलत पैदा की और अब बक्सरवाले मकान में रहने लगे। उनकी दो लड़कियाँ थीं। सुरबाला बड़ी थी और शची छोटी। शची की अभी तक शादी नहीं हुई थी, बक्सर में पिता के घर पर ही रहती थी।

पिता के घर में सुरबाला को पशुराज के नाम से पुकारते थे। यह नाम उसके पितामह ने रखा था। मुहल्ले के अंधे-लँगड़े, बिल्ली-कुत्ते, बिलायती चूहे, कबूतर, गौरैए मिलकर प्रायः सौ से अधिक प्राणी उसके आश्रम में पलते थे। उनमें से किसी को भी किसी दिन ममतावश वह छोड़ न सकी। जो लोग बड़े थे, वे संक्षेप में पशु कहकर पुकारते थे, नौकर-नौकरानी भी, कोई तो पशु बहू, कोई छोटी बहूजी कहकर पुकारती थी। काफी रात को काम-काज हो

चुकने पर सुरबाला जब कमरे में आई तो उपेंद्र ने कहा, ‘‘पशु बहू, बाबूजी ने शची के लिए वर खोजकर ठीक करने के लिए फिर तकाजे का पत्र लिखा है। शची आयु में तुमसे कितनी छोटी है, मालूम है?’’

सुरबाला ने कहा, ‘‘मालूम क्यों नहीं है। मेरे बाद एक भाई होकर सौरी में ही चल बसा, उसके बाद ही शची का जन्म हुआ। इस प्रकार वह मुझसे आयु में छह वर्ष छोटी है।’’

‘‘इस हिसाब से तो उसकी आयु बारह-तेरह वर्ष की होगी।’’

‘‘इतनी तो होगी ही। दुबली-पतली होने के कारण ही केवल इतने दिनों तक क्वांरी रखी गई। मेरी तरह बड़े-बड़े हाथ-पाँववाली होती तो भारी कठिनाई होती।’’

उपेंद्र हँसकर बोला, ‘‘कठिनाई किसलिए? तुम्हारे बाबूजी को तो रुपए की कमी नहीं है, रुपए रहने से सभी वस्तुएँ सुलभ हो जाती हैं। तुम्हारे समय में मैं जिस तरह हड़बड़ाकर जा पहुँचा था, उस तरह हड़बड़ाकर जानेवाले आदमियों की संसार में कमी नहीं है।’’

सुरबाला ने कहा, ‘‘क्या तुम बाबूजी के रुपए देखकर गए थे?’’

‘‘तुम्हारे सामने ‘नहीं’ कहने से ही प्रतिष्ठा है, लेकिन असत्य बात ही कैसे कहूँ?’’

‘‘लेकिन यही तो है असत्य बात।’’

‘‘असत्य बात क्यों?’’

‘‘असत्य होने के कारण ही असत्य बात है। तुम जब-तब कहते रहते हो अवश्य, लेकिन तुम बाबूजी का रुपया देखकर नहीं गए थे। बाबूजी के पास रुपए रहते या नहीं रहते, तुमको जाना ही पड़ता। मैं जिस जगह, जिस घर जन्म लेती, मुझे लाने के लिए तुमको वहाँ जाना ही पड़ता, समझे?’’

उपेंद्र ने कहा, ‘‘कुछ-कुछ समझ रहा हूँ, लेकिन मान लो, अगर तुमने कायस्थ के घर में जन्म लिया होता तो?’’

सुरबाला हँसकर बोली, ‘‘वाह, खूब कहा तुमने! ब्राह्मण के घर की कन्या क्या कभी कायस्थ के घर जन्म लेती है? इसी दिमाग को लेकर तुम वकालत करते हो?’’

उपेंद्र ने गंभीर होकर कहा, ‘‘यह भी ठीक है। शायद इसी कारण उन्नति नहीं हो रही है।’’

सुरबाला अपनी बातों से व्याकुल होकर सांत्वना के स्वर में बोली, ‘‘उन्नति क्यों नहीं होगी, खूब उन्नति होगी, लेकिन कुछ देर हो सकती है, यही न। लेकिन मैं यह भी कहती हूँ, तुम्हारी उन्नति की जरूरत ही क्या है।’’ हँसकर बोली, ‘‘बारह से चार बजे तक मेरे सामने हाजिर रहने से मैं तुमको पाँच सौ रुपए के हिसाब से दे सकती हूँ। बाबूजी मुझे हर महीने ढाई सौ रुपए भेजते हैं और ढाई सौ उनसे माँग लूँगी।’’

उपेंद्र ने कहा, ‘‘मान लिया कि तुमने ले लिया, लेकिन मुझको क्या करना पड़ेगा? बारह बजे से चार बजे तक तुम्हारे सामने खड़ा रहने पड़ेगा?’’

सुरबाला बोली, ‘‘हाँ, यदि तुम खड़े न रह सके तो बैठ भी सकते हो।’’

‘‘और बैठ न सकने से लेट नहीं जाऊँगा? क्या कहती हो?’’

सुरबाला मुसकराकर बोली, ‘‘सो नहीं कर सकोगे। बैठ न सकने पर फिर खड़ा हो जाना पड़ेगा। हाकिम के सामने बेअदबी करने से तुमको फाइन देना पड़ेगा।’’

‘‘फाइन न दे सकने पर?’’

‘‘नजरबंद रहना पड़ेगा। चार बजने के बाद भी तुम बाहर न जा सकोगे, समझ गए?’’

उपेंद्र ने सिर हिलाकर कहा, "समझ गया, हाकिम कुछ सख्त है, नौकरी बची रह सके तो यही गनीमत!"

सुरबाला ने अपनी दोनों कोमल भुजाओं से पति के गले को घेरकर कहा, "हाकिम सख्त नहीं है। तुम्हारी नौकरी सुरक्षित रहेगी, एक दिन केवल परीक्षा करके ही देख लो न।" कुछ देर बाद सुरबाला ने अपने को मुक्त कर लेने पर पूछा, "बाबूजी के पत्र का उत्तर दोगे?"

उपेंद्र ने कहा, "खोजने की आवश्यकता नहीं है। वह खुद ही हाजिर हो जाएगा, यही उत्तर दूँगा।"

"छिह! यह कैसी बात! उनके साथ परिहास करना उचित है?"

"इतनी देर से क्या तुम मेरे साथ परिहास कर रही थीं!"

सुरबाला घबराकर बोली, "देखो, मैंने परिहास नहीं किया, लेकिन बाबूजी को यह बात लिखने की आवश्यकता नहीं है, सचमुच ही मैं विश्वास करती हूँ कि शची के लिए वर ठीक हो ही चुका है, लेकिन तुम्हारे ही मुँह से यह बात सुन लेने से बाबूजी नाराज होंगे।"

उपेंद्र हँसकर बोला, "वास्तव में शची के लिए वर ठीक हो चुका है। उसको मैं भी जानता हूँ और तुम भी जानती हो।"

सुरबाला ने उत्सुक होकर पूछा, "कौन है, बताओ तो।"

उपेंद्र बोला, "अभी नहीं। सब ठीक-ठाक करने के बाद बताऊँगा।"

सुरबाला ने थोड़ी देर चुप रहकर कहा, 'अच्छा! लेकिन एक बात तुमको मैं बता दूँ, शची में एक दोष है, उस दोष को छिपाकर वर ठीक करना उचित नहीं है। उससे फल अच्छा न होगा।"

उपेंद्र ने घबराकर पूछा, "दोष क्या है?"

सुरबाला ने कहा, "बताती हूँ। शायद बाबूजी की इच्छा उस दोष को गुप्त रखने की है। नहीं तो वह खुद ही तुमको बता देते। शची देखने-सुनने में, लिखने-पढ़ने में अच्छी ही है, बाबूजी के पास रुपए भी हैं, लेकिन क्या तुमने शची को ठीक तरह देखा नहीं है?"

उपेंद्र बोला, "देखा है, लेकिन अच्छी तरह देख लेने का साहस...।"

"तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। पहले मेरी बात सुन लो। उसके बाद जैसी खुशी हो, बोलो। तुम तो जानते ही हो, शची बचपन से ही दुबली-पतली है। दो-तीन बार भारी बीमारियों से मरते-मरते बची है। एक बार उसकी बीमारी तो अच्छी हो गई, लेकिन दायाँ पैर नीचे से ऊपर तक फूलकर पक गया। डॉक्टर ने शल्योपचार करके उसको बचा लिया अवश्य, लेकिन पैर सीधा नहीं हुआ। उसी समय से वह जरा लँगड़ाकर चलती है। डॉक्टर ने कहा था, 'उम्र बढ़ जाने पर वह अच्छी हो सकती है।' लेकिन इस आश्वासन पर विश्वास करके कौन विवाह करने को तैयार होगा। जो सचमुच ही अच्छा लड़का है, उसके लिए अच्छी लड़की भी मिल जाएगी, जान-बूझकर वह शची जैसी लड़की से शादी न करेगा और जो लड़का धन के लोभ से राजी होगा, वह कुपात्र होगा।"

उपेंद्र ने ध्यानपूर्वक सुनकर कहा, "मैंने तो शची को कई बार देखा है, लेकिन किसी दिन लँगड़ाकर चलते नहीं देखा।"

सुरबाला हँसकर बोली, "पुरुषों को कौन सी चीज दिखाई पड़ती है! लेकिन स्त्रियों की तो आँखों को धोखा देना चल नहीं सकता, वे तो एक ही क्षण में दोष जान लेती हैं।"

उपेंद्र ने कहा, “लेकिन उनको तो स्त्रियों के साथ शादी न करनी पड़ेगी कि स्त्रियों की आँखों से डरना पड़ेगा।”

“यह कैसी बात! धोखा देकर शादी कराने की इच्छा रहने पर तो अंधी लड़की की भी शादी की जा सकती है, लेकिन बाद को...!”

उपेंद्र कुछ सोच रहे थे, बोले नहीं।

सुरबाला फिर बोली, “पिछली दुर्गापूजा के समय हमारे बक्सर के मकान पर ठीक उसी तरह की बातें हुई थीं। बुआजी और माँ दोनों ने ही कहा था कि शादी के पहले इन सब आलोचनाओं की आवश्यकता नहीं है। हो जाने के बाद दामाद को बता देने से ही काम चल जाएगा।”

उपेंद्र ने कहा, “ठीक ही तो है।”

“नहीं, ठीक नहीं है। मैं कहती हूँ कि सास-ननद को छोड़ अकेले दामाद को विश्वास में लेने से काम नहीं चलता। शची को जो पति मिलेगा, वह उसको प्रेम करेगा ही, लेकिन एक तुच्छ त्रुटि के कारण पहले ही यदि वह उसकी विद्वेष भरी दृष्टि में पड़ जाएगी तो किसी दिन सुख से घर-गृहस्थी न कर सकेगी।”

उपेंद्र ने कहा, “कर सकेगी, क्योंकि दिवाकर तुम्हारी बहन को लापरवाही से न रखेगा, तुम अथवा बहन भी शची को झिड़कियाँ न सुनाओगी।”

यह बात सुनकर सुरबाला चुप हो गई। बहुत देर तक स्थिर भाव से बैठी रहकर वह बोली, “तुम क्या बबुआ के साथ शादी...!”

उपेंद्र ने कहा, “हाँ।”

“लेकिन बाबूजी तो सहमत न होंगे!”

“क्यों?”

“उसके माँ-बाप नहीं है, घर-द्वार नहीं है, यानी कुछ भी नहीं है।”

उपेंद्र ने संक्षेप में कहा, “सब है, क्योंकि मैं हूँ।”

सुरबाला ने कहा, “तो भी बाबूजी राजी न होंगे।”

उपेंद्र ने कहा, “तुम भी राजी नहीं होगी, असल बात शायद यही है।”

उपेंद्र चुप रहकर एकाएक दूसरी तरफ करवट बदलकर अत्यंत नीरस कंठ से बोले, “अच्छा, रात बहुत हो गई, अब तुम सो जाओ।”

उस रात को सुरबाला बड़ी देर तक जागती रही। एकाएक जब उसको निश्चित रूप से मालूम हो गया कि पतिदेव निर्विघ्न सो रहे हैं, तब उसके दोनों नेत्रों में गरम जल भर उठा। पति के स्नेह पर वह संदेह नहीं रखती, लेकिन रोते-रोते वह यही बात सोचने लगी कि इन सात-आठ वर्षों के घनिष्ठ मिलन के बाद भी क्यों वह इस मनुष्य का स्वभाव समझ न सकी! पहले पहल उसने अनेक बार मन में विचार किया था कि इस मनमौजी मनुष्य के मिजाज का कुछ भी ठीक नहीं है। किस समय, किस कारण से इसका क्रोध उमड़ पड़ेगा, वह जान लेने या समझ लेने का उपाय नहीं है, लेकिन अंत में एक बार पूछताछ कर इतनी ही बात वह समझ सकी थी कि इसको पूरे तौर से समझने की शक्ति मुझे किसी दिन हो या न हो, इसका कोई काम या इसकी कोई भी बात अकारण या अनिश्चित प्रकृति के मनुष्यों की सी नहीं है, विशेष रूप से इसी कारण न समझने योग्य पति को लेकर उसके मन में भय और

चिंता की कोई सीमा नहीं थी। मन में चोट खाकर वह जब-तब यही दुःख किया करती थी कि भगवान् ने उसके भाग्य को यदि ऐसा अच्छा ही बना डाला तो उस समय के अनुसार चलने योग्य बुद्धि, उन्होंने उसको क्यों नहीं दी? आज भी वह मन ही मन इस बात की आलोचना कर अंदर ही अंदर इसका कारण खोजने लगी।

जाड़े की रात में कचहरी का घंटा एक के बाद एक क्रम से बजने लगा।

छह

अगले दिन दोपहर के बाद महेश्वरी भोजन करने के लिए बैठी तो उपेंद्र कमरे में घुसकर पास ही फर्श पर बैठ गया। महेश्वरी ने उसकी तरफ ध्यान से देखकर कहा, "मझली बहू, उपेन के लिए आसन बिछा दो।"

उपेंद्र ने कहा, "तुमसे एक बात पूछने आया हूँ दीदी।"

बात सुनने के लिए महेश्वरी उसकी मुँह की ओर ताकने लगी।

उपेंद्र ने कहा, "ससुरजी ने शची के लिए वर ठीक करने के लिए परसों एक पत्र लिखा है। तुम लोगों की सारी बातें जानती हो, इसलिए मैं पूछ रहा हूँ कि शची के शरीर में क्या कोई दोष है?"

महेश्वरी के पति ने स्वास्थ्य बिगड़ जाने पर अंत में करीब चार-पाँच साल बक्सर में प्रैक्टिस की थी। वहाँ रहते समय सुरबाला के पिता का ही एक मकान किराए पर लेकर आस-पास रहती थी। इसलिए दोनों परिवारों में अत्यंत घनिष्ठता हो गई थी। सुरबाला के विवाह का संबंध महेश्वरी ने ही ठीक किया था। महेश्वरी एक क्षण उपेंद्र के मुँह की ओर ताकती ही रहकर बोली, "पशु क्या कहती है?"

"वह कहती है, शची कुछ लँगड़ी है।"

महेश्वरी ने तनिक हँसकर कहा, "लँगड़ी नहीं है। बचपन में शल्योपचार होने से वह बाएँ पैर से कुछ खींचकर चलती थी, वह इतने दिनों में शायद ठीक हो गया हो।"

"और कोई दोष नहीं है?"

"नहीं।"

"सुनता हूँ कि ससुरजी की विपुल संपत्ति है। तुमको क्या जान पड़ता है दीदी?"

"मुझे भी यही जान पड़ता है।"

तब उपेंद्र और कुछ पास खिसककर आ गया और अपने कंठ का स्वर कुछ धीमा बनाकर बोला, "तो मैं तुमको एक बात कहता हूँ दीदी। शची और उसकी बहन दोनों ही जब भविष्य में संपत्ति की उत्तराधिकारिणी होंगी, तब इतनी बड़ी संपत्ति हाथ से निकल जाने देना बुद्धिमानी का काम नहीं है।"

महेश्वरी ने हँसकर कहा, "बात तो ठीक ही है, लेकिन उपाय ही क्या है सुनूँ तो?" इतना कहकर वह हँस पड़ी।

उपेंद्र बोला, "हँसने की बात नहीं है। पशु के चिढ़ने के लिए यह बात मैंने नहीं कही। मैंने दिवा के बारे में सोच लिया है।"

सुनते ही महेश्वरी का चेहरा उतर गया। वह दिवाकर को सह नहीं सकती थी। उपेंद्र ने कहा, "क्या कहती हो बहन?"

महेश्वरी सिर झुकाकर किसी चिंता में रहने का स्वाँग दिखाकर भात परोस रही थीं, मुँह ऊपर उठाकर हँसकर बोली, "अच्छी बात तो है।"

उपेंद्र ने कहा, "केवल अच्छी बात कह देने से तो काम नहीं चलेगा बहन, यह काम तुम्हारा ही है। पशु की शादी तुमने ही की थी, अब वह कहती है उसकी तरह सौभाग्यवती सभी हों। मेरा विश्वास है, तुम जिसमें हाथ डालोगी, उसमें ही सोना फलेगा।"

महेश्वरी ने कहा, "लेकिन शची में जरा सा दोष तो है?"

उपेंद्र ने कहा, "है, इसीलिए तुमसे हाथ डालने के लिए कह रहा हूँ। तुम्हारे पुण्य से सब दोष मिट जाएँगे।"

उपेंद्र की बातों से महेश्वरी का दिल पसीजता जा रहा था। उसने कहा, "लेकिन उपेन, दिवाकर का मिजाज मेरी समझ में नहीं आता। घर में रहते हुए भी वह मानो घर छोड़नेवाला पराया है। इसी कारण डर लगता है, पीछे कहीं इतनी ही त्रुटि को लेकर अंत में एक भारी अशांति न खड़ी हो जाए, फिर एक बात और है, क्या दिवाकर राजी होगा?"

"होगा क्यों नहीं दीदी! इस संसार में उसका अपना तो कोई भी नहीं है। यह सुविधा छोड़ देना केवल मूर्खता ही नहीं, पाप भी है।"

महेश्वरी हँसकर बोली, "यह क्या तुम्हारा वकालत का पेशा है उपेन कि केवल मुवक्किल

के रुपयों पर दृष्टि रखकर और सब तरह से मुँह फेर लोगे, पसंद-नापसंद भी तो कुछ है।"

उपेंद्र बोला, "है तो रहने दो, दीदी। जो लोग इसी को लेकर उलट-फेर करना चाहते हैं, वे भले ही करें, लेकिन हम लोग उस दल में जाना नहीं चाहते और शची जैसी लड़की जिसे पसंद न हो, उसका तो विवाह करना चल ही नहीं सकता।"

उपेंद्र की व्यग्रता को देखकर महेश्वरी ने कहा, "शायद यह आज कॉलेज नहीं गया! एक बार उससे ही पूछकर देख लो, उसकी क्या राय है? शायद वह अपनी कोठरी में ही है।"

"है? अरे है, वहाँ? भूतो है? एक बार दिवाकर बाबू को बुला दे, कहना कि जीजी बुला रही है।"

थोड़ी ही देर बाद दिवाकर के कमरे में घुसते ही उपेंद्र बोल उठे, "तेरी शादी की बात मैंने ठीक कर दी है दिवा। परीक्षा के बाद तिथि निश्चित की जाएगी! बहन, भट्टाचार्यजी से पत्रा देखने को कह देना और बाबूजी से पूछकर एक बार उनकी राय भी तो जान लेना। शची के साथ ब्याह होगा, सुनकर बहुत खुश होंगे। तू मुँह बाए क्या देख रहा है? तेरी छोटी भाभी की छोटी बहन है शची—उसको तूने देखा नहीं है? देखा नहीं है तो शची को देखने की आवश्यकता भी नहीं है। अभी थोड़ी ही देर पहले मैं बहन से कह रहा था कि वैसी लड़की को जो पसंद नहीं करता, उसको शादी ही नहीं करनी चाहिए। बचपन से बाएँ पैर में घाव की चीरफाड़ हुई थी, इसलिए उस पैर को जरा खींचकर चलती थी। उस बात पर अभी-अभी मैं बहन से कहने जा रहा था कि जरा सा दोष, थोड़ी सी त्रुटि, यदि आत्मीय होकर दिवाकर क्षमा नहीं कर सकता तो, दूसरा कोई कैसे करेगा? इसके अलावा छोटे-मोटे दोष को लेकर हल्ला-गुल्ला मचाना तो उच्च शिक्षा का फल नहीं है, वह तो नीचता है। निर्दोष त्रुटिहीन इस जगत में कोई चीज मिलती ही नहीं, ऐसी चीज की आशा करके बैठे रहना और पागलपन एक ही बात है, दिवा इसको समझता है और तुमसे कहता ही क्या है बहन, दिवाकर के साथ शादी होगी, सुन लेने पर सुरबाला के आनंद की सीमा ही नहीं रहेगी। ओह! शायद तेरा समय नष्ट हो रहा है। तो इस समय तू जा, मैं भी ससुरजी को पत्र लिखता हूँ।"

इतना कहकर उपेंद्र उठे और महेश्वरी को इशारा करके चले गए।

महेश्वरी भात चलाने लगी और दिवाकर अवाक् होकर खड़ा रहा। बड़ा तूफान जैसे खर-पतवार, धूल-बालू सब उड़ाकर ले जाता है, उपेंद्र वैसे ही विघ्न-बाधा, आपत्ति-अस्वीकृति को अपनी इच्छा के अनुसार उड़ाकर लेते गए। मौन होकर दोनों यही सोचने लगे। बहुत देर तक भी जब कोई बात नहीं उठी, तब दिवाकर बोला, "यह सब क्या है जीजी?"

महेश्वरी ने कहा, "सब तो तूने सुन ही लिया।"

दिवाकर ने पूछा, "इतनी हड़बड़ी क्यों?"

महेश्वरी ने कहा, "शची के विवाह की उमर बीत रही है और अगले वर्ष एकदम ही लगन नहीं है!"

इसके बाद दिवाकर के दिमाग में कोई भी बात नहीं आई, किंतु उसको याद आया कि उपेंद्र इस समय पत्र लिख रहे हैं। थोड़ी देर बाद ही आवश्यक पत्र को लेकर नौकर डाकखाने दौड़ जाएगा। वह किसी दिन भी विवाह न करेगा, यही उसके जीवन का संकल्प रहा है। वह संकल्प इस तरह एकाएक एक खिंचाव से उड़ता चला जा रहा है। यह स्मरण

आते ही वह घबराकर उपेंद्र के कमरे की ओर चला गया। कमरे में घुसते ही सुरबाला अपने अप्रसन्न मुँह पर सिर का कपड़ा खींचकर अलमारी के किनारे हट गई। उपेंद्र मेज के पास कागज-कलम लेकर बैठे हुए थे। मुँह उठाकर उन्होंने पूछा, "फिर क्या?" दिवाकर जो कुछ कहने आया था, उसको अच्छी तरह सोचने-विचारने का समय भी उसे नहीं मिला और उस आँचल का एक छोर आलमारी के एक तरफ दिखाई देने लगा। वह चुपचाप खड़ा रहा।

उपेंद्र ने पूछा, "क्या है रे?"

दिवाकर ने कुछ न कहकर आलमारी की तरफ दृष्टि फेरी।

उपेंद्र ने उस संकेत को देखते हुए भी नहीं देखा, बोले, "मेरे पास वक्त नहीं है दिवा...।"

दिवाकर ने पास आकर कहा, "इतनी जल्दबाजी किसलिए?"

उपेंद्र बोले, "नहीं, जल्दबाजी तो नहीं है। अब भी जैसे ही हो, करीब दो महीने का वक्त है, तेरा इम्तहान हो जाने पर...।"

"तो फिर आज ही पत्र लिखने की क्या आवश्यकता है?" कुछ दिन बाद लिखने से भी तो काम चल सकता है।"

"चल सकता है, लेकिन कुछ दिन बाद लिखने से क्या सुविधा होगी?"

दिवाकर ने धीरे से कहा, "सोच-विचारकर देख लेना उचित है।"

उपेंद्र ने कहा, "उचित तो है ही! तुम ब्याह की चिंता में सोच-विचार करो, तुम्हारे इम्तहान की चिंता मैं करूँ...।"

"लेकिन ऐसा दायित्व ग्रहण करने से पहले...।"

"विज्ञ व्यक्ति की भाँति कुछ सहना आवश्यक है, अच्छा तुम कुरसी पर बैठ जाओ। सोच-विचार करके क्या देखना चाहते हो, मैं भी तो सुनूँ?"

दिवाकर चुप हो रहा।

उपेंद्र ने कहा, "देखो दिवाकर, कोई भी बात क्यों न ली जाए, अंत तक सोच-विचार करना मनुष्य की शक्ति में नहीं है। कितने ही बड़े विद्वान् पंडित क्यों न हों, अंतिम फल भगवान् के हाथ से ही लेना पड़ता है। फिर भी, पहले से जो कुछ सोच-विचार करके देख लिया जा सकता है, उसके लिए तो आधा घंटा से अधिक समय नहीं लगता, कुछ दिनों का समय चाहते हो न?"

दिवाकर बोला, "सभी क्या इतनी जल्दी सोच-विचार कर सकते हैं?"

"कर सकते हैं, लेकिन यह याद रखने की आवश्यकता है, बिखरी हुई इधर-उधर की चिंताओं का अंत भी नहीं है और उसकी मीमांसा भी नहीं होती। दो-चार दिनों में ही क्या होगा, दो-चार वर्षों में भी निश्चय नहीं होता। फिर भी, इस संबंध में मोटे तौर से जो कुछ लोग विचार करके देखते हैं, वह यही है कि प्रतिपादन कर सकूँगा या नहीं, लेकिन शची से ब्याह कर लेने पर यह चिंता तो तुमको किसी दिन भी करनी न पड़ेगी। दूसरी बात है नापसंद की, क्या तू यही बात सोच रहा है।"

शची की सुंदरता का संकेत होने से दिवाकर को बहुत ही लज्जा मालूम हुई। वह बोल उठा, "नहीं, बिल्कुल नहीं।"

"तब तो ठीक ही हुआ, क्योंकि वह बात कितनी ही अंतःसार-शून्य क्यों न हो, बाह्य आडंबर ही तो है। पहले ही सुंदरता की जो बात आ जाती है, वह मनुष्य के अंदर और बाहर

ऐसा जादू जगा देती है कि उसकी अच्छाई-बुराई का अत्यंत सावधानी से निर्णय करना ही मुख्य वस्तु हो जाती है। असल में वह तो कुछ भी नहीं। जिस वस्तु को न पाकर लोग सारा जीवन हाय-हाय करते हैं, वह आड़ में ही रह जाती है। पसंद करने की जो सारी सामग्री है, उस वस्तु को प्राप्त न करने से संसार विफल हो जाता है, उसके ऊपर तो जोर नहीं चल सकता, इसके लिए बिना परीक्षा के ही, बिना विचार के ही भगवान् की दुहाई देकर लोग ग्रहण करते हैं और जो कुछ भी नहीं है, दो-चार दिनों में ही जो वस्तु नष्ट हो सकती है, नेत्र उठाकर देखने से ही जिसके दोष-गुण पकड़े जा सकते हैं, उसकी परीक्षा का फिर कोई अंत ही नहीं रहता। दिवाकर साढ़े पंद्रह आना की ओर से यदि आँखें बंद कर सकते हो, तो शेष दो पैसे के लिए गुरुजनों का अवाध्य होकर विरोध मत करो। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल हो। किसी दिन तुम इस बात को मत भूलना कि सुंदरता ही मनुष्य के लिए सब कुछ नहीं है या सिर्फ सुंदरता का जिक्र करना ही विवाह का उद्देश्य नहीं है।''

दिवाकर सिर झुकाकर चुप हो रहा। उपेंद्र भी बड़ी देर तक चुप रहकर अंत में बोले, ''तो अब तू यहाँ से चला जा।''

दिवाकर ने सिर झुकाकर धीरे-धीरे कहा, ''मेरी रुचि नहीं है छोटे भैया, मुझे क्षमा करो। खासकर बड़े आदमी की लड़की...।''

इस तरह के उत्तर ने पल भर के लिए उपेंद्र को अभिभूत कर दिया। वह अल्पभाषी दिवाकर की बातों का गुरुत्व समझते थे, लेकिन किसी विषय में असफल होना भी उनका स्वभाव नहीं है। सामने के कागज-कलम को एक तरफ हटाकर बोले, ''रुचि नहीं है! वह भी नहीं रह सकती है, लेकिन बड़े आदमी की लड़की का क्या दोष है?''

दिवाकर ने कहा, ''दोष नहीं है, लेकिन मैं गरीब हूँ।''

उपेंद्र ने कहा, ''इसका मतलब तो यह है कि गरीब के घर की लड़की तुम्हारा जैसा सम्मान या भक्ति करेगी, धनवान् की लड़की वैसा न करेगी, लेकिन मैं पूछता हूँ, स्त्री के सम्मान या भक्ति पाने की कितनी धारणा तुमको है? यह जिद पकड़ लोगे कि ब्याह करोगे ही नहीं, तो वह दूसरी बात है, लेकिन दोष का भार दूसरे के कंधे पर रखकर अपनी गरीबी को जिम्मेदार मत ठहराओ। पुराण-इतिहास तो पढ़ चुके हो। उनमें सीता-सावित्री प्रभृति साध्वी स्त्रियों का जो उल्लेख है, वे राजा-महाराजा के घरों की लड़कियाँ होते हुए भी किसी दरिद्र घर की लड़की की अपेक्षा गुणों में कम नहीं थीं। बड़े लोगों के घरों की लड़कियों के विरुद्ध एक कहावत प्रचलित है, इसलिए उसके बिना विचार के ही मान लेना पड़ेगा, इसका कोई कारण मुझे दिखाई नहीं देता।''

दिवाकर के अलावा एक और श्रोता अत्यंत ध्यान लगाकर आड़ में रहकर सुन रही थी। उसके आँचल के छोर पर दृष्टि पड़ने के साथ ही उपेंद्र बोल बैठे, ''बड़े आदमी के घर की एक और लड़की इस मकान में ही है, इसका आधा रूप-गुण लेकर भी यदि शची आ जाएगी, तो किसी भी पति को अपना सौभाग्य ही मान लेना चाहिए।''

कुछ देर चुप रहकर वह फिर बोले, ''रुचि नहीं है। तूने कहा था!''

उसी समय अलमारी के पीछे से चूड़ियों की आवाज सुनकर चकित होकर दिवाकर उठ खड़ा हुआ। सुरबाला के पास जाकर बोला, ''भाभी, तुम कहो तो मैं छोटे भैया को पत्र लिखने का कह दूँ?''

सुरबाला ध्यान से पति की बातें सुन रही थी। एक अनिर्वचनीय शांति और तृप्ति की तरंग उसकी समस्त इच्छओं, समस्त कामनाओं और समस्त स्वतंत्रताओं को बहाकर पति की इच्छाओं के चरणों के नीचे आत्मसमर्पण करती जा रही थी। उसने कुछ भी निश्चय नहीं किया था, लेकिन आँचल से नेत्र पोंछकर पति को लक्ष्य करके एकांत चित्त से कहा, ‘‘वे कभी झूठ नहीं बोलते।’’

दिवाकर ने उपेंद्र के मुँह की ओर ध्यान से देखा। खुली खिड़की से काफी प्रकाश उसके मुँह पर आ रहा था।

दिवाकर ने कहा, ‘‘तुम जो अच्छा समझो, वही करो। मेरा समय नष्ट हो रहा है, मैं जा रहा हूँ।’’ इतना कहकर वह धीरे-धीरे बाहर चला गया।

उसके चले जाने पर सामने की आरामकुरसी पर आकर सुरबाला बैठ गई। दोनों सजल नेत्रों को पति के मुँह पर रखकर बोली, ‘‘तुम क्षमा करो। मैंने गलत समझ लिया था, तुम जो कुछ करना चाहते हो, उससे शची की भलाई होगी।’’

उपेंद्र ने पत्र समाप्त करते हुए हँसकर कहा, ‘‘अच्छा!’’

सात

उसके बाद दिवाकर सिर्फ अपने विवाह की बात सोचने लगा। शची कैसी है, क्या करती है, क्या सोचती है, क्या पढ़ती है, उसके साथ विवाह होने से कैसा व्यवहार करेगी, यही सब। रात के समय पढ़ने-लिखने में बहुत ही बाधाएँ पड़ने लगीं। आज उसका मन मतवाला हो उठा। किसी काम में मन न लगा।

परीक्षा के भय ने चाबुक की तरह जितनी बार उसको वापस लाकर पढ़ने में नियुक्त किया, उतनी बार ही वह उससे भागकर और दूसरी तरफ स्वप्नों की रचना करने लगा। बहुत देर तक इस विद्राही मन के पीछे-पीछे दौड़-धूप करके कुछ भी न पा सकने पर दिवाकर अनुमान करने लगा कि उसका समय व्यर्थ नष्ट होता जा रहा है, लेकिन क्या ही अभूतपूर्व परिवर्तन था! किस चीज के नशे ने उसको एकाएक ऐसा मतवाला बना दिया। उसका कारण ढूँढ़े जाने पर जो बात उसे याद पड़ गई, अत्यंत लज्जा के साथ दिवाकर ने उसका प्रतिवाद करके दृढ भाव से यही बात कही कि इसमें मेरी इच्छा नहीं है, अत्यंत घृणा और अरुचि है!

इतना कहकर उसने दोगुने आग्रह के साथ ऊँचे स्वर से पढ़ना आरंभ कर दिया, लेकिन आज मन को संयम में रखना कठिन हो गया। जिस खेल के बीच से चला आ रहा है, जिस आकाश-कुसुम की आधी माला गूँथकर फेंक रखी है और बेबसी में सबक याद कर रहा है, उसको खत्म करने का अवसर वह प्रतिक्षण खोजता हुआ घूमने लगा। कहीं भी वह स्थिर न रह सका, कुछ ठीक तौर से हृदयंगम न कर सका, केवल आश्चर्य-भरी पुलक से स्वप्नाविष्ट की भाँति स्तब्ध होकर बैठ गया।

आठ

विपिन के निमंत्रण से लौटकर आने के बाद दूसरे दिन आकंठ प्यास लिये सतीश नींद टूटने पर जब बिछौने पर उठ बैठा, तब दिन के दस बज चुके थे। तब भी उसका कमरा बंद था। आज प्रातःकाल से ही मेघशून्य आकाश में धूप जाने से इस बंद कमरे का भीतरी भाग कैसा असहयनीय हो उठा था, इसका पता स्वयं उसको न रहने पर भी उसका सारा शरीर इसका प्रमाण दे रहा था। पूरा बिछौना पसीने से भीग चुका था। सतीश उठ बैठा और घबराकर सिरहाने की खिड़की खोल देने के साथ ही एक झलक धूप उसके चेहरे और शरीर पर पड़कर उसको एक क्षण में तपाकर चली गई।

सतीश ने पुकारा, "बिहारी!"

बिहारी दौड़कर हाजिर हुआ।

सतीश बोला, "जल्दी एक गिलास पानी तो ले आ!"

बिहारी ने पूछा, "तंबाकू देने की आवश्यकता न पड़ेगी?"

"नहीं, पानी ले आ।"

"स्नान नहीं कीजिएगा?"

"अभी नहीं, तू पानी ले आ।"

फिर भी बिहारी नहीं गया, बोला, "संध्या-उपासना का...?"

संध्या-उपासना के संकेत से सतीश आग-बबूला होकर डाँटकर बोला, "बदमाश कहीं का! जा, पानी ले आ!"

डाँट खाकर बिहारी पानी लाने के लिए नीचे चला गया। रसोईघर के बरामदे में बैठकर सावित्री सुपारी काट रही थी, मुसकराहट के साथ उसने पूछा, "सतीश बाबू ने तंबाकू देने को कहा है?"

बिहारी ने मुँह बनाकर कहा, "नहीं, पानी चाहिए।"

"स्नान किया नहीं, संध्या की नहीं, फिर पानी क्या होगा!"

बिहारी ने व्यथित होकर कहा, "मैं क्या जानूँ। हुक्म हुआ कि पानी चाहिए, ले जा रहा हूँ।"

सावित्री सरौता रखकर उठ खड़ी हुई। बोली, "अच्छा, मैं ही ले जा रही हूँ, तुम थोड़ी सी बर्फ ले आओ।"

बिहारी बर्फ लेने चला गया।

सावित्री ने ऊपर जाकर कहा, "जाइए, स्नान कर आइए, मैं तब तक संध्या का स्थान ठीक कर रखती हूँ।"

सतीश मन ही मन झुँझलाकर बोला, "कहाँ है बिहारी!"

सावित्री हँसी रोककर बोली, "वह बर्फ लेने गया है। बाबू, अपराध करके सजा भोगकर चलना अच्छा है, इससे प्रायश्चित्त हो जाता है। आप क्या संध्या-पूजा किए बिना किसी दिन पानी पीते हैं कि आज ही पानी के लिए हल्ला कर रहे हैं! जाइए, विलंब न कीजिए।"

सावित्री के सामने प्रतिवाद करना निरर्थक समझकर सतीश उठ पड़ा और तौलिया कंधे पर रखकर स्नान करने के लिए चल दिया।

भोजन के बाद सतीश फिर एक बार ज्यों ही सो रहने की तैयारी करने लगा, त्यों ही सावित्री आकर दरवाजे के बाहर खड़ी हो गई। उसको जैसे देखा ही नहीं है, ऐसा रुख

दिखाकर सतीश दीवार की ओर मुँह फेरकर सो रहा।

सावित्री ने मन ही मन हँसकर कहा, ''रात की सारी बातें बाबू को याद हैं या नहीं, यह जान लेने के लिए मैं आई हूँ।''

सतीश चुप रहा।

सावित्री ने कहा, ''तो नींद टूटने पर एक बार बुला लीजिएगा, उन सबको एक बार याद करा जाऊँगी।'' इतना कहकर वह चली गई।

पिछली रात की सारी घटनाएँ याद रखना सतीश के लिए संभव भी नहीं है, वे याद भी नहीं थीं। विपिन बाबू के जलसे से वह किस तरह आया था, किसके साथ आया था, आकर क्या किया था, वे सारी बातें उसके मन में इधर-उधर बिखर गई थीं और अस्पष्ट हो गई थीं। इस अस्पष्टता को स्पष्ट कर कह देने की इच्छा, उसको बिल्कुल ही न रही हो, ऐसी बात नहीं है, लेकिन एक अनिश्चित लज्जा उसको मानो किसी प्रकार भी कदम बढ़ाने नहीं दे रही थी। उसको संध्याकाल की घटना ही याद थी। यही अब तब उसकी मेघाच्छन्न स्मृति के आकाश में शुक्रतारा की भाँति चमक रही थी, लेकिन अधिकतर ज्योतिष्मान दुष्ट ग्रह भी उस बादल की ओट में ही उगा हुआ है, उसकी ओर सावित्री के इंगित के उँगली का संकेत करने के साथ ही उसकी नींद मरुभूमि की भाप की तरह उड़ गई। कल संध्या को हतबुद्धि होकर उसने चिराग बुझा दिया था, इसका फल अंत तक किस तरह प्रकट होगा, उस संबंध में उसके मन में यथेष्ट उत्कंठा बनी हुई थी, फिर भी उसमें उसका दोष कुछ भी नहीं था, इस कारण उसको दुर्भाग्य कहकर वह एक तरह सांत्वना प्राप्त कर रहा था और अपराध न करने में जो एक सच्ची शक्ति छिपी रहती है, वह शक्ति उसके अनजाने में भी उसको प्रश्रय दे रही थी, लेकिन सावित्री इस समय जो बात कह गई, जिस अंधकार के बीच रास्ता दिखा गई, उसके बीच प्रवेश करने का साहस उसको कहाँ था? उसका मतवाला बन जाने की अभिज्ञता वह कहाँ से लाता? वह किस तरह अनुमान करे कि उसने क्या किया था, क्या नहीं किया था! कितने ही मतवालों को कितने ही विचित्र कार्य करते हुए उसने अपने नेत्रों से देखा है, अब अपने बारे में किस काम को वह किस साहस से असंभव कहकर दूर हटा देगा? फिर उसके दिमाग में आग जल उठी। वह फिर एक बार उठ बैठा और जीवन में शराब न छूने की प्रतिज्ञा पुनः एक बार करके उसने प्रायश्चित्त किया।

खिड़की में से सतीश ने पुकारा, ''बिहारी!''

बिहारी राखाल बाबू के बिछौने को धूप में डाल रहा था, आवाज सुनकर वह पास आकर खड़ा हो गया।

सतीश ने कहा, 'अच्छा, तू जो काम कर रहा है, कर। सावित्री से कह दे, एक गिलास पानी दे जाए।''

बिहारी ने कहा, ''मैं ही ला देता हूँ, वह अभी संध्या-पूजा कर रही हैं।''

सतीश ने आश्चर्य में पड़कर पूछा, ''क्या, संध्या कर रही हैं!''

''जी हाँ, वह तो नित्य करती हैं। एकादशी के दिन एक बूँद पानी भी नहीं पीतीं, मछली भी नहीं खातीं, भले घर की लड़की हैं न।''

सतीश ने आश्चर्य के साथ पूछा, ''भले घर की? क्या कह रहा है...?''

''हाँ बाबू, भले घर की।''

इतना कहकर बिहारी पानी लाने जा ही रहा था कि सतीश ने पुकारकर पूछा, ‘‘सावित्री यदि रात को भात नहीं खाती तो क्या खाती है?’’

‘‘और क्या खाएँगी बाबू, कुछ रहने से किसी दिन थोड़ा सा जल भी पी लेती हैं, न रहने पर कुछ भी नहीं खातीं-पीतीं।’’

‘‘डेरे का और कोई यह बात जानता है?’’

‘‘बिहारी ने कहा, ‘‘रसोइया महराज जानता है, मैं भी जानता हूँ और कोई नहीं जानता। उन्होंने बताने को मनाही कर रखी है।’’

सतीश ने कहा, ‘‘अच्छा तू जाकर पानी ले आ।’’

बिहारी ने दो-एक कदम जाते ही सतीश ने फिर पुकारा, ‘‘बिहारी!’’

‘‘जी।’’

‘‘भले घर की हैं, तूने यह बात कैसे जानी?’’

‘‘जानता हूँ बाबू।’’

‘‘अच्छा, अच्छा, तू जा पानी ले आ।’’

बिहारी के चले जाने पर सतीश बिछौने पर औंधा होकर लेट रहा। सावित्री को साधारण दासी की श्रेणी में मानने से उसके मन में एक तरह की व्यथा पहुँची थी। किसलिए उसका मन हीनता और गुप्त लांछना के दबाब से चुपचाप सिर झुका लेता था, उसको वह कुछ भी समझने में समर्थ नहीं हो रहा था। आज बिहारी के मुँह से केवल इतना ही परिचय पाकर आनंदपूर्ण आश्चर्य से ही नहीं, बल्कि उसका समूचा मन मानो किसी अपरिचित के बाहुपाश से अकस्मात् मुक्ति पाकर पवित्र होकर बच गया। उसने बिहारी की बात को संपूर्ण सत्य कहकर ग्रहण करने में एक क्षण की दुविधा भी नहीं की।

पानी लाने में विलंब होने लगा। किस कारण विलंब हो रहा है, सोचकर वह थोड़ी देर तक चुप हो रहा तो भी बिहारी दिखाई न पड़ा। प्यास के मारे उसे कष्ट मालूम होने लगा। फिर एक बार बिहारी को बुलाने की इच्छा करके वह जैसे ही उठ बैठा, वैसे ही उसने देखा कि पानी का गिलास लिये सावित्री आ रही है। इस आचार-परायण अभागिनी को उसने आज नई आँखों से देखा और उस क्षण भर के दृष्टिपात से ही उसका हृदय करुणा और श्रद्धा से भर उठा। जो बात किसी दूसरे समय उसके मुँह से निकलने में रुकावट पड़ती, इस समय रुकावट नहीं पड़ी। पानी पीकर वह बोला, ‘‘बहुत बातें हैं।’’

सावित्री चुपचाप देखती रही।

सतीश ने कहा, ‘‘पहली बात है, मुझे क्षमा करना पड़ेगा।’’

सावित्री ने शांत स्वर से पूछा, ‘‘दूसरी बात?’’

सतीश ने कहा, ‘‘कल कब किस तरह मैं आया था, बताना पड़ेगा।’’

सावित्री ने जवाब दिया, ‘‘रात के अंतिम प्रहर में गाड़ी पर चढ़कर।’’

‘‘उसके बाद?’’

‘‘रास्ते पर ही सो रहने का प्रबंध किया था।’’

‘‘अच्छा काम नहीं किया। उठाकर कौन ले आया?’’

‘‘मैं।’’

‘‘और कौन था? इतने बड़े जड़ पदार्थ को किस तरह उठाया गया?’’

सावित्री ने हँसकर कहा, ''आप डरें नहीं, डेरे पर किसी को कुछ मालूम नहीं।''

सतीश ने गहरी साँस लेकर कहा, ''मैं बच गया, लेकिन तुम्हारे साथ मैंने किसी तरह का दुर्व्यवहार तो नहीं किया?''

''नहीं तो।''

सतीश ने खुश होकर कहा, ''तो फिर किस बात की याद दिला देना चाहती थीं?''

''आपने शराब न छूने की शपथ ली थी।''

''शपथ मैं क्यों लेने लग गया? इस तरह दुर्बुद्धि तो मुझे होने की बात नहीं है।''

''शायद मेरी बात से हो रही हो।''

सतीश ने अपने कंठ-स्वर को धीमा करके कहा, ''मुझे याद आ रही है सावित्री, मैंने तुमको छूकर शपथी ली थी न?''

सावित्री निरुत्तर रही।

सतीश ने कहा, ''यही होगा, लेकिन कल संध्या की बातें याद हैं।''

इस बार सावित्री हँस पड़ी। गरदन हिलाकर बोली, ''हाँ, हैं।''

''लोग जान लेंगे शायद, फिर क्या उपाय होगा?''

सावित्री ने सहसा गंभीर होकर कहा, ''होगा फिर क्या! किसी दूसरे डेरे पर, या अपने घर चले जाइए!''

''और तुम?''

सावित्री के मुख पर किसी प्रकार की घबराहट नहीं दिखाई पड़ी। शांत भाव से वह बोली, ''मुझे चिंता नहीं। इस डेरे के बाबू लोग रखें तो अच्छा ही है, न रखेंगे तो और कहीं काम की चेष्टा करके चली जाऊँगी। जहाँ मेहनत करूँगी, वहीं दो कौर खाना पा जाऊँगी।''

सतीश का समस्त मन जैसे पहाड़ की चोटी से लुढ़ककर नीचे जड़ में गिरकर बिल्कुल ही चूर-चूर हो गया। उसके यहाँ रहने, न रहने से सावित्री का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। इस संबंध में वह बिल्कुल ही उदासीन है। उसने गरदन हिलाकर बताया और उसको कोई बात कहनी नहीं है; क्योंकि सावित्री के इस निःशंक संक्षिप्त उत्तर के बाद और कोई प्रश्न ही उसके मुँह में नहीं आया। तो भी, कितनी ही बातें उसको कहनी थीं। सावित्री खाली गिलास लेकर चली गई। सतीश चुपचाप बैठा रहा।

हाय रे मनुष्य का मन! यह किस चीज से टूट जाता है, किससे बन जाता है, इसका कोई तत्त्व खोजने पर नहीं मिलता। यह कितने आघात से बिल्कुल ही धरती पर लोट जाता है, फिर कितने प्रचंड आघात को भी हँसते हुए सह लेता है, इसका कोई हिसाब ही नहीं मिलता। तो भी, इसी मन को लेकर मनुष्य के अहंकार की सीमा नहीं है। जिसको वश में नहीं किया जाता, जिसको पहचाना तक नहीं जाता, किस तरह अपना कहकर उसके मन को खुश रखा जा सकता है! कैसे उसे लेकर घर सँभालने का काम चल सकता है।

सावित्री के चले जाने पर भी सतीश वैसे ही बैठा रहा। उसका हृदय दुःख, कष्ट से नहीं, किसी प्रकार की एक जलन से मानो जलने लगा। जिसको प्यार करता हूँ, वह यदि प्यार न करे, यहाँ तक कि घृणा भी करे तो वह घृणा भी सही जा सकती है, लेकिन जिसका प्यार मुझको मिल गया है, ऐसा विश्वास हो जाने पर फिर उस विश्वास का टूट जाना ही सबसे शोचनीय अवस्था होती है! परिस्थिति व्यथा ही देती है, लेकिन दूसरी स्थिति व्यथा भी

देती है अपमान भी करती है। फिर इस व्यथा का प्रतिकार नहीं है। इस अपमान की शिकायत नहीं है। वेदना का कारण खोजने पर जब मिलता ही नहीं है, तभी व्यथा ऐसी असहनीय हो जाती है।

कुछ भी हो, सावित्री के इस निश्चिंत और सरल कर्तव्य-निर्धारण ने सिर्फ एक बार उसके ही हृदय के चित्र को खोल नहीं दिया, उसने सतीश के हृदय के चित्र को भी खींचकर बाहर के प्रकाश में पहुँचा दिया। इन दोनों चित्रों को आसपास रखकर वह स्तम्भित हो रहा। उसने निश्चित रूप से जान लिया था, सावित्री प्यार करती है, वह प्यार नहीं करता। अब उसने देखा, ठीक उसका उलटा; वह प्यार करता है, सावित्री नहीं करती। इस घृणित बात को स्वीकार करने में केवल लज्जा से ही उसका सिर नीचा नहीं हुआ, बल्कि अपने मन की इस नीच प्रवृत्ति से उसको अपने ऊपर घृणा उत्पन्न हो गई। उसकी पिछली रात के सब काम लज्जाजनक थे, इसमें संदेह नहीं है; उसके जीवन में ऐसी अनेक रातों की अनेक लज्जाएँ जमा होकर पड़ी हुई हैं, यह सच है, लेकिन इस नीचता की तुलना में वे सभी तुच्छ हो गईं।

इस डेरे में तो एक दिन ही रहना चल नहीं सकता। यहाँ रहने न रहने के संबंध में वह बिल्कुल ही उदासीन नहीं है, यह बात तो वह किसी तरह भी स्वीकार न कर सकेगा। वह कठोर प्रतिज्ञा कर बैठा कि वेदना के भारी बोझ से अगर उसका मन टूटकर टुकड़े-टुकड़े भी हो जाए तो भी नहीं। किसी प्रकार भी इस नीचता को प्रश्रय देकर वह नीचे के पथ में नहीं जाएगा।

दिन ढलता जा रहा था, लेकिन कमरे के अंदर सतीश को इसका होश नहीं था। एकाएक डेरे पर लौटनेवाले पास-पड़ोस की आहट से वह चकित सा होकर खिड़की के बाहर झाँक लेने के लिए बिछौना छोड़कर उठ पड़ा और उसी दम एक कुरता पहनकर चादर कंधे पर डालकर नजर बचाए चुपके से बाहर निकल गया। अभी तुरंत ही हाथ-मुँह धोने का आग्रह लेकर सावित्री आ जाएगी और जलपान के लिए हठ करने लगेगी। आज उसको जरा सी भी भूख नहीं थी, लेकिन सावित्री इस बात पर किसी तरह भी विश्वास न करेगी, अनुरोध करेगी, परेशान करेगी, हो सकता है कि अंत में क्रोध करके चली जाएगी।

रास्ते में घूमते-घूमते संध्या के ठीक पहले एक गली के मोड़ पर एकाएक पीछे से उसने परिचित कंठ की पुकार सुनी, "छोटे बाबू हैं क्या?"

सतीश खड़ा हो गया, बोला, "हाँ, मोक्षदा हो क्या?"

बहुत दिन पहले मोक्षदा उसके पश्चिमी प्रांत के मकान में दासी का काम करती थी, छुट्टी लेकर कलकत्ता आने पर फिर वापस न जा सकी। उसने कहा, "हाँ बाबू, मैं हूँ। मेरा एक पत्र आप पढ़ देंगे?"

सतीश हँसकर बोला, "इतने बड़े शहर में एक पत्र पढ़वाने के लिए तुझे और कोई आदमी नहीं मिला माई? पत्र कहाँ है?"

मोक्षदा ने कहा, "पत्र मेरे घर पर ही है बाबू। किसी अनजान आदमी से पढ़वाने का साहस नहीं हुआ। न जाने इसमें क्या लिखा हो। यों तो हमारे घर में ही एक लड़की है, वह पढ़ना-लिखना जानती है, लेकिन उसको भी आज दो दिन से नहीं देखा, इतनी अधिक रात को वह घर लौटती है कि वक्त नहीं मिलता।"

सतीश ने पूछा, "कितनी दूर है तुम्हारा मकान?"
दासी ने कहा, "यहाँ से थोड़ी ही दूर है। बड़े रास्ते के उस तरफ एक गली में है। अगर अपना पता-ठिकाना बता दें, तो किसी को साथ लेकर कल मैं ही चली आऊँ और पत्र पढ़वा जाऊँ।"
सतीश ने 'अच्छा' कहकर अपना शोभा बाजारवाला पता बता दिया और कहाँ से किस तरफ जाना पड़ता है, समझाकर बताते-बताते राह चलने लगा। कुछ देर चलने के बाद दासी एक जगह अचानक खड़ी हो गई और बोली, "कहने का साहस मुझे नहीं होता बाबू, अगर एक बार चरणों की धूलि आप दे दें, घर यहाँ से और अधिक दूर नहीं है।"
सतीश ने थोड़ी देर कुछ सोचकर कहा, "अच्छा, चलो।"
आज डेरे पर लौट जाने का उसका बिल्कुल ही मन नहीं था। रास्ते में घूमते-घूमते रात अधिक हो जाने पर सावित्री अपने घर चली जाएगी तो अपने डेरे पर लौट जाऊँगा, यह निश्चय करके ही वह बाहर निकला था। इसीलिए, सहज ही में संपत्ति देकर, दो गलियों को पार करके वे दोनों मिट्टी के बने दुमंजिले मकान के सामने जा खड़े हुए।
"तनिक खड़े रहिए।" कहकर मोक्षदा अंदर घुसी और शीघ्र ही एक मिट्टी के तेल की डिबिया हाथ में लिये लौट आई और रास्ता दिखाती हुई सतीश को अपने साथ ले गई। उस तरफ के कोने के कमरे में एक छोटे स्टूल पर डिबिया में बत्ती जल रही थी, उसी कमरे को दिखाकर उसने कहा, "जरा बैठिए, मैं तंबाकू चढ़ा लाऊँ।"
इस छोटे से कमरे की सफाई देखकर सतीश ने आराम अनुभव किया। एक तरह छोटी सी चौकी पर मँजे-घिसे कितने ही पीतल-काँसे के बरतन चमक रहे थे और उसके पास ही एक रस्सी पर कुछ कपड़े व्यवस्थित टँगे हुए थे। ताख पर एक टाइमपीस रखी थी, जिसमें आठ बजे थे। सतीश ने चौखट के बाहर जूते खोलकर रख दिए, चौकी पर बिछे हुए सफेद बिछौने पर जाकर बैठ गया और कमरे के दूसरे असबाबों की मन ही मन जाँच करने लगा। पहले ही दृष्टि पड़ गई एक छोटी सी अलमारी पर। उसमें कुछ पुस्तकें सजाकर रखी हुई थीं। सतीश उठकर गया और एक पुस्तक ले आया और पहला पन्ना उलटने के साथ ही उसने देख लिया कि अंग्रेजी अक्षरों में भुवनचंद्र मुखोपाध्याय लिखा हुआ है, उस पुस्तक को रखकर और तीन-चार पुस्तकें, वही एक नाम देखकर पुस्तकें यथास्थान रखकर वह फिर बैठ गया।
मोक्षदा हुक्के पर तंबाकू चढ़ाकर ले आई।
सतीश ने हुक्का थामकर कहा, "तुम्हारा कमरा बहुत साफ-सुथरा है, उठने का मन नहीं होता।"
मोक्षदा ने मुसकराकर कहा, "उठिएगा क्यों बाबू, बैठिए। यह कमरा मेरा नहीं है, यह एक दूसरी स्त्री का है।"
सतीश ने पूछा, "वह कहाँ है?"
मोक्षदा ने कहा, "वह बाबू लोगों के डेरे पर काम करती है। लौटने में प्रायः ही रात हो जाती है, इसीलिए कमरे की चाबी मेरे ही पास रहती है। मुझे मौसी कहकर पुकारती है।"
सतीश ने कहा, "भले ही पुकारती हो, लेकिन भुवन बाबू कब आएँगे?"
दासी ने आश्चर्य में पड़कर पूछा, "कौन भुवन बाबू?"
"भुवन मुखर्जी, पहचानती नहीं हो?"

सहसा दासी ने दोनों भौंहें चढ़ाकर कहा, ‘‘ओह! हमारे मुखर्जी? नहीं, नहीं, उनको आना नहीं पड़ेगा।’’

‘‘क्यों? क्या मर गए हैं?’’

दोनों आँखें चमकाकर मोक्षदा ने कहा, ‘‘नहीं, मर नहीं गए, लेकिन मर जाने से ही अच्छा होता। ठहरे ब्राह्मण, वर्णों के गुरु, हम लोगों के मस्तक के मणि हैं। नारायण तुल्य हैं, उनके प्रति अभक्ति नहीं करती, उनके चरणों की धूलि लेती हूँ, लेकिन किसी दिन भेंट होने पर तीन झाड़ू गिनकर मुँह पर मारूँगी, तभी मेरा नाम मोक्षदा है।’’

सतीश हँसकर बोला, ‘‘क्रोध के आवेश में ब्राह्मण आदमी की अभक्ति करके कहीं मार मत बैठना! खूब भक्ति के साथ गिनकर मारोगी तो पाप न लगेगा। लेकिन वह हैं कौन?’’

मोक्षदा ने कहा, ‘‘उस आदमी का परिचय क्या दूँ बाबू, वह आदमी नहीं जानवर है। इस लड़की को जिस राह में वह बिठा गए, बाबू, यह कोई अपने आदमी का काम है? छिह! छिह! गले में डालने को रस्सी नहीं मिली?’’

सतीश ने पूछा, ‘‘वह हैं कौन? उन्होंने क्या किया है?’’

सहसा कमरे के बाहर से जवाब आया, ‘‘उस आदमी को आप नहीं पहचानते, आपको उनके विषय में सिर्फ जान लेने से क्या लाभ होगा?’’

सतीश चौंक पड़ा।

मोक्षदा ने मुँह फेरकर कहा, ‘‘साबी है क्या? कब आई तू?’’

सावित्री ने कमरे में घुसकर कहा, ‘‘अभी आई हूँ, बाबू को तुम कहाँ पा गईं मौसी?’’

मोक्षदा ने कहा, ‘‘ऐ ही हमारे छोटे बाबू हैं, सावित्री? आज दो दिन हुए बहूजी का एक पत्र मुझे मिला है, उसको पढ़वा नहीं सकी, इसलिए कहा—अगर बाबू दया करके चरण-रज दे दें...।’’

सावित्री ने कहा, ‘‘तो चरण-रज तुम्हारे कमरे में न देकर मेरे कमरे में क्यों?’’

मोक्षदा ने नाराज होकर कहा, ‘‘तो फिर क्रोध क्यों करती हो सावित्री। मेरे कमरे में तो भले आदमी को बैठाया नहीं जा सकता, इसीलिए तेरे कमरे में बैठाया है। कितने बड़े घराने के ये लोग हैं, यह तो खुशी मनाने की बात है, नाराज होने की नहीं।’’

सावित्री ने हँसकर कहा, ‘‘क्यों नाराज होऊँगी मौसी, लेकिन खाली चरण-रज लेने से तो पाप होता है। जलपान कराना उचित है, हाँ ब्राह्मण महाराज, क्या आपको भूख लगी है?’’

सतीश संकुचित हुआ बैठा था, सिर हिलाकर कहा, ‘‘नहीं।’’

सावित्री के अशिष्ट प्रश्न से विरक्त होकर मोक्षदा ने कहा, ‘‘यह बात करने का कैसा तरीका है सावित्री? भले आदमी के साथ क्या इस तरह बातें की जाती हैं?’’

सावित्री ने बलपूर्वक हँसी दबाकर कहा, ‘‘यह कौन सी खराब बात है मौसी? अच्छा, अब उनकी भूख के बारे में कुछ पूछूँगी ही नहीं, तुम दुकान से कुछ जलखावा खरीद लाओ, तब तक मैं चौका ठीक कर रखती हूँ।’’

मोक्षदा भुनभुनाती हुई बकते-बकते तेज कदम बढ़ाकर चली गई तो सावित्री ने कहा, ‘‘कल रात से ही तो एक तरह उपवास ही चल रहा है। शाम को किस तरह आप भागकर चले आए, इसका भी पता मुझे नहीं चला। अब उठिए, संध्या-पूजा करके कुछ खा लीजिए। इस अरगनी पर धुले हुए कपड़े हैं, पहनकर मेरे साथ आइए, देर न करें, उठिए।’’

सतीश ने सिर हिलाकर कहा, ''मुझे भूख नहीं है।''

सावित्री ने कहा, ''न रहने पर भी खाना पड़ेगा। इसका पहला कारण है कि भूख नहीं है, इस बात पर मैंने विश्वास नहीं किया, दूसरा कारण...?''

सतीश ने अपने मुँह का भाव अत्यंत कड़ा बनाकर कहा, ''दूसरा कारण तो झूठ ही है, वही पहला सबकुछ है। सभी बातों में तुम्हारी जिद और जबरदस्ती रहती है। इस जिद के सामने किसी का उपाय नहीं चलता।''

सावित्री ने मुँह ऊपर उठाकर जरा हँसकर कहा, ''तो फिर झूठ-मूठ की चेष्टा क्यों कर रहे हैं?''

सतीश ने और भी गंभीर होकर कहा, ''यह बात नहीं है सावित्री! आज मेरी चेष्टा किसी तरह भी झूठ न होगी। या तो अपना दूसरा कारण बताओ, नहीं तो सच कह रहा हूँ तुमसे, मैं किसी तरह भी यहाँ कुछ न खाऊँगा।''

सतीश की जिद देखकर सावित्री चुपचाप हँसने लगी। कुछ देर बाद धीरे-धीरे बोली, ''मैं सोच रही हूँ, आज आप आ कैसे गए? आज है मेरा जन्मदिवस, जबकि आपने दासी के घर में चरण-रज दी है, तब खाली-खाली आपको मैं नहीं छोड़ सकती।'' इतना कहकर सावित्री सहसा रुक गई, लेकिन उसके हृदय की गुप्त व्यथा उसी के कंठ-स्वर के मुक्त मार्ग से इस तरह अचानक सतीश के सामने आकर खड़ी हो गई कि कुछ देर के लिए सतीश की बोधशक्ति अचल हो गई। बुद्धिमती सावित्री इसको क्षण भर में अनुभव करके सभी बातों का सहज परिहास करके हँसकर बोली, ''भगवान् ने आज आपको मेरा अतिथि बनाकर भेजा है, इसलिए खाना भी पड़ेगा और दक्षिणा भी लेनी पड़ेगी। देखती हूँ, आज बिल्कुल ही जात नष्ट हो जाएगी।''

इतनी देर में सतीश की स्वाभाविक शक्ति लौट आई थी। उसने पूछा, ''सचमुच ही क्या आज तुम्हारा जन्मदिन है?''

सावित्री ने कहा, ''सचमुच।''

सतीश ने कहा, ''तो ऐसे दिन अगर मैं आ ही पड़ा हूँ तो दुकान की कुछ बासी मिठाइयाँ खाकर पेट न भराऊँगा। इसके अलावा ये सब चीजें तो मैं कभी खाता नहीं।''

सावित्री भी यह बात जानती थी। मन ही मन लज्जित होकर उसने कहा, ''लेकिन अब तो रात हो गई है!''

सतीश ने कहा, ''हो जाए रात! आज डेरे पर वापस जाकर झिड़कियाँ तो खानी न पड़ेंगी। फिर आज ज्यादा रात होने से डरूँ क्यों? कुछ भी क्यों न कहो, किसी प्रकार भी मैं नहीं खाऊँगा।''

''तुमसे पार पाने का कोई रास्ता नहीं है।'' कहकर सावित्री उठकर चली गई।

सतीश बैठा हुआ था, अब लेट गया। यह सुंदर कुटी और यह निर्मल सफेद शय्या छोड़कर किसी तरह भी जाने की उसे इच्छा नहीं हो रही थी, फिर भी आत्मसम्मान को अक्षुण्ण रखकर बैठ रहने का भी कोई अच्छा सा कारण नहीं मिल रहा था। अब खाना तैयार होने की देर की संभावना उसको भावी आसन्न कठिन उत्तरदायित्व में मानो छुटकारा दे गई। चलते समय सावित्री बाहर से जंजीर चढ़ा गई थी, इसको भी जैसे वह जान गया था, उसके 'तुम' सम्भाषण को भी उसने उसी तरह लक्ष्य किया था। निर्जर कमरे में ये नवलब्ध दो

तथ्य, जादूगर और उसकी जादू की लकड़ी की तरह अपूर्व इंद्रजाल की रचना करने लगे। आज ही दुपहरिया को जो सब प्यार के कूड़ा-कर्कट उसके मन के भीतर से भाटे के खिंचाव से बाहर की तरफ बह गए थे, ज्वार के उलटे स्रोत से फिर वे एक-एक करके वापस आकर प्रकट होने लगे। आज ही दोपहर को आत्माभिमान के आघात की तीखी ज्वाला ने अपने मन की नीच प्रवृत्तियों की तरफ उसके नेत्रों को खोल दिया था, ज्वाला के ठंडा होने के साथ ही साथ वे नेत्र आप ही आप बंद हो गए। इसी तरह अपने को लेकर खिलवाड़ करते-करते किसी समय शायद वह जरा सा सो गया था। एकाएक द्वार खुल जाने की आवाज से वह जाग उठा और देखा कि सावित्री मोक्षदा को साथ लिए कमरे में घुस रही है। मोक्षदा ने पत्र सतीश के हाथ में देकर कहा, ''देखिए तो बाबू, बहू ने लिखा क्या है!''

सतीश ने पढ़कर कहा, ''उन लोगों के लौटने में अभी दो महीने की देर है।''

मोक्षदा ने पूछा, ''और कोई बात नहीं है?''

सतीश ने पत्र लौटाकर कहा, ''नहीं, विशेष कुछ बात नहीं है।''

''मेरी तनखा के बारे में बाबू?''

''नहीं, वह बात नहीं लिखी है।''

रुपए की बात नहीं लिखी है, सुनकर मोक्षदा ने मन ही मन अत्यंत कुढ़कर पत्र के लिए हाथ बढ़ाते हुए कहा, ''यह बात रहेगी क्यों? रहेंगी जितनी सब बेकार की बातें! दीजिए पत्र। सावित्री कल पत्र का उत्तर लिख देना तो। हाँ, बाबू का खाना कब दोगी? रात नहीं हुई है क्या?'' सावित्री ने कहा, ''यह ठहरे, ब्राह्मण महाराज, संध्या-पूजा करेंगे या यों ही खा लेंगे?''

मोक्षदा ने कहा, ''यह क्या अपने पुरोहित महाराज हैं या बाबाजी हैं कि पूजा-आह्निक करके खाएँगे?''

सतीश हँसकर बोला, ''क्या माईं, तुम सब भूल गईं! मैं तो सदा ही संध्या-पूजा करता हूँ।''

मोक्षदा को शायद एकाएक बात याद पड़ गई। झेंपकर बोली, ''हाँ-हाँ, ठीक बात है।'' सावित्री की तरफ घूमकर बोली, ''देख तो बेटी, जल्दी बाबू के लिए चौक ठीक कर दे। तेरे घर में तो सब ही ठीक-ठाक है।'' कहकर मोक्षदा चली गई।

एक घंटे के बाद सतीश के भोजन के वक्त कमरे में कोई भी मौजूद नहीं था, अँधेरे बरामदे में यह देखकर मोक्षदा एकदम जल उठी। रसोईघर में जाकर देखा, सावित्री चुपचाप बैठी हुई है।

रुष्ट कंठ से उसने कहा, ''यह तेरी कैसी बुद्धि है सावित्री? यह क्या कंगाल भोजन हो रहा है कि जो कुछ भी है, खाने के लिए सामने डालकर निश्चिंत होकर बैठी हुई हो?''

सावित्री कुछ सोच रही थी, चौंककर बोली, ''आवश्यकता पड़ने पर वह खुद ही माँग लेंगे।''

''ऐसी बुद्धि न रहती तो फिर तू दासी का काम करने जाती! तू तो खुद ही नौकर-नौकरानी रख लेती!''

सावित्री ने हँसकर कहा, ''खुद ही नौकरानी बनी हुई हूँ। इसमें भी क्या दोष है मौसी, मेहनत करके खाने में तो शर्म नहीं है!''

मोक्षदा ने कुपित होकर कहा, "कौन कहता है कि है मेरी उम्र में भले ही न रहे, लेकिन तेरी उम्र में तो जरूर ही है। अच्छा रहे या न रहे, बाबू को जबकि खाने को कह दिया है, तब बैठकर खिलाओ। मनुष्य का भाग्य बदलने में अधिक देर नहीं लगती।"

सावित्री जाने को तैयार होते-होते ठिठककर खड़ी हो गई, बोली, "क्या बक रही हो मौसी। वह सुन लेंगे तो?"

मोक्षदा ने तुरंत ही अपना कंठ धीमा करके कहा, "नहीं-नहीं, सुन लेंगे क्यों! और एक बात तुमसे कहे रखती हूँ बेटी। भगवान् ने जो दो आँखें दी हैं, उन दोनों को जरा खोल रखना, घड़ी की चेन, हीरे की अँगूठी न रहने से ही किसी आदमी को छोटा मत समझ लेना।"

"अच्छा!" कहकर सावित्री हँसती हुई चली जा रही थी। मोक्षदा ने फिर पीछे से पुकारकर कहा, "सुनो तो सावित्री!"

सावित्री घूमकर खड़ी हो गई, बोली, "क्या है?"

"मेरे कमरे में चल, एक ढकहिया साड़ी निकाल दूँ, पहनकर जा।"

सावित्री ने हँसी रोककर कहा, "तुम निकाल लाओ मौसी, मैं अभी आ रही हूँ।"

सतीश का खाना प्रायः समाप्त हो आया था, सावित्री ने कमरे में घुसकर कहा, "आँखें बंद करके खा रहे हो क्या?"

"सतीश ने मुँह ऊपर उठाकर कहा, "नहीं।"

"लेकिन देखती हूँ दोनों आँखें तो नींद से ढलती जा रही हैं!"

असल में उसे कड़ी नींद आ रही थी। पिछली रात का उच्छृंखल अत्याचार आज असमय में ही उसकी आँखों की दोनों पलकों को भारी बनाता जा रहा था, सलज्ज हँसी स्वीकार करके उसने कहा, "हाँ, बड़ी नींद आ रही है।"

सावित्री ने पूछा, "और कुछ चाहिए?"

सतीश तुरंत बोल उठा, "कुछ नहीं, कुछ नहीं, मैं खा चुका।"

बाहर पैरों की आहट सुनकर सावित्री जान गई कि मोक्षदा आकर खड़ी है, बोली, "बाबू, मुझे एक ढकहिया साड़ी खरीद देनी पड़ेगी।"

वह कभी कुछ नहीं माँगती, इसलिए इस बात का मतलब न समझ सकने के कारण सतीश आश्चर्य में पड़ गया। मोक्षदा के आने का उसे पता नहीं था। उसने पूछा, "सचमुच ही चाहिए?"

"सचमुच ही तो!"

"कब पहनोगी?"

"आज पहनने की स्थिति नहीं है, इसलिए किसी दिन भी वह स्थिति नहीं होगी, ऐसी क्या बात है! इसके अलावा एक और बात है। मैं मेहनत करके खाती हूँ, इसके लिए मौसी दुःख प्रकट कर रही थी। इसलिए सोच रही हूँ अब मेहनत करके न खाऊँगी, अब से बैठी-बैठी खाऊँगी।"

सतीश ने हँसकर कहा, "अच्छी बात तो है।"

"सिर्फ अच्छी बात होने से ही तो न होगा, उसके साथ एक नौकरानी न रहने से भी तो मान नहीं रहता, उसको भी आपको रख देना पड़ेगा।"

अपनी बात को वह खत्म भी न कर सकी, मुँह में आँचल ठूँसकर हँसी का वेग रोकने लगी।

मोक्षदा कोई अच्छी औरत नहीं थी। एक ही क्षण में सब कुछ समझकर कमरे में घुसकर उसने कहा, "बाबू, शायद सावित्री को पहचानते हैं?"

सावित्री की तरफ घूमकर बोली, "मौसी के साथ अब तक शायद मजाक हो रहा था? तो, यह तो अच्छी बात है, खुशी की बात है। पहले कहने से ही तो काम हो जाता।" कहकर हँसकर वह चली गई।

भोजन के बाद सतीश फिर एक बार बिछौने पर आकर बैठ गया। सावित्री डिब्बे में भरकर पान लाई और बँधे हुक्के पर तंबाकू चढ़ाकर सतीश के हाथ में दे दिया, पैरों के पास धरती पर बैठकर एकाएक मुसकराकर सिर झुका लिया।

सतीश के दिल में आँधी बहने लगी। सारे शरीर में रोंगटे खड़े होकर मानो जाड़ा लगने लगा। क्षणकाल के लिए उसको हुक्का खींचने की शक्ति तक नहीं रही। दो मिनट के बाद सावित्री ने मुँह ऊपर उठाकर कहा, "रात हो गई, डेरे पर नहीं जाओगे?"

सतीश ने सूखे कंठ से कहा, "नहीं जाऊँगा तो रहूँगा कहाँ?"

"यहीं रहोगे। न जा सको तो जरूरत नहीं है, मौसी अभी तक जाग रही है। मैं उनके बिछौने पर ही सो जाऊँगी।"

एक क्षण के लिए सतीश चुप ही रहा, लेकिन दूसरे ही क्षण अपने को सँभालकर बिल्कुल ही खड़ा होकर कहा, "नहीं...जा रहा हूँ।"

"अच्छा और जरा बैठो।" कहकर सावित्री उठकर चली गई और सतीश के जूते बाहर से उठा लाई और आँचल से पैर पोंछकर जूतों का फीता बाँधते-बाँधते धीरे-धीरे बोली, "डेरे के लोग अगर जान जाएँ तो?"

"जानेंगे कैसे?"

"मैं अगर बता दूँ?"

"तुम क्या बताओगी? बताने की कोई बात ही नहीं है।"

सावित्री ने हँसकर कहा, "कुछ भी नहीं है, सच कहते हो?"

सतीश निरुत्तर हो रहा।

सावित्री ने धीमे स्वर में कहा, "बताने की बात न रहने कौन जाने आज मैं तुमको छोड़ सकती थी या नहीं।" यह कहकर वह एकाएक चुप हो गई, लेकिन दूसरे ही क्षण प्रबल वेग से सिर हिलाकर बोल उठी, "नहीं, तुम डेरे पर चले जाओ। अगर दुर्बुद्धि न छोड़ोगे तो एक दिन सब ही खोल दूँगी, बताए देती हूँ।"

यह कैसा रहस्य है! इसके अंदर की बात ठीक न समझ सकने के कारण सतीश क्षण भर चुप रहकर खड़ा रहा। बोला, "भले ही बता दोगी, डेरे पर के लोग तो मेरे संरक्षक हैं नहीं।"

सावित्री ने कहा, "जानती हूँ, नहीं हैं, लेकिन मेरी मौसी यह काम भी अनायास ही ले सकेगी। उसकी जबान को कैसे रोक रखोगे?"

मोक्षदा का नाम सुनकर सतीश बोला, "रुपए देकर।"

सावित्री ने कहा, "उससे केवल रुपया बरबाद होगा, काम नहीं होगा। इसके सिवा, मौसी को भी रुपए से वश में कर लोगे, लेकिन मुझे क्या देकर वश में करोगे?"

सतीश तुरंत बोल उठा, "प्रेम देकर!"
सावित्री के ओंठों पर हँसी की रेखा दिखाई पड़ी, बोली, "इसको लेकर चार वार हो गए।"
"यानी?"
"यानी इसके पहले और भी तीन आदमियों ने इसी चीज को देना चाहा था।"
"तुमने लिया नहीं?"
"नहीं। कूड़ा-कर्कट जमा करके रखने के लिए जगह मेरे पास नहीं।"
सतीश स्थिर होकर बैठा रहा। सावित्री की व्यंग्य-भरी हँसी और उसके कंठ का स्वर कुछ भी उसके लक्ष्य से बच नहीं सका। इसीलिए उसकी दोपहर की बातें याद पड़ गईं और याद आने के साथ ही प्रेम की नदी में ज्वार खत्म होकर भाटे का खिंचाव शुरू हो गया। सावित्री की बातों को उसने व्यंग्य समझ लेने की गलती नहीं की। बड़े स्वर में बोल उठा, "वे लोग हैं बेवकूफ! उन लोगों को ऐसी चीज देने का प्रस्ताव करना उचित था, जिसको बक्स में उठा रखना किसी को कूड़ा-कर्कट न मालूम हो। मैं भी कम मूर्ख नहीं हूँ, क्योंकि मैं भी भूल गया था कि वह चीज तुम लोगों के लिए कितनी अवहेलना की चीज है। इतनी उम्र में इतनी बड़ी भूल हो जाना मेरे लिए उचित नहीं था! अच्छा मैं चलता हूँ।"
इस बात ने सावित्री को शूल कर तरह बींध दिया, "तुम लोगों के लिए" कहकर सतीश ने उसको किन लोगों के साथ अभिन्न बनाकर देखा, इसे समझना सावित्री को बाकी नहीं रहा, किंतु परिहास को झगड़े में परिणत होते देखकर वह चुप रह गई। सतीश रुक नहीं सका, बोला, 'शिकारी बंसी में मछली को गूँथकर खेलाकर-नचाकर जैसे आनंद मानता है, संभवतः इतने दिनों से मुझे लेकर तुम वही मजाक कर रही थीं न?"
सावित्री और सहन न कर सकी। बिजली की सी गति से वह उठ खड़ी हुई, बोली, "बंसी में गूँथकर तुमको ही खींचकर उठाया जा सकता है, खेला-नचाकर उठाने लायक बड़ी मछली तुम नहीं हो।"
सतीश ने निष्ठुर भाव से व्यंग्य करके कहा, "नहीं हूँ मैं?"
सावित्री ने कहा, "नहीं हो।" उसके होंठ सिकुड़ गए।
सतीश के चेहरे की तरफ तीव्र दृष्टिपात करके वह कहने लगी, "दुश्चरित्र, मेरी तरह एक स्त्री को प्यार करके प्रेम की बड़ाई करने में तुमको लज्जा नहीं मालूम होती? जाओ तुम... मेरे घर में खड़े होकर झूठमूठ मेरा अपमान मत करो।"
इस अपमान से सतीश और भी निर्दयी हो उठा। इस बार अक्षम्य कुत्सित व्यंग्य करके उसने कहा, "मैं दुश्चरित्र हूँ! किंतु जो कुछ भी कहो सावित्री! तुम्हारा नाम तुम्हारे माँ-बाप ने सार्थक रखा था।"
सावित्री हटकर चली गई, चौखट पकड़कर क्षणकाल स्थिर भाव से खड़ी रहकर बोली, "जाओ!" उसका चेहरा पीला बदरंग हो गया था।
अपमान और क्रोध की असहनीय जलन से उस तरफ नजर तक भी न डालकर सतीश बोला, "किंतु जाने के पहले एक बार फिर आँचल से पैर पोंछ न दोगी? अथवा और कोई खेल...और कोई...।"
एकाएक दोनों की आँखें लड़ गईं।

सावित्री ने एक कदम आगे बढ़कर कहा, "तुम कसाई से भी निष्ठुर हो, तुम जाओ! तुम जाओ! तुम्हारे पैरों पर गिरती हूँ, न जाओगे तो सिर पटककर मरूँगी, तुम जाओ।"

उसके कंठ-स्वर की उत्तरोत्तर और अस्वाभाविक-तीव्रता से अकस्मात् सतीश डर गया और एक भी बात न कहकर बाहर चला गया, किंतु अँधेरे बरामदे में अंत तक आकर उसे रुक जाना पड़ा। किस तरफ सीढ़ी है, किस तरफ रास्ता है, अँधेरे में कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था। जेब में हाथ डालकर उसने देखा, दियासलाई नहीं थी। इस निरुपाय अवस्था में पड़कर वह पाँच मिनट चुपचाप खड़ा रहा। फिर उसे सावित्री के कमरे की तरफ लौट आना पड़ा। बाहर से उसने देखा, सावित्री फर्श पर औंधी पड़ी हुई है, धीरे-धीरे उसने पुकारा, "सावित्री!" सावित्री ने उत्तर नहीं दिया, फिर पुकारने पर उत्तर न मिलने पर सतीश ने कमरे में जाकर सावित्री के माथे पर हाथ रखा। झुककर देखा, आँखें मूँदी हुई हैं और उसके मुँह में उँगली डालकर समझ गया, सावित्री मूर्च्छित होकर पड़ी हुई है। क्षण भर के लिए मन में एक भय और संकोच का उदय हो गया जरूर, किंतु दूसरे क्षण सावित्री का अचेतन शरीर उठाकर बिछौने पर उसने लिटा दिया और चादर का एक हिस्सा गगरी के जल से भिगोकर मुँह पर, आँखों पर छिड़कने लगा। फिर पंखा हाथ में लेकर हवा झलने लगा। दो-तीन मिनट के बाद ही सावित्री ने आँखें खोलकर माथे पर का कपड़ा खींचकर करवट कदलकर कहा, "तुम गए नहीं?"

सतीश चुप रहकर हवा झलने लगा।

सावित्री बिछौने से उठकर चिराग हाथ में लेकर बाहर जा खड़ी हुई। बोली, "चलो, चलो, तुम्हारे लिए दरवाजा खोल आऊँ।"

उसके बाद चुपचाप रास्ता दिखाती हुई वह नीचे उतर आई और दरवाजा खोलकर किनारे खड़ी हो गई।

मूर्च्छित सावित्री को बिछौने पर ले जाकर लिटाने के लिए उसके अचेतन शरीर को जो गोद में लेना पड़ा था, उसी समय से सतीश मानो अन्यमनस्क सा हो गया था। अब दरवाजे के पास आते ही वह अपने में आ गया और कोई बात कहने के लिए मुँह ऊँचा उठा ही रहा था कि सावित्री बोल उठी, "नहीं और एक बात भी नहीं, अपने शरीर को तुमने पहले ही नष्ट कर डाला है, किंतु वह तो किसी दिन जलकर खाक भी हो जाएगा, किंतु एक अस्पृश्य कुलटा को प्यार करके भगवान् के दिए हुए मन के गाल पर अब स्याही मत पोत देना। या तो, तुम कल ही उस डेरे को छोड़कर चले जाओ या मैं वहाँ अब नहीं जाऊँगी।" इतना कहकर उत्तर की प्रतीक्षा न करके सावित्री ने दरवाजा बंद कर दिया।

नौ

सतीश हतबुद्धि सा हो गया था। क्यों पास आने पर इस तरह निष्ठुर आघात करके दूर हटा देती है? उस दिन सारी रात बराबर सोचते रहने पर भी, इसका कोई स्पष्ट कारण खोजकर वह न पा सका। पिछली रात की एक बात अब तक उसकी हड्डियों में झनझनाती हुई बज रही थी। इस कारण वह भोर में बाहर निकल पड़ा, और किराए का एक मकान ठीक करके आकर मजदूर बुलाकर अपना सामान लदवाने लगा। यह काम देखकर डेरे के

सभी लोग आश्चर्य में पड़ गए। अधिक आश्चर्य में पड़ा बिहारी। उसने पास आकर धीरे-धीरे पूछा, "बाबू क्या घर जा रहे हैं?"

सतीश ने उसके हाथ में पाँच रुपए देकर कहा, "नहीं बिहारी, घर पर नहीं स्कूल के पास ही एक मकान पा गया हूँ, इसलिए जा रहा हूँ।"

बिहारी ने कहा, "किंतु वह तो अभी तक आई नहीं है बाबू?"

सतीश ने मुँह ऊपर उठाए बिना ही कहा, "आई नहीं है? अच्छा तू मेरे बिछौने को बाँध दे, मैं तब तक राखाल बाबू के कमरे से आ रहा हूँ।" यह कहकर डेरे का देना-पावना चुका देने के लिए वह राखाल बाबू के कमरे में चला गया। उस कमरे में बहुत से लोग उपस्थित थे। शायद यही आलोचना चल रही थी, क्योंकि उसको देखते ही सभी निस्तब्ध हो गए। राखाल ने जरा हँसने की चेष्टा करके कहा, "सतीश बाबू, इस तरह अचानक कैसे?"

सतीश ने हाथ के रुपयों को मेज के एक किनारे रखकर कहा, "अचानक एक दिन मैं आया भी था, अचानक एक दिन जा रहा हूँ। इन्हीं रुपयों से शायद आपका हिसाब चुकता हो जाएगा, यदि न हो, तो हिसाब हो जाने पर मुझे खबर दीजिएगा, बाकी रुपए भेज दूँगा।"

राखाल ने कहा, "खबर कहाँ दूँगा?"

"मेरे स्कूल के पते से एक कार्ड लिखकर भेज दीजिएगा, मुझे मिल जाएगा।"

यह कहकर सतीश और किसी सवाल-जवाब की प्रतीक्षा न करके बाहर चला गया। कमरे के अंदर एक दबी हुई हँसी की आवाज सतीश के कानों में आ पहुँची। बिहारी निकट ही खड़ा था। कमरे में घुसकर हाथ की छोटी सी गठरी किवाड़ की आड़ में उतारकर रख देने के बाद राखाल को लक्ष्य करके बोला, "बाबू, मेरा सत्रह दिन का वेतन हिसाब करके दे दीजिए, मुझे इसी दम बाबू के साथ जाना पड़ेगा।"

राखाल ने विस्मित और क्रुद्ध होकर कहा, "तू जाएगा, यहाँ काम करेगा कौन? जाऊँगा कह देने से ही तो जाना नहीं होता।"

बिहारी ने कहा, "होगा क्यों नहीं बाबू? मुझे तो जाना ही पड़ेगा।"

राखाल ने अग्नि की तरह जलकर कहा, "जाना पड़ेगा कह देने से ही हो जाएगा? नियमानुसार नोटिस देना चाहिए, मालूम है?"

बिहारी ने कहा, "एक दिन समयानुसार आकर दे जाऊँगा। अभी वेतन दे दीजिए, मुझे माल-असबाब जुटाना पड़ेगा।"

राखाल और कुछ न कहकर तूफान की गति से बाहर आया और सतीश के कमरे में घुसते ही बोल उठा, "सतीश बाबू, ये सब कैसे काम हैं?"

सतीश बिछौना बाँधते हुए बोला, "कौन सब?"

राखाल ने उद्दंड भाव से कहा, "नौकरानी नहीं आई, वह तो पहले ही चली गई है। देख रहा हूँ, बिहारी को भी ले जाना चाहते हैं, क्यों? अपराध किया आपने, दंड हम लोग भोगेंगे?"

सतीश ने कहा, "आपकी बात मेरी समझ में नहीं आई।"

राखाल ने कंठ का स्वर ऊँचा करके कहा, "समझेंगे क्यों? न समझने में ही तो सुविधा है। खुद न जाने से तो आपको निकाल बाहर करना ही पड़ता, लेकिन जो कुछ भी हो, एक

सहज शिष्टता का बोध भी क्या नहीं रहना चाहिए?"

सतीश की दोनों आँखें जल उठीं। पास आकर वह बोला, "आप यह सब क्या कह रहे हैं राखाल बाबू?"

ईर्ष्या की आग राखाल को जला रही थी। बोला, "ठीक कह रहा हूँ, आप भी ठीक समझ रहे हैं! सतीश बाबू, कोई भी बात हम लोगों से छिपी नहीं है। अच्छा, जाइए आप, क्या ही काला साँप मकान में लाया गया था। ऐसे डेरे को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

सतीश ने राखाल का एक हाथ थामकर कहा, "आप क्या कह रहे हैं, राखाल बाबू?"

राखाल जबरदस्ती अपना हाथ छुड़ाकर गरज उठा, "जाइए, ढोंग मत रचिए। जाइए आप, दूर हट जाइए!"

बिहारी ने कमरे में आकर कहा, "सतीश बाबू, जाने दें उनको, उनका मोह कहाँ है और कहाँ हैं उनकी जलन, यह बात मैं एक दिन आपको बताऊँगा। मैं सब जानता हूँ। आइए, हम लोग चीज-सामान ठीक कर डालें।" राखाल अपने पैरों की आवाज से मकान कँपाकर बाहर चला गया। सतीश ने चौकी पर बैठकर कहा, "यह सब क्या है बिहारी?"

बिहारी ने कहा, "मैं आपके साथ जाऊँगा, यहाँ रह न सकूँगा।"

सतीश ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "मेरे साथ? यहाँ काम कौन करेगा?"

बिहारी ने अविचलित दृढ़ता के साथ कहा, "जिसकी इच्छा हो, वह करे, मैं साथ ही जाऊँगा! नौकर के बिना तो आपका काम चलेगा नहीं।"

इतनी देर में मामला समझ सकने पर सतीश पल भर चुप रहकर बोला, "यह बात पहले कह देने से ही तो ठीक रहता बिहारी।"

बिहारी कुछ नहीं बोला, "चुपचाप चीज-सामान बाँध-बटोरकर मजदूर के सिर पर उठाने लगा। वह जाएगा ही इसमें और संदेह नहीं रहा।

सतीश नए डेरे पर आकर सोच रहा था, मैं कैसा हो गया हूँ? किस तरह ऐरा-गैरा कोई भी मेरा अपमान करने का साहस करता है। यही नहीं, अपमान करके स्वच्छंदता से परित्राण पा जाता है क्यों? मेरी असाधारण शारीरिक शक्ति एक तिल भी कम नहीं हुई है, फिर भी मैं क्यों मुँह ऊपर उठाकर जोर लगाकर बात नहीं कह सकता? क्यों मैं सिर झुकाए ही सब सह लेता हूँ। अपने मन की यह शोचनीय दुर्बलता आज उसको बड़ी चोट पहुँचाने लगी और उससे भी अधिक चोट लगी इस दुःख की कि प्रतिकार करने की सामर्थ्य भी मानो आज उसके हाथ से निकल गई।

राखाल की क्रोध भरी भाषा ने उस रात की घटना का ही उल्लेख किया है! इसमें संदेह मात्र नहीं है कि इसी को याद करके सतीश लज्जा से गड़ गया। विपिन के आदमियों ने उसको किस तरह किस भाव से पकड़ लिया था। अँधेरे कमरे में किस तरह वह डर से मुर्दे की तरह पड़ा हुआ था, वे लोग बुद्धिमान थे और किस तरह सारी चालाकी समझ लेने पर ओढ़ने के अंदर से उसे खींचकर ले गए थे इत्यादि। चित्तग्राही दुर्लभ विवरण का सत्य-मिथ्या के अलंकार-आडम्बर से लपेटकर जो वर्णन किया गया होगा, उपस्थित सब लोगों ने किस प्रकार उत्कट आनंद, आग्रह और ऊँची हँसी के साथ उसका उपभोग किया होगा, उसकी आदि से अंत तक कल्पना करके उसका चेहरा इतना ज्यादा मर्मांतक और वीभत्स होकर दिखाई पड़ा कि अकेले कमरे के अंदर भी सतीश का पूरा चेहरा वेदना से विकृत हो

उठा। फिर उन्हीं लोगों के सामने ही राखाल ने उसका अपमान करके विदा कर दिया, वह एक बात भी कह नहीं सका, यह सुनकर सावित्री क्या सोचेगी!

वह कुछ न कहेगी। सब सह लेगी, एक जवाब भी न देगी। उसका आत्मसम्मान-बोध कितना बड़ा है, इसको भी वह जैसे असंदिग्ध भाव से समझ गया था, उसके व्यथित चेहरे की आकृति वह कल्पना में आज स्पष्ट देखने लगा। सतीश ने मन ही मन कहा कि जरूर मेरी निर्बुद्धिता से जो आज दुर्घटना हो गई है, असहाय सावित्री को उसके बीच छोड़कर चला आना उचित नहीं हुआ, लेकिन उचित क्या हो सकता था, यह किसी तरह सोचने पर भी वह समझ नहीं सका, लेकिन सावित्री ने क्या खुद ही उसको चले जाने को नहीं कहा? उसने क्या गर्व के साथ ही नहीं कहा, इसमें वह कोई अपमान नहीं समझती।

बिहारी ने आकर कहा, ‘‘बाबू, आपके स्नान का समय हो गया है।’’

सतीश लज्जित होकर झटपट उठा और तौलिया कंधे पर रखकर स्नान करने चला गया।

उस दिन वह स्कूल गया, लेकिन क्लास में न जा सका। बाहर घूम-घूमकर ही डेरे पर लौट आया और कमरे में घुसते ही किसी तरह की निराशा से मानो उसका पूरा हृदय परिपूर्ण हो उठा। इस नए कमरे को सजाकर, सरियारकर ठीक-ठाक करने में बिहारी ने खूब परिश्रम किया है, यह बात समझ में आ गई, लेकिन अनजान हाथ की प्रथम चेष्टा कहीं भी दबी नहीं है, यह भी उसी तरह दृष्टि में पड़ गई। बिहारी शरबत ले आया, तंबाकू चढ़ाकर दिया और दुकान से पान का दोना खरीदकर ले आया। वृद्ध की अनभ्यस्त इन सब सेवाओं की चेष्टा से सतीश मन ही मन हँसने जा रहा था, पर रुलाई आ गई और उसने नेत्र पोंछ डाले। रात को बिछौने पर लेटकर सतीश सोचने लगा, ‘जो कुछ होना था, हो गया, इन सब बातों को वह अब मन में भी न लाएगा। लिखने-पढ़ने के लिए वह कलकत्ता आया था, तो इसी को लेकर रहेगा, या घर लौट जाएगा। ’लेकिन उस दिन मूर्च्छिता नारी के गरम शरीर को लेकर वह घर लौट आया था, वह गरमी उसके समस्त संगम की चेष्टा को गलाकर खत्म कर देने लगी। बिहारी मन ही मन सब समझ रहा था, लेकिन सांत्वना देने का साहस उसको नहीं था। इसी कारण वह उदास चेहरे से चुपचाप दरवाजे के बाहर बैठा रहा। प्रायः दस बज रहे थे। उसने धीरे-धीरे मुँह बढ़ाकर कहा, ‘‘बाबू बत्ती बुझा दूँ?’’

सतीश ने कहा, ‘‘बुझा दे, लेकिन तू सोएगा कहाँ बिहारी?’’

‘‘मैं यहीं हूँ बाबू! मैंने अपनी चटाई दरवाजे पर ही बिछा दी है।’’

सतीश ने पूछा, ‘‘क्या इस मकान में नौकरों के लिए सोने की जगह नहीं है?’’

बिहारी ने कहा, ‘‘नीचे एक कमरा खाली है, शायद आपको कोई जरूरत पड़ जाए, इसीलिए यहीं रहूँगा।’’

सतीश ने व्यग्र होकर कहा, ‘‘यह कैसी बात?’’ तू वहीं सोने चला जा। बूढ़े आदमी हो, ओस में मत रहो।’’

‘‘ओस कहाँ बाबू!’’ कहकर बिहारी वहीं पर चादर ओढ़कर सो रहा।

कुछ क्षण चुप रहकर सतीश ने पूछा, ‘‘रात कितनी हो गई रे?’’

‘‘ज्यादा नहीं हुई है बाबू, शायद दस बज गए हैं।’’

सतीश फिर चुप सो रहा। कुछ क्षण बाद मृदु कंठ से उसने पूछा, "अच्छा, तू सावित्री का घर जानता है बिहारी?"

बिहारी उठकर बैठ गया, बोला, "जानता तो हूँ बाबू!"

सतीश और कुछ न बोला।

बिहारी ने कहा, "एक बार जाकर देखा आऊँ क्या?"

इस बार सतीश घबराकर बोल उठा, "नहीं, नहीं तू जाएगा कहाँ? वह तो बहुत ही दूर है!"

बिहारी ने कहा, "दूर बिल्कुल नहीं है बाबू।"

सतीश कुछ सोचने लगा, बोला नहीं।

बिहारी ने धीरे-धीरे कहा, "बाबू, यदि एक घंटे की छुट्टी दें तो देख आऊँ। सबेरे वह काम पर आई नहीं थी, शायद बीमार पड़ गई है।"

फिर भी सतीश कुछ नहीं बोला।

बिहारी मन ही मन घबरा उठा। आज सारा दिन वह अपनी आदत के अनुसार बातें नहीं कह सका था, उस पर से कहने के लिए विषय इतने अधिक जमा हो चुके थे कि वह एक बार फिर बोला, "एक नई जगह में नींद नहीं लग रही है बाबू, फिर एक बार तंबाकू चढ़ा दूँ?"

सतीश ने उत्तर नहीं दिया, तो भी बिहारी कुछ देर तक उत्सुक होकर प्रतीक्षा करता रहा, अंत में वह वहीं सो गया।

दूसरे दिन ठीक वक्त पर सतीश स्कूल गया। दोपहर को बिहारी सब काम-काज पूरा करके हाल में ही रखे गए पांडे महराज के ऊपर डेरे की देखभाल करने का भार देकर बाहर चला गया और सत्रह दिन का वेतन वसूल करने के बहाने पुराने डेरे पर जा पहुँचा। फिर भी, उसको यह भय था कि राखाल बाबू कहीं ऑफिस न चले गए हों। इसीलिए मकान में घुसते ही नए नौकर से खबर जान लेने पर वह निर्भय होकर रसोईघर के सामने चला गया, उसने कंठ का स्वर ऊँचा करके कहा, "महराजजी, प्रणाम!"

महराजजी गांजा पीकर दीवाल पर ओठंग कर नेत्र बंद किए ध्यान कर रहे थे। चौंक उठे और बोले, "कल्याण हो!" उसके बाद माथा सीधा करके नेत्र खोलकर बोले, "कौन है, बिहारी, आ बैठ जा।"

बिहारी पास आकर पैरों की धूलि को सिर पर चढ़ाकर बैठ गया। चक्रवर्ती ने अंगोछे की खूँट खोलकर थोड़ा सा गाँजा निकाल बिहारी के हाथ में देकर कहा, "उस मकान में अब रसोई कौन बनाता है?"

बिहारी उठकर चला गया, हथेली में दो-चार बूँद पानी लेकर लौट आया और बोला, "एक पश्चिम का गँवार ब्राह्मण! एकदम जानवर है!"

चक्रवर्ती ने खुश होकर सिर हिलाकर कहा, "भगवान् उन लोगों को पूँछ देना भूल गए हैं, यही आश्चर्य की बात है। इसके बाद डेरे के नए नौकर को लक्ष्य करके बोले, "हमारे यहाँ कल ही एक भूत को पकड़ लाया गया है, उसकी समझ कैसी है, उसको तो भला देखो बिहारी, आज सवेरे एक चिलम निकालकर मैंने उसे दी और कहा, "तैयार करके लाओ तो भैया!" मैंने सोचा इसकी विद्या एक बार देख लेने से ही ठीक होगा। कहने से तू विश्वास न

करेगा बिहारी, "उल्लू ने चीज को मिट्टी में मिला दिया।"

"पर तुम लोगों को वहाँ कष्ट न होगा। मेरी सावित्री चतुर लड़की है, दो ही दिन में सिखा-पढ़ाकर पक्का बना देगी।" चक्रवर्ती ने कहा।

उसकी अपनी पंद्रह आना विद्या भी उसी गुरु से सीखी हुई थी। उस बात को दबाकर वह झट बोला, "लेकिन मैं यह भी कहता हूँ, बिहारी पकड़ बैठने से ही कुछ नहीं होता, भैया बाबू लोगों को खुश करना, उनकी थाली में परोस देना बहुत साधारण विद्या नहीं है, लेकिन मेरा यहाँ काम करना अब हो नहीं सकता, यह तुझे पहले ही कहे देता हूँ, तू कह देना तो भला, मेरा नाम लेकर सावित्री से। वह उसी क्षण कहेगी, जाओ बिहारी, चक्रवर्ती को बुला लाओ, भले ही वह रुपया-वेतन अधिक लेगा। सतीश बाबू भी कभी 'नहीं' न कहेंगे। मैं उनका मिजाज जानता हूँ, लेकिन बड़ी बात यह है कि ब्राह्मणाय ब्राह्मणो गति। मैं दो रुपया अधिक पाऊँगा तो वह कुपात्र में नहीं पड़ेगा।" इतना कहकर चक्रवर्ती महराज हँसने लगे।

बिहारी कुछ देर बाद बोला, "महराजजी सावित्री तो वहाँ नहीं है।"

चक्रवर्ती ने अविश्वास की हँसी हँसकर कहा, "अच्छा नहीं है। तू मेरा नाम लेकर कह देना, उसके बाद जो कुछ होना होगा, मैं देख लूँगा।"

बिहारी बाएँ हाथ के पदार्थ को दाएँ हाथ में लेकर बोला, "तुम्हें छूकर शपथ ले रहा हूँ देवता, वह नहीं जाती वहाँ।"

इतनी बड़ी शपथ के बाद चक्रवर्ती फिर संदेह न कर सके। आश्चर्य में पड़कर कहा, "तू कहता क्या है बिहारी! वह तो यहाँ भी नहीं आती! फिर चौबीसों घंटे राखाल बाबू, बेचारे सतीश बाबू को जो...अच्छा, तू जा, एक बार उसको देख तो आ उसके बाद मैं हूँ' और राखाल बाबू हैं। मुझे जैसा-तैसा ब्राह्मण मत समझ लेना बिहारी!"

उसके ब्राह्मणत्व में बिहारी की अगाध श्रद्धा थी। उसने चक्रवर्ती के हाथ में चिलम देकर पूछा, "अच्छा, सतीश बाबू ही क्यों चले गए? कहते हैं स्कूल दूर पड़ता है, लेकिन यह बात सही नहीं है।"

चक्रवर्ती ने कहा, "नहीं, इसके अंदर कोई बात है।" इसके बाद दोनों ने मिलकर चिलम खत्म कर दी। बिहारी उठ पड़ा और उद्विग्न मुख से सावित्री के घर की तरफ चला। उसको विश्वास हो गया कि सावित्री बीमार हो गई है।

सावित्री के घर का सदर दरवाजा खुला हुआ था। बिहारी चुपचाप अंदर चला गया। प्रायः सभी कमरों के दरवाजे बंद थे, किराएदार दिवानिद्रा में पड़े हुए थे। बिहारी धीरे-धीरे सावित्री के कमरे के सामने जाकर वज्राहत की भाँति स्तब्ध हो गया। किवाड़ का एक पल्ला बंद था। बिहारी ने देखा उसकी आड़ में सावित्री धरती पर चुपचाप बैठी हुई है और पास ही चौकी पर बिछौने पर विपिन शराब पीकर मतवाला बना हुआ सो रहा है। पाँव की आवाज से सावित्री मुँह बढ़ाकर अचानक बिहारी को देखकर एक ही क्षण में मानो बदहवास हो गई, लेकिन दूसरे ही क्षण अपने को सँभालकर बाहर आकर जोर से हँसकर बोली, "आओ, बिहारी, बैठो।" उसको अपने साथ ले जाकर रसोईघर के बरामदे में उसने चटाई बिछा दी, और बड़े आदर से बिठाकर खुद पास ही फर्श पर बैठकर उसने पूछा, "समाचार सब अच्छा है बिहारी?" बिहारी ने सिर हिलाकर बतलाया कि अच्छा है। उसके

बाद सावित्री के मुँह से फिर बात नहीं निकली। दोनों ही चुपचाप बैठे रहे। कुछ देर बाद बिहारी एकाएक उठ जाने को तैयार होकर बोला, ''मैं जा रहा हूँ मुझे बहुत काम करने हैं।''

सावित्री ने पूछा, ''अभी ही जाओगे! बैठो न।''

बिहारी ने सिर उठाकर कहा, ''नहीं, जा रहा हूँ।''

सावित्री साथ ही साथ सदर दरवाजे तक जाकर बोली, ''हाँ बिहारी, बाबू लोग तो बहुत नाराज हो गए हैं!''

बिहारी ने चलते-चलते कहा, ''मैं तो जानता नहीं हूँ, हम लोग वहाँ अब नहीं रहते।''

सावित्री ने व्यग्र होकर प्रश्न किया, ''नहीं रहते! वह मेसवाला डेरा क्या टूट गया है?''

बिहारी ने कहा, ''नहीं टूटा तो नहीं है। सिर्फ सतीश बाबू उसे छोड़कर चले गए और मैं उनके साथ आया हूँ।''

''तुम लोग क्यों चले गए बिहारी!''

''ऐ सब बहुत बातें हैं।'' कहकर फिर बिहारी चलने को तैयार हुआ तो सावित्री ने दोनों हाथों से उसका हाथ पकड़कर अनुनय के स्वर में कहा, ''और एक बार चलकर बैठना पड़ेगा बिहारी।''

बिहारी ने सिर हिलाकर कहा, ''नहीं, मुझे समय नहीं है।''

''कल एक बार फिर आओगे, वचन दो।''

बिहारी ने पहले की भाँति कहा, ''नहीं, मुझे समय न मिलेगा।''

क्षण भर सावित्री ने उसके चेहरे की ओर तीक्ष्ण दृष्टिपात करके हाथ छोड़ दिया। अभिमान से समस्त छाती को भरकर शांत भाव से वह बोली, ''अच्छा तो जाओ। यह बात उनसे कह देना।''

इस बात से बिहारी को ठेस लगी। उसने मुँह ऊपर उठाकर कहा, ''उन्होंने तो तुम्हारे संबंध में जानना नहीं चाहा।''

''नहीं चाहा।''

''नहीं।''

सावित्री स्थिर भाव से प्रतिघात सहकर रूखे स्वर से बोली, ''किसी दिन जान लेना चाहेंगे तो शायद कह दोगे!''

बिहारी ने कहा, ''नहीं, मैं औरत नहीं हूँ, मेरे शरीर में दया-माया है।'' कहकर और किसी प्रश्न की प्रतीक्षा न करके तेजी से छोटी गली को पार करके वह चला गया।

सावित्री उसी जगह चौखट पर स्तब्ध होकर बैठ गई। उसके अंदर-बाहर फिर एक बार आग धधक उठी।

आज वह सवेरे घर में नहीं थी। कालीजी के दर्शन के लिए काली घाट गई थी। इसी अवकाश में विपिन यार-दोस्तों को साथ लिए शराब पिए मतवाला बना आ गया और मोक्षदा के हाथ में दो नोट देकर सावित्री के कमरे का ताला खोलकर बिस्तर पर बैठ गया और शराब मँगाकर घर भर के सभी लोगों को उसने पिलाई, पीकर सभी मतवाले हो गए। इन बातों को सावित्री कुछ भी जानती नहीं थी। दिन में बारह बजे उसने अपने मकान में घुसकर देखा, इस मकान की दो पुरानी किराएदारिन शराब के नशे में गाली-गलौज कर

रही हैं और उसकी मौसी मोक्षदा सामने के बरामदे में पड़ी हुई टूटी-फूटी आवाज में मौज से 'विद्या सुंदर' पद गा रही है। सारे मकान में कहीं फरुही, कहीं उरद का दाना, कहीं बत्तख के अंडों के छिलके, कहीं मछलियों के काँटे, कहीं केकड़ों की हड्डी बिखरी पड़ी हैं, पैर रखने तक का स्थान भी नहीं है। मोक्षदा सावित्री को देखते ही अपने ढीले कपड़ों को कमर पर लपेटती उठ खड़ी हुई और उसका गला पकड़कर रोने लगी, "बेटी, ऐसे-ऐसे बाबू जिसके हैं, उसको फिर कष्ट कैसा? उसको फिर दूसरों की नौकरी करनी चाहिए? पर मैं तेरी गरीब मौसी हूँ, सावित्री।"

उसके मुँह से शराब की गंध आ रही थी, गालों पर, माथे पर, कपड़ों पर समूचे अंग पर हल्दी के पीले दाग पड़े थे, श्वास में कच्ची प्याज की तीव्र गंध थी। असहनीय घृणा से सावित्री उसको जोर से ढकेलकर बोल पड़ी, "मौसी, तुम शराब पीती हो? तुम भी मतवाली हो रही हो?"

धक्का खाकर मोक्षदा रोना बंद कर और आँखें लाल कर चिल्लाई, "मतवाली? जरूर मतवाली! मुहल्ले के लोगों से जाकर पूछ ले, वो कहेंगे मतवाली है। मेरा भी एक दिन था रे, मेरा भी एक दिन था। मेरा भी एक दिन था, जबकि चौबीसों घंटे शराब में डूबी रहती थी? तू इसका हाल क्या जानेगी, कल की छोकरी है तू!"

उनके गर्जन-तर्जन से कुंठित होकर सावित्री ने शांत करने के अभिप्राय से कहा, "लेकिन तुम पीती नहीं हो, आज एकाएक पीने क्यों गईं!"

मोक्षदा ने और भी व्यथित होकर कहा, "एकाएक फिर क्या! मैं एकाएक पीनेवाली नहीं हूँ। जाकर पूछ ले अपने बाबू से, जो एक गिलास पीकर औंधा पड़ा हुआ है। अरे, मर जाऊँगी, तो भी अपनी मान-मर्यादा न खोऊँगी, 'आँचल में दो नोट बाँध दिए हैं, तभी मैंने गिलास पकड़ लिया है।" यह कहकर गर्व के साथ आँचल को उठाकर कहा, "जरा सा कह देने से ही दौड़कर भी जाऊँगी, वैसी मोक्षदा मैं नहीं हूँ।"

सावित्री ने चौंककर पूछा, "क्या बाबू आ गए हैं!"

मोक्षदा ने कहा, "नहीं तो इतना कांड करता कौन! यह भी कहती हूँ, पी लो कह देने से ही क्यों पिऊँगी! मान-इज्जत क्या नहीं है?"

इसके पहले बरामदे के उस किनारे की औरतें आपस में लड़-झगड़ रही थीं, गले की ऊँची आवाज सुनकर झगड़े का आभास पाकर वे पास ही आ खड़ी हुईं। विधु ने कहा, "अजी, मान-इज्जत हम लोगों की भी है, ताने की बात हम लोग भी समझती हैं। फिर सावित्री तो लड़की की तरह है, उसका बाबू, मेरा हाथ पकड़कर अननुय करने लगा, इसीलिए पीना पड़ा नहीं तो...।"

उसकी बात पूरी भी नहीं हो पाई कि मोक्षदा गरज उठी, "भले ही हो सावित्री का बाबू। भले ही हो दामाद। बीस रुपए आँचल में बाँध लिये हैं, तभी हाथ से गिलास छुआ है।"

ऐ बातें सुनकर सावित्री लज्जा और घृणा से मरती जा रही थी। बोल उठी, "चुप रहो मौसी!"

मोक्षदा ने कहा, "चुप क्यों रहूँगी! जो कुछ कहूँगी, सामने ही कहूँगी। सब जानते हैं, साफ कहनेवाली यदि कोई है, तो वह है मोक्षदा।"

इस बार विधु ने भी कंठ का स्वर ऊँचा बनाकर कहा, "साफ कहना केवल तू ही जानती

है, ऐसी बात नहीं है, हम भी जानती हैं, दामाद से दो नोट लेकर शराब पी गई हो, तीन पा लेने से ना जाने...।''

मोक्षदा उछल पड़ी। बोली, ''छोटे मुँह बड़ी बात!'' और बोल न सकी। सावित्री ने हाथ से उसका मुँह बंद कर दिया और जबरदस्ती उसे घसीट लाकर अपने कमरे में छोड़कर जंजीर चढ़ा दी। वहीं से मोक्षदा न सुनने योग्य भाषा लगातार बरसाने लगी।

लौट आने पर सावित्री विधु के दोनों हाथ पकड़कर बोली, ''मौसी, मुझे क्षमा करो। सब दोष मेरा है।''

उसकी नम्र बातों से शांत होकर विधु ने कहा, ''तेरा दोष क्या है साबी? मोक्षदा को सदा से जानती हूँ, जरा सी पी लेने के साथ ही फिर रक्षा नहीं, कमर कसकर झगड़ा करने लगती है, यही उसका स्वभाव है। जा, तू अपने कमरे में जा।'' यह कहकर वह चली गई।

सावित्री काठ की तरह खड़ी रही। रोष और क्षोभ से आत्मघात करने की उसकी इच्छा हो रही थी। सतीश इतना निर्लज्ज हो सकता है, खुले तौर पर दिन- दहाड़े ऐसा उन्मत्त आचरण कर सकता है, यह तो वह सपने में भी सोच नहीं सकती थी। इसलिए काल्पनिक नहीं, एक सच्ची वेदना उसके हृदय के अंदर विशाल तरंग की भाँति लुढ़कती हुई घूमने लगी। उसको मालूम होने लगा मानो उसका प्रियतम अकस्मात् उसी के नेत्रों के सामने मर गया, जिसको केवल दो ही दिन पहले वह कड़ी बातों से अपमानित करके विदा करने को बाध्य हुई थी। वही जब कि इतना शीघ्र, इतने सहज भाव से अपने समस्त आत्मसम्मान को विसर्जित करके ऐसा हीन, ऐसा वीभत्स होकर वापस आ गया, तब भरोसा करने का, विश्वास करने का उसको और कुछ भी नहीं रह गया। उसकी आँखें जलने लगीं, लेकिन एक बूँद भी आँसू की नहीं निकली। उसका सर्वस्व, उसका देवता, उसको कल्पना का स्वर्ग, उसका भ्रष्ट जीवन का ध्रुवतारा, उसका इहकाल-परकाल सबकुछ एक ही क्षण में उस इधर-उधर बिखरी पड़ी हुई गंदी चीजों, जूठन के ढेरों के बीच लोटने लगे। सावित्री स्थिर होकर खड़ी रही, कमरे की तरफ जाने के लिए किसी तरह भी उसके पैर नहीं उठे। उसे याद पड़ गया कि अभी उस दिन रात को उसको छूकर सतीश ने शपथ ली थी। आज ही इतनी जल्दी जबकि सब भूलकर मतवाला बनकर उसके बिछौने पर पड़ा हुआ है, तब उसके मुँह की तरफ वह और देखेगी कैसे?

उसी समय नीचे मकान मालकिन के कंठ की आवाज सुनाई पड़ी। वह भी आज मकान में नहीं थीं। आते ही एक के मुँह से मोक्षदा और विधु का विवरण उसके साथ ही और जो कुछ भी रहा, सब सुन लेने पर क्रोध के साथ ऊपर चढ़ रही थीं, कि एकाएक सामने जूठे काँटे देखकर स्थिर होकर खड़ी हो गईं। हाल में प्रयाग से सिर मुड़ा आने के बाद से उनके आचार-विचार का अंत नहीं था। सावित्री को उस अवस्था में देखकर वह बोलीं, ''साबी, तुझे तो मैं अच्छी स्त्री ही जानती थी, यह सब कैसा अनर्थ का काम है, बता तो बच्ची!''

सावित्री ने संक्षेप में कहा, ''मैं घर में नहीं थी।''

मकान मालकिन ने कहा, ''इस समय तो तू है। अब सफाई करे कौन? मैं? नहीं बच्ची, मेरे मकान में यह सब दुराचार नहीं चलेगा। अपने-अपने कमरे में बैठकर जिसकी जो इच्छा हो करो, मैं कहने न जाऊँगी, लेकिन बाहर बैठाकर यह सब कांड नहीं होगा। मैं इस पर से पैर रखकर चलूँगी, छुआछूत करके जाति जन्म बिगाड़ूँगी, यह मैं न कर सकूँगी।'' यह कहकर

वह दीवाल से सट-सटकर लाँघ-लाँघकर किसी तरह अपने उस तरफ के कमरे में चली गई। सावित्री फिर खड़ी नहीं रही, जूठन साफ कर सारी जगह धो-पोंछकर फिर स्नान करके आ गई और एक सूखे कपड़े के लिए कमरे में चली गई। अंदर जाकर बिछौने की तरफ देखते ही वह भय से, आश्चर्य से चिल्ला उठी, ''माँ रे, यह तो विपिन बाबू हैं!''

शराबी गहरी नींद में डूबा हुआ था। वह जागा नहीं। बाहर का कोई यह आवाज सुन नहीं सका। सावित्री दो कदम पीछे हट गई, उसका सारा शरीर काँपने लगा और माथे में हठात् मूर्च्छा का लक्षण अनुभव करके दरवाजे की आड़ में माथा रखकर निर्जीव की भाँति बैठ गई।

कुछ देर बाद उसकी वह दशा बीत जरूर गई, लेकिन सिर ऊपर उठाकर सीधी होकर वह बैठ न सकी। इसके पहले जिस क्षोभ से, जिस दुःख से उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े होता जा रहा था, जिसके निर्लज्ज आचरण की लज्जा से उसको मर जाने की इच्छा हो रही थी, वह लज्जा सच नहीं है। यह सतीश नहीं है, दूसरा ही है, यह आँखों से देख लेने पर भी उसका वह क्षोभ, वह दुःख मानो तिल मात्र भी डिगा नहीं वरन् छाती और भारी हो गई, हृदय में मानो और अंधकार हो उठा। बिछौने की ओर वह फिर देख न सकी। उसकी दोनों आँखों से आँसू टपकने लगे।

हाय रे स्त्री का प्रेम! इतने दुःख से, इसी बीच किस समय गुप्त रूप से चुपचाप सतीश के सब अपराध उसने क्षमा कर दिए थे, उसकी सेवा करने के लिए स्वस्थ बना देने की प्यास से वह आर्त हो उठी थी और उसको देखने, उससे बातचीत करने की असह्य क्षुधा से उन्मत्त हो उठी थी, इसकी खबर शायद उसके अंतर्यामी को भी नहीं लगती थी, अब उस ओर की समस्त आशाओं के एकाएक झूठ में विलीन हो जाने के साथ उसका अस्तित्व ही मानो दिशाविहीन शून्यता के बीच डूब गया। ठीक उसी समय उसके द्वार के बाहर बिहारी आकर खड़ा हो गया।

दस

सतीश के दिल में एक अग्निशिखा दिन-रात जलने लगी, इस बात को उसका मन अस्वीकार न कर सका। उस आग से जलता हुआ उसका इतना बड़ा सबल शरीर भी निस्तेज होता जा रहा है, इसका स्पष्ट अनुभव करके वह उद्विग्न हो उठा। बिहारी को बुलाकर कहा, ''माल-असबाब एक बार फिर बाँधना पड़ेगा, आज शाम की ट्रेन से घर जाना चाहता हूँ।''

बिहारी ने पूछा, ''गाँव के घर या पश्चिम के घर पर?''

''पश्चिम के घर पर।'' कहकर सतीश जरूरी चीज-सामान खरीदने का रुपया उसके हाथ में देकर स्कूल चला गया।

बिहारी के आनंद की सीमा ही नहीं थी। उसका मकान मेदिनीपुर जिले में है, पश्चिम का मुँह उसने आज तक देखा नहीं था। उस पश्चिम की ओर आज रवाना होना पड़ेगा। उसी क्षण शोरगुल मचाकर बाँधना-छीनना शुरू किया। पांडे ने आकर भोजन के लिए बुलाया। बिहारी ने हँसकर कहा, ''महराजजी, तुम नहाओ, खाओ। मेरा खाना एक तरफ ढककर रख

दो, यदि समय मिला तो देखा जाएगा, अभी तो मुझे मरने की भी फुरसत नहीं है।"

आज सवेरे से ही सतीश के सिर में दर्द होने लगा था। दिन में बारह बजे के बाद विधिवत् ज्वर लेकर वह लौट आया। बिहारी मकान में नहीं था। वह दिन के तीन बजे के लगभग एक बोझ चीजें सिर पर लिए आकर बिल्कुल ही बैठ गया। इन दिनों प्रायः चारों तरफ बीमारी फैल रही थी। यह बात याद करके सतीश भी डर गया। दूसरे दिन ज्वर और दर्द दोनों ही बढ़ गए। संध्या के बाद सतीश ने चिंतित मुँह से बिहारी ने कहा, "ज्वर यदि शीघ्र न छोड़े तो तू अकेला सेवा कर सकेगा न?"

बिहारी ने डबडबाए हुए नेत्रों से कहा, "भय क्या है बाबू?"

सतीश क्षणभर चुप रहकर बोला, "एक बार उसको यही सोच रहा हूँ बिहारी, एक बार सावित्री को खबर देना ठीक नहीं होगा?" शायद डॉक्टर भी बुलाना पड़े।"

किसी कारण से भी सावित्री को बुलाने की जरा भी इच्छा बिहारी की नहीं थी, लेकिन मन के भाव को रोककर उसने मृदु स्वर में कहा, "अच्छा, जा रहा हूँ।"

उसी समय सतीश उन्मुख हो गया। उसके ज्वर की वेदना मानो आप ही आप घट गई। दो घंटे के बाद बिहारी के अकेले लौट आने पर सतीश भय के साथ ताकता रह गया।

बिहारी ने कहा, "वह घर पर नहीं है बाबू।"

"घर पर नहीं है! उस डेरे पर एक बार जाकर देख आ।"

बिहारी ने कहा, "उस डेरे पर वह अब नहीं जाती। तीन-चार दिन से घर भी नहीं जाती, कहाँ चली गई, किसी को नहीं मालूम।"

"उसकी मौसी को भी नहीं मालूम?"

"नहीं, उसको भी बताकर नहीं गई।"

सतीश चुप हो रहा। बिहारी किसी तरह आँसू पीकर बाहर आ खड़ा हुआ। सावित्री का जो इतिहास वह उसकी मौसी से सुन आया था, किसी प्रकार वह समाचार आज इस रोगी आदमी के सामने न कह सका।

अगले दिन डॉक्टर आकर दवा दे गए। सतीश ने दवा की शीशी हाथ में लेकर खिड़की के पास बाहर फेंक दी। यह देखकर बिहारी फिर एक बार आँसू रोककर सावित्री की खोज में चला। मोक्षदा रसोई बना रही थी, बिहारी ने पूछा, "क्या आज भी वह नहीं आई?"

मोक्षदा ने कहा, "कितनी बार बताऊँ कि वह नहीं आएगी। जब बुरे दिन थे तब थी मौसी, अब तो उसके अच्छे दिन हैं।"

डेरे पर वापस आकर बिहारी ने बताया, "आज भी सावित्री लौटकर नहीं आई।"

दो दिन के बाद दवा न लेने पर भी सतीश का बुखार उतर गया। वह भात खाकर स्वस्थ होकर उठ बैठा। बिहारी से कहा, "अब नहीं, आज ही रवाना होना होगा।"

उसी दिन सतीश कलकत्ता से चला गया।

ग्यारह

सतीश के दुर्बल रूखे-सूखे मुख की तरफ देखकर उपेंद्र बोला, "भैया का डॉक्टरी सीखने का नमूना यही है क्या?"

सतीश ने हँसकर कहा, “मुझसे हो नहीं सका, उपेन भैया!”
उपेंद्र ने विस्मित होकर पूछा, “क्या न हो सका रे?”
सतीश ने लज्जित होकर कहा, “डॉक्टरी मुझसे सही नहीं गई।”
उपेंद्र ने सतीश के सुंदर शरीर की ओर देखकर कहा, “अच्छा ही हुआ। गाँव-देहात में जाकर बेकार जीवहत्या करता, उसके पाप से ईश्वर ने तुझे बचा लिया।”
एक महीने के बाद एक दिन उपेंद्र ने सतीश को बुलाकर कहा, “मेरे साथ कलकत्ता चलना होगा सतीश।”
सतीश हाथ जोड़कर बोला, “यह हुक्म तो तुम मत दो उपेन भैया। कलकत्ता अच्छा शहर है, सुंदर देश है, सब अच्छा है, लेकिन मुझे जाने के लिए न कहो।”
यह बात सतीश ने व्यंग्य के ही रूप में कही थी, लेकिन उसका वह छल उस की दबी हुई व्यथा को छिपा न रख सका। उसकी कृत्रिम हँसी वेदना की विकृति से ऐसी ही रूपांतरित होकर दिखाई पड़ी कि उपेंद्र आश्चर्य में पड़कर उसके मुख की ओर देखते रह गए। उन्होंने जान लिया कि सतीश जरूर वहाँ कोई ऐसा काम कर आया है, जिसको वह उनसे छिपा रहा है। कुछ देर बाद उन्होंने कहा, “तो रहने दे सतीश। तेरा स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है, मैं अकेला ही जा रहा हूँ!”
उपेंद्र के मन का भाव अनुमान से जानकर सतीश ने व्यथित होकर पूछा, “तुम कब जाओगे उपेन भैया?”
“आज ही।”
“अच्छा, चलो, मैं भी चलूँ।” कहकर हठात् राजी होकर सतीश घर लौट आया और क्षण भर में ही कलकत्ता जाने के लिए अधीर हो उठा। उसने बिहारी से कहा, “एक बार फिर बंडल बाँध दे बिहारी, कलकत्ता जाना होगा।”
बिहारी ने चिंतित मुख से पूछा, “कब जाओगे बाबू?”
सतीश ने हँसकर कहा, “आज ही रात की ट्रेन से।”
“अच्छा!” कह बिहारी भारी मुँह बनाकर चल दिया।
सतीश ने उसका बिगड़ा चेहरा देखकर सोचा, “बिहारी को यहाँ तो कामकाज नहीं है, इसलिए मेहनत के डर से वहाँ जाना नहीं चाहता।”
इसके एक दिन पहले सतीश ने बात ही बात में बिहारी से कहा था, “अच्छा बिहारी, इतने दिनों में सावित्री तो अवश्य ही लौट आई होगी, लेकिन उसी समय वह कहाँ चली गई थी, तुझे मालूम है?”
बिहारी ने कहा, “नहीं बाबू!”
चाहता तो वह बहुत सी बातें कह सकता था, लेकिन एक दिन सावित्री के मुँह पर अपने पुरुषत्व का गर्व दिखा आया था, किसी तरह भी उस गर्व को न गँवा सका।

जिस दिन कलकत्ता से घर वापस आकर सतीश ने अपने कमरे में घुसते ही हाथ जोड़कर भावुक कंठ से कहा था, "भगवान्, जो कुछ करते हो, तुम भलाई के लिए ही करते हो!" उस दिन सृष्टिकर्ता के विशेष कार्य को याद करके उसने इतना बड़ा धन्यवाद उच्चारण किया था, पूछने से वह शायद बता नहीं सकता। फिर भी कितने बड़े संकट के मुँह से वह निरापद वापस आ सका है, कितने बड़े अभेद्य जाल के फाँस को छिन्न-भिन्न करके वह बाहर आकर खड़ा हो सका है, इसको वह निश्चित रूप से जानता था और इस सौभाग्य को उसने कृतज्ञता के साथ ग्रहण करना चाहा था, लेकिन उसके अंतरशायी अबोध मन ने उस तरफ दृष्टिपात तक भी नहीं किया, वह तो औंधा पड़ा हुआ दिन-रात एक ही तरह रोता हुआ समय बिता रहा था। तो भी, चेष्टा करके वह पहले की ही तरह अपने लड़कपन के इष्ट-मित्र, थिएटर, गाने-बजाने के अड्डे आदि में शामिल हो रहा था, लेकिन किसी तरह भी पहले की तरह मिल-जुल न सका। इसी तरह दिन बिताते रहने के बीच ही हठात् आज कलकत्ता जाने का आह्वान सुनते ही उसकी विद्रोही गृहलक्ष्मी धूली शय्या छोड़कर उठ बैठी।

उसी रात को उपेंद्र और सतीश मेल ट्रेन से कलकत्ता चल दिए।

उपेंद्र सो गए और सतीश खिड़की के बाहर झाँकता रहा।

मेल ट्रेन छोटे स्टेशनों पर नहीं रुकती। मैदान, नदी, गाँव-रास्तों को पार करती हुई दौड़ती चली जा रही है और उसकी उस तेज दौड़ का अनुकरण करके ही शायद पास के पेड़-पौधे पल भर में अदृश्य होते जा रहे हैं। दिगंत में वृक्ष श्रेणियों और बाँस झाड़ियों ने अँधेरा कर रखा है और उसके ही नीचे नदी के टेढ़े-मेढ़े भाग में सफेद जल-रेखा खिड़की के नीले काँच के भीतर से दिखाई पड़ रही है। बाहर वृक्षों, खेतों और लाइन के किनारे के जंगलों और सूखे गड्ढों में सर्वत्र म्लान चाँदनी बिखरी हुई है। सतीश की आँखों में आँसू आ गए। इस रास्ते से वह कितनी ही बार आया है, इस निस्तब्ध शांत प्रकृति को कितनी ही बार वह म्लान चाँदनी के प्रकाश में देख गया है, लेकिन किसी दिन इस तरह वे उसकी दृष्टि में पकड़ी नहीं गई थीं। उसे जान पड़ा मानो सभी विछिन्न हैं, निप्त हैं, मृत हैं। कोई भी किसी के लिए व्याकुल नहीं है, कोई भी किसी का मुँह देखता हुआ प्रतीक्षा नहीं कर रहा है। सभी स्थिर हैं, सभी उद्वेग-रहित हैं, सभी आप ही आप संपूर्ण हैं। उस निर्विकार उदासीन धरती की तरफ देखने में उसे क्लेश सा मालूम होने लगा। बक्स खोलकर एक बाँसुरी निकालकर खिड़की के पास आकर बैठ गया और बाहर की तरफ झाँककर बाँसुरी बजाने लगा।

गाड़ी की गति जब धीमी पड़ गई और समझ में आया कि स्टेशन नजदीक आ गया है, तब उसने बाँसुरी रख दी।

अगले दिन गाड़ी हावड़ा जाकर रुकी तो उपेंद्र ने पूछा, "तू कहाँ जाएगा रे?"

सतीश ने विस्मित होकर कहा, "यह कैसी बात! तुम्हारे साथ।"

"तेरे जाने के लिए जगह नहीं है?"

"तुम तो खूब रहे!"

इस संबंध में फिर कोई बात नहीं हुई।

स्टेशन पर उतरते ही एक विलायती पोशाक पहने बंगाली साहब ने उपेंद्र से हाथ मिलाया। ये उपेंद्र के बाल्य-मित्र ज्योतिषराय बैरिस्टर थे। तार पाकर लेने आए थे। उनकी

गाड़ी बाहर खड़ी थी। थोड़ी-बहुत, जो भी चीजें साथ थीं, कुली ने उन्हें गाड़ी पर रख दिया। फिर तीनों ही अंदर जा बैठे। बिहारी कोच बक्स पर बैठा। कोचवान ने गाड़ी चला दी। बहुत से रास्तों और गलियों को पार करके एक बड़े मकान के सामने आकर गाड़ी रुक गई। तीनों उतर गए।

बारह

शाम होने में अब देर नहीं थी। उपेंद्र और सतीश पथरियावाटा में एक तंग गली के मोड़ पर जा खड़े हुए।

उपेंद्र ने कहा, ''मैं समझता हूँ, अवश्य यही गली है।''

सतीश ने संदेह प्रकट किया, इस गली में वह रह नहीं सकता, यह कदापि नहीं है।

टूटी दीवाल पर वह जो टीन खड़ा हुआ है, संभव है कि इसी पर किसी दिन गली का नाम लिखा हुआ था, वह अब पढ़ा नहीं जाता। सतीश बोला, ''अच्छी तरह जाने बिना जाया नहीं जा सकता। यह गली पाताल प्रवेश की सुरंग हो सकती है।''

उपेंद्र हँसते हुए बोले, ''तो तू पहरेदार बनकर रह, मैं अंदर जाकर देख आता हूँ।''

सतीश ने पहले बाधा देने की चेष्टा की, बाद को उपेंद्र के पीछे चलते-चलते बोला, ''उपेन भैया, मेरी तरह डाकू आदमी भी इन सब जगहों में शाम के बाद आने का साहस नहीं करते, तुम्हारा साहस तो खूब है!''

उपेंद्र हँसकर बोले, ''डाकू का साहस क्या भले आदमी के साहस जैसा होता है सतीश? दुष्कर्म कर सकने को ही साहस नहीं कहते।''

सतीश उस बात का प्रतिवाद न करके अत्यंत सावधानी से रास्ता देख-देखकर चलने लगा। पैरों के नीचे ही दुर्गंध कीचड़ से भरा खुला पनाला था, क्षीण दृष्टिवाले सतीश के उसमें गिर जाने की पूरी आशंका थी। एक जगह पर छोटी गली बहुत ही तंग और अँधेरी हो गई थी। सतीश ने पीछे से उपेंद्र के कुरते का खूँट खींचकर पकड़ लिया और कहा, ''उपेन भैया, करते क्या हो, इसी रात को जान देना है क्या?''

उपेंद्र ने हँसकर कहा, ''इतनी देर में मुझे ठीक याद आ गया और एक मकान के बाद ही तेरह नंबर का मकान है। लगभग आठ साल पहले केवल एक दिन मैं यहाँ आया था, इसीलिए पहले मैं पहचान न सका। अब पहचान गया। जरूर यही रास्ता है।''

सतीश ने विश्वास नहीं किया। कहा, ''रास्ता तो है जरूर, लेकिन तुम्हारे-हमारे लिए नहीं। जिन लोगों के लिए विशेष रूप से इस पथ की सृष्टि है, उनमें से किसी के साथ शरीर छू गया तो इस रात को स्नान करके मरना पड़ेगा, इस वक्त चलो, लौट चलें।''

उपेंद्र जवाब न देकर सतीश का हाथ पकड़कर खींचते हुए ले गए और कुछ दूर आगे जाकर एक मकान के सामने खड़े होकर बोले, ''तू सिगरेट पीता है, तेरी जेब में दियासलाई होगी। एक बार जलाकर देख, यह कितने नंबर का मकान है!''

सतीश ने माचिस जलाकर अच्छी तरह मकान का नंबर जाँचकर कहा, अच्छी तरह पढ़ा नहीं गया, किंतु चौखट के ऊपर खड़िया से १३ नं. लिखा हुआ है। शायद तुम्हारी बात ही ठीक है, किंतु मैं पूछता हूँ, मकान नंबर तेरह हो या तिरपन, यहाँ तुमको जरूरत ही क्या हो

सकती है?"
उपेंद्र उत्तर न देकर पुकारने लगे, "हारान भैया! ऐ हारान भैया!"
ऊपर, नीचे, निकट, दूरी पर सर्वत्र अँधेरा था, शब्दमात्र नहीं था। सतीश डर गया। उपेंद्र फिर पुकारने लगे।
बहुत देर में ऊपर की खिड़की खुली और साथ ही स्त्री-कंठ की आवाज आई, "कौन है?"
उपेंद्र ने कहा, "दरवाजा खोलने को कह दें। हारान भैया कहाँ हैं?"
"आती हूँ, जरा ठहरिए।"
पल भर के बाद दरवाजा खुलने की आवाज के साथ ही क्षीण प्रकाश की रेखा रास्ते के ऊपर आ पड़ी। उपेंद्र दरवाजा ठेलकर चौखट पर खड़े होकर स्तंभित हो गए। वह स्त्री मिट्टी के तेल की डिबिया हाथ में लिए निकट ही खड़ी है। माथे पर थोड़े से आँचल के बीच से जूड़े का एक हिस्सा दिखाई दे रहा था। उसका एक भी केश स्थान-भ्रष्ट नहीं हुआ है। स्वच्छ सुंदर मुँह पर दीप का प्रकाश पड़ जाने से दोनों भौंहों के बीच एक बिंदी जगमगा उठी और जरा सी झुकी हुई दोनों आँखों में से जो विद्युत् प्रवाह बह चला, चारों ओर के निविड़ अंधकार में उसकी अपूर्व ज्योति ने क्षणकाल के लिए दोनों को ही विभ्रांत कर दिया। सतीश ने स्पष्ट देख लिया कि ओंठों पर हँसी की रेखा बाधा पाकर बार-बार आकर लौट रही है। उसने उपेंद्र के शरीर को ठेल लिया। उपेंद्र चौंक पड़े, घबराहट के साथ बोल उठे, "कहाँ हैं हारान भैया?"
उस स्त्री ने कहा, "वह ऊपर ही हैं। उठ चलने में असमर्थ हैं। माँ भी आज सात-आठ दिनों से खाट पर पड़ी हुई हैं। घर में केवल मैं ही ठीक हूँ। आप उपेंद्र बाबू ही तो हैं? हम लोगों को आगामी कल आपके आने की आशा थी, इसीलिए तैयार न थी। रसोईघर में रहने पर इस तरफ की आवाज सुनाई नहीं पड़ती, बहुत पुकारना-चिल्ला पड़ता है। ऊपर आइए, यहाँ बड़ी सरदी है।" कहकर रास्ता दिखाकर ऊपर जाने की सीढ़ियों पर चढ़ने लगी। दो-तीन कदम ऊपर चढ़कर मुँह घुमाकर हाथ की बत्ती को नीचे करके वह बोली, "सावधानी से चढ़िएगा, सीढ़ियों की ईंटें बहुत सी खिसक गई हैं।"
इनकी यह आशंका निर्मूल नहीं है, यह बात सीढ़ी देखने के साथ ही वे जान गए। इसीलिए बड़ी सावधानी से दोनों चढ़ने लगे।
दोमंजिला पक्का मकान था। पहले ऊपर के हिस्से में पाँच-छह कमरे थे, उन में से दो-तीन गिर गए थे, एक अगली वर्षा में गिरने को तैयार था, बाकी तीनों में से सामनेवाले कमरे में तीनों ने प्रवेश किया। प्रवेश करने के साथ ही समझ में आ गया कि अत्यंत अनधिकार प्रवेश हो गया है। चूहे उस कमरे में फटे-पुराने तोशक-तकियों से रुई निकालकर कमरे में सर्वत्र बिखेरकर इच्छानुसार विचरण कर रहे थे। असमय में प्रकाश हो जाने और जनसमागम से वे दौड़-धूप मचाकर चिल्लाहट के साथ छिपने लगे। कमरे में सर्वत्र टूटी हुई मेज-कुरसियाँ, काठ के पिटारे, टूटे हुए टीन, खाली शीशी-बोतल और अन्य कितने ही पुराने जमाने की गृह-सामग्री के टूटे अंश बिखरे हुए थे। उसमें एक किनारे पर चौकी पड़ी हुई थी। फटी गद्दी, फटी पोशाक, फटे तकिए वगैरह जमा करके जबरदस्ती एक तरफ ठेलकर रख छोड़े गए थे, उसके ही एक हिस्से में एक चटाई बिछी हुई थी। यह कमरा मेहमानों के लिए था।
उस स्त्री ने फर्श पर चिराग रखकर कहा, "जरा प्रतीक्षा करें, मैं खबर देती हूँ।" यह

कहकर वह ज्यों ही कमरे से बाहर गई, त्यों ही सतीश जूता पहने मेहमानों के उस आसन पर उछलकर खड़ा हो गया।
उपेंद्र भय के साथ बोले, "यह क्या! यह क्या किया!"
सतीश तड़पकर बोला, "पहले प्राण रक्षा करूँ, उसके बाद भद्रता की रक्षा होगी। पैरों के पास उजाला देखकर कमरे के सब साँप-बिच्छू दौड़े चले आएँगे।"
सतीश ने जिस तरह भय दिखाया, उससे विचार-तर्क का अवसर नहीं रहा। उपेंद्र भी उछलकर चढ़ गए।
चौकी की उस तंग जगह में स्थानाभाव के कारण दोनों जब धक्कम-धक्का कर रहे थे, तभी वह स्त्री लौट आई और किवाड़ के सामने खड़ी होकर खिल-खिलाकर हँस पड़ी। इनके डर जाने की बात वह समझ गई थी। बोली, "यह है मेरे ससुर की डीह। आप लोग इस तरह अपमान कर रहे हैं?"
उपेंद्र सकुचाकर तुरंत उतर पड़े और सतीश पर नाराज होकर बड़बड़ाने लगे, "इसी ने भय दिखाया, ऐसे ही...।"
सतीश उतरा नहीं। बाल-विनय दिखाकर बोला, "भय क्या दिखाता हूँ उपेन भैया! मेरी विद्या चाणक्य के श्लोकों से अधिक नहीं है। इतना जरूर सीख चुका हूँ कि आत्मरक्षा अति श्रेष्ठ धर्म है।"
उस स्त्री की ओर देखकर वह बोला, "अच्छा आप ही बताइए तो आत्मरक्षा के निमित्त थोड़ा सा निरापद स्थान खोज लेना क्या अन्याय है? आपके ससुर के डीह का अपमान करने का हमारा साहस नहीं है, बल्कि यथेष्ट सम्मान के साथ ही आपके आश्रित प्रजापुंज की राह छोड़कर इतनी थोड़ी सी जगह में हम लोग खड़े हैं।"
तीनों हँस पड़े। इस परिहास ने दरिद्र लक्ष्मी को कुंठित नहीं किया, बल्कि इसके अंदर जो सरलता और संवेदना छिपी थी, वह युवती अति सहज भाव से ही उसे समझ गई, इसका स्पष्ट प्रकाश उसके हास्योज्ज्वल मुख पर देखकर उपेंद्र ने मन ही मन अत्यंत आराम अनुभव किया। उसके मुँह की तरफ देखकर मुसकराकर बोले, "प्रजाजन आपके सामने कभी उसके ऊपर अत्याचार करने का साहस न करेंगे। अब वह आदमी नीचे उतर आ सकता है।"
"जरूर!" कहकर चिराग हाथ में उठाकर वधू सतीश की ओर देखकर मधुर हँसी हँसकर बोली, "अब निर्भयता के साथ राज-दर्शन के लिए चलिए।"
थोड़े से हास-परिहास से, अपरिचित होने की दूरी जैसे एकदम घट गई और तीनों प्रफुल्ल मुँह से कमरे से बाहर चले गए।
राजदर्शनेच्छु उपेंद्र और सतीश हँसी से भरे चेहरे से एक कमरे में घुसते ही अवाक् होकर खड़े हो गए। क्रुद्ध गुरुजी का अचानक ही थप्पड़ खाकर हास्य निरत शिशु छात्र का मनोभाव जिस तरह बदल जाता है, इन दोनों आदमियों के मुँह की हँसी भी उसी तरह एक क्षण में गायब हो गई और चेहरे पर स्याही फैल गई।
उपेंद्र ने पास बिछौने पर जाकर पुकारा, "हारान भैया!"
हारान निर्जीव की भाँति पड़े हुए थे, वह धीरे से बोले, "आओ, भाई आओ! अब मैं उठ-बैठ नहीं सकता, तुमको मैंने कष्ट दिया।"
उपेंद्र बिछौने के एक तरफ बैठ गए। उनके दोनों नेत्र आँसू से भर गए और समूची छाती

से पसली तक को हिलाकर, एक अदम्य वाष्पोछ्च्वास उनके कंठ की अंतिम सीमा तक व्याप्त हो गया। बात कहने का उन्होंने साहस नहीं किया। दाँतों पर दाँत दबा खड़े होकर बैठे रहे। उधर सतीश एक बड़े काठ के संदूक पर सूखे चेहरे से बैठ गया।

सैकड़ों जगह से कटी-फटी खटिया के सिराहने एक मिट्टी का चिराग टिमटिमा रहा था। इतना ही प्रकाश रक्तशून्य विवर्ण शीतल चेहरे पर लेकर हारान का मृतप्राय शरीर पड़ा हुआ था।

दिन-रात बंद रहनेवाले घर की दूषित अवरुद्ध वायु, आत्महत्याकारी के मुँह से निकलनेवाले जहरीले फेन की तरह निकलकर मानो गृहवासी की कंठ-नली प्रतिक्षण रुँधती चली आ रही थी। दरवाजे पर मृत्युदूत का पहरा पड़ रहा था। चारों तरफ देख-देखकर सतीश बार-बार सिहर उठा। उसे मालूम होने लगा कि यदि वह चिल्लाकर दौड़कर बिल्कुल रास्ते पर भाग न जाएगा तो जान न बचेगी। यहाँ किसी आदमी का जीवन बचेगा कैसे? निकट ही वह खड़ी थी, उसी तरफ एक बार देखते ही वह डर गया। कहाँ चला गया वह अतुलनीय रूप! कहाँ है वह हँसी! उसकी दृष्टि के सामने मानो किसी एक प्रेतलोक की पिशाचिनी उठ आई। वह सोचने लगा, जिसके पति की ऐसी दशा है, वह हँसती है कैसे, हँसी-मजाक में भाग कैसे लेती है, जूड़ा क्यों बाँधती है, बाल क्यों सँवारती है और बिंदी क्यों लगाती है? पल भर के लिए उसके सामने समस्त नारी जाति के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई।

ऐसे ही समय में हारान ने पुकारा, "किरन, उपेन आया है, यह बात माँ जानती हैं?"

वधू निकट आकर झुक पड़ी और धीरे-धीरे बोली, "माँ सो रही हैं, डॉक्टर कह गए हैं, सो जाने पर जगाया न जाए।"

हारान ने मुँह बनाकर कहा, "चूल्हे में जाए वह डॉक्टर, तुम जाओ, उनको बता दो।"

उपेंद्र पास ही बैठे सब कुछ सुन रहे थे। वह बोल उठे, "आज रात को खबर देने की जरूरत नहीं है हारान भैया! कल सवेरे खबर देने से ही काम चल जाएगा।"

उपेंद्र समझ गए कि रोग के कष्ट भोगते रहने से हारान बहुत चिड़चिड़ा हो गया है। इसलिए इस निरपराधिनी सेवापरायण वधू का अकारण ही तिरस्कार होने से व्यथा अनुभव कर जरा सी सांत्वना इंगित करने के लिए एक बार उन्होंने मुँह की तरफ ध्यान से देखा, लेकिन कुछ भी दिखाई नहीं दिया। किरणमयी के झुके हुए मुँह पर दीपक का प्रकाश नहीं पड़ता था।

कुछ देर यों ही रहकर दूसरे ही क्षण तेजी से वह बाहर चली गई।

उपेंद्र उदास-चित्त बैठे रहे और हारान पहले की तरह हाँफने लगे। निस्तब्ध कमरा सतीश के लिए और भी भीषण हो उठा। थोड़ी ही देर बाद हारान ने हाथ बढ़ाकर उपेंद्र को छूकर पास आने का इशारा करके अति क्षीण कंठ से पूछा, "सात-आठ वर्ष बाद मुलाकात हुई है। इस बीच क्या एक बार भी तुम्हारा यहाँ आना नहीं हुआ?"

इसी बीच उपेंद्र को अनेक बार इस तरफ आना पड़ा था, लेकिन उसको वह स्वीकार न कर सके। बोले, "क्या बीमारी है हारान भैया?"

हारान ने कहा, "ज्वर-खाँसी आदि। इस समय उस प्रसंग को उठाने की आवश्यकता नहीं है। सबकुछ खत्म हो चुका है।"

हारान ने फिर कहा, "मुझे भी तुम्हारी बात याद नहीं पड़ी, ठीक समय पर याद पड़ने से शायद काम बनता।"

पल भर चुप रहकर खुद ही बोले, "काम और क्या बनता, खैर छोड़ो इन सब बातों को। एक काम करो भाई, मेरा दो हजार रुपए का जीवन बीमा है और यह टूटा-फूटा मकान। तुम ठहरे वकील, एक लिखा-पढ़ी कर दो, जिससे कि सभी चीजों पर तुम्हारा ही पूरा हाथ रहे। इसके बाद रह गए तुम और मेरी बुढिया माँ।"

उपेंद्र ने कहा, "और तुम्हारी स्त्री?"

"मेरी स्त्री किरन? हाँ, वह तो है ही। उसके माँ-बाप कोई भी जीवित नहीं हैं, उसको भी तुम देखना।"

उपेंद्र कुछ सोचने लगे।

सतीश जेब से घड़ी निकालकर उठ खड़ा हुआ और बोला, "उपेंद्र भैया, रात के दस बज गए, वहाँ वे लोग शायद घबरा रहे हैं।"

हारान ने ध्यान से देखते हुए कहा, "यह कौन हैं उपेन?"

"मेरे मित्र हैं, मेरे साथ ही कलकत्ता आए हैं। अब मैं जा रहा हूँ, हारान भैया, कल फिर आऊँगा।"

"नहीं, कल नहीं, एकदम कागज तैयार करके परसों आना। जो कुछ मेरे पास है और जो कुछ मुझे कहना है, उसी दिन कह दूँगा, यहाँ कहाँ ठहरे हो?"

"शहर ही में एक जगह अपने मित्र के घर ठहरा हुआ हूँ।"

जाने को तैयार होने पर हारान ने पुकारा, "किरन!"

उपेंद्र ने तुरंत रोककर कहा, "हारान भैया, सतीश की जेब में दियासलाई है, आराम से उतरकर जा सकूँगा। वे शायद काम में लगी हुई हैं।"

उसके जवाब में हारान ने क्या कहा, समझ में नहीं आया।

सतीश ने ज्योंही किवाड़ खोले, त्योंही मालूम हुआ मानो कोई तेज कदमों से हट गया। वह डरकर पीछे खड़ा हो गया।

उपेंद्र ने पूछा, "क्या हुआ सतीश?"

"कुछ नहीं, "तुम आओ।" कहकर वह उपेंद्र का हाथ पकड़कर बाहर आ खड़ा हुआ। कैसा निविड़ अंधकार था। दोनों ने टटोलते हुए सीढ़ियों के निकट आते ही देखा, नीचे चिराग लिये किरणमयी स्थिर होकर बैठी हुई है। इनके आने के साथ ही वह उठ खड़ी हुई, बोली, "चिराग दिखा रही हूँ, सावधानी से उतर आइए। आप लोगों के लिए ही मैं बैठी हुई हूँ।"

इस अँधेरी ठंडी रात में, इस प्रचंड जाड़े में, सील से भारी भीगी धरती पर एकाकिनी वधू को अपनी प्रतीक्षा में बैठी देखकर और आसन्न वैधव्य की बात याद करके उपेंद्र के नेत्रों में जल भर आया।

सदर दरवाजा तब भी बंद नहीं हुआ था। नीचे उतरते ही सतीश बिल्कुल ही गली में आकर खड़ा हुआ, लेकिन उपेंद्र पीछे से बाधा पाकर घूमकर खड़े हो गए।

किरणमयी अपने सकरुण तीव्र दोनों नेत्र उनके मुँह पर रखकर एक विशेष रुख बनाए खड़ी है। पल भर के लिए उपेंद्र हतबुद्धि की भाँति स्थिर हो रहे।

किरन ने पूछा, "उपेन बाबू, आप हमारे कौन हैं?"

इस अद्भुत प्रश्न का क्या उत्तर होना चाहिए, उपेंद्र समझ न सके। उसने फिर समझाकर कहा, "आप मेरे पति के कोई आत्मीय हैं? इतने दिनों से मैं इस मकान में आई हूँ, लेकिन किसी दिन आपका नाम उनसे सुना नहीं, माँ से भी नहीं सुना। केवल जिस दिन आपको पत्र लिखा गया, उस दिन सुना, इसीलिए पूछ रही हूँ।"

बाहर से सतीश ने पुकारा, "उपेन भैया, आओ न!"

उपेंद्र ने कहा, "नहीं, आत्मीय नहीं हूँ, लेकिन विशिष्ट मित्र हूँ। बाबूजी जब नोआखली में थे, तब हारान भैया के पिता भी सरकारी स्कूल में मास्टरी करते थे, मुझे भी घर पर पढ़ाते थे, हारान भैया और मैं दोनों साथ-साथ बहुत दिन पढ़ते रहे।"

किरणमयी ने हँसकर कहा, "ओह यह बात है? इसी के लिए लिखा-पढ़ी करना? अच्छा उपेन बाबू, आप सबकुछ अपने नाम लिख लेंगे न?"

यह देखकर सतीश ने मुँह बढ़ा दिया था, उसने झट ही जवाब दे दिया, "ऐसी ही बात तो पक्की हुई है।"

हारान के कमरे से बाहर निकलते समय कौन तेजी से बाहर चली गई थी, इस बात को वह पहले ही समझ गया था।

वधू ने उसकी तरफ घूमकर कहा, "अच्छा तो, आप भी हैं! अच्छी बात है! इतने दिनों तक इतने कष्ट उठाकर जैसे भी हो, दो वक्त दो मुट्ठी अन्न जुट जाता था, अब राह में खड़ी रहने की आवश्यकता पड़ेगी। ऐसा ही हो, आप लोग ही सब बँटवारा कर लें।"

उपेंद्र आश्चर्यचकित हो गए।

सतीश ने उत्तर दिया, "जिसकी चीज है, यदि वही दे जाए, तो किसी को कुछ कहने की गुंजाइश नहीं है।"

किरणमयी के दोनों नेत्र आग की तरह जल उठे। बोली, "मुझे है। मरने के समय मनुष्य की मति बिगड़ जाती है, मेरे पति को यही हुआ है, लेकिन आप लोग लिखकर लेनेवाले होते कौन हैं?"

सतीश बोल उठा, "यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन हारान बाबू में आज भी बुद्धि है, इस बात की सम्मति मेरी आत्मा दे रही है।"

किरणमयी ने परिहास के स्वर में उत्तर दिया, "क्या ही अच्छा सुझाव है। लोग बात-बात में कहा करते हैं—जाने दीजिए लोगों की बात, उपेंद्र को लक्ष्य करके वह बोली, "लेकिन यह बात मैं पूछती हूँ, मैं कैसे जानूँगी कि अंतिम समय में वह राह की भिखारिन न बना देंगे, कैसे विश्वास करूँगी; वह धोखा नहीं देंगे।"

इतना बड़ा आघात उपेंद्र को मानो असह्य मालूम हुआ। कुछ कहने भी जा रहे थे, लेकिन न कहकर अपने को सँभाल लिया।

सतीश ने कहा, "बाबूजी? जानने की आवश्यकता आपको नहीं है।"

किरणमयी भी उसी दम उत्तर न दे सकी। इस व्यंग्यात्मक आत्मीय संबोधन स्पर्धा से वह अवाक् हो गई थी। पल भर देखती रहने पर केवल बोली, "बाबूजी। आवश्यकता नहीं है।"

सतीश ने कहा, "नहीं। अगर आप अपना अधिकार आप ही नष्ट न करतीं तो हारान बाबू को इस सतर्कता की आवश्यकता नहीं थी। इतनी रात को बेकार झगड़ा न कीजिए, जरा समझकर विचार कीजिए तो।"

तेज कार्बोलिक की गंध से जैसे साँप अपने उठाए हुए फण को पल भर में सँभालकर आघात करने के बदले में आत्मरक्षा का उपाय खोजने लगता है, यह निरुपमा, यह लीला कौशलमयी तेजस्विनी युवती पल भर में उसी प्रकार से कुपित होकर बोली, "मेरे विषय में कैसी बात उन्होंने कही है, सुनूँ तो?"

उपेंद्र से अब चुप न रहा गया। इस गर्विता नारी का संदिग्ध तिरस्कार उनको उत्तप्त शूल की तरह बींधते रहने पर भी उनका उच्च शिक्षित भद्र अंतःकरण सतीश की इस जासूसी के विरुद्ध विद्रोह कर उठा। वह अनुचित उत्तेजना से कुछ गुप्त रहस्य खींच निकालने की चेष्टा कर रहा था, इसको वह समझ गए थे। सतीश को बाधा देकर उन्होंने किरणमयी से कहा, "क्यों आप सतीश के पागलपन पर ध्यान देकर अपने आपको घबराहट में डाल रही हैं! पति की संपत्ति से वंचित करने का अधिकार किसी को नहीं है। आप निश्चिंत रहिए! मैं तो समझता हूँ, आपको विशेष सुविधा होगी, यह समझकर ही हारान भैया ने लिखा-पढ़ी की बात उठाई है, लेकिन आपकी राय के बिना तो वह किसी तरह भी न हो सकेगी। रात बहुत हो गई है। किवाड़ बंद कर दीजिए। चल, सतीश, अब देर मत कर।" सतीश को ठेलकर गली में खड़े होकर मुसकराकर वे बोले, "कल-परसों फिर भेंट होगी, अच्छा, नमस्कार।"

तेरह

उस सुनसान गली से निकलकर दोनों एक किराए की गाड़ी पर चढ़ गए और खुली खिड़की से रास्ते में मंदीभूत जनस्रोत की ओर चुपचाप देखते रहे। बातें करने योग्य मन की अवस्था किसी की नहीं थी। उपेंद्र व्यथित चित्त से सोचने लगे, 'कल ही घर लौट जाऊँगा। भला हो, बुरा हो, मुझे हाथ डालने की आवश्यकता नहीं है। केवल लौट आने के पहले यही देखता जाऊँगा कि हारान भैया की चिकित्सा हो रही है, उसके बाद? उसके बाद और कुछ भी नहीं, आठ साल जो आदमी मन के बाहर पड़ा हुआ था, वह बाहर ही पड़ा रहेगा।" यह सोचकर शरीर पर लगे कीड़े-मकोड़ों की तरह इस विरक्तिकर चिंता को शरीर से झाड़-फेंककर उपेंद्र गाड़ी में ही हर बार हिल-डुलकर बैठ गए। सतीश को पुकारकर बोले, "एक चुरुट दे तो, बहुत सरदी है।"

सतीश ने जेब से चुरुट निकालकर दी और वैसे ही बाहर की तरफ देखता रहा, कोई बात उसने नहीं कही।

उपेंद्र चुरुट सुलगाकर धुआँ उड़ाते हुए सतीश को सुनाकर बोले, "अंदर का अंधकार इसी तरह धुएँ की तरह बाहर निकल जाना चाहिए।"

सतीश ने हुंकारी तक भी नहीं भरी।

धड़धड़ाती हुई किराए की गाड़ी परिचित-अपरिचित रास्तों, गलियों, घरों और दुकानों को पार करती हुई चलने लगी। चुरुट जल गया, उसका धुआँ कहाँ आकाश में विलीन हो गया, तब भी दोनों जने रास्ते के दोनों तरफ वैसे ही चुपचाप ताकते रहे। उपेंद्र ने मन ही मन सोचा, 'सतीश अवश्य ही ये सब लेकर सोच रहा है, औ जो भी हो, कुछ-न-कुछ निश्चय कर रहा है, नहीं तो वह इतनी देर तक चुप रहनेवाला आदमी नहीं है' और उसका आलोज्य विषय क्या है, यह अनुमान करने पर उपेंद्र को आदि से अंत तक सब ही स्मरण हो गया।

छिपे तौर से सिहर उठने पर वह मन ही मन बोले, क्या कुछ घटना घट गई और जो घटना हो गई है, वह कितनी ही शोचनीय क्यों न हो, सभी का एक सही कारण उन्होंने इस बीच अनुमान कर लिया, लेकिन सतीश क्या सोचकर इस असहाया, अपरिचिता के साथ झगड़ा करने को तैयार हो गया था, इसी को वह किसी तरह समझ न सके। घर की बहू अपने ऊपर तत्काल आनेवाली विपत्ति की आशंका से केवल आत्मरक्षा के निमित्त दो कड़ी बातें कह सकती है, ऐसी सीधी सी बात भी सतीश समझ न सका, इसी को वह विश्वास करने में असमर्थ हो रहे थे। सतीश पढ़ा-लिखा आदमी भले ही न हो, नासमझ तो नहीं है। उपेंद्र इस बात को जानते थे, इसीलिए उन्होंने इतना अधिक दुःख अनुभव किया। हारान के वसीयतनामे के प्रस्ताव में एक विशेषता रहने के कारण ही उपेंद्र थोड़े से समय में ही बहुत सी बातें सोच चुके थे। बाल्य-सखा के मृतप्राय शरीर के पास ही बैठकर उन्होंने सोच लिया था कि इन अनाथा दोनों रमणियों का आजीवन भरण-पोष और रक्षणावेक्षण करूँगा। किसी स्वास्थ्यकर तीर्थस्थान में एक छोटा सा मकान खरीद लूँगा। वह पेड़-पौधों से, भले और भद्र पड़ोसियों से शांत तथा सुदृढ भाव से घिरा रहेगा। गृहपालित गाय-बछड़ों की सेवा करके, अतिथियों, ब्राह्मणों की पूजा करके, शुद्ध व्रतों का पालन करके इन दोनों स्त्रियों के दिन जिस प्रकार बीतने लगेंगे, इसका काल्पनिक चित्र कल्पना में मधुर हो उठा था। इस चित्र के एक तरफ पेड़-पौधों की आड़ में सभी जरूरी चीजों के पीछे अपने लिए थोड़ा सा स्थान भी शायद अपनी गैर जानकारी में ही चिह्नित करने का प्रयास कर रहे थे, उसी समय किरणमयी के भद्दे अभियोग, संशयक्षुब्ध क्रुद्ध व्यवहार ने बवंडर की तरह उस चित्र के चिह्न तक को भी लुप्त कर दिया! उपेंद्र फिर चुप न रह सके। पुकारकर बोले, "सतीश, तू क्या सोच रहा है?"

सतीश बोला, "क्या सोचता हूँ, जानते हो उपेन भैया, लड़कपन में एक बँगला उपन्यास पढ़ा था, उसी को सोच रहा हूँ।"

उपेंद्र ने पूछा, "कौन सा उपन्यास?"

सतीश ने कहा, "नाम याद नहीं है। लेखक का नाम भी ठीक याद नहीं है, लेकिन वह कहानी मुझे याद है, ऐसी ही सुंदर है।"

उपेंद्र उत्सुक होकर उसकी तरफ देखते रहे।

सतीश ने शिकायत के स्वर में कहा, "चिरकाल तक अंग्रेजी पढ़कर ही तुमने दिन बिताए उपेन भैया। किसी दिन बँगला की तरफ तुमने देखा नहीं, लेकिन हमारे देश में ऐसी-ऐसी पुस्तकें हैं कि एक बार पढ़ने से ही ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।" इतना कहकर वह एक लंबी सांस लेकर चुप हो गया।

उपेंद्र ने विरक्त होकर कहा, "पहले उपन्यास की कहानी कहो तो सुनूँ, उसके बाद देखा जाएगा कि कितना ज्ञान उत्पन्न होता है।"

सतीश हँसकर बोला, "पहले वचन दो गुस्सा तो न होगे।"

"नहीं, तू कह।"

सतीश ने कहा, "बहुत ही सुंदर कहानी है। उस किताब में लिखा है एक धनी जमींदार नाव पर बैठकर कहीं जा रहे थे। एक दिन संध्या को एकाएक बादल घिर आने पर भयंकर आँधी-वर्षा शुरू हुई। वे तो डर के मारे उतरकर किनारे चले गए। सामने एक बहुत टूटा-

फूटा मकान था, वर्षा के भय से उसी में घुस पड़े। उस मकान के सभी कमरों में अँधेरा था, कहीं भी कोई आदमी नहीं था। मकान में सब जगह घूम-घूमकर अंत में ऊपर के एक कमरे में उन्होंने देखा, टिमटिमाता हुआ चिराग जल रहा है और फटे बिछौने पर एक आदमी मरणासन्न पड़ा हुआ है और उसकी रूपवती स्त्री लोट-पोटकर रो रही है। उस रात को उसने कोई एक भयानक सपना देखा था। अच्छा उपेन भैया, क्या तुम सपने में विश्वास करते हो?''

उपेंद्र ने कहा, ''नहीं। उसके बाद!''

सतीश ने कहा, ''उसके बाद उसी रात को वह आदमी चल बसा। जमींदार साहब ने उस सुंदरी विधवा को अपने घर लाकर उससे बलपूर्वक विवाह कर लिया। चारों तरफ छिह! छिह! होने लगी और उस दुःख से उनकी पहली स्त्री ने विष खाकर आत्महत्या कर डाली।''

बार-बार सुंदरी का जिक्र होने से उपेंद्र समझ गए कि सतीश विषवृक्ष का पंकोद्धार कर रहा है और सतीश की इस अद्भुत स्मृति-शक्ति के परिचय से किसी दूसरे समय शायद वह खूब हँसते, लेकिन इस समय हँसी नहीं आई। इस इधर-उधर बिखरे हुए आख्यान के भीतर से एक कुत्सित इंगित तीर की तरह आकर उनकी छाती में बिंध गया। उन्होंने मन में सोचा, यह तो सतीश की स्मृति नहीं है, यह उनकी आशंका है। यह आशंका क्या है और जिसको आश्रय करके 'विषवृक्ष' की डाल-पत्तियों को तोड़कर उन्हें अपने ही साँचे में इसने गढ़ डाला है, उसी बात को याद करके उपेंद्र गंभीर लज्जा से सिकुड़ गए।

सतीश ने अँधेरे में यह नहीं देखा कि पल भर के लिए उपेंद्र का मुख पीला पड़ गया है। सतीश व्यथा पर व्यथा पहुँचाकर फिर बोला, ''खोद-खोदकर घड़ियाल मत बुलाओ उपेन भैया!''

उपेंद्र उत्तर न दे सके। बहुत देर बाद बोले, ''बँगला उपन्यास की बात छोड़ो, लेकिन कैसा उपदेश तुम देना चाहते हो, सुनूँ तो?''

सतीश हँसकर बोला, ''यही देखो उपेन भैया, तुम गुस्सा हो गए। तुमको मैं उपदेश नहीं दे सकता, लेकिन पाँव पड़कर अनुरोध कर सकता हूँ। वहाँ जाने की जरूरत नहीं है, वे अच्छे आदमी नहीं हैं।''

''कौन हैं वे लोग, सुनूँ तो?''

सतीश ने कहा, ''तुम गुस्सा मत होना उपेन भैया, बहुवचन का प्रयोग तो भद्रता मात्र है। मैं हारान बाबू की बात नहीं कहता, वह भले-बुरे के बाहर चले गए हैं। उनकी माँ को भी मैंने आँखों से देखा नहीं है। मैंने तीसरे व्यक्ति का जिक्र किया है।''

''तीसरे व्यक्ति का अपराध? देखो सतीश, तुम्हारे बाबूजी अगर किसी दूसरे आदमी को अपना सर्वस्व लिख देने का संकल्प कर लें, तो शायद तुम खुशी न मनाओगे?''

''नहीं, तुम आशीर्वाद दो उपेन भैया, बाबूजी को उसकी आवश्यकता ही न पड़े। वह मुझे अपना भला लड़का कहकर खुशी नहीं मनाते, यह मैं जानता हूँ। मैं उनका खराब लड़का हूँ, लेकिन यह खराब लड़का उनकी मृत्यु के समय में सजावट-शृंगार करके माथे पर बिंदी लगाकर घूमता न फिरेगा। आज मेरी वाचालता को तुम क्षमा करो उपेन भैया, लेकिन तुम्हारी जरा भी आँख रहती तो तुम देख पाते, हारान बाबू का ऐसा प्रस्ताव केवल मन का खयाल ही नहीं है, बल्कि अनेक दिनों की अनेक चिंताओं का फल है।''

सतीश ने फिर कहा, "तुम यह खयाल मत करना कि हारान बाबू तुमको समस्त भार सौंप देते समय अपनी स्त्री की ही बात भूल गए थे या लज्जा से कहने में असमर्थ हो रहे थे, बल्कि मुझे विश्वास है, तुम यदि स्वयं ही उल्लेख न करते तो वह स्वेच्छा से कोई बात न कहते।"

उपेंद्र मन ही मन विरक्त होते रहने पर भी इतनी देर तक मौन होकर सुन रहे थे, लेकिन पर-स्त्री के संबंध में यह सब संदिग्ध इंगित उनको असह्य हो उठा। वह कठोर स्वर में बोल उठे, "सतीश, तुम इतने नीच हो गए हो, यह मेरी धारणा नहीं थी, शायद तुम बातचीत का अर्थ भी नहीं समझ सकते।"

सतीश हँस पड़ा। बोला, "नीच कैसे? बुरे को बुरा कहता हूँ, इसलिए?"

"भला हो या बुरा हो, इस तरह बोलने का तुम्हारा क्या अधिकार है?"

"अधिकार? वह है अंग्रेजी ढाँचे की बात, बँगला में उसका अर्थ नहीं होता। हमारे समाज में इतना सूक्ष्म विचार नहीं चलता। जेलखाने के कैदी को चोर कहने में भी बहुत लोग आपत्ति करते हैं, लेकिन उस बात को तो साधारण चार आदमी मानकर नहीं चल सकते।"

"यह दूसरी बात है। चोरी साबित हो जाने पर उसको चोर कहते हैं, चोर जेल में जाता है, लेकिन इनके बारे में तुमको क्या सबूत मिला है?"

"सबूत न मिलने पर भी बहुत से लोग जेल में जाते हैं, वह है जज साहब के हाथ में। हम लोग जिस बात को समझ नहीं सकते, वे उसको समझ जाते हैं। फिर हम जिसको जल की भाँति स्वच्छ देखते है, इतने बड़े जज साहब के सामने वह पहाड़-पर्वत सा हो सकता है! आज तुम्हारे संबंध में भी यह बात लागू होती है। कुछ खयाल मत करना उपेन भैया, इतनी बड़ी दुनिया को आँखों के सामने रखकर भी बहुत से लोगों को ईश्वर का प्रमाण खोजने से नहीं मिलता। मैं जानता हूँ कि तुम नाराज होंगे, क्योंकि सदा से ही तुम भलों के साथ मिल-जुलकर, भला देखकर, भले ही बने हुए हो, लेकिन मेरी तरह बुरे-भले को देखकर यदि तुम पक्के हो गए होते, तो तुम्हें इतनी बातें कहने की आवश्यकता न पड़ती। तुम्हारी अपनी ही आँखों में बहुत सी चीजें पकड़ में आ जातीं!"

उपेंद्र पलभर चुप रहकर बोले, "सभी चीजों के आँखों में पड़ने की आवश्यकता मुझे नहीं है, लेकिन पक्का हो जाने के लिए तेरी ही तरह नीच भी मैं न बन सकूँगा। तू इस प्रसंग को बंद कर दे, लेकिन एक बात तू याद रख सतीश, कच्चे का दाम क्या है, उसको केवल तभी समझ सकेगा, जबकि तू और भी पक्का हो जाएगा।"

अगले दिन उपेंद्र को उठने में देर हो गई। बहुत देर पहले सूर्योदय हो चुका है, यह खिड़की के सुराख से आनेवाली किरणों से ही समझ में आ गया। उपेंद्र व्यस्त हो उठे। सतीश कमरे में नहीं था। वह कहाँ चला गया? बाहर बिहारी खड़ा था, आकर उसने खबर दी, सतीश बाबू सामने के बगीचे में कुश्ती लड़ रहे हैं और नीचे चाय दी जा चुकी है, वहाँ साहब वगैरह आपकी प्रतीक्षा में हैं।"

उपेंद्र चटपट तैयार होकर ज्योंही नीचे उतर पड़े, ज्योतिष त्योंही हाथ पकड़कर चाय की मेज पर उनको ले गया। वहाँ उनकी बहन सरोजिनी प्रतीक्षा कर रही थीं। वह अखबार फेंककर हँसते हुए मुख से बोलीं, "कल रात को दस बजे तक हम आप लोगों की बाट देखते रहे। अंत में मंझले भैया ने कहा, अवश्य ही कोई निर्दय मित्र रास्ते से पकड़कर ले गए हैं

और आप लोग शायद रात को लौट ही न सकेंगे। लौटने में कल कितनी रात हो गई थी उपेन बाबू?''

उपेंद्र ने हँसकर कहा, ''बारह। विशेष काम से आबद्ध हो जाने से मैंने सबको कष्ट दिया है।''

ज्योतिष ने कहा, ''इसे हम लोग समझते हैं। हमने यही खयाल नहीं किया था कि तुम लोग झूठमूठ राह में घूमते हुए चक्कर काट रहे होगे। सतीश बाबू कहाँ चले गए?''

बिहारी ने आकर निवेदन किया, ''सतीश बाबू बगीचे के उस तरफ कुश्ती लड़ रहे हैं और उनको खबर दे दी गई है।''

बिहारी के चले जाने पर ज्योतिष उपेंद्र की तरफ देखकर बोले, ''कुश्ती क्या जी! और भी कोई है क्या?''

उपेंद्र ने कहा, ''मैं जानता तो नहीं। कुश्ती शायद नहीं, लड़कपन से व्यायाम करने की आदत है, वही कर रहा है शायद!''

सरोजिनी कल दोपहर के समय म्यूजिक देखने गई थीं। संध्या के बाद घर लौटने पर उन्होंने सुना कि उपेंद्र और उनके मित्र आ गए हैं, लेकिन उस समय वे लोग पघरियारघाटा चले गए थे। उन्होंने पूछा, ''सतीश बाबू कौन हैं उपेन बाबू? मैंने तो देखा नहीं।''

''कल जिस समय हम लोग आए, आप मौजूद नहीं थीं। सतीश मेरा बचपन का मित्र है, यद्यपि आयु में बहुत छोटा है, यह लो, आ तो गया।''

सतीश ने कमरे में प्रवेश किया। क्या ही सुंदर भरा-पूरा शरीर है। माथे पर तब भी बूँद-बूँद पसीना चमक रहा था, सुंदर गोल चेहरे पर लाल आभा पड़कर और सुंदर दिखाई पड़ रहा था।

सरोजिनी ने पलभर देखकर ही आँखें झुका लीं।

ज्योतिष ने कहा, ''बिहारी कह रहा था, आप कुश्ती लड़ रहे थे, लेकिन कुश्ती ही लड़ें या जो कुछ भी करें, आपके शरीर की तरफ देखने से ईर्ष्या होती है, हम लोगों की तरह चार-पाँच आदमी भी शायद आपके पास तक पहुँच नहीं सकते।''

सतीश तनिक हँसकर बोला, ''बिना परीक्षा के इतना बड़ा सर्टिफिकेट मत दीजिएगा। इसके सिवा केवल शरीर का बल लेकर ही क्या होगा, मेरे पास और कोई ताकत ही नहीं।''

बात के अंतिम अंश में दुःख का आभास दिखाई पड़ा। सरोजिनी ने चाय डालते-डालते मन ही मन अनुमान किया कि सतीश बाबू की सांसारिक अवस्था शायद अच्छी नहीं है। ज्योतिष पहले ही उपेंद्र से सुन चुके थे। वह चुप ही रहे। इसके बीच चाय की कटोरियाँ परिपूर्ण हो उठीं। सतीश उस तरफ नजर तक न डालकर, दीवाल पर टँगे एक चित्र की तरफ ताकता रहा।

ज्योतिष ने कहा, ''आइए, सतीश बाबू, सब कुछ तैयार है।''

सतीश वहाँ से चला आया, तनिक हँसकर बोला, ''आप लोग शुरू कर दें, मैं बिना स्नान किए कुछ भी नहीं खाता-पीता!''

''बहुत ठीक! मैं तो यह बात नहीं जानता था। तो जाइए, अब देर मत कीजिएगा—बेहरा...!''

'नहीं-नहीं आप घबराइए मत! मेरा स्नान यथासमय ही होगा, इसके अलावा प्रातःकाल

खाने-पीने की मेरी आदत नहीं है। मध्याह्न का भोजन मेरा साधारण पाँच आदमियों से कुछ अधिक है, उसको असमय में चाय आदि बेकार की चीजें खा-पीकर मैं नष्ट कर देना पसंद नहीं करता। इससे तो अच्छा है कि मैं उस हारमोनियम को खोलकर दो भजन ही गाऊँ। आप लोगों के दोनों ही काम चलें।

भजन गाने के प्रस्ताव से सरोजिनी अत्यंत प्रफुल्ल हो उठीं। सिर उठाकर वह एकाएक बोल उठीं, "अच्छा।" लेकिन दूसरे ही क्षण घबराकर उसने मुँह झुका लिया। वह बात उसके अपने ही कानों में कैसी सुनाई पड़ी। ज्योतिष हँसकर बोले, "मेरी बहन गाना पा जाने से और कुछ भी नहीं चाहती। नहीं, नहीं, सतीश बाबू, आप कुछ...।"

उपेंद्र इतनी देर से चुप रहकर मन-ही-मन कुढ़ते जा रहे थे, बोल उठे, "नहीं, नहीं, फिर क्या? वह स्नान किए बिना खाता-पीता नहीं, सवेरे कुछ भी नहीं खाता। हम लोग लगातार कोशिश पैरवी करते रहें और इधर चाय की कटोरियाँ ठंडी हो जाएँ! ले सतीश, तुझे क्या भजन-वजन करना है, कर ले, मुझे और भी काम है।" कहकर चाय की कटोरी उन्होंने मुँह से लगा ली।

सरोजिनी उदास होकर मुँह झुकाए चाय पिलाने लगीं।

उपेंद्र चाय पीते-पीते बोले, "इसके मारे कहीं चैन नहीं। ऐसा दुनिया से बाहर उसका स्वभाव है, एक न एक उलझन टाल ही देता है। उसने सवेरे ही गाना गाने के बदले बाँसुरी बजाने का सुझाव नहीं रखा, यही सौभाग्य है।"

किसी को इस बात में सत्य का आभास तनिक भी नहीं मालूम हुआ, सभी व्यंग्य समझकर हँसने लगे। तब तक चाय भी चलने लगी। वह कमरे के चित्रों को घूम-घूमकर देखने लगा।

संध्या के बाद एक समय सरोजिनी ने धीरे-धीरे उपेंद्र से कहा, "आपने गाना सुनने नहीं दिया। आपका यह भारी अन्याय है।"

उपेंद्र बोले, "अच्छा, इस समय उसका प्रतिकार हो सकेगा, आने दो सतीश को।"

ज्योतिष बोले, "वास्तव में उपेन, जैसी ठंडक पड़ी है, कहीं भी निकलने की इच्छा नहीं होती, जरा गाना-बजाना होने से बुरा नहीं होगा, लेकिन सतीश बाबू कहाँ हैं? डॉक्टरी करने को तो नहीं गए हैं?"

उपेंद्र बोले, "हो भी सकता है। शायद जान-पहचान के मित्रों के साथ भेंट करने गया है।"

सरोजिनी ने चकित होकर प्रश्न किया, "सतीश बाबू डॉक्टर हैं क्या?"

उपेंद्र ने हँसकर कहा, "हाँ!"

ज्योतिष बोले, "नहीं, उपेन केवल स्कूल में पढ़ने से काम नहीं चलेगा। किसी अच्छे होमियोपैथ के साथ यदि किसी दिन आप घूम सकें, तभी कुछ सीख सकेंगे, नहीं तो यह जो कहावत चली आ रही है, शतमारी सहस्रामारी, केवल मार-मार ही घूमते रहेंगे। तुम को तो मैं एक भले सज्जन डॉक्टर के साथ परिचय करा सकता हूँ, लेकिन दोनों में कैसे पटेगी, कहा नहीं जा सकता, तुम जैसा सर्टिफिकेट दे रहे हो।"

उपेंद्र बोले, "आदमी अच्छे होंगे तो अवश्य पटेगी वरना खून-खराबा हो सकता है।"

सरोजिनी विस्मित होकर देखने लगी। ज्योतिष बोले, "और भी अच्छा है।"

उपेंद्र ने कहा, "अच्छा ही है। उसको पहचानकर, उसके दोष-गुण सब समझकर, जो उसका मन पावेगा, वह बहुत ही अच्छी चीज पावेगा, लेकिन मन पाना ही कठिन है। वह

जटिल है या दुर्बोध है, यह बात नहीं, बल्कि खूब सीधा खूब स्पष्ट है। मुझे मालूम पड़ता है कि इतना स्पष्ट होने के कारण ही लोग उसको समझने में भी भूल करते हैं। मतभेद होने पर भी हम लोग जहाँ भद्रता की दुहाई देने लगते हैं और शिष्ट भाव से मतभेद लेकर मन उदास बनाकर चले आते हैं, वह वहाँ हाथापाई करके मीमांसा ही कर आता है। बचपन से मैं उसको जानता हूँ, कभी मैंने नहीं देखा कि उसके मुँह से एक बात निकली हो और मन में कुछ दूसरी ही हो। इसी से मेरा उस पर इतना प्रेम भाव रहता है।"

ज्योतिष हँसकर बोले, "इसीलिए तुम कह रहे थे कि साधारण लोगों के बीच इसे लेकर चलना-फिरना कठिन है।" उस समय ज्योतिष की ओर उपेंद्र का मन नहीं था। इसलिए उनकी बातें कानों में पहुँचने पर भी हृदय में प्रवेश न कर सकीं। बाल्यसखा के विरुद्ध कल रात का व्यवहार और रूढ़ भाषा उनको भीतर ही भीतर क्लेश दे रही थी, इसलिए बात ही बात में उनका मन पिछले दिनों के अति एकांत स्थान में घूम रहा था। किशोरावस्था के छोटे-बड़े कलह-विवादों में विभिन्न मुहल्लों के समान उम्रवालों के साथ हाथापाई, मार-पीट, वाद-विवाद और दूसरी अनेक आपद-विपद में सर्वत्र सतीश अपना बलिष्ठ शरीर लेकर उनके पास जा खड़ा होता था। उन्हीं सब याद पड़नेवाली और भूली हुई कहानियों के बीच में आकर अचानक उनका हृदय अत्यंत अनुतप्त हो उठा और ज्योतिष की बातों से जब उपेंद्र बोला, "हाँ, इसीलिए, ठीक इसीलिए चिरकाल से उसको मैं इतना प्यार करता हूँ।"

ज्योतिष और सरोजिनी दोनों ही आश्चर्य से उसकी तरफ देखते रह गए।

इस बात का वे कोई भी अर्थ न समझ सके।

लेकिन दूसरे प्रश्न का कोई भी समय नहीं रहा। चुपचाप परदा हटाकर सतीश घुसा। उसको पहले सरोजिनी ने देखा। वह ही हँसकर बोलीं, "अच्छा हुआ, सतीश बाबू आ गए!"

सतीश सबको देखकर हँसते हुए बोला, "शायद मेरे विषय में बातें चल रही थीं! उपेन भैया मुझे किसी के सामने अब मुँह दिखाने योग्य न रखेंगे।"

इतना कहकर वह पास ही एक कोच पर बैठने जा रहा था कि उपेंद्र ने हाथ से हारमोनियम दिखाकर कहा, "जरा वहाँ जाकर बैठो, सरोजिनी अभी-अभी मुझे दोष दे रही थीं कि केवल मेरे ही कारण उस वक्त गाना नहीं हो सका।"

सतीश आसन पर बैठकर बोला, "इस समय तो गाना हो नहीं सकता। यह तो मेरे बाँसुरी बजाने का समय है, उपेन भैया!"

उस रात को कुछ देर से सभा भंग करने के बाद बिछौने पर लेटकर सरोजिनी लंबी साँस लेकर मन ही मन बोली—वे यदि हमारे कोई आत्मीय होते तो उन्हीं से मैं सीखती। उसको संगीत सिखाने के लिए एक हिंदुस्तानी शिक्षक नियुक्त था। उसी की जगह पर सतीश को नियुक्त करने के लिए तरह-तरह के उपाय सोचती हुई, वह सो गई।

चौदह

उपेंद्र और सतीश के चले जाने पर किरणमयी किवाड़ बंद करके वहीं खड़ी रही। अँधेरे में उसकी दोनों आँखें हिंस्र जंतु की तरह जलने लगीं। उसे ऐसा लगा कि दौड़कर यदि किसी के वक्षःस्थल पर दाँतों से काट लूँ तो मेरी जान बच जाए। हाथ के चिराग को ऊँचाई पर

उठाकर बोली, "आग लगा देने का उपाय होता तो आग लगा देती। आग लगाकर जहाँ इच्छा होती, चली जाती। चिल्लाहट, पुकार मचाकर थोड़ा-थोड़ा करके वह जल मरती, शत्रुता करने का समय नहीं पाती। जाड़े की रात में भी उसके ललाट पर पसीना निकल पड़ा था। उसे हाथ से पोंछते-पोंछते सहसा अपने को धिक्कार देकर वह बोल उठी, "क्यों मैं खबर भेजने गई? क्यों अपने पैरों पर मैंने कुल्हाड़ी चला दी, लेकिन मैं निश्चित रूप से कह सकती हूँ कि यह सब अभागिनी बुढिया का काम है। अपने लड़के के साथ मिलकर उसी ने ऐसी हालत पैदा कर दी है।"

सतीश की बातें बिच्छू के डंक की भाँति जलाने लगीं। इन दोनों आदमियों ने कुछ बातें अवश्य सुनी हैं, यह ठीक तौर से समझ न सकने के कारण वह और भी छटपटाने लगी। उसको पति और सास दोनों ने ही मिलकर समझाया था कि उपेन की तरह भला आदमी कोई नहीं है। उसके आ जाने से फिर कोई कष्ट न रहेगा! क्यों उसने विश्वास किया था? क्यों उसने अपने हाथ ही से पत्र लिखा था? अँधेरे सीड़दार आँगन में एक तरफ खड़ी रहकर यह क्रोधोन्मत्त नारी इन लोगों के झूठे, षड्यंत्रकारी, पैशाची स्वभाव के आदि कितने ही आरोप लगाकर भी तृप्ति न पा सकी! क्रोध और हिंसा ने उसके हृदय में भयंकर तूफान उठा दिया था। उसका कणमात्र व्यक्त कर देने की भाषा भी जब उसे याद नहीं पड़ी, तब वह तन-मन से प्रार्थना करने लगी कि वह अर्धमृत आज ही रात को समाप्त हो जाए।

दो दिन के बाद सवेरे रसोईघर में बैठी किरण तरकारी काट रही थी। नौकरानी ने आकर खबर दी, "डॉक्टर साहब आए हैं!"

किरन ने कहा, "जाकर उनसे कह दे, माँ आज अच्छी हैं।"

दासी कुछ आश्चर्य में पड़ गई। कुछ देर तक देखती रहकर बोली, "वह उसी कमरे में बैठे हुए हैं।"

उसकी बात के विशेष अर्थ की ओर तनिक भी ध्यान न देकर किरण ने सहज भाव से कहा, "उसकी दवा तो कोई खाता नहीं, फिर भी वह क्यों आता है, मैं नहीं जानती। तू अपने काम पर जा, वह स्वयं ही चला जाएगा।"

इस डॉक्टर की दवा काम में नहीं आती, दासी के लिए यह कोई नई बात नहीं थी। इसलिए इसके उल्लेख की कोई आवश्यकता नहीं थी, किंतु क्यों वह आता है, यह प्रश्न पूर्ण रूप से नया था। वह आश्चर्य में पड़कर सोचने लगी, कल संध्या को मैं घर चली गई थी, इसी बीच हठात् कौन सी ऐसी घटना हो गई कि डॉक्टर का इस मकान में आना तक अनावश्यक हो गया। फिर भी साहस करके वह एक बार बोली, "अच्छा, मैं तरकारी काट देती हूँ, तुम एक बार हो आओ न!"

किरणमयी अत्यंक रूखे भाव से बोली, "तू जा। अपना कुछ काम-काज हो तो जाकर कर।"

इस आकस्मिक तथा अत्यंत अनावश्यक उग्रता से दासी एकदम सहम गई। इस घर में वह बिल्कुल ही पुरानी न होने पर भी नई नहीं थी। इसके पूर्व भी ऐसे अकारण रूखेपन का परिचय वह पा चुकी है, किंतु ठीक इस प्रकार की बात स्मरण न कर सकी। कोई और समय होता तो वह भी शायद क्रोध करती, किंतु आज उसने नहीं किया। अति आश्चर्य से स्तब्ध रह गई। थोड़ी देर चुप रहकर धीरे-धीरे उस कमरे के दरवाजे के पास जाकर बोली, "वह काम

में लगी हुई हैं, इस समय आप जाएँ।''

डॉक्टर पैरों के पास बैग रखकर उसी चौकी के पास बैठा हुआ था, बोला, ''काम में लगी हुई हैं? काम तो मुझे भी है।''

दासी ने कहा, ''तो जाओ न बाबू।''

डॉक्टर अवाक् रह गया। बोला, ''एक बार जाकर कह दो, मुझे एक विशेष काम है।''

दासी ने कहा, ''आप समझते क्यों नहीं हो बाबू, मैंने खूब कहा है और अधिक न कह सकूँगी। वह सब मैं कुछ नहीं जानती। आज आप जाएँ।'' यह कहकर वह चली गई।

इस अवहेलना और लांछना ने पहले तो डॉक्टर को गंभीर आघात पहुँचाया, किंतु दूसरे ही क्षण एक लज्जाजनक दुर्घटना की संभावना उसके मन में उठने के साथ ही वह भीतर बात क्या है, सुनने के लिए व्याकुल हो उठा। उसको प्रतीक्षा करने में आपत्ति नहीं थी और प्रतीक्षा करता ही रहा, किंतु कोई भी लौटकर नहीं आया। तब खड़ा-खड़ा कितना क्या सोचकर चले जाने का विचार करके बैग उठाकर जब खड़ा हुआ और निगाह ऊपर उठाई तो देखा कि दरवाजे के सामने ही किरणमयी है। डॉक्टर ने अपने उद्धत अभिमान को रोककर कहा, ''जरा हटो, बड़ी देर हो गई और भी बहुत से रोगी राह देख रहे हैं, माँ जी अच्छी हैं न?''

''अच्छी हैं।'' कहकर किरणमयी एक ओर हटकर खड़ी हो गई।

किंतु डॉक्टर के पीछे पैर उठे नहीं। फिर भी जाने का प्रस्ताव स्वयं ही करके खड़ा रहना भी कठिन हो गया।

किरणमयी मुसकराने लगी, बोली, ''जाओ न।''

डॉक्टर ने मुँह ऊपर उठाकर भौंहें सिकोड़कर कहा, ''तुम क्या समझती हो कि मैं जाना नहीं जानता?''

''मैं क्या पागल हूँ कि समझूँगी कि तुम जाना नहीं जानते! हाँ, डॉक्टर कितने रोगी तुम्हारी राह देखते होंगे, सुनूँ तो?'' कहकर और मुँह घुमाकर वह हँसने लगी।

कुपित डॉक्टर ने पहले यही इच्छा की कि उस मुँह पर थप्पड़ मारकर बंद कर दे, किंतु यह काम तो संभव नहीं था, केवल बोला, ''तुम जाओ।''

''मैं कहाँ जाऊँगी? मकान है मेरा, जाना होगा तो तुमको ही जाना होगा!''

''मैं जा रहा हूँ।'' कहकर ज्योंही वह जाने को तैयार हुआ, त्योंही किरणमयी ने दोनों चौखटों पर हाथ रखकर मार्ग रोककर कहा, ''जा रहे हो, किंतु यह जानकर जाओ कि यही जाना अंतिम जाना है।''

उसके कंठ-स्वर और चेहरे के आकस्मिक परिवर्तन से डॉक्टर शंकित हो उठा, लेकिन मुँह से बोला, ''अच्छी बात है, यही हो, यही अंतिम जाना है।''

किरणमयी बोली, ''सचमुच ही अंतिम जाना है, जबकि तुम आ गए हो, तब स्पष्ट रूप से ही सब जान जाओ। अच्छा, वहाँ उसी जगह बैठ जाओ, अब खोलकर कहती हूँ।'' यह कहकर डॉक्टर का बैग लेकर उसने स्वयं भूमि पर रख दिया और कुरसी दिखाकर बोली, ''रसोई बन रही है। समय नहीं है, संक्षेप में कहती हूँ...।''

इसी समय दासी ने आकर खबर दी, दो बाबू आ रहे हैं। उसके साथ ही जूते की आवाज सुनकर किरणमयी व्याघ्र भय से भीत हरिणी की भाँति दासी को जोर से ठेलकर कमरे से

दौड़कर भाग गई। डॉक्टर और नौकरानी आश्चर्य में पड़कर एक-दूसरे के मुँह को ताकने लगे।

थोड़ी ही देर के बाद जूते की आवाज द्वार के निकट आकर रुक गई। डॉक्टर ने देखा, दो अपरिचित भले आदमी हैं। दोनों भले आदमियों ने देखा, डॉक्टर हैं, उनके कोट के पॉकेट से हृदयपरीक्षा के चोंगे ने अपनी गरदन बढ़ाकर परिचय दे दिया। उपेंद्र और सतीश ने देखा डॉक्टर का चेहरा अत्यंत सूखा है। दुर्घटना की आशंका करके पूछा, "आपने कैसा देखा-डॉक्टर साहब?"

डॉक्टर मौन रहा। उसका चेहरा और भी काला हो गया।

उपेंद्र ने और अधिक शंकित होकर प्रश्न किया, "अब कैसा देखा?"

तो भी डॉक्टर ने बात नहीं कही, विह्वल की भाँति वह ताकता रहा।

दासी ने कहा, "तुम जाओ न डॉक्टर साहब, "अभी खड़े क्यों हो?"

डॉक्टर व्यग्र होकर बैग उठाकर बोला, "मैं जाता हूँ, मुझे बहुत काम है।" कहकर उपेंद्र और सतीश के बीच से ही वह तेजी से नीचे उतर गया और इस महाजन का पदनुसरण करके दासी कहाँ विलीन हो गई, यह बात जानी भी नहीं गई।

उन सुनसान टूटे मकान के टूटे बरामदे में दिन के नौ बजे उपेंद्र और सतीश चुपचाप आश्चर्य से एक-दूसरे का मुँह देखने लगे।

कुछ देर बाद सतीश बोला, "उपेंद्र भैया, हारान बाबू की माँ क्या पागल हैं?"

उपेंद्र बोले, "वह हारान भैया की माँ नहीं हैं और कोई है, संभवतः दासी है, किंतु मैं सोचता हूँ, डॉक्टर उस तरह क्यों चला गया?"

सतीश बोला, "चोर की भाँति मानो पकड़े जाने के भय से भाग गया।"

उपेंद्र अन्यमनस्क भाव से बोले, "प्रायः कहीं कोई भी दिखाई नहीं पड़ता, वह कमरा हारान भैया का है न?"

सतीश बोला, "हाँ, चलो उसमें।"

किंतु हठात् घुसने का साहस नहीं हुआ। बोले, "मुझे डर लगता है शायद कोई घटना घट गई है।"

सतीश बोला, "ऐसी बात होने से रोने-धोने के लिए आदमी जुट जाते, ऐसी बात नहीं है।"

ऐसे ही समय में दिखाई पड़ा, उस ओर बरामदे से घूमकर किरणमयी आ रही है। जान पड़ता था मानो अभी-अभी वह रो रही थी, आँखें पोंछकर चली आ रही है। कल दीपक के प्रकाश में जो मुँह सुंदर दिखाई पड़ रहा था, आज दिन के समय, सूर्य के प्रकाश में स्पष्ट समझ में आ गया, ऐसा सौंदर्य पहले कभी दिखाई नहीं पड़ा, जीवित भी नहीं, चित्रों में भी नहीं।

बहू ने कहा, "आज हम लोग तैयार नहीं थे। मैंने सोचा था कह जाने पर भी शायद न आ सकेंगे।" सतीश की ओर देखकर सहसा मुसकराकर बोली, "बबुआजी भी हैं।"

आज सतीश ने सिर झुका लिया।

उपेंद्र ने पूछा, "हारान भैया कैसे हैं?"

बहू ने उत्तर दिया, "वैसे ही। चलिए, उस कमरे में चलें।"

हारान के कमरे में उनकी माँ अघोरमयी बिछौने के पास बैठी हुई थीं। उपेंद्र के प्रणाम करते ही ऊँचे स्वर से रो पड़ीं।

हारान थके गले से मना करके बोला, "चुप भी रहो माँ।"

उपेंद्र लज्जा से, दुःख से एक ओर बैठ गए।

सतीश इस तरह उस ओर देखकर मुँह को यथासाध्य भारी बनाकर उस काठ के संदूक पर जाकर बैठ गया।

बहू पल भर खड़ी रहकर सतीश की तरफ विद्युत् कटाक्ष फेंककर बाहर चली गई, मानो स्पष्ट समझ गई, तुम लोग यह काम अच्छा नहीं कर रहे हो।

पंद्रह

सतीश ने दृढ निश्चय कर लिया कि वह डॉक्टरी पढ़ना नहीं छोड़ेगा, इसीलिए दूसरे दिन संध्या समय किसी से भी कुछ न कहकर वह बिहारी को साथ लिए अपने पुराने डेरे पर जा पहुँचा। वह मकान उस समय भी खाली पड़ा था। मकान मालिक से मिलकर उसने छह महीने का बंदोबस्त कर लिया और निकट ही के हिंदू आश्रम में जाकर पता लगाकर एक रसोईदार नियुक्त कर लिया और प्रसन्न होकर बाहर निकल पड़ा। बिहारी से उसने कहा, "हम लोग कल ही चले आएँगे। क्या कहते हो बिहारी?"

बिहारी ने अपनी सहमति प्रकट की।

रास्ते में चलते-चलते सतीश बोला, "काम तो अच्छा नहीं हुआ बिहारी। जो भी हो उसने मेरे लिए बहुत कुछ किया है, इसके सिवा माना जाए तो मेरे लिए ही उसका डेरे का काम छूट गया। एक बार खबर देनी चाहिए।"

बिहारी समझ गया और चुप हो रहा।

सतीश कहने लगा, "जो कोई भी क्यों न हो, राह का भिखारी होने पर भी दुःख में पड़ने पर उसकी खबर लेनी चाहिए, नहीं तो मनुष्य-जन्म ही व्यर्थ है, किंतु मैं उसके मकान के अंदर न जाऊँगा, "गली के अंदर भी नहीं, मोड़ पर खड़ा रहूँगा, तू एक बार जाकर मालूम कर आना, कष्ट में पड़ी है या नहीं। कष्ट में तो अवश्य ही पड़ गई है, वह मैं अच्छी तरह समझ रहा हूँ, इसीलिए किसी तरह कुछ दे आना चाहिए।" बिहारी चुपचाप पीछे चलने लगा। सतीश बोला, "किंतु मुझसे ये बातें बताएगी नहीं, तुमसे तो कुछ भी न छिपाएगी। तू समझ गया न बिहारी?"

बिहारी ने फिर भी कोई बात नहीं कही।

सावित्री की गली के मोड़ पर पहुँचकर सतीश खड़ा हो गया। बोला, "अधिक देर मत करना।"

बिहारी ने गली में प्रवेश किया। सतीश आसपास इधर-उधर टहलने लगा, दूर जाने का उसे साहस नहीं हुआ कि पीछे मूर्ख बिहारी उसको न देखकर और कहीं न चला जाए।

दस मिनट बाद ही बिहारी लौटकर बोला, "वह नहीं है।"

सतीश ने उत्सुक होकर पूछा, "कब लौटेगी?"

बिहारी बोला, "वह अब न आएगी। दो महीने बीत रहे हैं, एक दिन भी नहीं आई!"

सतीश गैस के खंबे पर ओढंग कर खड़ा हो गया, भीषण कंठ से बोला, ‘‘झूठी बात है। तुझे धोखा दिया है!’’

बिहारी ने भी दृढ़ भाव से सिर हिलाकर कहा, ‘‘किसी ने धोखा नहीं दिया, सचमुच ही वह अब नहीं आती। सचमुच ही वह अपने घर चली गई है।’’

‘‘उसके घर की वस्तुएँ?’’

‘‘पड़ी हुई हैं। वे कौन ऐसी चीजें हैं बाबू कि उनके लिए मोह होगा।’’

सतीश ने क्रुद्ध होकर कहा, ‘‘वह कौन बहुत धनवान है कि मोह नहीं होगा। तू बिल्कुल ही मूर्ख है, इसीलिए तू समझकर चला आया कि वह अब आती ही नहीं! क्या यह हो सकता है बिहारी, वह लापता हो गई और किसी ने उसका पता नहीं लगाया? मैं पुलिस को खबर कर दूँगा।’’

बिहारी मौन होकर मुँह झुकाए खड़ा रहा।

सतीश बोला, ‘‘मोक्षदा क्या कहती है, वह नहीं जानती? मैं विश्वास नहीं करता। वह अवश्य ही जानती है। मैं जा रहा हूँ उसके पास।’’

बिहारी व्यग्र हो उठा, बोला, ‘‘अब आप मत जाइए बाबू!’’

‘‘क्यों नहीं जाऊँगा? क्यों वे लोग छिपा रहे हैं? मैं क्या किसी को खा डालने के लिए आया हूँ कि मुझसे छिपाना-चुराना! मैं कहता हूँ, जैसे भी हो सकेगा, मैं जानूँगा कि वह कहाँ है।’’

बिहारी ने डरकर कहा, ‘‘उसकी मौसी का दोष नहीं है बाबू। सावित्री अपनी इच्छा से ही मकान छोड़कर चली गई। झगड़ा करके गई है, किसी को खबर देकर नहीं गई है।’’

सतीश धमकाकर बोला, ‘‘फिर भी तू कहता है कि वह कहकर नहीं गई है! जरूर बताकर गई है, अवश्य ही बता गई हैं!’’

बिहारी ने सिर हिलाकर कहा, ‘‘नहीं, लेकिन वह शहर में ही है।’’

‘‘किस जगह पर है? गधे की तरह मुँह बाए मत रह बिहारी? क्या हो गया बता?’’

बिहारी क्षण भर स्थिर रहकर कुछ सोचकर बोला, ‘‘आपके दुःख होगा इसीलिए, नहीं तो सब बातें सभी को मालूम हैं, मैं भी जानता हूँ।’’

सतीश अधीर हो उठा, ‘‘क्या जानता है, बता न?’’

बिहारी फिर भी चुप रहा।

सतीश चिल्लाकर बोला, ‘‘तेरे पैरों पर गिरता हूँ हरामजादे! जल्दी बता।’’

बिहारी उसी क्षण भूमि पर सिर टेककर जूते की धूलि सिर पर चढ़ाकर सिसकते हुए बोला, ‘‘बाबू मुझे आपने नरक में डुबा दिया। तनिक आड़ में चलिए, कहता हूँ।’’ यह कहकर अँधेरी गली में घुसकर एक ओर खड़ा हो गया।

सतीश सामने खड़ा होकर बोला, ‘‘क्या है?’’

बिहारी ने गला साफ करके कहा, ‘‘सावित्री की मौसी का विचार है कि वह आपके पास है, लेकिन मैं जानता हूँ, ऐसी बात नहीं है!’’

सतीश अधीर होकर बोला, ‘‘तू खूब पंडित है? यह मैं भी जानता हूँ, उसके बाद क्या है, बता?’’

‘‘रुकिए बाबू, बता रहा हूँ।’’ कहकर बिहारी फिर एक बार गला साफ करके बोला,

“मुझे खूब आशा हो रही है कि...।”
“क्या आशा हो रही है?”
बिहारी विवश होकर बोल उठा, “वह कहीं चली गई है, उसी विपिन बाबू के पास ही।”
“कौन! हमारा विपिन!”
“हाँ बाबू, वे ही, हाँ, हाँ, वहाँ बैठिएगा मत, स्नान करना पड़ेगा! दुनिया भर के लोग वहाँ ही...।”
सतीश ने उस बात को कानों में ही जाने नहीं दिया। उस ओर की दीवाल पर पीठ टेककर सीधा होकर बैठकर सूखे गले से उसने पूछा, “तो फिर उसकी मौसी ने कैसे समझा कि वह मेरे पास है?”
बिहारी ने कहा, “सावित्री ने जिस दिन विपिन बाबू को अपमानित करके विदा किया, उस दिन स्पष्ट रूप से उसने कहा था, वह सतीश बाबू के सिवा और किसी के पास न जाएगी, मकान के लोग आड़ में रहकर उन लोगों का झगड़ा सुन रहे थे।”
सतीश ने उठकर पूछा, “तो तुझे किस तरह पता लगा कि वह विपिन बाबू के पास गई है?”
बिहारी चुप हो रहा।
सतीश ने कहा, “बता।”
बिहारी फिर एक बार हिचकिचा गया। सावित्री के आगे वही जो “न बताएगा” कहकर घमंड दिखा आया था, वह बात याद पड़ गई। बोला, “मैं अपनी ही आँखों से देख आया हूँ।”
सतीश मौन रहकर चुप सुनने लगा।
बिहारी ने कहा, “घर बदलने के दूसरे दिन दोपहर को मैं आया था, तब विपिन बाबू, सावित्री के बिछौने पर सो रहे थे।”
सतीश ने डाँटकर कहा, “झूठी बात है!”
बिहारी ने चौंककर कहा, “नहीं बाबू, सच्ची बात कह रहा हूँ।”
सतीश ने पूछा, “सावित्री कहाँ थी?”
सावित्री उस कमरे में थी। बाहर निकलकर उसने मुझे चटाई बिछाकर बैठाया। पूछने लगी, “बाबू लोग नाराज हुए या नहीं, हम लोगों ने घर बदल क्यों दिया? यही सब।”
“फिर उसके बाद?”
“मैं बिगड़कर लौट आया। तब वह बाबू के साथ चली गई।”
“इतने दिनों तक तूने क्यों नहीं बताया?”
बिहारी मौन रहा।
सतीश ने पूछा, “तूने स्वयं अपनी आँखों से देखा है या सुना है?”
“नहीं बाबू, अपनी ही आँखों से देखी हुई यह घटना है। बहुत ध्यान से देखा है!”
“मेरे पैर छूकर शपथ ले, तेरी आँखों से देखी हुई बात है! ब्राह्मण के पैरों पर हाथ रख रहा है, याद रहे!”
बिहारी सतीश के पैरों पर हाथ रखकर बोला, “यह बात मुझे दिन-रात याद रहती है बाबू! मेरी अपनी ही आँखों की देखी हुई घटना है।”

सतीश ने पलभर चुप रहकर कहा, “तू डेरे पर चला जा, उपेन भैया से कहना, आज रात को मैं भवानीपुर जाऊँगा, लौटूँगा नहीं।”

बिहारी को विश्वास नहीं हुआ, वह रोने लगा।

सतीश ने आश्चर्य में पड़कर कहा, “यह क्या रे, रोता क्यों है?”

बिहारी ने आँखें पोंछते-पोंछते कहा, “बाबू, मैं आपके लड़के की तरह हूँ, मुझसे छिपाएगा मत। मैं भी साथ चलूँगा।”

सतीश ने पूछा, “क्यों?”

बिहारी ने कहा, “बूढ़ा तो हो गया हूँ जरूर, लेकिन जाति का अहीर हूँ। एक लाठी मिल जाने पर अब भी पाँच-छह आदमियों का सामना कर सकता हूँ। हम दंगा भी कर सकते हैं और जरूरत पड़ने पर मरना भी जानते हैं।”

सतीश ने शांत स्वर से कहा, “मैं क्या दंगा करने जा रहा हूँ? मूर्ख कहीं का!” यह कहकर वह चला गया।

बिहारी अब जान गया, बात झूठी नहीं है। तब आँखें पोंछकर वह भी चला गया।

सतीश मैदान की तरफ तेजी से जा रहा था। कहाँ जाना होगा, इसका निश्चय उसने नहीं किया, लेकिन कहीं उसको मानो शीघ्र ही जाना पड़ेगा। इस बात को वह निस्संदेह अनुभव कर रहा था कि एक ही क्षण में उसके चेहरे पर एक ऐसा भद्दा परिवर्तन हो गया है, जिसे किसी जाने-पहचाने आदमी को दिखाना उचित नहीं।

मैदान के एक सुनसान भाग में पेड़ के नीचे बेंच पड़ी हुई थी। सतीश उसके ऊपर जाकर बैठ गया और निर्जन स्थान को देखकर शांति मिली। अँधेरे में वृक्ष के नीचे बैठकर पहले ही उसके मुँह से निकल पड़ा, “अब क्या करना चाहिए?” यह प्रश्न कुछ देर तक उसके कानों में अर्थहीन प्रलाप की भाँति घूमता रहा। अंत में उसको उत्तर मिला, “कुछ भी नहीं किया जा सकता।”

उसने प्रश्न किया, “सावित्री ने ऐसा काम क्यों किया?”

उत्तर मिला, “ऐसा तो कुछ भी नहीं किया है, जिससे नए सिर से उसको दोष दिया जा सके।”

उसने प्रश्न किया, “इतना बड़ा अविश्वास का काम उसने क्यों किया?”

उत्तर मिला, “कौन सा विश्वास उसने तुमको दिया था, यह पहले बताओ?”

सतीश कुछ भी बता न सका। वस्तुतः उसने तो कोई झूठी आशा दी नहीं थी। एक दिन के लिए भी उसने छलना नहीं की, बल्कि वह बार-बार सतर्क करती रही है, शुभ कामना प्रकट करती रही है बहन से भी अधिक स्नेह करती रही है, उस रात की बातें उसने याद कीं। उस दिन निष्ठुर होकर उसको घर से निकालकर उसने बचाया था। कौन ऐसा कर सकता था! कौन अपनी छाती पर वज्र रखकर उसको सुरक्षित रख सकता था? सतीश की आँखों की पलकें भीग गईं, किंतु यह संशय उसका किसी प्रकार भी दूर नहीं हो सका कि इस उत्तर में कहीं मानो एक भूल हो रही है।

उसने फिर प्रश्न किया, “किंतु उसको तो मैं प्यार किया है!”

उत्तर मिला, “क्यों प्यार किया? क्यों जान-बूझकर तुम कीचड़ में उतर गए?”

उसने प्रश्न किया, “यह मैं नहीं जानता। कमल लेने जाने पर भी तो कीचड़ लगता है?”

उसे उत्तर मिला, “यह है पुरानी उपमा, काम में नहीं आती! मनुष्य अपने घर में आते समय कीचड़ धोकर कमल ले आते हैं। तुम्हारा कमल ही कहाँ और यह कीचड़ तुम कहाँ धोकर अपने घर आते?”

उसने प्रश्न किया, “अच्छा भले ही मैं घर नहीं आता?”

उत्तर मिला, “छिह! उस बात को मुँह पर भी मत लाना!

इसके बाद कुछ देर तक मौन होकर नक्षत्र भरे काले आकाश की तरफ देखकर एकाएक बोल उठा, “मैंने तो उसकी आशा छोड़ ही दी थी। उसे मैं पाना भी नहीं चाहता था, किंतु मुझे उसने इस प्रकार अपमानित क्यों किया? एक बार पूछ क्यों नहीं लिया? किस दुःख से वह यह काम करने गई? रुपए के लोभ से किया है, यह बात तो किसी प्रकार मैं सोच नहीं सकता। विपिन की तरह आचरणभ्रष्ट शराबी को मन-ही-मन में उसने प्यार किया था, इस बात पर विश्वास करूँ, किस तरह? तो फिर क्यों?”

गंगाजी की शीतल वायु लगने से उसे जाड़ा लगने लगा। वह ज्योंही चादर नीचे से ऊपर तक ओढ़कर आँखें बंद करके बेंच पर लेट गया, त्योंही सावित्री का चेहरा उज्ज्वल होकर स्पष्ट हो उठा। कलंक की कोई भी कालिमा उस चेहरे पर नहीं है! गर्व से दीप्त, बुद्धि स्थिर, स्नेह से स्निग्ध, परिणत यौवन के भार से गंभीर, तो भी, रसों से लीलाओं से चंचल, वही चेहरा, वही हँसी, वही दृष्टि संयत परिहास, सबसे ऊपर उसकी वह अकृत्रिम सेवा! इस प्रकार स्नेह उसे इतनी उम्र में कब कहाँ मिला था! शंख मे दबी अग्नि की भाँति उसके आवरण को लेकर खेल मचाते समय जो अग्नि बाहर निकल पड़ी है, उसकी जलन से किस तरह, किस रास्ते से भागकर आज वह मुक्ति पावेगा! मुक्ति पा लेने से भी क्या हो जाएगा। उसकी दोनों आँखों से आँसू झर-झर गिरने लगे। आँसू को उसने रोकना नहीं चाहा, “आँसू को पोंछ डालने की इच्छा भी नहीं की। आँसू इतना मधुर है, आँसू में इतना रस है, आज वह अपने परम दुःख में यह प्रथम उपलब्धि करके सुखी हो गया और जिसको उपलक्ष्य करके इतने बड़ सुख का आस्वाद वह जीवन में पहलेपहल प्राप्त कर सका, उसी को लक्ष्य कर दोनों हाथ जोड़कर उसने नमस्कार किया।

सतीश चाहे जैसा भी क्यों न हो, भगवान् उनको छला नहीं जा सकता, छोटे-बड़े सभी को एक दिन उनके सामने उत्तरदायी के रूप में विवरण देना पड़ता है, इन बातों पर वह निस्संदेह विश्वास करता था। आँखें पोंछकर वह उठ बैठा और मन-ही-मन बोला, “भगवान् किसके हाथ से, तुम किस समय, किसको क्या देते हो, कोई बता नहीं सकता! आज तुम्हारी ही आज्ञा से सावित्री है दाता, मैं हूँ भिखारी। इसीलिए वह भली हो, बुरी हो, यह विचार और जो कोई भी करे, मैं न करूँ। मेरे हृदय में सब जलन, विद्वेष तुम पोंछ डालो, उसके विरुद्ध में कृतघ्न न बनूँ।”

उधर ज्योतिष साहब के मकान में संध्या के पश्चात्, बैठकखाने में सरोजिनी, ज्योतिष, उपेंद्र और दूसरे एक नाटे कद के दाढ़ी-मूँछ साफ किए हुए हृष्ट-पुष्ट भले आदमी बैठे हुए हैं। इनका शुभ नाम है शशांकमोहन। ये विलायत हो आए हैं, इसीलिए साहब हैं। थोड़े ही दिनों में सरोजिनी के प्रति आकृष्ट हो गए हैं और इसे प्राणपण से व्यक्त कर देने का पूर्ण प्रयास कर रहे हैं। वह प्रयास कहाँ तक सफलता की ओर अग्रसर होता जा रहा था, इसे केवल विधाता ही जान रहे थे। आज सतीश का प्रसंग छिड़ गया था। उपेंद्र उसके असाधारण शारीरिक बल

तथा अलौकिक साहस का इतिहास समाप्त करके, आश्चर्यजनक कंठ-स्वर और उसकी अपेक्षा आश्चर्यजनक शिक्षा की बात उठा चुके थे। निकट ही सोफे पर बैठी हुई सरोजिनी दोनों हाथों पर अपनी ठुड्डी रखकर झुकी पड़ी हुई उदासीन चित्त से सुन रही थी। उसी समय बिहारी ने भग्न दूत की भाँति कमरे में प्रवेश करके सतीश के भवानीपुर चले जाने का समाचार घोषित कर दिया।

उपेंद्र ने आश्चर्य में पड़कर प्रश्न किया, ‘‘उसके कौन हैं वहाँ?’’

बिहारी संक्षेप में ‘‘नहीं जानता’’ कहकर चला गया।

सतीश के लिए सभी प्रतीक्षा कर रहे थे, अतएव सभी निराश हो गए।

सरोजिनी सीधी होकर बैठ गई और हठात् लंबी साँस लेकर बोलीं, ‘‘तो अब क्या होगा?’’

ज्योतिष उनके मुख की ओर देखकर स्नेह के साथ धीरे से हँस पड़े।

लेकिन केवल शशांकमोहन निराश न हुए, बल्कि प्रसन्न होकर प्रस्ताव किया, अब सरोजिनी ही कर्णधार बन जाएँ। संगीत से कितने परिमाण में आनंद प्राप्त करने की शक्ति उनमें थी, इसे वही जानते थे, लेकिन सरोजिनी के आपत्ति प्रकट करते ही वे बोल उठे, ‘‘वरन् मैं तो कहता हूँ, पुरुषों के गीत गाना उनके लिए भूल है, उनका गला स्वभावतः ही मोटा और भारी होता है, इसीलिए उनकी शिक्षा कितनी ही क्यों न हो और कितनी ही अच्छी तरह गाने का प्रयत्न क्यों न करें, किसी तरह सुनने योग्य नहीं हो सकता।’’

इस कथन का और किसी ने यद्यपि कुछ विरोध नहीं किया, लेकिन सरोजिनी ने किया। वह बोलीं, ‘‘आपके लिए अवश्य ही योग्य नहीं हैं। हारमोनियम पियानो के नीचे भारी मोटे परदों को तैयार करना संभवतः भूल है, लेकिन फिर भी वे सब तैयार हो रहे हैं, लोग खरीदेंगे भी।’’

शशांकमोहन के पास इस बात का उत्तर नहीं था, तो भी वह अपने गोरे चेहरे को जरा लाल बनाकर कोई बात करने जा रहे थे, लेकिन सरोजिनी एकाएक उठ खड़ी हुईं, बोलीं, ‘‘माँ को खबर दे आऊँ, नहीं तो वे खाना लेकर बैठी रहेंगी।’’

उपेंद्र चौंककर बोले, ‘‘ओ हो! उसका खाना-पीना संभवतः उधर ही हो रहा होगा, शैतान!’’

उपेंद्र के कथन में आंतरिक स्नेह के सिवा और कुछ भी नहीं था और सतीश उनका अत्यंत स्नेह पात्र यदि न रहता तो वे यह बात मुँह से निकाल भी नहीं सकते थे, इस बात को सरोजिनी ने भलीभाँति समझकर हँसकर कहा, ‘‘यह आपका भारी अन्याय है! उनकी रुचि यदि आपकी कुरुचि के साथ न मिले तो दोष आपका ही है, उनका नहीं!’’ अच्छा, माँ को बताकर आती हूँ।’’ कहकर सरोजिनी शीघ्रता से बाहर चली गई।

उसके चले जाने पर तुरंत ही शशांकमोहन उपेंद्र की ओर घूमकर बोले, ‘‘आपके मित्र संभवतः बड़े कट्टर सनातनी हैं।

उपेंद्र जरा हँसकर बोले, ‘‘कम नहीं। पूजा-आह्निक भी करता है।’’

सतीश कभी-कभी छिपकर शराब पीता था, यह बात वह जानते नहीं थे, शायद सपने में भी सोच नहीं सकते थे।

शशांकमोहन ने पूछा, ‘‘वह करते क्या हैं?’’

उपेंद्र बोले, “कुछ भी नहीं। कभी वह कुछ करेगा, ऐसी आशा भी किसी को नहीं है।”

इस समाचार से शशांकमोहन के मन के ऊपर से मानो एक पत्थर उतर गया। प्रसन्न होकर बोले, “इसी पर?”

ज्योतिष इतनी देर तक मौन रहकर सुन रहे थे। उपेंद्र को लक्ष्य कर बोले, “यह बात तो उचित नहीं है उपेन। शारीरिक उत्कर्ष क्या कुछ भी नहीं है? इसके सिवा मैं तो उनकी गान-विद्या पर मुग्ध हो गया हूँ। जो कुछ उन्होंने किया है, हमारे देश में उसके योग्य सम्मान यदि उसको न मिला, तो दुःख की बात है, इसमें संदेह नहीं, लेकिन वह दोष तो हम लोगों का ही है, उसका नहीं और सच बात तो यह है कि मुझे तो तुम्हारे मित्र को देखकर सचमुच ही ईर्ष्या होती है। अच्छी बात है, बूढ़े की आमदनी कितनी है जी?”

उसी समय सरोजिनी ने चुपचाप कमरे में प्रवेश करके अपने भैया की कुरसी की पीठ पर हाथ टेककर खड़ी होकर पूछा, “किसकी भैया?”

ज्योतिष ने कहा, “सतीश बाबू के पिता की।”

उपेंद्र बोले, “ठीक नहीं जानता, संभवतः लगभग दो लाख।”

ज्योतिष दोनों आँखें फाड़कर बोला, “राजा है क्या जी?”

उपेंद्र बोले, “नहीं राजा नहीं, किंतु सदा से ही वे बड़े जमींदार हैं। उस पर बूढ़े; ज्योतिष ने विशेष रूप से आमदनी बढ़ा ली है।”

ज्योतिष कुरसी पर ओठंग कर एक लंबी साँस लेकर बोले, “बिल्कुल ही सौभाग्य के प्रिय पुत्र। स्वास्थ्य, शक्ति रूप, ऐश्वर्य! मनुष्य जिन सबकी कामना करता है, एक पात्र में सभी विद्यमान हैं।”

उपेंद्र हँसने लगे। अंत में बोले, “एक भयंकर दोष भी है। दूसरों का दोष अपने ऊपर ले लेता है, असमय में अपने सिर विपत्ति ढोकर यदि मर न जाए, तो तुम जो कह रहे हो, वह सब ठीक ही है!”

ज्योतिष सीधे हो उठ बैठे, बोले, “विपत्ति ढोकर मर जाएगा, क्यों?”

उपेंद्र बोले, “असंभव नहीं है और पहले हो भी चुका है। क्रोध नाम की वस्तु उसके शरीर में जैसी भयंकर है, प्राणों का मोह भी ठीक उसी परिमाण में कम है। इस कलियुग में रहते हुए भी जिनकी न्याय-अन्याय संबंधी धारणा सतयुग की भाँति रहती है और क्रोध में आ जाने से जिसको हित-अनहित का ज्ञान नहीं रहता, उनके बचे रहने या न रहने पर मैं तो अधिक विश्वास नहीं रखता। सह सकना भी एक शक्ति है, बिन माँगी सहायता करने का लोभ रोक रखना भी विशेष अवस्था में आवश्यक होता है, इसको तो वह समझता ही नहीं। वह मानो उस युग के यूरोप का योद्धा है, इस युग में बंगाल में आकर ग्रहण किया है।”

ज्योतिष हँसकर बोले, “लेकिन कुछ भी कहो, सुनकर श्रद्धा उत्पन्न होती है।”

उपेंद्र बोले, “नहीं भी होती! संसार में रहना है तो बहुत सी छोटी-मोटी बुरी वस्तुओं को तुच्छ मान लेना पड़ता है, यह शिक्षा आज तक उसे नहीं मिली है। किसी दिन होगी या नहीं मैं नहीं; जानता, लेकिन यदि नहीं हुई तो अंतिम परिणाम अच्छा न होगा। उसका भी नहीं, उसके आत्मीय मित्रों का भी नहीं!

ज्योतिष बोले, “लेकिन तुम उसके आत्मीय मित्र हो, तुम क्यों नहीं सिखाते?”

उपेंद्र के मुँह पर हँसी फूट उठी, बोले, “मैं उसका मित्र हूँ अवश्य, लेकिन इस शिक्षा का

भार ऐसे मित्र पर नहीं है, जो सब मित्रों से बड़े होंगे, जो सभी आत्मीयों के ऊपर आत्मीय होंगे, इस विद्या को या तो वे ही सिखाएँगे या चिरकाल तक उसको अशिक्षित ही रहना होगा।"

सरोजिनी इतनी देर तक मौन होकर सुन रही थी। अब मुँह घुमाकर शायद उसने जरा हँसी छिपा ली।

उपेंद्र बोले, "किंतु सतीश की बात आज यहीं तक। मुझे उठना पड़ेगा, दो चिट्ठियाँ लिखनी हैं।"

ज्योतिष को भी आवश्यक कागज-पत्र देखने थे, उनका भी बैठना संभव नहीं था, इसलिए वे भी उठने-उठने की कह रहे थे, किंतु सबके पहले उठ पड़ी सरोजिनी। इस बार जान पड़ा, मानो उसने उपेंद्र को कुछ कहना चाहा, किंतु अंत में कुछ भी नहीं कहा, किसी को भी एक छोटा नमस्कार तक भी नहीं किया। अन्यमनस्क की भाँति वह धीरे-धीरे बाहर चली गई। आज की सभा जैसी जमने की बात थी, उस तरह वह जम नहीं सकी, किंतु भंग हो गई और इस प्रकार बुरी तरह।

उपेंद्र न तो कुछ जानते ही थे, न वे कुछ जान सके।

सोलह

तीक्ष्ण बुद्धि किरणमयी पति की बीमारी के समय इन इने-गिने कई दिनों में उपेंद्र को आत्मीय भाव से अपने पास पाकर पहचान गई। इससे उसकी स्वार्थ हानि की व्याकुल आशंका ही समाप्त हो गई। ऐसी बात नहीं, इस अपरिचित की भाँति बरसने को प्रस्तुत हो गया। ऐसा आदमी उसने कभी देखा नहीं था। ऐसे आदमी के संपर्क में आने के सौभाग्य की किसी दिन वह कल्पना भी न कर सकी थी। इसीलिए इस थोड़े समय के परिचय से ही उसने अपने भविष्य के सभी सुख-दुःखों को इनके ही हाथ में निःशंक होकर सौंप रखा और निर्भय होकर निर्भर कर सकना किसे कहते हैं, इसको यही पहले-पहल अनुभव करके उसका चिरकाराबद्ध प्राण मानो मुक्त-मार्ग का प्रकाश देख सका।

उपेंद्र प्रातः से लेकर रात्रि तक मुमूर्ष मित्र की सेवा कर रहे थे। आवश्यकता की दृष्टि से इस सेवा का मूल्य नहीं था, क्योंकि हारान के जीवन की आशा तनिक भी नहीं थी, किंतु इस सेवा ने किरणमयी की दृष्टि में अपने पति के सूखे शरीर को भी बहुमूल्य बना दिया। इस अर्धमृत शरीर के लोभ से ही वह अकस्मात् व्याकुल हो उठी। इसके आचार-व्यवहार में यह अचिंतनीय परिवर्तन मृत्यु के किनारे खड़े हारान ने भी लक्ष्य किया। बचपन में किरण आत्मीय के घर में पाली-पोसी गई और बचपन में ही उससे भी अधिक अनात्मीय पति के घर आई थी। सास अघोरमयी ने उसका किसी दिन आदर-सत्कार नहीं किया, बल्कि जितना संभव हो सका, उतना ही कष्ट पहुँचाती रही है। पति ने भी उसको एक दिन के लिए भी प्यार नहीं किया। वे दिन के समय स्कूल पढ़ाते थे, रात को स्वयं अध्ययन करते थे और अपनी पत्नी को पढ़ाया करते थे। विद्योपार्जन करने के नशे ने उनको ऐसा ग्रसित कर लिया था कि दोनों में गुरु-शिष्य के कठोर संबंध के अलावा पति-पत्नी के मधुर संबंध का अवकाश ही नहीं मिला। इस प्रकार यह प्रखर बुद्धिशालिनी रमणी शैशव को पार करके परिपूर्ण

यौवन के बीच आ खड़ी हुई थी। इस प्रकार संसार के सौंदर्य-माधुर्य से निर्वासिता शुष्क तथा कठोर हो उठी थी और ऐसे ही स्नेह से वंचित होकर ही वह नारी के श्रेष्ठ धर्म को भी तिलांजलि देने को तैयार बैठी थी। अघोरमयी सब कुछ जानती थीं। उनकी रूपवती वधू इन दिनों सती धर्म की भी पूरी मर्यादा पालन करके नहीं चलती, इस बात को वे जानती थीं। किंतु उनका पुत्र मृत्यु के मुख में था, दुःख के दिन प्रायः निकट थे, उसको ध्यान में रखकर ही संभवतः वह वधू के आचार-व्यवहार की उपेक्षा करती रहती थीं, जो डॉक्टर हारान की चिकित्सा कर रहा था, वह किस आज्ञा से दाम लिए बिना दवा-पथ्य जुटा रहा था और क्यों उनकी गृहस्थी का आधा खर्च दे रहा था, यह बात उनसे छिपी नहीं थी, किंतु मृत्यु पथ के राही पुत्र की चिकित्सा के सामने किसी अन्याय को ही बड़ा करके देखने का साहस उनको नहीं था, ऐसी शिक्षा भी उनकी नहीं थी। इसके अतिरिक्त वे पुत्रवधू को प्यार नहीं करती थीं। उपेंद्र भी इसी जाल में धीरे-धीरे बँधता जा रहा है, उसका मुक्तहस्त अर्थव्यय और अक्लांत सेवा का गुप्त रहस्य बाल्यावस्था की मित्रता को अतिक्रम करके चुपके से एक दूसरे स्थान में मूल विस्तार कर रहा है, इस संबंध में उनको कोई शंका नहीं थी। कल से उपेंद्र आया नहीं, यही बात अघोरमयी अपनी कोठरी की चौखट के बाहर बैठकर एक जीर्ण-शीर्ण मैला लिहाफ ओढ़े सोच रही थीं।

जाड़े का सूर्य तब तक भी डूबा नहीं था, लेकिन इस मकान के अंदर अंधकार की छाया पड़ चुकी थी। सूर्यदेव कब उगते हैं, कब अस्त हो जाते हैं, अच्छे दिनों में भी इसकी खबर इस मकान के लोग नहीं रखते थे, अब दुःख के दिनों में उनके साथ प्रायः समस्त संबंध ही टूट गया था।

अघोरमयी ने पुकारा, "संध्या का दीया जलाकर एक बार यहाँ तो आओ बेटी! एक बात है।"

किरणमयी उसी कमरे में काम कर रही थी, बोली, "अभी तक संध्या नहीं हुई है माँ, तुम्हारा बिछौना बिछाकर आती हूँ।"

अघोरमयी बोली, "मेरा और बिस्तर बिछाना! सोते समय मैं ही बिछा लूँगी। नहीं, नहीं, तुम जाओ बेटी, दीया जलाकर जरा ठंडी होकर बैठो। दिन-रात काम करते-करते तुम्हारा शरीर आधा हो गया, उस ओर भी जरा नजर रखना जरूरी है बेटी।" यह कहकर लंबी साँस लेकर वे चुप हो रहीं। थोड़ी ही देर बाद बहू निकट आकर बैठने लगी, तो वे रोककर बोलीं, "पहले दीयाबत्ती...।"

बहू ने शांत भाव से कहा, "तुम क्यों घबरा रही हो माँ, संध्या होने में अभी बहुत देर है!"

अघोरमयी बोली, "होने दो, नीचे तो अँधेरा है, जरा दिन रहते ही सीढ़ी की बत्ती जला देना अच्छा है। इसी समय शायद उपेन आ जाएगा, कल से वह आया नहीं, क्यों बहू, अभी तक तुम्हारा शरीर धोना, बाल बाँधना तक भी हुआ नहीं है, देख रही हूँ, क्या कर रही है इतनी देर तक?"

सास के कंठ-स्वर में अकस्मात् विरक्ति का आभास देखकर आश्चर्य में पड़ी बहू क्षण भर उनके मुँह की तरफ देखती रही, फिर जरा हँसकर बोली, "मैं रोज इस समय किसी दिन हाथ-मुँह धोती हूँ या कपड़ा बदलती हूँ माँ? अभी तो मेरा रसोईघर का काम ही नहीं खतम

हो पाता। उसके बाद...।”

सास कुछ नाराज होकर बोल उठीं, “बाद का काम उसके बाद होगा बेटी, अभी मैं जो कहती हूँ, उसे करो।”

बहू ने जाने को तैयार होकर कहा, “जा रही हूँ, दीया जलाकर तुम्हारे पास ही आकर बैठती हूँ।”

अघोरमयी खीझ उठीं, बोलीं, “मेरे पास अभी झूठ-मूठ बैठने से क्या होगा बेटी! काम पहले है या बैठना पहले है? दिन पर दिन तुम कैसी होती जा रही हो बहू?”

उसका स्नेह हठात् तिरस्कार का आकार धारण करने के साथ ही ये बातें अत्यंत कठोर और रूखी होकर सभी के कानों में जाकर बिंध गईं। उसने भी क्रोध करके उत्तर दिया, “तुम लोग ही मुझे कैसी बनाती जा रही हो, माँ! हर समय उलटी-सीधी बातें कहते रहने से मानना तो चूल्हे में जाए, समझी भी तो नहीं जातीं। क्या कहना चाहती हो, तुम स्पष्ट ही कहो न!” यह कहकर उत्तर के लिए क्षणभर की प्रतीक्षा न करके वह शीघ्रता से चली गई। बहू का तेजी से चला जाना क्या है, इसे इस घर के सभी समझते थे। अघोरमयी भी समझ गईं।

किरणमयी नीचे-ऊपर दीपक जलाकर अपनी सास के कमरे में जब दीया जलाने आई, तब सास रो रही थीं। उनको रुलाई जब जैसे-तैसे कारणों से ही फूट पड़ती थी।

किरणमयी ठिठककर खड़ी होकर बोली, “तुम्हारी हरिनाम की माला ला दूँ माँ!”

सास लिहाफ के कोने से आँखें पोंछकर रुआँसे स्वर में बोलीं, “ले आओ!”

वह कमरे में जाकर दीवाल पर टँगी माला की झोली उतारकर ले आई और सास के हाथ में देने लगी तो उन्होंने झोली न लेकर बहू का हाथ पकड़ लिया। “जरा बैठो बेटी,” कहकर खींचकर अपने पास बैठाकर उसके मुँह पर, ललाट पर, माथे पर सहला दिया। ठोड़ी छूकर चुंबन किया और बड़ी देर तक कुछ भी न कहकर रोने लगीं। किरणमयी कड़ी हो, बैठकर, यह सब स्नेहाभिनय सहती रही।

थोड़ी ही देर बाद अघोरमयी ने फिर एक बार लिहाफ के कोने से आँखों के आँसू पोंछकर कहा, “शोक से तप्त मैं पागल हो गई हूँ, मेरी एक साधारण सी बात पर तुमने क्रोध क्यों किया, बताओ तो बेटी?”

किरण ने अविचलित भाव से कहा, “शोक-पाप तुम्हारे अकेले का नहीं है माँ! हम लोग भी मनुष्य हैं, उसे भूलकर एक ही बात कह देना ही तो यथेष्ट है, नहीं तो हजार बातों से क्रोध नहीं होता।”

अघोरमयी ने आँखें पोंछते-पोंछते कहा, “उस बात को क्या मैं नहीं जानती बेटी, जानती हूँ, किंतु मेरा एक-एक करके सब कुछ ही चला गया। अब तुम ही सब हो, तुम ही मेरी लड़के-लड़की हो। हारान के शोक से यदि छाती कड़ी रख सकूँगी तो तुम्हारा मुँह देखकर ही रख सकूँगी।” यह कहकर फिर एक बार लिहाफ आँखों पर रखकर वे रोने लगीं, किंतु इस छलना से किरण भुलावे में नहीं पड़ी। वह मन ही मन जल उठने पर भी शांत भाव से बोली, “तुम किस तरह छाती कड़ी करोगी, इसको तुमने अभी से ठीक कर रखा है, किंतु मैं कैसे छाती कड़ी करूँगी, इस पर तो तुमने सोचा नहीं है माँ! फिर यह भी कहती हूँ, ये सब बातें इस समय क्यों? जब सचमुच ही छाती कड़ी करने का दिन आएगा तथा समय की

खींचा-तानी नहीं होगी, वह समय इतना थोड़ा सा नहीं आता माँ कि पहले से तैयार न होने से समय ही नहीं मिल पाता।

बहू की बातें मधुर न लगने पर भी इनके भीतर कितना व्यंग्य छिपा हुआ था, अघोरमयी यह न जान सकीं, बल्कि वे बोलीं, "समय आने में देर ही क्या है बेटी, उपेन उस दिन जिस अंग्रेज डॉक्टर को ले आए थे, वे भी अच्छी बातें कुछ भी नहीं कह गए। मैं केवल यही कहती हूँ बेटी, उपेन यदि उस समय न आ जाता, तो उस दशा में हम लोगों की कैसी दुर्दशा हो जाती!"

वह चुप रहकर सुन रही है, देखकर वे उत्साहित होकर कहने लगीं, "उस को लड़कपन से ही मैं जानती हूँ। नोआखाली में वे दोनों भाइयों की तरह मेरे पास आते-जाते थे, तभी से मौसी कहकर पुकारता है। जैसे बड़े आदमी का लड़का है, वैसे स्वयं भी यह बड़ा उदार हो गया है। उस दिन मुझे रोते देखकर बोला, "मौसी, मुझे हारान भैया का छोटा भाई ही समझ रखना। इससे अधिक कहने की बात मेरे पास कुछ भी नहीं है।" मैंने कहा, "बेटा मुझे किसी तीर्थस्थान में छोड़ आना। जो इने-गिने दिन जीवित रहूँगी, मैं गंगा स्नान करते-करते गंगा माई की गोद में जाकर अपने हारान के पास रह सकूँ।"

फिर वह बोल न सकीं। इस बार वह व्याकुल होकर रो पड़ीं। बहू चुप हो गई थी, चुप ही रह गई। वे कुछ देर तक रोकर छाती का भार हलका करके अंत में आँखें पोंछकर गीले स्वर से बोलीं, "रह-रहकर यही बात मन में उठ जाती है कि वह याद नहीं आता तो, नीचे कोई पुकार रहा है क्या बेटी?"

बहू ने कहा, "नीचे दासी बरतन माँज रही है, किसी के बुलाने पर दरवाजा खोल देगी।"

सास ने घबराकर कहा, "नहीं-नहीं बहू, तुम भी जाओ। जब दासी काम में लगी रहती है, तब वह कुछ भी नहीं सुनती।"

किरण कुछ भी उद्वेग प्रकट न करके धीरे से बोलीं, "मुझे भी काम है माँ, रसोई पकाना...।"

अघोरमयी अकस्मात् भड़क उठीं, बोली, "रसोई तो कहीं भागी नहीं जा रही है बेटी! तुम क्यों नहीं समझतीं?"

किरण उठ खड़ी हुई, बोली, "मुझे समझने की जरूरत भी नहीं है। अपने सभी लोगों के चले जाने पर भी यदि हमारे दिन बीते हैं तो उपेन बाबू के न रहने पर भी काम न रुकेगा।" कहकर रसोईघर की ओर वह चली गई।

अघोरमयी क्रोध से बातें न कह सकी और जितनी देर तक बहू दिखाई पड़ती रही, उतनी देर तक उनके जलते हुए दोनों नेत्र मानो उसे ठेलकर विदा करते रहे। इसके बाद वह अत्यंत क्रोध के साथ दासी को पुकारने लगीं। उसकी भी आहट नहीं मिली। वह शीत के भय से संध्या के पहले खन्-खन्, झन्-झन् शब्द करके बरतन माँजने-धोने का काम समाप्त कर रही थी, उसका क्रुद्ध आह्वान उसे सुनाई नहीं पड़ा। तब अपने कमरे का दीपक हाथ में लेकर बरामदे के पास आकर चिल्लाकर वे बोलीं, "तूने क्या अपने कानों में रुई ठूँस ली है, क्या तुझे सुनाई नहीं पड़ता कि उपेन बाबू एक घंटे से खड़े बाहर पुकार रहे हैं।"

यह भयंकर आरोप दासी ने सुन लिया और उपेन का नाम सुनकर उठ पड़ी। दौड़ती हुई जाकर उसने किवाड़ खोल दिया, लेकिन कोई भी नहीं था। बाहर गरदन बढ़ाकर अंधकार

में जितनी दूर दिखाई पड़ा, अच्छी प्रकार देखने पर भी किसी को न देख पाने पर वापस आकर बोली, "कोई भी तो नहीं है माँ!"

अघोरमयी दीपक हाथ में लिए उद्विग्न होकर प्रतीक्षा कर रही थीं। अविश्वास करके बोलीं, "नहीं क्या रे! मैंने तो अपने ही कानों से उनकी पुकार सुनी है, तूने गली में जाकर एक बार देखा क्यों नहीं?"

दासी ने कहा, "मैंने देखा है, कोई नहीं है।"

यह बात विश्वास करके के योग्य नहीं थी। उपेन कल आया नहीं, तो क्या आज भी नहीं आएगा? इसीलिए खीझकर बोलीं, तू जा, फिर एक बार अच्छी तरह देख आ, कोई है या नहीं?"

बाहर अँधेरी गली में दासी को जाने में आपत्ति थी। उसने भी खीझकर उत्तर दिया, "तुम्हारी यह कैसी बात है माँ! वह क्या आँखमिचौनी खेल रहे हैं कि अँधेरी गली में जाकर हाथ से टटोलना पड़ेगा?" यह कहकर वह काम में लग गई।

अघोरमयी अपने कमरे में वापस आकर निर्जीव की भाँति बिछोने पर लेट गई। बीमार लड़के का समाचार जानने का उत्साह भी उनको नहीं रहा। उनको बार-बार केवल यही खयाल होने लगा कि वह कल आया ही नहीं, आज भी नहीं आया। संभव-असंभव तरह-तरह के कारणों को ढूँढ़ने में यह बात उनके मन में एक भी नहीं आई कि वह कलकत्तावासी नहीं है, अन्यत्र उसका घर-बार और आत्मीय स्वजन हैं, वहाँ लौट जाना भी संभव है। सोचते-सोचते एकाएक उनको खयाल आया कि अप्रसन्न तो नहीं हो गया। इस बात को दुहराने के साथ ही उनका हृदय आशंका से भर गया और बहू के पल भर पहले के आचरण के साथ मन ही मन मिलाकर देखते ही उसका संदेह दृढ हो गया, "ऐसी ही तो बात है। बहू यदि अब...वह फिर लेटी न रह सकीं, उठकर रसोईघर की तरफ चली गईं।"

किरणमयी जलते हुए चूल्हे की ओर निहारती हुई चुपचाप बैठी हुई थी। जलते हुए अंगारे की लाल आभा का अत्यधिक प्रकाश उसके मुख पर पड़ रहा था। माथे पर कपड़ा नहीं था। आज उसने बाल भी बाँधे नहीं थे, इधर-उधर बिखरे हुए केशों को किसी तरह ठीक कर रखा था। अघोरमयी दरवाजे के सामने अवाक् होकर खड़ी रही। आज जो वस्तु उनकी दृष्टि में पड़ी, उसको संपूर्ण रूप से हृदयंगम करने की सामर्थ्य उनकी नहीं थी। जिस स्तब्ध मुख-मंडल पर चूल्हे की लाल आभा से युक्त प्रकाश विचित्र तरंगों की भाँति खेलता हुआ घूम रहा था, वह मुँह उनकी समस्त अभिज्ञता के बाहर था, इस मुख में कोई त्रुटि है या नहीं, इसकी आलोचना नहीं चल सकती। निर्दोष भी इसे नहीं कहा जा सकता। यह तो आश्चर्यजनक है। इसको पहले कभी नहीं देखा है, यह आश्चर्य है। निर्निमेष दृष्टि से बड़ी देर तक देखते रहने पर भी हठात् उनके मुँह से लंबी साँस निकल पड़ी।

उस शब्द से चौंककर बहू ने देखा, सास खड़ी हैं। गिरे हुए आँचल को माथे पर खींचकर उसने कहा, "तुम यहाँ क्यों माँ?"

कंठस्वर सुनकर वे और भी चौंक पड़ीं। ऐसा शांत, ऐसा करुण कंठ-स्वर उन्होंने पहले कभी नहीं सुना था। झट बोल उठीं, "तुम अकेली ही रसोई पका रही हो बेटी, इसीलिए जरा बैठने के लिए आई हूँ।"

बहू उनकी ओर पीढ़ा ठेलकर चूल्हे की तरफ देखती हुई चुप हो रही। उसके मन में फिर

झुँझलाहट सिर उठाकर खड़ी हो गई। गंध जिस तरह हवा का आश्रय ग्रहण करके फूले के बाहर चली आती है, किंतु आँधी में उड़ जाती है, किरणमयी का तत्कालीन मनोभाव सास के आकस्मिक आगमन से उसी तरह क्षण भर में बाहर आने के साथ ही इस छद्म स्नेह के तूफान से उड़ गया। यह सत्य नहीं है—भद्दी प्रताड़ना मात्र है, किंतु झगड़ा करना उसको अच्छा नहीं लग रहा था। निरंतर झगड़ा करके वह सचमुच ही थक गई थी। कुछ देर तक स्थिर रहकर अघोरमयी बोलीं, "दासी को बुला दूँ?"

किरणमयी अंदर के समस्त विद्रोह को रोककर शांत भाव से बोली, "क्या आवश्यकता है माँ। मैं नित्य ही अकेली रसोई पकाती हूँ, अकेली रहने का मेरा स्वभाव हो गया है, बल्कि वह कमरे में अकेले पड़े हैं, उनके पास जाकर कोई बैठता तो अच्छा होता।"

बीमार संतान का उल्लेख होने से जननी आघात पाकर व्यग्र होकर बोली, "तो मैं जाती हूँ, तुम भी जल्दी ही काम पूरा करके आ जाना बेटी।"

इस बीच ही उपेंद्र अपने घर चले गए थे, सतीश भी केवल एक ही दिन उपेंद्र के साथ हारान को देखने आया था, फिर नहीं आया। वह अपनी व्यथा लेकर ही घबराहट में पड़ा था। उपेंद्र ने उसका अन्यमनस्क भाव जाकर उसको फिर नहीं बुलाया, चिकित्सा और अन्यान्य व्यवस्थाएँ वह स्वयं ही कर रहे थे। केवल कलकत्ता छोड़कर घर लौट जाने के दिन सतीश को बुलाकर बीच-बीच में खबर लेते रहने और उनको पत्र लिखकर समाचार भेजने का अनुरोध करके चले गए थे। आज स्कूल से लौटते ही सतीश को उपेंद्र का पत्र मिला। उन्होंने लिखा है, "मुझे आशा है, तुम्हारी पढ़ाई अच्छी तरह चल रही है। कई दिनों से हारान भैया का समाचार न मिलने से चिंतित हूँ। यद्यपि मैं जानता हूँ, समाचार देने की आवश्यकता ही नहीं हुई, इसलिए तुमने नहीं दिया तथापि उनकी चिकित्सा कैसी हो रही है, लिखना।"

सतीश की पीठ पर मानो कोड़े की मार पड़ी। उसने एक दिन भी जाकर खोज-खबर नहीं ली। इस बीच उस घर में कितनी ही घटनाएँ घटित हो सकती हैं, तो भी उसके ही ऊपर निर्भर रहकर उपेन भैया घर चले गए हैं। वह शीघ्रता से नीचे उतर गया। बिहारी जलपान ला रहा था, धक्का खाकर उसकी थाली और गिलास गिर पड़ा। सतीश ने घूमकर देखा भी नहीं। मार्ग में आकर एक खाली गाड़ी पर चढ़ बैठा और तेज चलाने का अनुरोध करके मार्ग की ओर सतर्क होकर देखता रहा। उसको भय था कि कहीं पहचान में न आने से गली छूट न जाए। बीस मिनट के बाद, जब छोटी सी गली में पहुँचा, तब तक भी दिन का प्रकाश शेष था, पैरों के नीचे खुला पनाला और चलने का रास्ता था और ऊपर आकाश और प्रकाश तब तक भी मिलकर एक नहीं हुए थे। तेज कदम बढ़ाकर १३ नंबर के मकान के सामने पहुँचते ही किवाड़ खुल गए। कोई मानो उसके ही लिए प्रतीक्षा कर रहा था।

सतीश का हृदय काँप उठा, एकाएक वह प्रवेश न कर सका।

द्वार के निकट ही किरणमयी खड़ी थी। उसने अपना हँसता हुआ मुख जरा बाहर निकालकर अत्यंत आदर से कहा, "आओ बबुआजी, खड़े क्यों हो?"

फिर वही बबुआजी! लज्जा से सतीश का मुख लाल हो गया, लेकिन उसी क्षण सँभलकर वह विनीत भाव से बोला, "लगता है, आपने अभी तक मुझे क्षमा नहीं किया।"

किरणमयी ने कहा, "नहीं, तुमने तो क्षमा माँगी नहीं। माँगने के पहले ही अपनी ही

इच्छा से देने से मानो लोगों को मानहानि होती है। मानहानि करने योग्य कम दाम की वस्तु तो तुम हो नहीं बबुआजी।''

उसके इस प्रसन्न रहस्यपूर्ण वार्त्तालाप के बीच भी ऐसी एक गंभीर करुणा स्पष्ट हो उठी कि सतीश ने मुँह झुका गंभीर कंठ से कहा, ''मेरा कुछ भी दाम नहीं है बहू। मेरी कोई मानहानि न होगी, मुझे आप क्षमा करें!''

किरणमयी हँसकर बोली, ''ऐसी बहुत सी बातें हैं बबुआजी, जिनको क्षमा करने से ही वे समाप्त हो जाती हैं। आज तुमको माफ करने पर यदि फिर सतीश बाबू कहकर पुकारना पड़े तो उस दशा में यह मैं कहे देती हूँ बबुआजी, वह क्षमा तुम पाओगे नहीं। अपने को पकड़ रखने की वही जो थोड़ी सी जंजीर तुमने स्वयं अपने हाथों से उठाकर दे दी है, उसको अपनी मीठी-मीठी बातों से भुलावे में डालकर वापस ले लोगे, उतनी मूर्ख यह बहू नहीं है।'' यह कहकर उसने विशेष रूप से गरदन हिला दी, लेकिन सतीश चौंक उठा। यह जंजीर बाँधने-कसने की उपमा उसे जँची नहीं, वरन् हठात्, उसे मालूम हुआ, उसको असावधान पाकर यह लड़की सचमुच ही कोई कहीं जंजीर उनके पैरों में बाँध रही है और क्षण भर में उसकी समस्त सहज बुद्धि आत्मरक्षा के लिए सजधज कर खड़ी हो गई। घर में प्रवेश करते समय उसकी आँखों में जो दृष्टि कर्तव्यभ्रष्टता के धिक्कार से कुंठित और लज्जा से विनम्र दिखाई पड़ी थी, धक्का खाकर वह संदिग्ध और तीव्र हो उठी।

किरणमयी ने कहा, ''तुम्हारा मुँह सूख गया है बबुआजी, शायद अभी तक तुमने जलपान भी नहीं किया है? आओ, ऊपर चलो, कुछ खा लो।''

सतीश कुछ भी न कहकर किरणमयी के पीछे चल पड़ा।

ऊपर चढ़कर बहू ने इधर-उधर देखकर कहा, ''आज दासी को साथ लेकर माँ काली बाड़ी गई हैं। रसोईघर में बैठकर तुम मेरी पूड़ियाँ बेल देना, मैं छान लूँगी। बेल सकोगे तो?'' यह कहकर वह हँस पड़ी। बोली, बेल सकोगे, यह तो तुमको देखने से ही ज्ञात होता है, आओ।''

सतीश ने अपने हृदय के द्वंद्व को रोककर भले आदमी की तरह प्रश्न किया, ''पूड़ी बेल सकता हूँ, यह बात क्या मेरे शरीर पर लिखी है?''

किरणमयी बोली, ''लिखावट पढ़ने की जानकारी रहनी चाहिए! उस रात मेरे शरीर पर ही क्या कुछ लिखा था, जिसे तुम पढ़ गए थे!''

सतीश ने फिर मुँह झुका लिया। उसके बाद दोनों मिलकर जब भोजन बनाने लग गए और इस संघर्ष की गरमी बहुत कुछ ठंडी हो चली, तब किरणमयी ने पूछा, ''तुम्हारे बारे में बहुत सी बातें तुम्हारे उपेन भैया के मुँह से मैं सुन चुकी हूँ। अच्छा बबुआजी, वह इस समय यहाँ नहीं हैं, शायद घर लौट गए हैं?''

सतीश के हाँ कहने पर किरणमयी ने कहा, ''वह यहाँ नहीं हैं, लेकिन माँ विश्वास करना नहीं चाहतीं। माँ कहती हैं, उनको बिना बताए उपेन बाबू न जाएँगे, उनको शायद एकाएक चला जाना पड़ा है।''

सतीश को इस बात की ठीक-ठीक जानकारी नहीं थी। वस्तुतः उसे कुछ भी ज्ञात नहीं था। इस बीच इन लोगों के कारण ही दोनों मित्रों में जो अप्रिय बातें हो चुकी हैं, वे भी कही नहीं जा सकतीं, सतीश चुप हो रहा। न कहकर चले जाने का कारण क्या है, इसका वह किसी तरह भी अनुमान न कर सका, लेकिन किरणमयी ने बात को दबाने नहीं दिया,

बोली, "यह काम तुम्हारे भैया का अच्छा ही हुआ बबुआजी। कहकर जाने से कोई उनको पकड़कर नहीं रखता, फिर भी माँ इस तरह चिंतित होकर विकल नहीं होतीं! मैं किसी भी तरह उनको समझा नहीं सकती कि उपेन बाबू बराबर यहाँ नहीं रहते, अन्यत्र उनका घर-द्वार है, काम-काज है, यह सब छोड़कर कोई मनुष्य कितने दिन दूसरे का दुर्भाग्य लेकर रुका रह सकता है? लेकिन बूढ़ी के सामने युक्ति नहीं चलती। अपनी आवश्यकता के सामने संसार में वह कुछ देख ही नहीं सकतीं।"

सतीश उस बात का ठीक-ठीक उत्तर न देकर बोला, "उपेन भैया इतने दिन बाहर थे, यही तो आश्चर्य है! कहीं भी अधिक दिन रहने का उनका स्वभाव नहीं है, विशेषतः ब्याह के बाद से एक रात भी कहीं रखने के लिए हमें सिर पटकना-फोड़ना पड़ता है। पहले सभी विषयों में वह हम लोगों के स्वामी थे, अब एक-एक करके सब छोड़कर घर के कोने में जा छिपे हैं, कचहरी में बिल्कुल ही न जाने से काम नहीं चलता, इसीलिए शायद एक बार चले जाते हैं। यही एक बार देखिए न।"

बहू ने बाधा देकर कहा, "बैठो बबुआजी, तुम्हारे लिए खाने की जगह ठीक कर दूँ तो बैठूँ। तुम खाते-खाते बातें करोगे, वह अच्छा होगा।" यह कहकर आसन बिछाकर थाली में खाने की चीजें सजाकर वह पास बैठ गई और अत्यंत आग्रह के साथ बोली, "उसके बाद?"

सतीश पूड़ी का एक टुकड़ा मुँह में डालकर बोला, "वह एक विवाह कराने के लिए बारात में जाने की बात है बहू! उपेन भैया बड़े अगुआ हैं, कितने लोगों के ब्याह उन्होंने कराए हैं, इसका ठिकाना नहीं है। हम लोगों के दल के ही एक लड़के का ब्याह था, अगुआई से आरंभ करके सारा उद्योग-आयोजन उपेन भैया ने अपने हाथों किया। फिर भी, ब्याह की रात को भैया को देखा नहीं गया। 'छोटी बहू की तबीयत ठीक नहीं है' कहकर किसी तरह भी घर से बाहर नहीं निकले। ओह! हम सभी लोगों ने मिलकर कितना अनुरोध किया बहू! लेकिन कुछ भी फल नहीं हुआ। पत्थर के देवता से वरदान मिल गया होता, लेकिन अपने भैया को सहमत नहीं किया जा सका। 'मैं अच्छी तरह हूँ' कहकर छोटी बहू ने स्वयं अनुरोध किया तो बोले, "तुम्हारे भले-बुरे का विचार करने का भार मेरे ऊपर है, तुम्हारे ऊपर नहीं, तुम चुप रहो।"

किरणमयी भी मौन होकर बैठी रही। उसका समस्त अतीत जीवन उसके ही अंधकार अंतस्तल में उतरकर टटोलकर न जाने किसको ढूँढ़ता हुआ घूमने लगा, लेकिन सतीश कुछ न समझ सका। कौन कहानी कहाँ किस तरह जा लगती है, उसकी खबर क्या वह रखता है! वह कहने लगा, "इस अनुपस्थिति से किसने किस तरह निंदा की, किसने क्या कहकर उपहास किया था, कितना आनंद चौपट हो गया था, यह सब।"

लेकिन श्रोता कहाँ था? इस तुच्छ कहानी से तो किरणमयी तब बहुत दूर चली गई थी।

एकाएक सतीश ने पूड़ी खाना और गप्प करना बंद करके पूछा, "आप क्या सुन रही हैं, क्या सोच रही हैं?"

किरणमयी चकित होकर हँसकर बोली, "सुनती तो अवश्य हूँ, लेकिन मैं कहती हूँ, बीमारी-तकलीफ में सेवा करना ही तो अच्छा है।" सतीश ने उत्तेजित होकर कहा, "अच्छा है, लेकिन यह ज्यादती करना क्या अच्छा है? उस बार जब छोटी बहू को छोटी माता निकल पड़ी थीं, उपेन भैया आठ-दस दिन उनके सिरहाने से न उठे। घर में इतने लोग हैं,

उनको नहाना-खाना बंद करने की क्या आवश्यकता थी?"

किरणमयी ने क्षण भर उसके मुख की ओर चुपचाप देखते रहकर पूछा, "अच्छा बबुआजी, तुम्हारे उपेन भैया क्या छोटी बहू को बहुत ही प्यार करते हैं?"

सतीश बोला, "ओह! बहुत अधिक प्यार करते हैं।"

किरणमयी फिर कुछ देर तक चुप रहकर ताकती रही, बोली, "छोटी बहू देखने में कैसी हैं बबुआजी? अत्यंत सुंदरी हैं?"

"हाँ, अत्यंत सुंदरी।"

किरणमयी ने मुसकराकर कहा, "मेरी तरह?"

सतीश मुँह झुकाए रहा। क्षण भर बाद कुछ सोचकर मुँह ऊपर उठाकर उसने पूछा, "आप क्या यह बात सचमुच ही जान लेना चाहती हैं?"

"सचमुच ही बबुआजी।"

सतीश बोला, "देखिए, मेरे मतामत का अधिक मूल्य नहीं है, लेकिन अगर कहना ही हो तो उस दशा में मैं यही कहता हूँ, आपकी तरह सुंदरता इस संसार में नहीं है।"

किरणमयी कोई उत्तर देने जा रही थी, लेकिन ठीक उसी समय नीचे चिल्लाहट की आवाज से उठ पड़ी। माँ वापस आ गई थीं।

सतीश अपना जलपान समाप्त कर ज्योंही बाहर आया, त्योंही अघोरमयी के सामने पड़ गया। उन्होंने सतीश के मुँह की ओर देखकर बहू से पूछा, "यह उपेन बाबू के भाई हैं न बहू? वह कहाँ हैं?"

किरणमयी बोली, “वह अपने घर चले गए।”
अघोरमयी संक्षेप में ‘अच्छा’ कहकर अपने लड़के के कमरे में चली गईं।
सतीश ने कहा, “तो मैं अब जाता हूँ बहू।”
किरणमयी अन्यमनस्क भाव से बोली, “जाओ।”
सतीश दो-एक कदम जाकर ही लौटकर बोला, “उपेन भैया ने पत्र भेजा है। उन्होंने पूछा है, हारान भैया की चिकित्सा कैसी चल रही है?”
किरणमयी बोली, “चिकित्सा बंद है। जो डॉक्टर चिकित्सा कर रहा था, उनसे कराने की राय नहीं है, लेकिन, राय क्या है, यह भी बताकर नहीं गए हैं।”
सतीश आश्चर्य में पड़कर बोला, “यह कैसी बात! चिकित्सा बिल्कुल ही बंद करके बैठी हुई हैं, यह कैसी व्यवस्था है?”
“व्यवस्था न करके ही वह चले गए। मुझे मालूम हो रहा है, मानो एक बार उन्होंने कहा था, सतीश यहीं रहता है, वही व्यवस्था करेगा, पर तुम भी तो नहीं आते बबुआजी!”
सतीश क्षण भर अवाक् होकर खड़ा रहा, बोला, “कल सवेरे ही आऊँगा।” कहकर वह शीघ्रता से बाहर चला गया।

सत्रह

उस रात सतीश के चले जाने पर बड़ी देर तक किरणमयी अँधेरे बरामदे में चुपचाप बैठी रही। अंत में उठकर रसोईघर में जाकर, रसोई चढ़ाकर फिर मन मारकर बैठी रही।
उसके हृदय में आज सतीश अपने अनजाने में सुरबाला आदि अपरिचित नर-नारियों का दल लाकर यह जो एक अद्‌भुत नाटक का अस्पष्ट नाटक आरंभ करके चला गया, शून्य कमरे में अकेली बैठकर उसको स्पष्ट रूप से देखने का लोभ एक ओर किरणमयी को जैसा प्रबल हो उठा, दूसरी ओर कोई अनिश्चित आशंका उसके हाथ-पैर, नेत्रों की दृष्टि को उसी प्रकार भारी बनाने लगी। उसे ऐसा जान पड़ा मानो अँधेरी रात के भूत की कहानी की भाँति यह संस्मरण उसको लगातार एक हाथ से खींचने और दूसरे हाथ से ठेलने लगा।
इसी प्रकार विचित्र स्वप्नजाल में पड़ी हुई वह जब अत्यंत अभिभूत हो रही थी, उसी समय जूते की आवाज सुनकर चौंककर निगाह दौड़ाते ही उसने देखा, दरवाजे के बाहर ही डॉक्टर अनंगमोहन खड़े हैं।
किरणमयी माथे के कपड़े को थोड़ा सा खींचकर उठ खड़ी हुई। डॉक्टर ने यह देखकर भौंहें तान लीं।
इसके पूर्व यह डॉक्टर ठीक इसी स्थान पर अनेक बार आकर खड़े हुए हैं और उसके कर-कमलों की बनी रसोई के लोभ से अतिथि बनने का आवेदन करके कई बार हँसी-मजाक कर गए हैं। उसी पुरातन इतिहास की पुनरावृत्ति की कल्पना करके ही किरणमयी का चित्र तीखा हो उठा। वह कठोर बनकर उसी की प्रतीक्षा करके खड़ी रही, लेकिन डॉक्टर ने मजाक नहीं किया, क्रुद्ध गंभीर मुँह से कुछ देर तक चुप रहकर कहा, “दस-बारह दिन मुझे बाहर रहना पड़ा, इसलिए हारान बाबू के लिए मैं बहुत ही चिंतित हो गया था, लेकिन आकर देख रहा हूँ, उद्वेग का कुछ भी कारण नहीं था।”

किरणमयी ने गरदन हिलाकर कहा, “नहीं, वह अच्छी तरह ही थे।”

“अच्छी तरह रहें, वही अच्छा है। अब तो मेरी कोई आवश्यकता है नहीं?”

किरणमयी ने इसके उत्तर में गरदन हिलाकर कहा, “नहीं।”

डॉक्टर ने कहा, “तुम लोगों को मेरी आवश्यकता न रहने पर भी मेरी आवश्यकता अभी तक समाप्त नहीं हुई। यही बात कहने के लिए मुझे इतनी दूर आना पड़ा है।”

किरणमयी ने मुँह न उठाकर ही धीरे-धीरे कहा, “अच्छी बात तो है, माँ अभी तक जाग रही हैं, उनसे कह देना जरूरी है, मुझे कहना बेकार है।”

डॉक्टर ने अपने मुँह को अत्यंत गंभीर बनाकर कहा, “मैं उनके पास से ही आ रहा हूँ उनका भी कहना है, जरूरत नहीं है। जरूरत खत्म हो गई है, यह मैं भी समझ गया हूँ, लेकिन ‘डॉक्टर की विदाई’ से एक कहावत है, उसको भूल जाने से काम नहीं चलता।”

किरणमयी चुप हो रही।

डॉक्टर व्यंग्य करके कहने लगे, “आज पाँच-छह महीने के बाद यह भार तुम ही लोगी अथवा तुम्हारी सास ही लेंगी, यह तुम लोगों की आपसी बात है, किंतु ‘जाओ’ कह देने से ही तो डॉक्टर नहीं चला जाता किरण।”

डॉक्टर के मुँह से अपना नाम सुनकर आज वह मानो उसको तीर की भाँति बींध गया। वह इस तरह सिहर उठी कि उस क्षीण प्रकाश में भी डॉक्टर ने उसे देख लिया।

किरणमयी ने मधुर कंठ से पूछा, “क्या चाहते हैं आप, रुपया?”

डॉक्टर ने हँसी का बहाना दिखाकर कहा, “‘आप’ क्यों कहती हो? यहाँ और कोई उपस्थित नहीं है, ‘तुम’ कहने में भी दोष नहीं होगा, लेकिन इतने दिनों तक मैं क्या माँगता रहा हूँ, सुनूँ? क्या वह रुपया था?”

पुनः किरणमयी का समूचा शरीर कंटकित हो उठा।

डॉक्टर बोले, “रुपया नहीं चाहता, यह बात कहना बहुत कठिन है। अब तुमको जबकि उसका अभाव नहीं है, तब रुपया देकर ही विदा कर दो। मैं दोनों ही ओर से ठगे जाने को राजी नहीं हूँ, लेकिन तुमको इतने दिनों में मेरे मन की बात ज्ञात हो गई है, इसके लिए मैं तुमको धन्यवाद देता हूँ। आज अब मैं ज्यादा तंग न करूँगा। क्या मैं कल एक बार आ सकता हूँ?”

यह मनुष्य भीतर ही भीतर किस तरह जल रहा था और यह सब उसका ही फेंका हुआ उत्तप्त भस्मावशेष है, इसे निश्चित समझकर भी किरणमयी ने शांत दृढ स्वर से मुँह ऊपर उठाकर कहा, “नहीं। आप ठहरिए, मैं इसी समय ला देती हूँ।” कहकर पास का दरवाजा खोलकर वह शीघ्रता से चली गई।

इस बार डॉक्टर शंकित हो उठे। किरण को वे पहचानते थे। कहाँ क्या लेने के लिए गई है, हठात् इतनी रात को कैसा एक असंभव कांड कर कहाँ का हंगामा कहाँ खींच लाएगी! वह चोट खाकर गई है, लौटकर निर्दय प्रतिघात अवश्य करेगी। उसके सुनिश्चित प्रतिशोध की कठोरता की कल्पना कर अनंगमोहन आशंका से स्तंभित हो रहा।

किरणमयी को लौट आने में विलंब नहीं हुआ। उसने चुपचाप मुँह झुकाए आँचल में बँधे हुए कुछ आभूषण डॉक्टर के पैरों के निकट बिखेरकर धीरे-धीरे कहा, “यह ले लीजिए, आपका पावना कितना है, उसका हिसाब इतने दिनों के बाद करना व्यर्थ है। इतना समय

भी मेरे पास नहीं है, धीरज भी न रहेगा, जो कुछ मेरे पास था, सब ही आपको लाकर मैंने दे दिया है, इसी को लेकर हमें छुटकारा दीजिए, आप जाइए।"

अनंग चुप हो रहे। किरण ने कहा, "देर कर रहे हैं, किसलिए? विश्वास कीजिए, मेरे पास और कुछ भी नहीं है। जो कुछ था, सब लाकर मैंने दे दिया है, रात हो रही है, आप विदा होकर जाइए।"

अनंग भयग्रस्त होकर बोले, "मैंने तो तुम्हारे शरीर के गहने माँगे नहीं, केवल रुपया माँगा था। वह भी..."

किरण अत्यंत उग्र भाव से बोली, "गहने भी रुपए हैं, यह बात समझने की उमर आपकी हो गई है। व्यर्थ ही बहाना करके क्यों झूठमूठ देर कर रहे हैं!"

इस बार अनंग जोर से सिर हिलाकर बोल उठे, "नहीं, मैं किसी तरह भी यह सब न ले सकूँगा।"

किरणमयी निकट ही बैठ गई थी, विद्युत् वेग से उठ खड़ी हुई और बोली, "क्या? क्यों न ले सकेंगे? आप दया कर रहे हैं किस पर? आपको जो कुछ भी मैंने दिया, उसे किसी तरह भी मैं वापस न ले सकूँगी, यह बात मैं निश्चित रूप से कहे देती हूँ।" एक क्षण मौन रहकर उसने कहा, "आप यदि न भी लेंगे तो कल यह सब ही गरीबों में बाँट दूँगी, लेकिन घर में रखकर किसी तरह भी पति का अकल्याण न करूँगी।" यह कहकर पैरों से उन सबको जरा ठेलकर उसने कहा, "लीजिए, उठाइए इन सबको।"

अंतिम बात इतनी कड़ी सुनाई पड़ी कि हतबुद्धि अनंगमोहन झुककर उन सबको बटोरने लगा।

किरणमयी क्षण भर उस ओर ताकती रही, फिर अपनी उग्रता को सँभालकर घृणा के साथ उसने कहा, "ले जाइए, ये सब चिह्न इस मकान में जब तक रहेंगे, तब तक मेरे मुँह में अन्न न रुचेगा, न आँखों में नींद आएगी।"

डॉक्टर सबको समेटकर उठ खड़ा हुआ। किरणमयी ने अधीर भाव से कहा, "रात तो बहुत हो गई।"

डॉक्टर ने कहा, "जा रहा हूँ, लेकिन तुमने भी भूल की। ये गहने मैंने तो दिए नहीं, सब ही तुम्हारे अपने हैं। तो भी, क्यों मेरे न मिलने से तुम गरीब-दुखियों में बाँट दोगी, यह मैं समझ न सका। मुझे तुम क्षमा करो किरण।"

किरण धमकाकर बोली, "फिर मेरा नाम लेते हैं! हाँ, वे सब मेरी ही वस्तुएँ हैं अवश्य, लेकिन उन सबके मोह से ही मैंने आपसे सहायता ली थी। रात बहुत हो गई है। डॉक्टर साहब।"

डॉक्टर ने अपने नाम का छपा कार्ड निकालकर कहा, "मेरे मकान का यह पता।"

"दीजिए!" कहकर किरणमयी ने हाथ बढ़ाकर ले लिया और पीछे की ओर जाकर जलते हुए चूल्हे में उसे फेंककर कहा, "इससे अधिक मुझे जरूरत न पड़ेगी। आप अभी-अभी मुझसे क्षमा माँग रहे थे न? आपको पूर्णरूप से क्षमा कर सकूँगी, इसीलिए मैंने आपका सब ऋण, सब संबंध समाप्त कर डाला। किसी दिन किसी कारण से भी आपकी कोई बात मेरे मन में न आए, जाते समय केवल यही बात आप कहते जाइए।" और किसी तरह के प्रश्नोत्तर की प्रतीक्षा न करके किवाड़ बंद करके वह अपनी रसोई की जगह पर वापस

जाकर बैठ गईं।

बाहर डॉक्टर का पैरों का शब्द जब उसके कानों के बाहर चला गया, तब उसने एक लंबी साँस लेकर देखा, चूल्हा बुझ गया है। फूँककर उसे जलाकर और एक लंबी साँस लेकर वह फिर चुपचाप बैठ गई।

प्यास से गला सूख गया था, तो भी वह उठ न सकी। उसको खयाल होने लगा, मानो बाहर के अंधकार में तब भी कोई एक आतंक उसके लिए हाथ बढ़ाकर प्रतीक्षा कर रहा है। छाती के अंदर ऐसा ही कुछ अशांत हो उठा कि दोनों बाहुओं से जोर लगाकर उसने उसे दबा रखा। विदाई के इस कार्य को एक दिन उसको पूरा करना ही पड़ेगा, यह बात वह निश्चित रूप से जानती थी। प्रयोजन आ पड़ने से उसने जिसको अपने घर में बुलाकर पाल-पोसकर बड़ा किया था, वह आज 'जाओ' कह देने से ही चला गया, असंभव काम कैसे हो गया।

हठात् दरवाजा खुलने की आवाज से किरण ने चकित होकर मुँह ऊपर उठाकर देखा, दासी कह रही है, "चूल्हा बुझकर तो पानी हो गया बहू! रात भी कम नहीं हुई है।"

किरणमयी झटपट उठ पड़ी, उसके पास जाकर चुपके-चुपके उसने पूछा, "डॉक्टर है या चला गया रे?"

हाथ के दीये को तेज करते-करते वह बोली, "उनको तो गए लगभग दो घंटे हो गए, लेकिन तुमको कहे देती हूँ बूह जी।..." अकस्मात् उसकी जीभ रुक गई। दीये को ऊपर उठाकर आभूषणहीन बहू का सर्वांग बार-बार निरीक्षण करके फर्श के ऊपर दीपक को रखकर वह बैठ गई और बोली, "यह सब कैसा कांड है बहू!"

अठारह

दिवाकर के बड़े दुःख की रात बीत गई और सवेरा हो गया। कल सवेरे उसे गुप्त रूप से बी.ए. की परीक्षा में फेल होने की खबर मिली थी और संध्या को अपने ही विवाह के बारे में, अपने ही कमरे के सामने खड़े होकर उपेन भैया को प्रसन्नचित्त से, परम उत्साह के साथ भट्टाचार्यजी के साथ बातचीत करते सुनकर वास्तव में ही उसने निश्छल हृदय से अपनी मृत्यु-कामना की थी। स्वच्छ काँच के बाहर असीम नीलाकाश दिखाई पड़ रहा था। एकाएक उसके मन में यह खयाल उठा कि इस विराट् सृष्टि के किसी कोने में भी उसके लिए जरा भी स्थान है या नहीं। उसके बाद जितनी दूर तक दिखाई पड़ा, ध्यान से उसने देखा, नहीं, कहीं भी नहीं है। सृष्टिकर्ता ने इतना सृजन किया है जरूर, लेकिन ऊपर, नीचे, आसपास, जल में, थल में, सुई की नोक बराबर स्थान भी उनके लिए नहीं रखा है। उसकी माँ नहीं है, उसका बाप नहीं है, घर नहीं है, संभवतः जन्मभूमि भी नहीं है। वास्तव में अपना कहलानेवाला कहीं भी कोई नहीं है। यही जो अत्यंत छोटा सा कमरा है, शत-सहस्र बंधनों से जिसके साथ वह जकड़ा हुआ है, होश होने के बाद से जिसने उसको मातृस्नेह की भाँति आश्रय दे रखा है, वह भी उसका अपना नहीं है। यह उसके मामा का घर है। यह आश्रय उसकी जननी का नहीं है। विमाता का है।

इस तरह दुःख की चिंताएँ जब क्रमशः जटिल और विस्तृत होती जा रही थीं, अकस्मात्

उपेंद्र का कंठ-स्वर सुनकर एक ही क्षण में वह सीधे मार्ग को लौट आया। वह झटपट उठ बैठा, खिड़की खोलकर मुँह बढ़ाकर, उसने देखा, उपेंद्र नौकर को कुछ उपदेश देकर बाहर चले गए, वे तो किसी तरफ न देखकर सीधे चले गए, लेकिन दिवाकर ने अपनी उन दोनों आँखों में व्यथा अनुभव करके मुँह घुमा लिया। उसको ज्ञात हुआ, मानो छोटे भैया के उन्नत ललाट पर कुछ-कुछ सूर्य-किरणें धक्का खाकर उसके नेत्रों पर आकर पछाड़ खाकर गिर पड़ीं। वह फिर एक बार शैया का आश्रय लेकर निर्जीव की भाँति आँखें बंद करके लेट गया और दुश्चिंताओं ने उसी क्षण उसको फिर दबा दिया।

दिन के लगभग आठ बज गए हैं। दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधकर वह उठ बैठा और बोला, "नहीं, किसी भी तरह नहीं। छोटे भैया भले ही रुष्ट हों या भाभी ही दुःख मानें, यह काम मैं किसी भी प्रकार न कर सकूँगा। जो गृहलक्ष्मी होगी, वह या तो मेरे ही घर में आएगी या किसी दिन भी न आएगी। रख सकूँगा तो आने पर मैं सम्मान के साथ रखूँगा, न रखूँगा तो कम से कम असम्मान के बीच में खींचकर न लाऊँगा। इस संकल्प से कोई भी मुझे विचलित न कर सकेगा।"

दिवाकर ने धीरे पद से मकान के अंदर प्रवेश करके पुकारा, "भाभी!"

अंदर से मृदु कंठ की आवाज आई, "आओ!"

दिवाकर ने प्रवेश करके देखा, अलमारी खोलकर उसका सामान निकालकर सुरबाला मुँह झुकाए संदूक में सजा रही है। उसने पूछा, "छोटे भैया कहीं बाहर गाँव में जाएँगे?"

सुरबाला ने उसी दशा में कहा, "नहीं, कलकत्ता जाएँगे।"

इसके बाद फिर दिवाकर के मुँह से कोई बात न निकली। अपने कमरे से जो शक्ति उसको ठेलकर ले आई थी, आवश्यकता के समय वह शक्ति लुप्त हो गई। वह मौन होकर सोचने लगा, किस तरह आरंभ किया जाए।

ऐसे ही समय में जूते की आवाज सुनाई पड़ी और दूसरे ही क्षण उपेंद्र परदा हटाकर कमरे में चले आए। दिवाकर अत्यंत संकुचित होकर भाग जाने की तैयारी कर रहा था कि, उपेंद्र "खड़ा रह" कहकर आराम से खटिया पर बैठ गए और कुरता उतारते-उतारते उन्होंने पूछा, "तू फेल हो गया कैसे? रोज रात को एक बजे तक जाग-जागकर इतने दिन तू क्या कर रहा था?"

इस बात का और उत्तर ही क्या था? दिवाकर मुँह झुकाए खड़ा रहा।

उपेंद्र कहने लगे, "इस घर में रहने से तेरा कुछ भी न होगा, देखता हूँ। जा, कलकत्ता जाकर पढ़, तभी तू आदमी बन सकेगा।"

उसके बाद हँसकर बोले, "भाभीजी के पास तू क्या दरबार करने के लिए आया था? ब्याह न करेगा, यही तो?"

बात सुनकर दिवाकर बच गया। उसको समस्त दुःख मानो धुल-पुँछ गया, उसने एकाएक मुसकराकर मुँह ऊपर उठाकर देखा।

उपेंद्र हँस पड़े। यद्यपि उस हँसी का मर्म किसी ने नहीं समझा। उसके बाद वह बोले, "अच्छा, अब तू जाकर मन लगाकर पढ़, अगले अगहन तक तेरी छुट्टी है, उसमें अभी बहुत देर है।" पत्नी की ओर देखकर बोले, "सतीश ने तार भेजा है, हारान भैया की हालत बहुत खराब है, मैं रात की गाड़ी तक प्रतीक्षा न कर सकूँगा, इसी ग्यारह बजे की गाड़ी से

जाऊँगा। जरा थरमामीटर मुझे दो तो देखूँ। ज्वर छूट गया या नहीं, यही क्या इतना बड़ा ट्रंक क्या होगा? एक छोटी पेटी दो न।"

सुरबाला कपड़े तहियाकर संदूक में भर रही थी। काम करते-करते मृदु स्वर से बोली, "छोटी पेटी में दो आदमियों के कपड़े न अंटेंगे। मैं भी साथ चलूँगी।"

उपेंद्र ने अवाक् होकर कहा, "तुम जाओगी! अलग हो गई हो क्या?"

सुरबाला ने मुँह ऊपर न उठाकर ही कहा, "नहीं।" फिर दिवाकर को लक्ष्य करके कहा, "बबुआजी, जरा जल्दी ही स्नान करके खा लो, तुमको मेरे साथ चलना पड़ेगा।"

दिवाकर ज्योंही आश्चर्य के साथ उपेंद्र के मुँह की तरफ देखने लगा, त्योंही वे हँस पड़े, बोले, "तू भी पागल हो गया? हारान भैया सख्त बीमार हैं, शायद दिन पूरे हो चुके हैं। मैं जा रहा हूँ उनकी अंत्येष्टि क्रिया करने, तुम लोग इसके बीच जाओगे कहाँ? जा, तू अपने काम पर जा।"

सुरबाला ने इस बार मुँह ऊपर उठाया। दिवाकर की ओर देखकर शांत, लेकिन दृढ स्वर से बोली, "मैं आदेश देती हूँ बबुआजी, तुम जाकर तैयार हो जाओ। तुम्हारे छोटे भैया तीन दिन से ज्वर में पड़े रहे, आज भी ज्वर छूटा नहीं है। इसलिए मैं साथ जाऊँगी, तुमको भी चलना पड़ेगा। जाओ, देर मत करो।"

उपेंद्र मन ही मन आश्चर्य में पड़ गए। इसके पहले किसी दिन उन्होंने सुरबाला का कंठस्वर नहीं सुना था। वह स्वच्छंद भाव से किसी पुरुष को ऐसे छोटे लड़के की तरह आज्ञा दे सकती है, यह अपने ही कानों से सुनने से शायद वह विश्वास ही न कर सकते थे। तो भी तिरस्कार के स्वर में बोले, "मैं जा रहा हूँ विपत्ति के बीच। तुम लोग क्यों साथ जाकर मेरी उस विपत्ति को बढ़ाना चाहते हो? तुम्हारा जाना नहीं होगा।"

उनकी अंतिम बात कुछ कड़ी सुनाई पड़ी।

सुरबाला उठ खड़ी हुई, पति के मुँह की तरफ देखकर पूर्ववत् दृढ कंठ से बोली, "तुम सबके सामने सभी बातों में मुझे क्यों डाँटते हो? तुम बीमारी की हालत में बाहर जाओगे, तो मैं साथ चलूंगी ही। नौ बज रहे हैं, तुम खड़े मत रहो बबुआजी, जाओ।"

दिवाकर के सामने अपनी रुक्षता से उपेन ने अत्यंत लज्जित होकर कहा, "डाँटूँगा क्यों तुमको, मैं कुछ डाँट नहीं रहा हूँ, लेकिन बाबूजी सुनेंगे तो क्या सोचेंगे बताओ तो? जा दिवाकर, खा ले।"

सुरबाला ने कहा, "बाबूजी ने मुझे जाने को कहा है।"

"इसके बीच तुम उनके पास भी गई थीं ?"

"हाँ। जाती हूँ, तुम्हारा दूध लेकर आ रही हूँ।" वह कहकर सुरबाला कमरा छोड़कर चली गई, उपेन्द्र ने अरगनी को ताककर चादर उसी पर फेंक दी और चित होकर लेट रहे। सुरबाला साथ जाएगी ही, पति के बीमार शरीर को किसी तरह भी अपनी दृष्टि के बाहर न छोड़ेगी, इसमें किसी को संदेह नहीं रहा। दिवाकर तैयार होने के लिए धीरे-धीरे बाहर चला गया।

उपेंद्र सोचने लगे—जिद करके सुरबाला ने यह जो एक नई समस्या उत्पन्न कर दी, इसका कौन सा समाधान कलकत्ता पहुँचकर किया जाएगा। कहाँ चलकर ठहरा जाएगा! हारान भैया के यहाँ तो असंभव है, क्योंकि वहाँ स्थानाभाव है, यही बात नहीं है, वहाँ किरणमयी

का पति मर रहा है और उसकी ही आँखों के सामने सुरबाला अपने पति की रत्ती भर बीमारी के प्रति भी उपेक्षा न करेगी। शोभन-अशोभन कुछ भी न मानेगी। पति के स्वास्थ्य पर प्रतिक्षण पहरा देती हुई घूमती रहेगी। इस बात का खयाल आते ही उनको लज्जा मालूम हुई। ज्योतिष के घर पर जाना भी उसी तरह की बात है। सुरबाला कट्टर हिंदू है, उसी उम्र में विधिपूर्वक जप-तप इसने आरंभ कर दिया है, उस घर से तनिक सा भी अहिंदू आचार आँखों को देखने से शायद पानी पीना भी छोड़ देगी। इसके सिवा जहाँ सरोजिनी प्रायः इसकी समवयस्का है, उसके ही घर में ठहरकर उसी को बार-बार यह मत छूना, वह मत छूता करते रहना न तो सुख की बात होगी और न उचित ही। बाकी रहा सतीश। उपेंद्र ने सुना था, अपने नए डेरे में यह अकेला रहता है। स्थान भी यथेष्ट है। विशेषतः वह भी जप-तप के इस दल के अंतर्गत है। सतीश और दिवाकर—आचार-परायण इन दोनों देवरों के साथ सुरबाला अच्छी तरह ही रहेगी।

उपेंद्र ने तुरंत सतीश को तार दिया कि हम आ रहे हैं।

खबर मिलने पर सतीश स्टेशन की ओर रवाना हो गया।

भगवान् ने सचमुच ही सतीश को तन-मन से खूब ही बलिष्ठ बनाया था। इसीलिए उस दिन से मुमूर्षु हारान के अभागे परिवार का भारी बोझ सिर पर लेकर जैसे वह ढो रहा था, सावित्री विपिन के इतिहास को भी उसी प्रकार सहन न कर सकी थी।

इस इतिहास को जानता था केवल बिहारी और उसके परम पूज्यपाद रसोइया महराज। बिहारी का खयाल था कि वह सावित्री को अत्यंत घृणा करता है। इसीलिए कल दोपहर को भी महराज का प्रसाद पाकर छोटी सी चिलम को उलटकर लंबी साँस लेकर उसने कहा, "छिह! छिह! देवताजी, इस स्त्री ने यह क्या कर डाला! मेरे बाबू को उसने पहचाना नहीं, इसलिए सोना फेंककर आँचल में मिट्टी बाँध ली। अंत में सुनता हूँ विपिन बाबू के साथ चली ही गई।"

चक्रवर्ती ने सिर हिलाकर उत्तर दिया, "बिहारी, निमाई-संन्यास में लिखा है, 'मुनीनांच मतिभ्रम" नहीं तो सावित्री की तरह की स्त्री ऐसी बेवकूफी क्यों करती? लेकिन यही बात मैं तुमको कहे देता हूँ, उसको पछताना पड़ेगा ही। वह स्त्री देखने-सुनने में भी कोई बुरी नहीं थी, मेरे साथ बैठकर, खड़ी रहकर, सुनते-सुनते, वह बाबू भैया लोगों के साथ दो-चार बातें करना भी सीख गई थी, युवावस्था में सतीश बाबू की निगाह में भी पड़ गई थी। टिकी रह सकती तो अंत में अच्छा ही होता, लेकिन मेरा एक भी परामर्श तो उसने माना नहीं। अरे भाई, घोड़ा हटाकर घास खाने से क्या काम चलता है? दुनिया भर के लोग ही आफत में पड़कर दौड़ते हुए आकर इन्हीं चक्रवर्तीजी के पैर पकड़ लेते हैं, ऐसा क्यों? अभी उसी दिन सदी की माँ...।"

सदी की माँ की भलाई-बुराई के लिए बिहारी को कौतूहल नहीं था। वह बातचीत के बीच में ही बोल उठा, "लेकिन कुछ भी कहो, देवता बाबू यदि किसी को कहा जाए तो मेरे मालिक को ही। बड़े लोगों को कलकत्ता में मैंने बहुत देखा है, लेकिन ऐसा युवक, ऐसी चौड़ी छातीवाला तो मैंने किसी को नहीं देखा है, जैसे हाथी के दाँत मरद की बात। वही जो मैंने उस दिन कह दिया था, बाबू फिर नहीं, बस करें, रहने दें। उसी दिन से घृणा से एक दिन भी उन्होंने उसका नाम तक मुँह से नहीं निकाला, फिर भी कितना अधिक उसे प्यार

करते थे, क्या करते हैं महराजजी?”

चक्रवर्ती ने सिर हिलाकर उत्तर दिया, “यह बात तो आरंभ में ही मैंने कह दी थी। इसी से तो खून-खराबियाँ, जेल-फाँसियाँ होती हैं। एक बार आँखें लड़ जाने से फिर क्या बच सकती हैं बिहारी!”

बिहारी सिहर उठा। पीले चेहरे से भयग्रस्त होकर बोला, “नहीं-नहीं, महराजजी, मेरे बाबू ऐसे स्वभाव के मनुष्य नहीं हैं, किंतु कहाँ पर वह इस समय हैं, क्या तुम जानते हो? इसके बीच कहीं घाट-बाट में...।”

चक्रवर्ती ठठाकर हँस पड़े। बोले, “मूर्ख कहते हैं किसको? वह क्या विपिन बाबू के यहाँ दासीवृत्ति करने गई है, बिहारी को राह में घाट में भेंट हो जाएगी? उसने स्वयं ही इस समय कितने ही नौकर-नौकरानियों को रख लिया होगा, जाकर देख ले।”

बिहारी निरुद्विग्न हो गया। मुसकराकर सिर हिलाते हुए बोला, “यही बात है। इसीलिए तो मैंने सोचा, चलूँ तो एक बार महराजजी के पास। देखूँ वे क्या कहते हैं! यही कहो देवता, आशीर्वाद दो, वह राजरानी हो जाए, गाड़ी पालकी पर चढ़कर घूमे, दोनों की भेंट फिर आमने-सामने न होने पाए।” यह कहकर वह आनंदमन से चक्रवर्ती की पदधूलि माथे पर चढ़ाकर बाहर चला गया।

सतीश बहुत ही क्रोधी, कड़े स्वभाव का है, यह खबर वह मकान के पुराने नौकर-नौकरानियों के मुँह से सुनता आ रहा था और सावित्री ने जितना बड़ा निंदनीय कार्य किया है, उससे खून-खराबे, मारपीट तक की भी नौबत आ सकती है, यह बात भी उसे इतनी उम्र में अविदित नहीं थी। केवल यही संभावना किसी दिन उसके दिमाग में घुसती नहीं थी कि सावित्री किसी दिन दास-दासियों को लेकर मोटर आदि सवारियों पर घूमने-फिरने निकल सकती है। आज चक्रवर्ती के मुँह से आश्वासन पाकर वह निर्भय हो गया। सावित्री पर उसे बड़ा क्रोध हो आया। वह शांतिपूर्वक रास्ता चलते-चलते प्रतिक्षण आशा करने लगा कि शायद किसी बड़ी सी बग्घी पर रानी के वेश में वह सावित्री को देख लेगा।

सावित्री को बिहारी सचमुच ही प्यार करता था, तथापि उसी दिन से हृदय में बड़ा दुःख, बड़ी यातना पाकर बिहारी उसके ऊपर रुष्ट हो गया था, लेकिन आज ज्योंही उसने सुना, सावित्री उसके मालिक के रास्ते का कंटक नहीं है, सुख में विघ्न नहीं है, वह पूरे हृदय से आशीर्वाद देने लगा—सावित्री सुखी हो, निर्विघ्न हो, राजेश्वरी बने!

उन्नीस

हारान के जीवन-मरण की लड़ाई ने क्रमशः मानो एक करुण तमाशे का रूप धारण कर लिया था। भूखे साँप की भाँति मृत्यु उसको जितने ही अविच्छिन्न आकर्षण से अपने जठर में खींच रही थी, मेढक की भाँति उतना ही वह अपने पैरों से उसके जबड़े को रोककर किसी एक अद्भुत कौशल से दिन पर दिन मृत्यु से बचता चला जा रहा था। वस्तुतः अशेष दुःखपूर्ण उसका प्राण किसी तरह भी समाप्त न होगा, ऐसा ही ज्ञात हो रहा था।

इस विपत्ति में सतीश सहायता करने आया था। किरणमयी की पति-सेवा देखकर वह आश्चर्य से हतबुद्धि हो गया। स्त्रियों के लिए पति से बढ़कर कोई नहीं है, यह भी वह जानता

था, किंतु कुछ भी कारण क्यों न हो, सबकुछ जान-बूझकर इतना बड़ा निरर्थक परिश्रम कोई मनुष्य इस तरह प्राणों की बाजी लगाकर कर सकता है, इसकी तो वह कल्पना भी न कर सकता था।

यह कैसी आश्चर्यजनक सेवा है! प्रतिदिन सारी रात एक ही दिशा में बिछौने के पास बैठकर जागते रहना, सारा दिन अक्लांत परिश्रम करते रहना, फिर भी मुख पर थकावट या विषाद का चिह्न तक नहीं! मुख देखकर समझा नहीं जा सकता कि उसके माथे पर कितनी बड़ी विपत्ति लटक रही है।

सतीश अपनी इस भाभी को सचमुच ही बड़ी बहन की तरह प्यार करने लगा था। उसकी इस अत्यंत उद्वेगरहित पति-सेवा को देखकर अत्यंत व्यथा के साथ केवल यही सोचता था कि जिस कारण से ही हो, भाभी को यह आशा है कि उनके पति बच जाएँगे। अतः अंत तक उनके मन को वेदना कैसी चोट पहुँचाएगी, इसी की कल्पना करके वह व्याकुल हो उठता था और किस उपाय से इस अप्रिय सत्य की जानकारी करा दी जाए, यही उसके लिए प्रतिक्षण की चिंता का कारण हो उठा था।

एक दिन था, जब अपने विषय में सतीश को भारी विश्वास था कि वह बुद्धिमान है। मानव-चरित्र समझने में यह विशेष पारंगत है, लेकिन सावित्री से चोट के बाद से उसका यह दर्प टूट गया था। सावित्री उसको छोड़कर विपिन के पास चली गई, संसार में यह भी जब संभव हो सका, तभी उसको पता चल गया कि वह मानव-चरित्र कुछ भी नहीं समझता। मनुष्य के मन के भीतर क्या है, क्या नहीं, इसके बारे में जिसको जैसी रुचि हो, उसकी आलोचना करता हुआ घूमता रहे, लेकिन अब वह कम से कम नहीं करेगा। इस विषय को याद आने पर उसकी लज्जा और उसके अनुताप का अंत नहीं रहता कि अपनी इस बुद्धि के गर्व से ही उसने इस भाभी के विषय में बहुत सी बातें सोची थीं और उपेन भैया को सिखाने गया था।

आज सवेरे सतीश ने उस घर में उपस्थित होकर देखा, किरणमयी वैसे ही प्रसन्न चेहरे से अकेली गृहकार्य कर रही है। दो-तीन दिनों से सासजी फिर बीमार पड़ गई हैं। पिछली रात ज्वर कुछ बढ़ जाने से अभी तक बिछौने से उठी नहीं हैं। किरणमयी का मुख देखकर किसी बात का अनुमान करना कठिन था। इसी से प्रतिदिन सतीश को सभी बातें पूछकर ही जान लेनी पड़ती थीं। आज प्रश्न करते ही उसने काम छोड़कर मुँह ऊपर उठाकर क्षण भर देखकर कहा, "बबुआजी, अब देर करने की जरूरत नहीं है। अपने भैया को एक बार आ जाने के लिए लिख दो।"

सतीश ने डरकर पूछा, "क्यों भाभी?"

किरणमयी के मुखमंडल पर से मानो शरत् के बादल का टुकड़ा उड़ गया। एक लंबी साँस लेकर वह बोली, "इस बार शायद यंत्रणा का अंत हो गया है, तुम एक तार भेज दो।"

सतीश क्षण भर चुपचाप देखते रहकर बोला, "मैं जानता था भाभी, लेकिन यह सोचकर कि कहीं तुम डर न जाओ, मैंने कहने का साहस नहीं किया।"

किरणमयी ने सहज भाव से कहा, "डरने की बात ही है। उनकी साँस का लक्षण परसों मुझे मालूम हो गया, कल रात को कुछ और बढ़ गई है। यह घटेगी नहीं, इसीलिए एक बार उनको आ जाने को कहती हूँ।"

सतीश यह खबर जानता नहीं था। चौंककर बोला, "इसका तो मुझे पता चला ही नहीं। तुमने भी बताया नहीं।"

किरणमयी ने कहा, "नहीं, इतना धीरे-धीरे बढ़ती गई है कि दूसरों को पता लगने की बात ही नहीं, लेकिन आज विशेष भय नहीं है। फिर विपत्ति के ऊपर विपत्ति, देखो बबुआजी, कल से माँ की बीमारी ने भी टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग पकड़ लिया है। अभी-अभी मैंने देखा, खूब ज्वर है, बीच-बीच में अनाप-शनाप भी बक रही हैं।" यह कहकर वह जरा हँस पड़ी, लेकिन यह हँसी देखने से रुलाई आती है।

सतीश की आँखों में आँसू आ गए। उसने सजल कंठ से धीरे-धीरे कहा, "उपेन भैया आ जाएँ।"

किरणमयी ने कहा, "और एक खबर सुनोगे बबुआजी?"

सतीश मौन रहकर ताकता रहा। किरणमयी बोलीं, "चौथे दिन तीसरे पहर को एक वकील की मुझे चिट्ठी मिली, उससे मालूम हुआ दो साल पहले उन्होंने एक मित्र को अपनी जमानत पर तीन हजार रुपए कर्ज में दिलाए थे। मित्र व्यवसाय में फेल होकर प्रायः चार हजार रुपए इनके सिर पर चढ़ाकर, विष खाकर मर गए हैं। वह रुपया इस टूटे-फूटे मकान की ईंट लकड़ी बेचकर चुकाया जा सकेगा या नहीं, इस खबर को वकील साहब ने अवश्य जान लेना चाहा है।" यह कहकर वह उसी तरह हँस पड़ी।

सतीश मुँह को नीचे झुकाकर भूमि की ओर निहारता रहा। उसने आँखें ऊपर उठाकर देखने का साहस नहीं किया, प्रश्न का उत्तर देने का भी प्रयास नहीं किया।

सतीश उपेंद्र के पास तार भेजकर जब लौट आया, तब दिन के दस बजे थे। धीरे-धीरे वह रसोईघर में जा पहुँचा। किरणमयी सास के लिए साबूदाना बना रही थी, मुँह ऊपर उठाकर बोली, "बैठो बबुआजी!"

उसका स्वर जरा भारी था। सतीश ने ध्यान के साथ देखा आँखों में आँसू तो नहीं थे, लेकिन दोनों पलकें भीगी थीं। वह पास ही फर्श पर बैठ गया। आज किरणमयी ने आसन देने की बात भी नहीं उठाई। वह कहाँ बैठ गया, उसने क्या किया, शायद उसने देखा ही नहीं। किसी साधारण बात में भी जरा सी उसकी त्रुटि सतीश ने अब तक देखी नहीं थी। इतने दिनों से उसका आना-जाना चल रहा है, इतना मेलजोल बढ़ गया है,पर एक दिन के लिए भी उसको भाभी के सहज-सरल व्यवहार में सौजन्य का, घनिष्ठता का, थोड़ा सा भी अभाव, बिंदु मात्र भी ढूँढ़ने पर नहीं मिला था। इसीलिए आज इतनी थोड़ी सी ही अवहेलना ने मानो उसकी आँखों में उँगली डालकर उसको दिखा दिया। किसी भारी बोझ से भाभी का समूचा मन आच्छन्न हो गया है।

बड़ी देर तक दोनों ही चुप रहे। एकाएक किरणमयी अपने आप ही तीव्र व्यंग्य करके हँस पड़ी। शायद इतनी देर तक वह इसी चिंता में ही मगन थी, बोली, "अच्छा बताओ तो बबुआजी, यमराज के साथ वह यह सब देना-पावना का झमेला मिट जाने के बाद, मेरे लिए नौकरी करना उचित होगा या भीख माँगना?"

यह बात सतीश समझ गया। बोला, "उपेन भैया से पूछो, वही उत्तर देंगे।"

किरणमयी ने कहा, "पूछे बिना ही समझ रही हूँ। हो सकता है कि कृपा करके वह मुझे दो कौर खाने को देंगे, लेकिन दूसरे पर निर्भर रहना ही तो भीख माँगना हुआ बबुआजी।"

सतीश शायद एकाएक इसका प्रतिवाद करने चला, लेकिन बात ढूँढ़ने पर नहीं मिली, मुँह पर नहीं आई तो चुप रहकर ताकने लगा।

किरणमयी ने उसके मन का भाव समझकर जरा हँसकर कहा, ''मुँह खोलकर साफ कह देने से ही बात जरा कड़ी हो जाती है, यह मैं जानती हूँ बबुआजी, लेकिन यह बात तो सत्य है।''

थोड़ी देर तक रुकी रहकर बोली, ''यह खयाल मत करना कि तुम्हारे भैया को मैं पहचानती नहीं। मैं समझ गई हूँ, अनाथ को देना वह जानते हैं। लेकिन केवल देना ही तो नहीं है, लेना भी तो है। देकर कभी मैंने देखा नहीं है, लेकिन सारा जीवन दूसरे का मन प्रसन्न रखकर निभा सकना भी कम कठिन नहीं है, यह मैं समझ चुकी हूँ।''

सतीश को इस बार भी ढूँढ़ने पर उत्तर नहीं मिला। किरणमयी का उत्साह मानो बढ़ गया था, प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा किए बिना बोली, ''इस दुनिया के साथ मेरा कारोबार अधिक दिनों का नहीं है, देना-पावना चुका लेने में अभी बहुत बाकी है। इस दीर्घ जीवन के हिसाब-किताब में दोष-त्रुटि, भूल-भ्रांति रह भी सकती है। तब वह भी क्या कहकर देंगे और मैं भी किस मुँह से हाथ फैलाऊँगी। उस समय मुझे फिर अपनी ही राह पर आप ही चलना पड़ेगा।''

इतनी देर तक सतीश श्रद्धा के साथ, व्यथा के साथ उसकी भावी आशंका की बातों को सुन रहा था, लेकिन अंतिम बात से मानो ठोकर खाकर चौंक उठा। उसने कहा, ''यह कैसी बात है भाभी? दोष-त्रुटि तो होती ही है, सभी से होती है, पर तुमसे भूल-भ्रांति होगी क्यों?''

किरणमयी सतीश का उत्कंठित आश्चर्य देखकर हँस पड़ी। एक क्षण में अपने व्यग्र संतप्त कंठ-स्वर को कोमल बनाकर उसने कहा, ''कौन जाने बबुआजी, मैं भी तो मनुष्य ही हूँ।''

सतीश अपनी भूल समझ गया। क्षण भर की उत्तेजना से उसका मन कुत्सित अर्थ ग्रहण करने चला गया था। उसी लज्जा से सिर झुकाकर बोला, ''मुझे क्षमा करो भाभी, मैं जैसा नासमझ हूँ, वैसा ही अपवित्र भी।''

किरणमयी फिर जरा सी हँस पड़ी।

अकस्मात् सतीश का अनुतप्त अपराधी मन उत्तेजित हो उठा, वह जोर लगाकर बोल उठा, ''किंतु केवल उपेन भैया की बात ही होगी, क्यों? क्या वे ही सब कुछ हैं, मैं कोई नहीं? तुमको उनका आश्रय लेने न दूँगा।''

किरणमयी ने हँसकर कहा, ''वह तो एक ही बात है बबुआजी, तुम और तुम्हारे भैया तो पराए नहीं हो। तुम्हारे आश्रय में रहकर भी तो तुम्हारे मन को प्रसन्न रखकर तुमसे भीख लेनी पड़ेगी।''

सतीश बोला, ''नहीं, नहीं पड़ेगी, इसका कारण यह है कि मैं हूँ तुम्हारा छोटा भाई, किंतु उपेन तुम्हारे पति के मित्र हैं। आवश्यकता पड़ेगी तो अपनी बहन का भार मैं ही लूँगा।''

''लेकिन यदि तुम्हारा मन प्रसन्न रखकर न चल सकूँ?''

''मैं भी तुम्हारा मन प्रसन्न रखकर न चलूँगा।''

किरणमयी ने प्रश्न किया, ''यदि मैं कोई अपराध करूँ?''

सतीश ने उत्तर दिया, ''तब तो भाई-बहन में झगड़ा होगा।''

किरणमयी ने फिर प्रश्न किया, ''जीवन में यदि भूल-भ्रांति हो जाए तो उसे क्या मेरा यह छोटा भाई क्षमा कर सकेगा?''

सतीश मुँह ऊपर उठाकर क्षण भर ताकता रहा, फिर सहसा अत्यंत व्यथित स्वर से बोला, ''इस भूल-भ्रांति के अर्थ मैं समझ नहीं सकता भाभी। छोटे भाई को अर्थ समझाकर कहना आवश्यक समझो तो बताओ, आवश्यक न समझो तो मत बताओ; लेकिन तुम्हारा अर्थ जो भी हो, जो अपराध मन में लाया भी नहीं जाता, वह भी यदि संभव हो जाए, तो भी मैं भूल न सकूँगा बहन, कि मैं तुम्हारा छोटा भाई हूँ।''

उसको सावित्री की बात याद पड़ गई। उसने कहा, ''भाभी, आज अपने इस छोटे भाई के अहंकार को क्षमा करो, लेकिन जिस अपराध को जीवन में क्षमा कर सका हूँ, उस अपराध को क्षमा करने में स्वयं भगवान् की छाती में भी आघात पहुँचता।''

यह कहकर उसने देखा, किरणमयी की दोनों आँखों से आँसू लुढ़ककर गिर रहे हैं। सतीश अच्छी तरह बैठ गया। फिर भरे स्वर से बोला, ''आज मुझे अच्छी तरह तुम एक बार देखो कि बहन, जिस सतीश ने अपनी दुर्बुद्धि से तुमको भाभी कहकर व्यंग्य किया था, वह तुम्हारा भाई नहीं था। कहते-कहते उसका समूचा मुखमंडल प्रदीप्त हो उठा।

उसने प्रबल वेग से सिर हिलाकर कहा, ''नहीं, नहीं, वह मैं नहीं था! वह कभी तुमको पहचान नहीं सका, उसने कभी तुम्हारी पूजा करना नहीं सीखा, इसीलिए उसने जगन्नाथ को काठ का पुतला कहकर उपहास किया था। अपने महापाप का बोझ लेकर वह डूब गया है भाभी, वह अब नहीं है।'' यह कहकर वह गरदन झुकाकर अपने हृदय के अंदर टटोलकर देखने लगा।

किरणमयी अनिमेष दृष्टि से उसकी ओर देखती रही। उसके बाद धीरे-धीरे अति मृदु स्वर से उसने प्रश्न किया, ''किस प्रकार मुझे तुम पहचान गए भाई?''

सतीश ने गरदन झुकाए ही कहा, ''वह बात गुरुजनों के सामने कहने योग्य नहीं भाभी!''

''कहने योग्य नहीं है? यह कैसी बात!'' अकस्मात् संदेह से, भय से किरणमयी का मुख बदरंग हो गया। उसने पुकारा, ''बबुआजी!''

''क्यों भाभी?''

''मुँह ऊपर उठाओ तो देखूँ?''

सतीश ने क्षण भर चुप रहकर मुँह ऊपर उठाया।

किरणमयी कुछ देर देखती रही, फिर बोली, ''बबुआजी, तुम एक बड़ी व्यथा लेकर आते-जाते हो, इसका पता मुझे बहुत दिनों से लग गया था, लेकिन पूछने का अधिकार नहीं था, इसलिए मैंने नहीं पूछा, लेकिन; आज तुम मेरे छोटे भाई हो, क्या हो गया है बताओ?''

सतीश सिर झुकाकर बोला, ''वह तो बड़ी लज्जा की बात है भाभी।''

किरणमयी ने कहा, ''भले ही लज्जा की बात हो। तो भी, अपनी इस बहन को उसका हिस्सा देना पड़ेगा। तुमको अकेले में व्यथा ढोते हुए घूमने न दूँगी।''

उसके दुःख का इतिहास बहुत कुछ संग्रह करके किरणमयी ने कहा, ''लेकिन क्यों तुमने ऐसा कार्य किया?''

सतीश चुप हो रहा।

किरणमयी ने प्रश्न किया, ''कौन है वह?''

सतीश मुँह झुकाकर अस्पष्ट स्वर से बोला, "अभागिनी...।"

"लेकिन कहाँ है वह?"

"जानता नहीं हूँ।"

"पता नहीं लगाया?"

सतीश ने मृदु स्वर से कहा, "नहीं। उसकी आवश्यकता नहीं है। मैंने सुना है वह अच्छी तरह है।"

किरणमयी ने व्यथित होकर कहा, "अच्छी तरह है? छिह! छिह! क्यों इस प्रकार तुमने अपने को धोखे में डाल दिया!"

इस बार सतीश ने फिर एक बार मुँह ऊपर उठाया। अस्पष्ट कंठ से उसने उत्तर दिया, "मैंने धोखा नहीं खाया भाभी, क्योंकि मैं प्यार कर सका था, लेकिन धोखा खा गई वह, वह प्यार नहीं कर सकी है।"

"उसके बाद?"

सतीश ने कहा, "पहले वह अपना मन समझ नहीं सकी। लेकिन जब समझ सकी, तब वह चली गई।"

"बिना बताए वह चली गई?"

सतीश सिर हिलाकर बोला, "नहीं, यह बात भी नहीं है, जाने के पहले वह कह गई, 'एक अस्पृश्य कुलटा को प्यार करके भगवान् के दिए इस मन के ऊपर कालिख न पोतो।"

गंभीर आश्चर्य से सीधी हो बैठकर किरणमयी बोली, "क्या कहकर गई?"

सतीश के फिर बात कहने पर किरणमयी कुछ देर तक उन बातों को धीरे-धीरे बार-बार दोहराकर हठात् बोली, "लेकिन फिर जब उससे भेंट हो, बबुआजी, तो मुझे एक बार दिखलाना।"

सतीश विपिन की बात याद करके बोला, "अब तो भेंट न होगी भाभी!"

किरणमयी के होंठों पर म्लान हँसी दिखाई पड़ी। उन्होंने कहा, "फिर भेंट हो जाएगी।"

"कब होगी? न हो, तो ही कुशल है।"

किरणमयी ने गरदन हिलाकर कहा, "कब होगी, यह मैं नहीं जानती, लेकिन यदि कभी दुःख पड़ जाए, विपत्ति पड़ जाए, तभी भेंट होगी। उस भेंट से कल्याण के सिवा अकल्याण न होगा। बबुआजी, वह चाहे जहाँ भी क्यों न रहे, तुम्हारी अपेक्षा भी वह तुम्हारी अधिक शुभाकांक्षिणी है, इस बात को तुम किसी दिन भी मत भूलना।"

उसी दिन संध्या के ठीक पहले किरणमयी मुमूर्षु पति की उत्तम शैया से उठकर क्षणभर के लिए बाहर आ खड़ी हुई। दरवाजे के पास दीवाल पर ओठंग कर सतीश चुपचाप बैठा हुआ था। थकावट के कारण संभवतः वह सो गया था। किरणमयी ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "क्यों बबुआजी, इस तरह बैठे हुए हो? डेरे पर गए नहीं?"

सतीश तंद्रा टूट जाने पर घबराते हुए उठकर बोला, "नहीं भाभी।"

"कहाँ थे इतनी देर तक?"

"इधर-उधर घूमता रहा, आज अब डेरे पर न जाऊँगा।"

किरणमयी ने आपत्ति प्रकट करके कहा, "छिह! छिह! यह कैसी बात? न खाना होगा, न सोना। नहीं, डेरे पर चले जाओ, आज तुमको कोई डर नहीं है।"

सतीश ने गरदन हिलाकर कहा, “डर रहे या न रहे, आज मैं तुमको अकेली छोड़कर न जा सकूँगा। इसके सिवा मैं दुकान से खा आया हूँ।”

किरणमयी ने कहा, “यह तो हो न सकेगा। मैं जानती हूँ, दुकान के खाने से तुम्हारा पेट नहीं भरता। मुझे तो इस दशा में फिर रसोई पकानी पड़ेगी। रसोई पका सकती हूँ, लेकिन इधर कई दिनों से तुम्हारा ठीक समय पर नहाना-खाना नहीं हुआ। कल-परसों तुम अच्छी तरह सो नहीं सके, शरीर पर काफी अत्याचार हो गया है बबुआजी, अब नहीं। आज रात को यहाँ रहोगे तो बीमार पड़ जाओगे, यह मैं किसी तरह भी न होने दूँगी।”

सतीश ने क्रोध करके कहा, “दो दिन आहार-निद्रा जरा कम होने से मैं बीमार पड़ जाऊँगा और तुम तो इधर एक महीने से सो नहीं सकीं? जो खाकर दिन-रात बिता रही हो, उसे किसी मनुष्य को देखने नहीं देती हो, लेकिन भगवान् तो देख रहे हैं। उसके बाद लगातार यह मेहनत...इतने से भी तुम खड़ी हो और इतने से ही मैं मर जाऊँगा?”

किरणमयी ने कहा, “इसका अर्थ क्या यह है कि तुम भी एक महीने तक खाए-सोए बिना खड़े रह सकते हो?”

सतीश ने कहा, “यह बात मैं नहीं कहता, लेकिन...।”

किरणमयी ने हँसकर कहा, “इसमें फिर लेकिन है किस जगह पर? बबुआजी, मैं तो स्त्री ठहरी! स्त्रियों को क्या कभी बीमारी होती है या स्त्री मरती है? क्या तुमने कभी सुना है, देखभाल के बिना, अत्याचार से स्त्रियाँ मर गई हैं?”

सतीश ने कहा, “नहीं, नहीं, वरन् सुना है स्त्रियाँ अमर हैं।”

किरणमयी ने हँसकर कहा, “सचमुच ही यही बात है। प्राण रहने से ही जाता है। न रहने से नहीं जाता। भगवान् ने स्त्रियों के शरीर में उसे क्या दिया है कि वह चला जाएगा! मुझे तो ज्ञात होता है कि इस जाति को गले में रस्सी बाँधकर यदि दस-बीस वर्ष तक लटकाकर रखा जाए, तब भी यह नहीं मरेगी।”

सतीश ने क्रुद्ध होकर कहा, “तुम्हारा यह परिहास मैं सुनना नहीं चाहता भाभी। सुनने से भी पाप लगता है।”

किरणमयी ने इस बार गंभीर होकर कहा, “अच्छा बबुआजी, अचानक स्त्रियों के प्रति इतने हमदर्द क्यों हो गए हो, बताओ तो?”

सतीश बोला, “भाभी, मैं खूब समझता हूँ। जब-तब तुम स्त्रियों का नाम लेकर अपने ही ऊपर कठोर व्यंग्य करती हो, मैं नहीं जानता, लेकिन तुम्हारे संबंध में व्यंग्य तुम्हारे अपने मुँह से भी सुनकर मैं नहीं रह सकता। इससे मुझे भारी चोट लगती है। अच्छा, मैं जा रहा हूँ।”

“सुनो बबुआजी!”

सतीश घूमकर खड़ा हो गया। बोला, “क्या है?”

“तुम सचमुच ही क्या रुष्ट हो गए?”

“क्रोध आ जाता है भाभी। संसार में दो आदमियों को मैं देवता की तरह श्रद्धा करता हूँ—उपेन भैया को और तुमको। एक को स्मरण करने से ही मैं तुम दोनों को देखता हूँ। यहाँ निम्नकोटि का परिहास मुझसे सहा नहीं जाता। मैं जाता हूँ, शायद भोजन करके फिर आऊँगा।”

यह कहकर सतीश झटपट नीचे उतर गया।

बीस

बोलचाल से हो, इशारे से हो, कभी किसी के सामने सतीश ने सावित्री का जिक्र नहीं किया। इसी कारण जब यह बात किरणमयी के सामने प्रकट हो गई, तभी से उसके सारे शरीर से अमृत का स्रोत बह चला। किरणमयी को सतीश देवी समझता था, उसकी सभी बातों पर अत्यंत श्रद्धा करता था। उसने कहा, ''दुःख के दिनों में फिर भेंट होगी।'' तभी से उसके निभृत हृदय में रहनेवाला शोकार्त्त विच्छेद उस परम इच्छित दुःख के दिनों की आशा में उन्मुख हो उठा था। कोई दुःख किस तरह कितने दिनों में उसके दर्शन देकर दया करेगा, इसी चिंता को लेकर वह धीरे-धीरे रास्ता चलते-चलते रात के आठ बजे अपने डेरे पर पहुँचा। कमरे में घुसकर जिस ओर, जिस वस्तु की ओर उसने देखा, उसी ने आज विशेष रूप से उनकी दृष्टि को आकर्षित कर लिया। कुरते को उतारकर अरगनी पर रखने गया तो उसने देखा, कपड़े ठीक करके रखे हुए हैं, तह लगाए हुए हैं। हरिण की सींगों पर संध्या-पूजा का जो कपड़ा धोकर टाँग दिया गया था, वह चुन दिया गया है। बैठने लगा तो उसने देखा, कुरसी पर गंदे कपड़ों का जो ढेर रखा रहता था, वह आज नहीं है। दो हफ्तों से धोबी नहीं आता, इसलिए गंदे कपड़ों का ढेर प्रतिदिन बैठने की चौकी पर धीरे-धीरे जमा होता जा रहा था। बैठते समय सतीश उन सबको भूमि पर फेंक बैठता था। उठकर चले जाने पर बिहारी फिर यथास्थान उठाकर रख देता था। सात दिनों से मालिक और नौकर यह कार्य कर रहे थे। एकाएक वे सब गठरी बाँधे जाकर अरगनी की ओट में हटा दिए गए हैं। बिछौने की चादर, तकिए का गिलाफ बहुत मैला हो गया था, आज वह धुला सफेद है। मसहरी सदा ही अशिष्ट ऊँट की तरह मुँह ऊपर को किए टँगी रहती थी, वह भी आज चारों कोनों में सीधे तौर से शिष्टता के साथ खड़ी हो गई। बत्ती के कोने में बराबर ही कालिख जमा रहती थी, आज उसकी कोई बला नहीं है, खूब साफ जल रही है। सभी तरह यह सफाई, यह सजावट का लक्षण देखकर अत्यंत बूढ़े बिहारी के इस आकस्मिक रुचि-परिवर्तन का कोई कारण ढूँढ़ने पर उसे नहीं मिला। उसने पुकारा, ''बिहारी!''

बिहारी आड़ में खड़ा था, सामने आकर बोला, ''जी आज्ञा?''

सतीश बोला, ''बहुत अच्छा! यदि यह सब तू कर सकता है तो क्यों घर-द्वार इतना गंदा छोड़ रखता है! मैं बहुत ही प्रसन्न हो गया हूँ।''

बिहारी ने विनयपूर्वक अपना मुँह जरा झुकाकर कहा, ''जी सरकार! आपके नाम एक तार आया है।''

''कहाँ रे?'' कहकर इधर-उधर दृष्टि डालते ही मेज पर रखा हुआ पीला लिफाफा उसकी निगाह में पड़ गया। खोलकर उसने देखा, उपेन भैया का समाचार है। वे साढ़े नौ बजे की ट्रेन से हावड़ा स्टेशन पर पहुँचेंगे। घड़ी में लगभग साढ़े आठ बज गए थे। व्यस्त होकर उसने कहा, ''जल्द ही एक गाड़ी ले आ बिहारी, उपेन भैया आ रहे हैं!''

पाँच मिनट के अंदर बिहारी गाड़ी ठीक करके ले आया। खबर देकर और किवाड़ की आड़ में खड़ा रहकर पूछा, ''बाबू को साथ लिए डेरे पर लौटिएगा तो!''

सतीश ने सोचकर कहा, ''नहीं, आज रात को फिर लौटूँगा नहीं।''

उपेन भैया सीधे हारान बाबू के यहाँ ही चले जाएँगे, इसमें सतीश को तनिक भी संदेह नहीं था, क्योंकि उनके सपत्नीक आने की खबर टेलिग्राम में नहीं थी।

सतीश इसके बीच दो पूड़ियाँ खा रहा था। बिहारी ने आड़ से कहा, ''बाबू एक निवेदन है।''

प्रार्थना करने की आवश्यकता पड़ने पर बिहारी पंडिती भाषा का प्रयोग करता था।

सतीश ने मुँह ऊपर उठाकर कहा, ''कैसा निवेदन?''

''आज्ञा'' कहकर बिहारी चुप हो रहा।

सतीश ने प्रश्न किया, ''क्या है सुनूँ तो?''

बिहारी ने कहा, ''सरकार, तीस रुपए मिल जाते तो...।''

सतीश ने आश्चर्य में पड़कर कहा, ''परसों तो तुमने तीस रुपए लेकर भेज दिए थे?''

बिहारी ने मृदु स्वर से कहा, ''सरकार, इच्छा तो यही थी जरूर, लेकिन चक्रवर्ती महराज के घर...।''

चक्रवर्ती के नाम से सतीश जल उठा, बोला, ''वह रुपया चक्रवर्ती को दे दिया, यह रुपया किसको दान दिया जाएगा, सुनूँ?''

''सरकार, दान नहीं, आदमी बड़े ही दुःख में पड़कर...।''

''उधार माँग रहा है?''

''सरकार, उधार और उसको क्या दूँगा।''

सतीश धीरज खोकर उठ खड़ा हुआ। बोला, ''तुम्हारे पास हो, तो तुम दे दो बिहारी, मैं इतना बड़ा आदमी नहीं हूँ कि रोज रुपया नष्ट कर सकूँ। मैं दे न सकूँगा।''

इस बार बिहारी जिद करके बोला, ''न देने से काम चल ही नहीं सकता बाबू। न हो तो मेरे वेतन से ही दीजिए।''

वेतन के नाम से सतीश चौंक उठा और बोला, ''वेतन का रुपया? अब तक कितने रुपए लिए हैं, बता तो बिहारी?''

बिहारी बोला, ''जैसे लिया, वैसे ही लड़कों के लिए गाँव पर तीन बीघे जमीन, एक जोड़ी बैल खरीद दिए हैं। इसके सिवा एक नया घर भी बनवा दिया है। यह क्या मेरे वेतन से? मेरा रुपया आपके पास ही जमा है, आज उसी में से दीजिए।''

सतीश हँस पड़ा, बोला, ''लड़कों के लिए खरीदकर तुमने मेरा भारी उपकार किया है! आज मेरे पास रुपया नहीं है।'' यह कहकर चादर कंधे पर रखकर वह स्टेशन के लिए रवाना हो गया।

बिहारी ने अपनी कोठरी में आकर कहा, ''बेटी, संध्या-पूजा करके अब जरा पानी पी लो। कल सवेरे जिस तरह भी मुझसे हो सकेगा, मैं दूँगा।''

सावित्री कोठरी के फर्श पर आँचल बिछाकर सोई हुई थी। वह उठकर बैठ गई, पूछा, ''बाबू ने उत्तर दिया नहीं?''

बिहारी ने कहा, ''जानती तो हो बेटी, दूसरे के दुःख का नाम लेकर जब भी मैंने माँगा है, तब पाऊँगा ही। मेरे मालिक दानी कर्ण हैं! इस समय न देकर स्टेशन चले गए, लेकिन कल सवेरे जब लौट आएँगे, तब मुझे बुलाकर देंगे। तुमको कोई चिंता नहीं है बेटी, अब उठकर

जरा पानी-वानी पी लो, सारा दिन से वैसी ही पड़ी हो।"

सावित्री के सूखे पीले चेहरे पर हँसी फूट उठी। उसने कहा, "अच्छा ही हुआ आज रात को अब लौटेंगे नहीं। तब तो कल दोपहर की गाड़ी से ही काशी चली जा सकूँगी, क्या कहते हो बिहारी?"

बिहारी ने कहा, "अवश्य ही बेटी।" फिर लंबी साँस लेकर कहा, "मेरे मालिक भी मालिक हैं, तुम्हारे मालिक भी मालिक हैं। गाँव से बुढिया ने दुःख की बातें बताकर एक पत्र भेजा था—बाबू से पढ़वाने गया, पढ़कर वह बोले, "तेरे घर में क्या कुछ भी नहीं है रे?' मैंने कहा, 'गरीब-दुखियों के पास और रहता ही क्या है बाबू!' फिर उन्होंने कोई बात नहीं कही। चार दिनों के बाद छह सौ रुपए हाथ में देकर मुझे गाँव भेज दिया, 'जगह-जमीन मैंने खरीद डाली, गाय बछड़े खरीदे, घर-द्वार बनवाया, लड़कों के हाथ में देकर महीने के अंदर मालिक के पैरों के पास लौट आया।' बुढिया ने रोकर कहा, 'मुझे अपने साथ ले चलो, एक बार दर्शन तो कर आऊँ।' मैंने कहा, 'नहीं रे अब और ऋण मत बढ़ा। तेरे जाते ही दो-एक सौ रुपए तेरे हाथ में दे देंगे।' और एक तुम्हारे मालिक हैं! बीमार पड़ जाने से पाँच-सात रुपए की दवा खर्च हो गई है, इसीलिए उन्होंने तुमसे बेधड़क कह दिया उधार का रुपया चुकता करके ही जाना! नौकरी करते समय तुम कितना दुःख पा रही थीं बेटी और हम लोग कुछ भी न रहे। क्षमा करो बेटी, नहीं तो मेरी जीभ गल जाएगी।"

विपिन का नाम सुनकर सावित्री घृणा से रोमांचित हो गई और स्पष्ट शब्दों में छिह! छिह! कर उठी। लेकिन उसी क्षण उसे दबाकर हँसकर बोली, "स्नान करूँगी बिहारी, एक कपड़ा दे सकोगे?"

"कपड़ा?" बिहारी ने उदास होकर कहा, "तुम्हारे आशीर्वाद से एक क्यों, पाँच दे सकता हूँ। कोई दुःख ही नहीं बेटी! लेकिन शूद्र का पहना हुआ कपड़ा कैसे तुमको दे सकूँगा बेटी! वरन् चलो, बाबू का एक धुला कपड़ा ही निकालकर तुमको दे दूँ।"

बिहारी देवद्विजों पर अत्यंत भक्तिभाव रखता था। अतएव प्रतिवाद निष्फल समझकर सहमत होकर उसका अनुसरण करके कमरे से बाहर चली गई। स्नान करके सावित्री सतीश का धुला हुआ देशी कपड़ा पहनकर मन ही मन हँस पड़ी। उसके ही कमरे में, उसकी ही आचमनी अर्धी से संध्या-पूजा करके बिहारी द्वारा यत्नपूर्वक संग्रह की हुई विलायती चीनी से बनी परम पवित्र मिठाई सारे दिन के अनाहार के बाद खाकर उसने आराम अनुभव किया।

पान-सुर्ती खाने की उसकी बुरी आदत थी। दुकान का तैयार पान वह खाती नहीं थी, यह जानकर बिहारी इसके बीच ही पान-सुपारी आदि जुटाकर ले आया था। उनको एक तश्तरी में लाकर रखते ही सावित्री ने हँसकर कहा, "बिहारी, देखती हूँ मुझे जरा भी तुम भूले नहीं हो।"

बिहारी ने उत्तर दिया, "आखिर मैं भी तो मनुष्य ही हूँ। बेटी, तुमको एक बार देखने से पशु-पक्षी तो भूल नहीं सकते।" यह कहकर टेबिल पर से बत्ती लाकर दरवाजे के सामने उसने रख दी और थाली उसके पास रखकर पान लगाने को कहकर रसोइए से सूखी खैनी माँग लाने के लिए रसोईघर की तरफ चला गया।

मिट्टी के तेल के उज्ज्वल प्रकाश को सामने रखकर फर्श पर सावित्री पान लगाने बैठी।

माथे पर कपड़ा नहीं, भीगी केशराशि समूची पीठ के ऊपर से नीचे फर्श पर बिखरी पड़ी थी। दो-एक लटें आँचल की काली किनारी के साथ मिलकर कंधे से गोद पर झूल रही थीं। नारी के रोगक्लिष्ट शीर्ण-पीले चेहरे पर जो स्वाभाविक और गुप्त माधुर्य रहता है, वह कृशांगी के सद्यःस्नात मुखमंडल पर शोभित हो रहा था। वह कुछ अन्यमनस्क और चिंतामग्न थी। सहसा दूर से जूते की आवाज निकट आने लगी, तो भी वह उसके कानों में नहीं पहुँची। जब उसने सुनी, तब उपेंद्र और सतीश बिल्कुल दरवाजे पर आ खड़े हुए थे। सावित्री ने ध्यान भंग होने पर मुँह ऊपर उठाकर देखा। वह बदरंग होकर अपने आपको भूल गई और क्षणमात्र के असतर्क अवसर पर बंग रमणी के जन्म जन्मार्जित अंध-संस्कार ने उसको असीम लज्जा से अभिभूत कर दिया और दूसरे ही क्षण उसने दोनों हाथ बढ़ाकर अपने लाल चेहरे पर छाती तक लंबा घूँघट खींच लिया।

सतीश हतबुद्धि की तरह बोल उठा, "सावित्री! तुम हो!"

सुरबाला इतनी देर में बत्ती के प्रकाश में बिहारी और दिवाकर के साथ ऊपर चढ़ रही थी। उपेंद्र ने घूमकर कहा, "बस, अब मत आओ सुरबाला, वहीं खड़ी रहो।"

सुरबाला ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "क्यों?"

उपेंद्र ने उस प्रश्न का उत्तर न देकर कहा, "दिवाकर, अपनी भाभी को गाड़ी पर वापस ले जा। सतीश, मैं भी जाता हूँ।" यह कहकर वह धीरे-धीरे चल दिए।

इक्कीस

उपेंद्र की पद्ध्वनि क्षीण से क्षीणतर होकर सीढ़ियों पर लुप्त हो गई। थके हुए, निराहार सपत्नीक, यह अँधेरी रात, तथापि, जरा सा संदेह पैदा हो जाने से बिंदुमात्र प्रमाण के लिए वे ठहर न सके। सतीश के कमरे में बैठी हुई जिस युवती ने घोर लज्जा से, भय से इस प्रकार मुँह ढक लिया था, उसके संबंध में एक प्रश्न तक भी करने की आवश्यकता उन्होंने नहीं समझी। घृणा के मारे वही जो विमुख हो गए, फिर मुँह घुमाकर उन्होंने नहीं देखा।

लेकिन यह कैसी घटना हो गई। क्षण भर के बाद ही अवस्था पूर्णरूप से समझकर सावित्री सिहर उठी। हजारों पुरुषों की दृष्टि के सम्मुख भी अब उसको लज्जा करने का अधिकार न था, लेकिन अनजान में वह यह कैसी भूल कर बैठी! उसको ऐसा ज्ञात होने लगा, मानो उसकी लज्जा के इस छोटे से अवगुंठन ने पल भर में दिगंत विस्तृत होकर कुत्सित लज्जा से उसे पदनख से लेकर सिर के बालों तक कसकर जकड़ लिया। इस थोड़ी सी लज्जा को बचाने में लज्जा का पहाड़ उसके माथे पर टूट पड़ेगा, क्षण भर पहले यह बात किसने सोची थी!

साँस रुक जाने की नौबत आ जाने से जैसे मनुष्य जी-जान से मुँह बाहर निकालने की चेष्टा करता है, सावित्री ठीक उसी प्रकार घूँघट जोर से हटाकर सीधी होकर बैठ गई। उसने प्रश्न किया, "वे कौन हैं?"

सतीश अभिभूत की भाँति द्वार के निकट खड़ा था। अभिभूत की ही भाँति उसने उत्तर दिया, "उपेन भैया और भाभी।"

"ऐं, वही उपेन भैया? वही बहूजी?" सावित्री तीर की भाँति उठ खड़ी हुई, चिल्लाकर

बोली, "तब तो हटो, लौटा लाऊँ। छिह! छिह! मैं तो कोई नहीं हूँ डेरे की एक साधारण दासी मात्र हूँ।"

उपेन कौन हैं, सावित्री यह बात अच्छी तरह जानती थी। सतीश की बातों से अनेक बार उनका बहुत कुछ परिचय वह पा चुकी थी।

इतनी देर में सतीश की नींद मानो टूट गई। इस चीख-चिल्लाहट, इस घबराहट-भरे भय के भाव ने उसकी समस्त विह्वलता को क्षण भर में दूर करके बिल्कुल ही जागरूक बना डाला। इस बार उसने सीधे खड़े होकर दोनों हाथ फैला दरवाजा रोककर कहा, "नहीं।"

सावित्री हाथ जोड़कर बोली, "नहीं क्या जी? सत्यनाश मत करो सतीश बाबू, रास्ता छोड़ो। मेरा सच्चा परिचय उन लोगों को जान लेने दो।"

सतीश ने रास्ता नहीं छोड़ा, लेकिन उसके दृढ निबद्ध होंठों पर सर्प-जिह्वा की भाँति दो भागों में विभक्त जहरीली हँसी का अति सूक्ष्म आभास क्यों दिखाई पड़ा? शायद दिखाई पड़ा। उसने कहा, "ओह! तुम्हारा सत्यानाश! नहीं, इस संबंध को तुम निश्चिंत रहो, लेकिन तुम्हारा सच्चा परिचय क्या है, मैं स्वयं तो पहले सुन लूँ?"

सावित्री एकाएक उत्तर न दे सकी, केवल ताकती रही। ऐसी ही निरुत्तर दृष्टि सतीश ने पहले भी देखी थी, लेकिन यह तो वह नहीं है। इस दृष्टि में इतने बड़े आघात से भी आज आग क्यों नहीं जल गई? यह कैसी आश्चर्यस्निग्ध करुण आँखें थीं! ये क्या उसी सावित्री की हैं?"

पल भर बाद वह धीरे-धीरे बोली, "मेरा परिचय? वही तो बता दिया—घर की दासी। दया कीजिए सतीश बाबू, मैं उन लोगों को लौटा लाऊँ। इस अंधकार, अनजान शहर में वे लोग क्या राह-रास्ते में घूमते फिरेंगे? यह क्या अच्छा होगा?"

सतीश ने तिलभर विचलित न होकर उत्तर दिया, "उनको अपने भले-बुरे को समझने का भार उनके ही ऊपर रहने दो, लेकिन राह-रास्ते में घूमना भी बहुत अच्छा है, तो भी, मैं किसी तरह भी भाभी को अब इस घर में पैर न रखने दूँगा।"

"क्यों न धरने दोगे? मैंने इस घर में पैर रखा है, इसलिए? सतीश बाबू, पृथ्वी माता क्या मेरे स्पर्श से अपवित्र हो जाती है?"

सतीश ने पलभर चुप रहकर प्रश्न किया, "तुम इस घर में घुस क्यों आईं?"

सावित्री मुँह ऊपर उठाकर देख न सकी। भूमि की ओर देखकर अश्रुपूरित स्वर से बोली, "आप मेरे पुराने मालिक हैं। इसीलिए असमय में कुछ भीख माँगने आई थी।"

सतीश व्यंग्य की हँसी हँसकर बोला, "असमय में भीख माँगने! लेकिन मालिक तो तुम्हारे एक नहीं हैं सावित्री। इतने दिनों में एक-एक करके सभी मालिकों के घरों में तुम घूम आई हो शायद!"

सतीश का निष्ठुरतम आघात उसके हृदय के भीतरी भाग को खरोंच-खरोंचकर काटने लगा, लेकिन उसने फिर मुँह ऊपर नहीं उठाया। कोई बात भी नहीं कही।

सतीश ने फिर कहा, "विपिन बाबू ने तुमको क्यों निकाल बाहर किया? शायद उनका शौक मिट गया?"

सावित्री उसी तरह चुप रही।

एकाएक सतीश को बिहारी का निवेदन याद पड़ गया। उसने पूछा, "क्या भीख माँगती

हो! तीस रुपए न?''

सावित्री ने सिर झुकाए ही उसे हिलाकर अपनी सहमति दी, मुँह से कुछ बोली नहीं।

''अच्छा!'' कहकर सतीश दराज के पास जा खड़ा हुआ और पल भर में कमरे के चारों तरफ दृष्टि निक्षेप करके रुक गया।

इस घर की नई सजावट ने कुछ क्षण पहले उसको इतना आनंद दिया था, अब वही मानो उसको काटने दौड़ी। पास ही वह जो शैया है, वह भी तो इसी स्त्री की हाथ की रचना है। स्टेशन जाने के पहले इसी पर लेटकर पलभर के लिए वह विश्राम कर गया था, इसे याद करके उसका सर्वांग संकुचित हो गया। आँखें घुमाकर झटपट दराज खोलकर कई नोट निकालकर सावित्री के पैरों के पास फेंककर बोला, ''जाओ, लेकर विदा हो जाओ, फिर कभी मत आना।''

सावित्री सिर्फ तीन नोट गिनकर उठ खड़ी हुई, इतनी देर तक सतीश चुपचाप देख रहा था। सावित्री के खड़े होते ही उसको कोई बात कहने को उद्यत होने पर भी उसका गला रुँध गया।

एकाएक प्रबल चेष्टा से अपने आपको मुक्त करके उसने पुकारा, ''सावित्री!''

''जो आज्ञा!''

''कहानियों में मैं सुना करता था—फलाँ मनुष्य फलाँ को घृणा कर सकता है। मुझे विश्वास नहीं होता था। कभी सोचकर मैं समझ नहीं सका, मनुष्य कैसे किसी मनुष्य को घृणा कर सकता है, पर आज देखता हूँ, कर सकता है, मनुष्य मनुष्य को घृणा कर सकता है। सावित्री, मैं शपथ खाकर कहता हूँ, मैं मृत्यु से बचने के लिए भी तुमको स्पर्श नहीं कर सकता।''

सावित्री चुप रही।

''अच्छा सावित्री, संसार में तुम लोगों के लिए रुपए से बड़ी वस्तु और कुछ भी नहीं है, नहीं तो वे तीनों नोट किसी तरह भी हाथ से न उठा सकतीं। आज मेरे पास जो कुछ भी है, तुमको सब ही दे दूँगा, एक बात मुझे सचमुच बताकर जाओ।''

''पूछिए।''

''पूछ रहा हूँ।'' कहकर सतीश पल भर चुप रहकर बोला, ''पूछने से लज्जा मालूम होती है, तो भी जान लेने की इच्छा होती है। सावित्री कभी किसी दिन क्या किसी को तुमने प्यार नहीं किया?''

सावित्री केवल पल भर मौन रहकर मृदु, लेकिन सुस्पष्ट कंठ से बोली, ''मेरी बात जान लेने से आपको क्या मिलेगा?''

सतीश को इस बात का उत्तर खोजने पर नहीं मिला।

सावित्री दरवाजे की ओर अग्रसर होकर बोली, ''संसार में बहुत सी बातें हैं, जिन्हें आप नहीं जानते, फिर भी तो, दिन बीत ही जाते हैं, यह बात न जानने से भी आपको हानि न होगी!''

''शायद नहीं होगी।'' कहकर सतीश ने लंबी साँस ली।

लेकिन वह सावित्री के कानों तक पहुँच ही गई। वह ज्योंही मुँह फेरकर खड़ी हुई, त्योंही उसके रोग से पीले पड़े दुबले चेहरे पर सतीश की दृष्टि पड़ गई। चौंककर उसने पूछा, ''तुम

बीमार हो क्या सावित्री?''

सावित्री ने पल भर में आँखें झुकाकर कहा, ''नहीं।''

''बहुत ही दुबली देख रहा हूँ।''

''कुछ भी नहीं है।'' कहकर सावित्री ने जाने के लिए कदम बढ़ा दिया। सावित्री उत्तर न देकर दरवाजे के बाहर जा पहुँची। कमरे के भीतर से रुँधे कंठ से एक आवाज आई, ''सावित्री, तुमने सचमुच ही क्या एक दिन के लिए भी मुझे प्यार नहीं किया?''

सावित्री चौखट पर टिककर खड़ी हो गई, फिर उसने मुँह नहीं घुमाया।

अंदर का सजल कंठ इस बार रुलाई से टूट गया। वह बोला, ''सावित्री एक ही बार बताती जाओ, इतने दिनों तक क्या मैं नींद के ही नशे में इस दुःख के बोझ को ढोता रहा हूँ? मेरे भाग्य में क्या सब ही भूल है, सब ही मिथ्या है? यह असीम दुःख भी क्या मेरे भाग्य में आदि से अंत तक केवल धोखाधड़ी है?''

सावित्री क्षण भर सोचती रही। फिर खड़ी हो गई। बोली, ''बाबू मैं विवश होकर ही बिहारी से रुपया उधार माँगने आई थी, मगर सच कहती हूँ आपसे, ऐसे झंझट मे पड़ जाऊँगी, जानती तो मैं आती ही नहीं।''

सतीश अवाक् हो रहा। यह कंठ-स्वर शांत और मृदु था, लेकिन इसमें कोमलता का लेशमात्र भी नहीं था। क्षण भर पहले उसने ऐसे स्वर से उससे भीख नहीं माँगी थी।

उसने फिर कहा, ''आपने शपथ करके कहा, मुझे घृणा करते हैं, आपकी खुशी होगी तो प्यार भी कर सकते हैं, क्रोध होने से घृणा भी कर सकते हैं—आप लोग यही करते भी हैं, लेकिन हमारे तो हाथ-पैर बँधे हुए हैं। इस मार्ग में जबकि कदम रख चुकी हूँ, तब सुमार्ग-कुमार्ग जो भी हो, इसको पकड़कर न चलने से उपाय भी नहीं है।''

सतीश विह्वल विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर टकटकी बाँधे देखता रहा।

सावित्री इस दृश्य को सह नहीं सकी, दूसरी ओर मुँह घुमाकर वह जरा रुक गई। उसकी अपनी बात अपनी ही छाती में बाण मार रही थी तथापि मरणाहत सैनिक की भाँति अंतिम बार के लिए सतीश पर खड्ग प्रहार किया। कहा, ''आपने पूछा था, किसी दिन आपको मैंने प्यार किया था या नहीं? नहीं, प्यार नहीं किया। वह सब ही थी मेरी छलना। किसको प्यार करती हूँ, वह खबर तो आप जान गए हैं।''

सुनकर सतीश को ज्ञात हुआ मानो उसकी गृह-प्रतिमा को नदी के जल में डुबाकर, रौंद-पीसकर, घासफूस का पिंड सा बनाकर कोई उसी की आँखों पर फेंक रहा हो। उसने आँखें घुमाकर कहा, ''चली जाओ मेरे सामने से।''

सावित्री चौखट पर सिर टेककर प्रणाम करके चुपचाप चली गई। सतीश ने उधर देखा तक नहीं, केवल अति मृदु एक पदचाप उसको सुनाई पड़ी।

नीचे बिहारी के कमरे में टिमटिमाता हुआ चिराग जल रहा था। उसी कमरे में अधमुँदी आँखों से लुढ़कते-लुढ़कते प्रवेश करके सावित्री ने दोनों हाथ बढ़ाकर मानो किसी एक वस्तु को पकड़ना चाहा और दूसरे ही क्षण पृथ्वी पर मुँह के बल मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

बिहारी उपेंद्र आदि को ज्योतिष साहब के मकान की तरफ कुछ देर तक रास्ते में आगे तक पहुँचाकर पाँच मिनट पहले लौट आया था और अँधेरे में छिपकर सावित्री की अंतिम बातें सुन रहा था। आज सारा दिन लगातार उसके साथ कितनी ही बातें की थीं, निष्ठुर

गृहस्थ के घर में काम करने जाकर उसे जितना कष्ट उठाना पड़ा था, बीमार हो जाने पर कितनी पीड़ा सहनी पड़ी थी, सुनते-सुनते बिहारी रो पड़ा था। फिर भी अभी बाबू के सामने किसलिए सावित्री आदि से अंत तक झूठी बात कह गई, इसका कोई भी अर्थ बूढ़े की समझ में नहीं आया। सावित्री के उतर जाने पर भी वह अँधेरे में बाबू की दृष्टि से बचकर नीचे उतर आया। नीचे उसको न देख पाने पर रास्ते पर दौड़ गया। इधर-उधर कहीं भी न पाकर फिर मकान में घुसकर झटपट वह अपने कमरे में ढूँढ़ने लगा तो ठिठककर खड़ा हो गया। उसके बाद सावधानी से उसकी ओर जाकर बत्ती को तेज करके उसने पुकारा, "इस तरह पृथ्वी पर क्यों पड़ी हो बेटी?" आहट मिलने पर स्नेहपूर्ण कंठ से बोला, "तबीयत ठीक नहीं है, ठंडक में बीमारी पकड़ेगी बेटी! उठो, मैं चटाई बिछाए देता हूँ।"

सावित्री निर्वाक् स्थिर रही।

बिहारी आश्चर्य में पड़ गया। अच्छी तरह दिखाई नहीं पड़ रहा था, चिराग मुँह के सामने लाकर जरा झुककर देखते ही बूढ़ा चिल्ला उठा, "तुमने यह क्या कर डाला बेटी!"

सावित्री की आँखें बंद थीं, समूचा चेहरा पीला हो गया था। बड़े चीत्कार से भी उसने उत्तर नहीं दिया, उसी तरह मृतवत् पड़ी रही।

ऊपर के कमरे में सतीश उसी तरह मूर्तिवत् बैठा हुआ था। बिहारी के रोने की आवाज से चौंक उठा।

सतीश बिहारी के कमरे में पहुँचा और सावित्री के सिर के पास घुटने टेककर बैठ गया। बत्ती लेकर उसके मुँह की ओर देखते ही वह समझ गया कि वह मूर्च्छित हो गई है। उसने कहा, "चिल्ला मत बिहारी, उसके मुँह पर पानी छिड़क। रसोइए को कह दे, एक पंखा लेकर हवा करे।" साहस पाकर बिहारी जोरों से पानी के छींटे देने लगा और हिंदुस्तानी रसोइया जी-जान से पंखा झलने लगा।

थोड़ी देर बाद सावित्री ने लंबी साँस ली और दूसरे ही क्षण आँखें खोलकर माथे का कपड़ा खींचकर उठ बैठी।

सतीश ने कहा, "महराज, गरम-गरम थोड़ा सा दूध ले आओ, कुछ अधिक ही लाना, भीगा कपड़ा जल्दी ही छोड़ देने को कह दे बिहारी।"

महराज दूध लाने चला गया।

कुछ देर बाद चुप खड़े सतीश ने फिर कहा, "आराम मालूम होने पर वह कहाँ जाएगी, पूछकर एक गाड़ी ठीक कर देना बिहारी, इस दशा में पैदल न जाने पाए।"

सावित्री का समूचा अंग काँप उठा, लेकिन क्षीण प्रकाश में किसी ने इसे लक्ष्य नहीं किया। वह अपने को सँभालकर निश्चय हो रही।

सतीश और भी एक मिनट स्थिर रहकर बोला, "और यदि इसको आराम न मालूम हो, तो फिर मेरे ही कमरे में सो रहने को कह देना, मैं किसी दूसरी जगह जाता हूँ।"

सावित्री सिहर उठी, मानो वह किसी तरह भी अब अपने को सँभाल रखने में असमर्थ हो गई।

सतीश ने एक छोटी सी चाभी बिहारी के आगे फेंककर कहा, "और देखो, दराज की चाभी तेरे पास ही रही, जितने रुपयों की आवश्यकता हो, जाते समय लेती जाए।" रोगी शरीर के साथ सतीश की बातों ने विष और अमृत मिलाकर सावित्री के गले तक को

फेनमय बना डाला।
सतीश ने कहा, "मैं पथरियाघाटा जा रहा हूँ बिहारी, कल लौटने में शायद कुछ दिन चढ़ जाएगा।" एक कदम आगे बढ़कर बोला, "सावित्री, कोई संकोच मत करना, जो जरूरत पड़े, ले लेना, मैं जा रहा हूँ।"
सतीश चला गया।
सावित्री फिर एक बार पृथ्वी पर गिर पड़ी। छाती फाड़ डालनेवाले कंठ से रोकर बोली, "अजी, क्यों तुमने उस पापिष्ठा को इतना प्यार किया था? यही जो तुमने शपथ कर ली कि मुझे घृणा करते हो, यही क्या घृणा करना है? तुमको मेरा यह दुःख देना, इतना झूठ बोलना, सब ही तुम्हारे स्नेह की आग में जलकर क्या राख हो गया? कौन मुझे बता देगा कि क्या करने से तुम्हारी घृणा पाऊँगी?"
बिहारी इस रुलाई का जरा भी अर्थ न समझ सका। निकट आकर सांत्वना के स्वर में बोला, "अच्छा बेटी, बाबू के सामने इतनी झूठ बातें तुमने क्यों कहीं? जहाँ तुम गईं नहीं, जो अपराध तुमने किया नहीं, किसलिए उन सबको अपने कंधे पर लेकर इतनी अपराधिनी बन गईं।
सावित्री ने रोते-रोते कहा, "बिहारी, मेरी सभी बातें झूठी हैं। कहने में छाती फट गई है तो भी कहनी पड़ी हैं, लेकिन वे किसी काम में तो नहीं आईं।"
बिहारी मूढ़ की तरह उसके मुँह की ओर निहारता हुआ बोला, "झूठी बातें फिर किस काम में आती हैं बेटी?"
सावित्री ने बैठकर आँखें पोंछ डालीं। उसके मुँह की ओर देखकर बोली, "ठीक जानते हो बिहारी, क्या वे किसी काम में ही नहीं आतीं?"
बिहारी ने क्षण भर सोचकर कहा, "वे आती तो हैं जरूर। अदालत में झूठी बातों से ही तो काम बन जाता है, वहाँ झूठी बातों का ही तो जय-जयकार है।"
सावित्री ने फिर उत्तर नहीं दिया। बड़ी देर तक स्थिर भाव से बैठी रहकर बोली, "क्यों मैंने इतनी झूठी बातें कहीं? हो सकता है एक दिन तुम समझ सकोगे, लेकिन उस बात को छोड़ो बिहारी, मेरी दो बातें मानोगे?"
"मानूँगा तो अवश्य ही बेटी! क्या बात है?"
"एक बात यह है कि मेरे चले जाने पर भी किसी दिन बाबू को मत बताना कि मैंने आदि से अंत तक झूठी बातें कही थीं।"
बिहारी चुप हो रहा। सावित्री ने कहा, "और भी एक बात है, मैं अपना पता-ठिकाना तुमको लिख भेजूँगी। यदि कभी समझो कि मेरा आना आवश्यक है, तो मुझे लिख देना। तुमको बताने में मुझे लज्जा नहीं है बिहारी, मेरे सिवा उनको कोई नियंत्रण में न रख सकेगा और विपत्ति के दिनों में उनकी कोई मुझसे अधिक सेवा भी न कर सकेगा।"
बिहारी रोने लगा। आँखें पोंछकर बोला, "मैं सब जानता हूँ बेटी।"
सावित्री उठ खड़ी हुई। बोली, "तो मैं जा रही हूँ। उनको तुम्हारे हाथों में सौंपकर जा रही हूँ। देखो बिहारी, मेरी दो बातें मान लेना। भगवान् करे, तुम लोग सुखी रहो, मुझे यह अपना काला मुँह लेकर फिर तुम लोगों के सामने न आना पड़े।" यह कहकर सावित्री आँखें पोंछकर आगे बढ़ गई।

सड़क पर आकर गाड़ी किराए पर ठीक करके सावित्री को चढ़ाकर बिहारी ने पृथ्वी पर माथा टेककर प्रणाम किया। आँखें पोंछकर गला साफ करके बोला, "बेटी, मेरी भी एक प्रार्थना है। आज जैसे लड़के की तरह अपना समझकर तुमने प्यार किया था, आवश्यकता पड़ने पर फिर याद करना।"

"अवश्य करूँगी।"

गाड़ी चली गई। बिहारी फिर एक बार रास्ते पर माथा टेककर प्रणाम करके धोती से आँखें पोंछकर डेरे पर लौट आया।

बाईस

"पथरियाघाटा जा रहा हूँ" कहकर सतीश रात के ग्यारह बजे डेरे के बाहर आ खड़ा हुआ। थोड़ा सा मार्ग तय करते ही समझ गया कि थकावट की कोई हद नहीं है। पैर अचल हैं, प्रत्येक अंग पत्थर की तरह भारी है। कितना बड़ा गंभीर अवसाद उसके तन-मन में आज व्याप्त हो रहा है।

कुछ दिन पूर्व की ऐसी ही एक रात की बात उसे स्मरण आ गई, जब बिहारी ने सावित्री और मोक्षदा के घर से वापस लौटकर कहा था, "वह नहीं है, विपिन बाबू के पास चली गई है।" उस दिन उस समाचार ने कुछ क्षण के लिए उसको विमूढ़ कर दिया था, लेकिन दूसरे ही क्षण अभिमान तथा अपमान की जो भयंकर ज्वाला प्रज्वलित हो उठी थी, वह किले के निर्जन मैदान में स्तब्ध आकाश के नीचे आँखों के आँसू से बुझ न जाती तो जितने ही दिनों में क्यों न हो, सावित्री को बिना दग्ध किए शांत न होगी। वैसी ही रात तो आज भी आई थी, फिर वैसी ही भयंकर ज्वाला क्यों नहीं भड़क उठी?

एक खाली गाड़ी जा रही थी, बुलाकर बोला, "पथरियाघाटा चलेगा?"

गाड़ीवान ने गाड़ी रोककर मार्ग के प्रकाश में सतीश की ओर देखते ही सोचकर कि कोई शराबी मतवाला है, उसने कहा, "वह तो बहुत दूर है, तीन रुपया लगेगा बाबू। रुपए हैं न?"

"हाँ, हैं!" कहकर सतीश चढ़ बैठा और गाड़ी के एक कोने में सिर टेककर आँखें मूँद लीं। थकावट ने उसको इस तरह घेर लिया था कि इससे अधिक बातें कहने की शक्ति उसमें नहीं थी।

बहुत देर बाद बहुत सी गलियों में घूमकर गाड़ीवान ने विरक्त होकर पूछा, "किस जगह जाइएगा बाबू, ठीक तौर से बता दें। मैं व्यर्थ ही नहीं घूम सकता।" सतीश ने अपने डेरे का पता बता दिया। कुछ देर बाद गाड़ी आकर दरवाजे पर पहुँच गई। कई बार पुकारने पर बिहारी ने आकर किवाड़ खोल दिया तो सतीश ने चुपके से कहा, "बिहारी, सावित्री क्या कमरे में है?"

बिहारी ने विह्वल की भाँति निहारते हुए कहा, "नहीं बाबू, वह तो नहीं है। वह उसी समय चली गई।"

"चली गई?"

"हाँ बाबू!"

सतीश लंबी साँस छोड़कर बिहारी के बिछौने के छोर पर बैठ गया।
बिहारी ने पल भर रुककर मीठे स्वर से कहा, "मैंने गाड़ी ठीक कर दी थी। चलिए आपके कमरे में बत्ती जला आऊँ।"
"नहीं रहने दो, मैं ही जला लूँगा।" कहकर सतीश उठकर चला गया।
दूसरे दिन प्रातःकाल जब उसकी कच्ची नींद टूटी, तब दिन काफी चढ़ आया था।
एक प्रचंड आँधी की भाँति सब कुछ उलट-पुलटकर इस एक रात में कितनी ही घटनाएँ हो गई हैं। उन्हीं इधर-उधर फेंके हुए बिखरे हुए चिह्नों के बीच में बड़ी देर तक उसका मन विरक्त रहा। बिहारी तंबाकू देकर बाहर चला जा रहा था। सतीश ने पुकारकर कहा, "सुनो बिहारी, कल किस समय वह यहाँ आई थी रे?"
सावित्री के चले जाने के बाद उसके सब तरह से दुर्भाग्य याद करके बिहारी का व्यथित मन भीतर-ही-भीतर बहुत रो रहा था। उसने मुँह झुकाए ही मृदु स्वर से कहा, "दोपहर को।"
'उसको किस तरह इस मकान का पता लगा?"
"यह तो मैं नहीं जानता बाबू।"
सतीश उसके मुँह की ओर कठोर दृष्टि से देखकर बोला, "क्यों रे बिहारी, तू क्या सचमुच ही मुझे इतना बड़ा बैल पा गया है कि यह भी मैं नहीं समझ सकता? सच्ची बात बता?"
बिहारी आश्चर्य से दोनों आँखें फाड़ स्वामी के मुँह की ओर देखता रहा।
सतीश ने कहा, "देख क्या रहा है? क्या तू विपिन के यहाँ नहीं जाता? सावित्री के साथ तेरी भेंट-मुलाकात, बातचीत नहीं होती?"
"नहीं बाबू!" कहकर बिहारी के बाहर चले जाने को तैयार होते ही सतीश क्रुद्ध कंठ से बोला, "खड़ा रह, जाना मत। क्या तूने उसको यहाँ आने के लिए सिखाया नहीं था?"
बिहारी ने चुपचाप सिर हिलाकर बताया कि वह नहीं जानता।
सतीश धमकाकर बोला, "फिर नहीं!"
बिहारी सिर झुकाए ही था, चौंककर उसने मुँह ऊपर उठाकर देखा।
सतीश कहने लगा, "फिर नहीं? तो फिर किस तरह उस हरामजादी को इस डेरे का पता लगा? जा, तू भी उसी के पास जाकर रह, मुझे आवश्यकता नहीं है। मैं घर में शत्रु का पालन नहीं कर सकता? आज ही तुम जाओ, तुमको मैंने जवाब दे दिया।"
बिहारी ने एक बात भी नहीं कही। केवल उसके आश्चर्य से भरी दोनों आँखों के कोने से आँसुओं की लड़ी लुढ़क पड़ी।
इस आँसू को सतीश ने देखा। क्षण भर मौन रहकर उसने प्रश्न किया, "रात को वह कहाँ चली गई?"
बिहारी आँखें पोंछकर बोला, "चिट्ठी लिखकर अपना पता-ठिकाना बताने को कह गई है।"
सतीश फिर क्षण भर चुप रहकर कोमल होकर बोला, "बहुत दुबली दिखाई पड़ी। बहुत बीमार थी शायद?"
बिहारी सिर हिलाकर बोला, "हाँ।"
"इसीलिए तो वहाँ जगह नहीं मिली?"

बिहारी ने फिर सिर हिलाकर सम्मति प्रकट की।

सतीश फिर कुछ क्षण चुप रहकर बोला, "लेकिन, इस बार तुमको मैं सावधान कर देता हूँ बिहारी, मेरे डेरे में वह फिर न घुसने पाए या किसी प्रकार बहाना बनाकर मेरे साथ भेंट करने की चेष्टा न करे। मेरी चाभी कहाँ है? जाते समय कितने रुपए तूने दिए?"

बिहारी चाभी निकालकर बोला, "रुपए नहीं दिए।"

"दिए नहीं? क्यों नहीं दिए? तुझे तो मैंने देने को कहा था?"

"उसने लेना नहीं चाहा।" कहकर बिहारी बाहर चला गया। सतीश ने उसको फिर पुकारकर लौटा लिया। सावित्री उपस्थित नहीं थी, बिहारी उसे प्यार करता है, इसलिए इस बिहारी को चोट पहुँचा सकने पर भी मानो कुछ क्षोभ मिट जाता है। उसके आगे आते ही सतीश ने पूछा, "उसके बाद तुम लोगों में क्या परामर्श हुआ?"

बिहारी फिर अपने को रोके न रख सका। रुद्ध कंठ से बोला, "बाबू, सावित्री क्या परामर्श करेगी मेरे जैसे आदमी के साथ? आपके चरणों में मैंने अपराध किए हों, तो सिर झुका देता हूँ, जो इच्छा हो, दंड दीजिए, बूढ़े मनुष्य को इस प्रकार जलाइए मत।" यह कहकर वह फूट-फूटकर रो पड़ा।

सतीश के नेत्र भी एकाएक मानो गीले हो उठे। "अच्छा, तू जा।" कहकर उसको विदा करके फिर एक बार लेट रहा और नेत्र बंद करके तंबाकू पीने लगा। बड़ी जलन से जलकर उसके मुँह से जो भी भाषा सावित्री के प्रति क्यों न निकली हो, किंतु उसके उस रोग पीड़ित चेहरे की स्मृति भीतर-ही-भीतर उसको बहुत ही व्यथित कर रही थी। अब बिहारी की बातों से यद्यपि कुछ स्पष्ट नहीं हुआ, फिर भी रुख से जान पड़ा मानो सचमुच ही वह और कहीं चली गई है। कहाँ चली गई है? दो वर्ष पहले सतीश के नवनाट्य समाज में बिल्वमंगल का अभिनय हुआ था। हठात् उसे वही बात स्मरण हो आई, तो भी उसको क्यों भूल नहीं सकता? यह कैसा आश्चर्य है! जो सावित्री दुष्टग्रह की भाँति उसको केवल लगातार पीड़ा पहुँचा रही है, जो अभी केवल कुछ ही घंटे पूर्व अपने मुँह से स्वीकार कर गई है, वह उसकी कोई नहीं है, दोनों का कोई संबंध ही नहीं है, जिसके विरुद्ध आज उसकी घृणा का अंत नहीं है, तो भी उसी के लिए क्यों संपूर्ण मन में हाहाकार उठ रहा है? यह कैसी विचित्र बात है! ऐसा भीषण विद्वेष और इतना बड़ा आकर्षण एक ही साथ किस तरह उसके हृदय के अंदर स्थान पा रहे हैं। हाय रे! यह यदि वह एक बार भी देख पाता, उसके एकांत में रहनेवाला हृदय जरा उसके सभी नेत्रों, कानों को बंद करके अब भी उसी एक विश्वास से अटल होकर पड़ा है कि सावित्री केवल मेरी ही है, मुझसे बढ़कर उसके लिए संसार में और कोई नहीं है, यहाँ तक कि सावित्री के विरुद्ध उसके अपने मुँह की बातें तिलभर भी उसे इस विश्वास से विचलित न कर सकीं, तो उस दशा में संभवतः सतीश इस परम आश्चर्य का अर्थ समझ सकता!

तेईस

दो घंटे बाद सतीश ने पथरियाघाटा जाने के लिए बाहर निकलकर मन ही मन कहा—ओह कैसी मूर्खता है! जाने दो, मैं भी बच गया। मेरे सिर से भी भूत उतर गया। मार्ग में

चलते-चलते वह सोचने लगा, 'लेकिन उपेन भैया को आज कैसे मुँह दिखाऊँगा?' क्योंकि आग में हाथ डालने से क्या होता है, इसको जैसे वह निश्चित रूप से जानता था, अपने बाल्यकाल के स्नेही उपेन भैया को ठीक वैसे ही पहचानता था। उनके सामने इन सब अपराधों की क्षमा नहीं है, आजनम स्नेह के बदले भी उपेन भैया से तनिक भी प्रश्रय पाने की आशा नहीं है, इस बात को उससे अधिक और कोई नहीं जानता था।

किरणमयी के मकान का मुख्य द्वार खुला था। उसी स्थान पर सतीश चुपचाप खड़ा हो गया और अंदर प्रवेश करने के पहले सभी बातों पर एक बार अच्छी तरह विचार करने लगा।

उसके ध्यान में आया कि केवल उपेन भैया ही उसके मित्र, गुरु और आदर्श हैं। उससे बढ़कर अपना कौन है? उसी उपेन भैया के पास जाकर सिर उठाकर खड़े होने का अब कोई उपाय नहीं रह गया है। कल्पना से वह स्पष्ट देखने लगा, आज भेंट होने के साथ ही अत्यंत कठोर शुद्ध आँखों की दृष्टि उनके बंधुत्व स्नेह, प्रेम सभी को बिल्कुल ही जला डालेगी। तनिक भी क्षमा न करेगी।"

यही क्या सबकुछ है? इस मकान का द्वार भी इसके लिए सदा के लिए बंद हो जाएगा। फिर यहाँ वह कौन मुँह लेकर प्रवेश करेगा?

लेकिन इतनी हानि, इतनी लांछना जिसके कारण हुई, इतना बड़ा सत्यानाश जो कर गई, वह उसकी कौन थी? जो स्वयं पकड़ में नहीं आई, लेकिन मुझे बाँध गई। उसने स्वयं तो दुःख भोग नहीं किया, लेकिन मुझे दुःख के सागर में डुबा गई। जिस बात को सत्य कहकर मैं स्वीकार नहीं कर सकता, उसे झूठ कहकर उड़ा देना संभव है! एक लंबी साँस छोड़कर सतीश ने मन ही मन कहा, "सावित्री तुमने दुःख दिया है, इसके लिए अब दुःख नहीं है, लेकिन सच और झूठ को एक साथ मिलाकर यह कैसी विडम्बना में तुम मुझे बाँधकर रख गई हो!"

दासी ने एकाएक आकर कहा, "आपको बहूजी बुला रही हैं।"

सतीश ने चौंककर प्रश्न किया, "उपेंद्र आ गए हैं?"

"हाँ, कल बड़ी रात को आए हैं।"

"उनका छोटा भाई! छोटी बहूजी?"

दासी ने सिर हिलाकर कहा, "कहाँ? नहीं तो, वह अकेले ही आए हैं। आने के बाद से ही हमारे बाबू के पास बैठे हुए हैं।"

"बाबू कैसे हैं?"

दासी ने लंबी साँस लेकर कहा, "और बाबू! समाप्त होने में देर नहीं है।"

सतीश ने एक क्षण चुप रहकर प्रश्न किया, "भाभी कहाँ हैं?"

"वह अभी स्नान कर रसोईघर गई हैं।"

सतीश और कोई प्रश्न न करके धीरे-धीरे दबे पाँव सीधे रसोईघर में चला गया। किरणमयी संभवतः प्रतीक्षा ही कर रही थी, सतीश के द्वार के निकट आते ही उसने उत्सुकता से पूछा, "मकान में प्रवेश न करके बाहर खड़े रहे, यह क्या बबुआजी, आँखें धँस गई हैं, चेहरा इतना उदास है, रात को क्या नींद नहीं आई?"

सतीश के कानों में प्रश्न के प्रवेश करते ही उसका क्रोध आग की तरह लाल होकर फिर

उसी क्षण बुझकर राख बन गया। बोला, ''हाँ, सारी रात जागकर उसको लेकर आमोद-प्रमोद करता रहा। सुनकर संतुष्ट हो गई न? फिर यहाँ मैं न आऊँ, यही न? किंतु उस छोटे मनुष्य उपेन बाबू से कहो, मुझसे पूछते तो मैं सच्ची बात ही बता देता। संसार में उसके सिवा और भी मनुष्य हैं, जो सत्य बोल सकते हैं। इसके सिवा, मेरा ऐसा कोई संबंध नहीं है कि डरकर मुझे असत्य बोलना पड़ता। कह दो उससे, समझ गई न भाभी!'' यह कहकर वह वापस घूम पड़ा।

अचानक सतीश का यह मनोभाव देखकर, ऐसा कंठ-स्वर सुनकर, किरणमयी किंकर्तव्यविमूढ़ सी हो गई। किरणमयी ने घबराकर बाहर आकर पुकारा, ''जाओ मत बबुआजी, सुनो तो...।''

सतीश चिल्लाकर बोला, ''क्या होगा सुनकर! सच कहता हूँ भाभी, वह इतना नीच मनुष्य है, यह मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। जहाँ वह रहता है, वहाँ मैं नहीं रहता। आज मैं समझ रहा हूँ क्यों बाबूजी ने उस दिन चिट्ठी लिखी थी! लेकिन उस नीच से जाकर कह देना मैं उसकी परवाह नहीं करता।''

किरणमयी ने व्याकुल होकर पूछा, ''किससे? क्या कह रहे हो बबुआजी?''

''ठीक कह रहा हूँ भाभी, ठीक कह रहा हूँ। उससे कह देने से वह समझ जाएगा, लेकिन आज तुमसे भी कह जाता हूँ, बिना अपराध के ही अपने घर का द्वार मेरे मुँह के सामने तुमने बंद कर दिया है। लेकिन एक दिन समझोगी, सतीश कितना ही बुरा क्यों न हो, उस पर विश्वास करके किसी ने किसी दिन धोखा नहीं खाया है, और एक बात उससे कह देना, उसकी जितनी इच्छा हो, जहाँ तक हो सके, सर्वनाश का प्रयत्न करे, लेकिन मैं भी उसको अब अपना मुँह न दिखाऊँगा, वह भी मुझको...।'' एकाएक सतीश दरवाजे की ओर देखकर रुक गया और दूसरे ही क्षण मुँह फेरकर आँधी की तरह शीघ्रता से चला गया। उसकी दृष्टि का अनुसरण करके किरणमयी की भी दोनों आँखें पत्थर की मूर्ति की भाँति स्तब्ध उपेंद्र के मुँह पर जा पड़ीं। वह चिल्लाहट सुनकर रोगी की शैया के पास से उठकर चले आए थे और कमरे का द्वार थोड़ा सा खोलकर खड़े सुन रहे थे।

किरणमयी को एक बार खयाल हुआ—बात क्या है, उपेंद्र इसे जान लेना चाहेंगे, लेकिन वह कुछ भी न पूछकर, चुपचाप किवाड़ बंद करके अंदर चले गए।

किरणमयी के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। यह कैसी घटना घट गई? सतीश अपने उपेन भैया का उसके मुँह पर कैसा अपमान कर गया, किसलिए? वह रसोईघर में वापस जाकर हाथ के कामों को मानो स्वप्नाविष्ट की तरह करने लगी, लेकिन मन में एक गंभीर क्षुब्ध आश्चर्य सहस्रों, रूप धारण करके निरंतर चक्कर लगाने लगा। उसके घर में ही जो बहुत बड़ी विपत्ति शीघ्र ही आनेवाली थी, क्षण भर के लिए वह उसे भी भूल गई! केवल सोचने लगी, कल संध्या के बाद सतीश अपने डेरे पर वापस चला गया था, उसके बाद इसी एक ही रात में ऐसी क्या घटना घटी है, जिससे वह ऐसा उन्मत्त आचरण करके चला गया!

फिर भी, उपेंद्र ने एक बात भी जान लेने की इच्छा नहीं की। उसको ऐसा मालूम हुआ, क्षण भर के लिए उपेंद्र के सूखे कठोर मुख पर मानो असहनीय आश्चर्य फूट उठा, लेकिन यह सच है या केवल उसके ही मन की कल्पना है, इसका भी वह निश्चय न कर सकी।

उपेंद्र वापस चले गए और रोगी के बिछौने के एक छोर पर अपने पहले के स्थान पर जा

बैठे। वह स्वाभावतः ही शांत प्रकृति के थे। एकाएक किसी पक्ष में या विपक्ष में मतामत प्रकट नहीं करते थे, लेकिन वह सहज-निर्मल विचारशक्ति उनमें उस समय किसी तरह न रह सकी, जब सुरबाला आदि को ज्योतिष के घर पहुँचा कर बड़ी रात को अकेले हारान के घर में आए थे।

उस समय हारान का श्वास-कष्ट भयंकर रूप से बढ़ गया था। भीतर होश था या नहीं, यह भी अनुमान करना कठिन था। चारों ओर देखकर उनकी अवस्था बड़ी भीषण मालूम होती थी। फिर भी, कहीं मानो जरा भी व्याकुलता नहीं थी। इसके पहले, उन्होंने जो दो-चार मृत्यु-शैयाएँ देखी थीं, उनका इसके साथ कितना अधिक अंतर था। रोगी को सिरहाने उसी तरह का तेल का दीपक अत्यंत धीमे जल रहा था, माँ कमरे के एक कोने में चटाई बिछाकर सो रही थी, केवल किरणमयी जागती हुई बैठी थी, लेकिन उसके भी आचरण में घबराहट का कोई भी लक्षण ढूँढ़कर न पाने से उनको ऐसा ज्ञात हुआ मानो वह परम उदासीनता से पति की मृत्यु की प्रतीक्षा में बैठी हुई है। माँ का भी कैसा निर्लिप्त भाव है, अपनी बीमारी से व्याकुल हैं।

कल रात को उपेन ने जो कुछ देखा था, उससे उन्हें स्पष्ट जाना पड़ा था कि केवल मृत्यु की विभीषिका ही इन दोनों स्त्रियों के भीतर है, यह बात नहीं अपितु हारान का जीवित रहना ही मानो एक बाँध की तरह बन गया और वह इस छोटे से परिवार के सुख-दुःख के प्रवाह को रोककर कूड़ा-करकट से पीड़ित कर रहा है। जिस प्रकार भी हो, इस अवरोध से मुक्ति पा लेने से ही ये लोग मानो भारी संकट में बच जाएँगी।''

उपेंद्र अभी तक किरणमयी को पहचान सकें, यह सुअवसर ही उसको प्राप्त नहीं हुआ, लेकिन सतीश ने पहचान लिया था। इसीलिए पहले-पहल जिस दिन हारान के बुलाने से इन लोगों ने इस घर में प्रवेश किया था, किरणमयी का उस रात का आचरण सतीश तो भूल गया ही था, उससे अधिक अपनी कठोरता का सहस्र अपराध स्वीकार करके, उनकी क्षमा पाकर उसने भाई का स्थान ले लिया था, लेकिन उपेन को वह सुअवसर नहीं मिला। इसीलिए कल रात्रि को कमरे में घुसकर एक ही क्षण में उनका अप्रसन्न चित्त माँ के विरुद्ध विमुखता और स्त्री के प्रति घृणा से परिपूर्ण हो गया था। इसीलिए सवेरे किरणमयी जब चाय दे गई, तो उन्होंने उसे स्पर्श तक नहीं किया।

सतीश के आने-जाने का पता अघोरमयी को नहीं चला। उस समय वह नीचे अपने काम में लगी हुई थीं, अब धीरे-धीरे कमरे में घुसकर लड़के को देखकर रोने लगीं। किसी ने उनको सांत्वना नहीं दी, मना भी नहीं किया। एकाएक उनकी चाय की कटोरी पर नजर पड़ जाने से रोने के सुर से उन्होंने प्रश्न किया, ''क्यों बेटा, चाय नहीं पी?''

उपेंद्र संक्षेप में बोले, ''नहीं...।''

अघोरमयी अत्यंत व्यग्र हो उठीं, ''नहीं, नहीं, यह नहीं होगा बेटा, सारी रात जागते रहे हो, इस पर यदि तुम बीमार पड़ जाओगे तो मैं फिर नहीं बचूँगी उपेन।''

उपेन कुछ बोले नहीं, केवल अघोरमयी के मुँह पर तीक्ष्ण दृष्टि डालकर दूसरी ओर ताकने लगे। इसका अर्थ समझने की शक्ति अघोरमयी में नहीं थी। बार-बार जिद करने लगीं, किंतु उस दृष्टि का अर्थ समझ गई किरणमयी। इस कमरे में इस मृतप्राय संतान के निकट बैठकर दूसरे के लड़के के लिए जननी की यह व्याकुलता कितनी असंगत और अशोभनीय जान

पड़ी, यह उसकी तीक्ष्ण बुद्धि से छिपी नहीं रही, लेकिन यह जो कुछ भी हो, उपेंद्र भी किसलिए इस एक तुच्छ अनुरोध के विरुद्ध इस तरह दृढ प्रतिज्ञा करके बड़े बनकर बैठा रहे, इसका भी कोई कारण किरणमयी न समझ सकी। उनका यह व्यवहार किरणमयी की दृष्टि में कम अशोभनीय नहीं जान पड़ा।

दोनों ओर की यह जिद डॉक्टर के आ जाने से स्थगित हो गई। अंग्रेज डॉक्टर दो-तीन मिनट तक परीक्षा कर चुकने पर अपना अंतिम उत्तर देकर चले गए और उसके साथ यह भरोसा भी दे गए कि अगली शेष रात्रि के पहले मृत्यु की संभावना नहीं है।

उस समय दस बजे थे। किरणमयी ने तनिक निकट आकर मृदु स्वर से कहा, "आपको एक बार वहाँ जाकर उन लोगों से भेंट कर आना भी तो आवश्यक है।"

उपेंद्र ने किसी ओर न देखकर कहा, "वैसी आवश्यकता नहीं है। वे लोग सब बातें जानते हैं।"

किरणमयी ने कहा, "तो भी एक बार जाइए। अभी तो कोई भय नहीं... तब तक स्नान करके जरा विश्राम करके लौट आ सकेंगे।"

उपेंद्र चुप रहे। किरणमयी मृदु और दृढ स्वर से बोली, "जरा सोचकर देखिए, स्नान-भोजन न करके उपवास करके अब आमने-सामने बैठे रहने से तो कोई फल नहीं है। गाड़ी का सफर करके आए हैं, कल सारी रात यहाँ बैठे रहे, उसके बाद आज। दिन-रात बराबर इस तरह बैठे रहने से बीमार पड़ सकते हैं। सतीश बबुआ भी नहीं हैं, इस समय आप सचमुच ही बहुत थके जान पड़ते हैं। मैं बैठी हुई हूँ, तब तक आप घूमकर आइए। बात मानिए, उठिए।"

एकाएक मुँह ऊपर उठाकर देखते ही उपेंद्र ने दृष्टि झुका ली। इस प्रकार इतनी बातें किरणमयी ने पहले कभी उनके सामने नहीं कही थीं। इस कंठ-स्वर में शुभाकांक्षा की अधिकता नहीं थी, फिर भी एक दृढता थी, कोमलता थी। उपेंद्र के कानों में किरणमयी का यह स्नेह-भरा प्रथम अनुरोध बहुत ही सुंदर जान पड़ा। बहुत दिन पहले एक रात के समय जो तीव्र कंठ, जो कठिन भाषा इसके मुँह से ही वह सुन चुके थे, उसके साथ इसका बड़ा ही आश्चर्यजनक अंतर जान पड़ा।

उपेंद्र ने किसी ओर न देखकर प्रश्न किया, "आप लोगों का दिन आज कैसे बीतेगा?"

किरणमयी ने कहा, "वह बात क्यों पूछ रहे हैं। हम लोगों पर आज जो दुःख आनेवाला है, उसमें कोई भाग न ले सकेगा, लेकिन आप अब देर न करें, इसी वक्त उठिए।"

सच्ची बात कहने का यह कितना अद्भुत शांतिपूर्ण ढंग था! क्षण भर के लिए उपेंद्र ने सबकुछ भूलकर अपनी आश्चर्य-भरी दोनों आँखों की परिपूर्ण दृष्टि किरणमयी के मुँह पर लगा दी। पहले ही उनकी दृष्टि में उसकी माँग में सिंदूर की चमकती हुई रेखा पड़ गई, जो नारी-सौभाग्य का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन है। प्रबल उच्छ्वास से उपेंद्र का सारा शरीर एक बार काँप उठा।

किरणमयी ने उसे देख लिया, लेकिन उसका आभास मात्र भी उसके मुख पर प्रकट नहीं हुआ। उसने कहा, "आप उठिए, मैं उनको जरा दूध पिला दूँ।"

उपेंद्र उठकर बैठ गए। बोले, "दवा?"

किरणमयी व्यथित स्वर से बाधा देकर बोल उठी, 'नहीं-नहीं' अब उसकी आवश्यकता

नहीं है। बहुत सी दवाइयाँ बरबस मैंने पिलाई हैं। अब पिलाना नहीं चाहती।''

उपेंद्र ने प्रतिवाद नहीं किया। दवा की आवश्यकता वह स्वयं भी नहीं जानते थे। पति को दूध पिलाकर उसने ज्यों ही पुनः अनुरोध किया, त्यों ही उपेंद्र उठ खड़े हुए और अति शीघ्र स्नान-भोजन करके लौट आएँगे, कहकर दरवाजे की ओर बढ़ चले। उसी समय किरण ने मृदु स्वर से प्रश्न किया, ''आते समय सतीश बबुआ के घर से होते आएँगे क्या?''

उपेंद्र घूमकर खड़े हो गए, बोले, ''क्यों?''

किरणमयी ने कहा, ''मेरे पास तो कोई आदमी नहीं है कि उनके डेरे पर एक बार किसी को भेजूँगी, इसीलिए कह रही थी आप यदि एक बार...।''

उपेंद्र को एकाएक ज्ञात हुआ, इस बुला लाने के प्रस्ताव से उन्हीं को मानो विशेष रूप से ठोकर लगाई गई है। इसीलिए तीखे स्वर से उन्होंने पूछा, ''उससे आपको विशेष कुछ आवश्यकता है?''

यह कंठ-स्वर और उसका तात्पर्य किरणमयी से छिपा नहीं रहा, लेकिन इसीलिए अपने कंठ-स्वर से उसने उसे और बढ़ा नहीं दिया। केवल कहा, ''इस दुर्दिन में तो मुझे सभी की आवश्यकता है उपेन बाबू? उसके अतिरिक्त, किस कारण वह आप पर इतना क्रोध करके चले गए, यह भी नहीं जानती। इसलिए मैं सोचती हूँ, एक बार उनको बुला लाने का प्रयत्न करना क्या अच्छा नहीं है?''

उपेंद्र ने मन ही मन और चिढ़कर कहा, ''आप उसके लिए उद्विग्न मत होइए। वह तो मेरा ही मित्र है। अपना भला-बुरा हम लोग ही ठीक कर सकेंगे। फिर भी आपको यदि विशेष कार्य हो, तो उसके पास आदमी भेज सकता हूँ, स्वयं जाने का समय मेरे पास नहीं है।''

किरणमयी ने मृदु स्वर से कहा, ''यही अच्छा है। आदमी भेज दीजिएगा। उनका आना आवश्यक है। मित्र के साथ मित्र का मेल-समझौता जब भी हो, लेकिन मैं उनकी बहन हूँ। अपनी बड़ी विपत्ति के दिनों में अपने को दंड देने का अवसर आप लोगों को न दूँगी।''

''नहीं-नहीं, इसकी आवश्यकता ही क्या है, मैं खबर भेज दूँगा।'' कहकर उपेंद्र बाहर चले गए।

छोटी गली को शीघ्रता से पार करके उपेंद्र मुख्य सड़क पर पहुँचे और एक गाड़ी किराए पर ठीक करके उस पर सवार हो गए।

आवश्यकता पड़ने पर किरणमयी किस प्रकार उग्र भाव से कठोर हो जा सकती है, इसे उन्होंने एक दिन देखा था, लेकिन उसका शांतिपूर्ण विरोध भी उससे कम कठोर नहीं है, इसे उन्होंने आज की इन थोड़ी सी बातों से ही स्पष्ट अनुभव कर लिया। सतीश के साथ उसका एक विवाद उपस्थित हो गया है, किरणमयी को इसका पता चल गया है, यह बात भी उनकी समझ में आ गई, लेकिन झगड़े का कारण चाहे जो कुछ भी हो, दोष-गुण का विचार वह स्वयं ही करेगी और किसी को हाथ डालने न देगी, यह बात घूम-फिरकर उनके मन में आने-जाने लगी।

चौबीस

स्त्रियों के संबंध में उपेंद्र को अपना मत परिवर्तन करने का समय आ गया। आज उनको

मन ही मन स्वीकार करना पड़ा, स्त्रियों के विषय में उनकी जो भी धारणा थी, उसमें बहुत बड़ी भूल थी। ऐसी नारी भी है, जिसके सामने पुरुष का आकाशभेदी मस्तक आप ही झुक पड़ता है। शक्ति काम नहीं करती, सिर झुका देना ही पड़ता है। ऐसी ही नारी है किरणमयी। उस रात्रि को जब प्रथम परिचय हुआ था, इसी के संबंध में उपेंद्र ने सतीश के सामने मुँह से दूसरी तरह की बातें कही थीं, पर हृदय में सकरुण अवज्ञा के साथ सोचा था कि वह उसी प्रकार की उग्र स्वभाव की स्त्री है, जो अत्यंत साधारण कारण से ही होशो-हवास खोकर विक्षिप्त की भाँति विष खाकर या गले में फाँसी लगाकर भयंकर कांड कर बैठती है, पर आज उन्होंने देख लिया और समझ लिया कि नहीं, ऐसी बात नहीं है। यह अत्यंत संकट के बीच भी बुद्धि ठीक रखना जानती है और जरा भी उग्र न होकर सरलता से अपनी इच्छा का प्रयोग कर सकती है। इस घर में सतीश का आना-जाना उचित-अनुचित जो भी हो, किरणमयी ने बुलाया है, वह खबर सतीश को देनी ही पड़ेगी।

इस बात की राह में जाते-जाते वह जितना मंथन करने लगे, उनका मन उतना ही दुःख से भर उठा, क्योंकि सतीश को उपेंद्र बहुत अधिक स्नेह करते थे, इसीलिए उसके ऊपर आज क्रोध की भी मानो सीमा नहीं थी। उसने जो अपराध किया है, उसका विचार किसी दूसरे दिन होगा, लेकिन आज जो सतीश खुले तौर से, उनके मुँह के सामने उसके सदा के अधिकृत अग्रज के आसन को दर्प के साथ पैरों से रौंद गया, उसने तनिक भी संकोच नहीं किया, सब दुःखों से बढ़कर यही दुःख उपेंद्र के कलेजे पर बिंध गया था।

कुछ दिन पहले उपेंद्र को घर में बैठकर एक गुमनाम पत्र के द्वारा सतीश के विषय में बातें ज्ञात हुई थीं। यह पत्र राखाल ने लिखा था। जब दोनों में प्रेम था, तब सतीश के मुँह से ही राखाल ने उसके इस परम मित्र की बहुत सी असाधारण कहानियाँ सुनी थीं। उपेंद्र भैया की असाधारण विद्या-बुद्धि और उनके शुभ निष्कलंक चरित्र की ख्याति कैसी थी। सतीश को बड़ा गर्व था अपने उपेन भैया का और उनके असीम स्नेह ने उसी स्थान पर चोट पहुँचाने के समान भयंकर आघात, सतीश के लिए और कुछ भी नहीं हो सकता, धूर्त राखाल इस बात को भली प्रकार समझ गया था।

लेकिन इस पत्र ने उस समय कुछ भी कार्य नहीं किया था। उपेंद्र ने पत्र पढ़कर फेंक दिया था और पत्र-लेखक को लक्ष्य करके मुसकराते हुए कहा था, ''तुम चाहे जो भी हो और सतीश की जितनी ही गुप्त बातों की जानकारी तुमको क्यों न हो गई हो, मैं तुमसे भी अधिक उसको जानता हूँ।'' और दो दिनों के बाद पिता के प्रश्न के उत्तर में हँसकर कहा था, ''सतीश अच्छी तरह ही है। किंतु जान पड़ता है कि किसी से झगड़ा करके पुराना डेरा छोड़कर अन्यत्र चला गया है, उसी मनुष्य ने एक गुमनाम पत्र लिखकर उसके संबंध में अनाप-शनाप बातें लिख भेजी हैं।''

बूढ़े ने उद्विग्न मुँह से पूछा था, ''कैसी अनाप-शनाप बातें उपेंद्र?''

उपेंद्र ने उत्तर दिया था, ''उन सब झूठी कहानियों को सुनकर आपको समय नष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। मैंने तो स्वयं ही उसे पाला-पोसा है, मैं जानता हूँ वह ऐसा कुछ भी न करेगा, जिससे किसी आत्मीय का सिर झुक जाए। आप निश्चिंत रहिए।''

उनके उस विश्वास पर वज्रपात हो गया सावित्री को अपनी ही आँखों से देखकर। सतीश के निर्जन कमरे में शृंगार करने में निमग्न अकेली रमणी! उसमें कैसी सुगंभीर लज्जा थी!

और लज्जा से भी बढ़कर उन दोनों बड़ी आँखों का व्यथित व्याकुल दृष्टि में क्या ही त्रास फूट उठा था? इसमें भूल करने की गुंजाइश नहीं थी। एक क्षण में ही उपेंद्र के मन में राखाल की उस प्रायः भूली हुई चिट्ठी का अक्षर-अक्षर मानो आग के अक्षरों की भाँति जल उठा था। प्रश्न करने या संदेह करने की और कुछ भी आवश्यकता नहीं थी।

उस चिट्ठी को विश्वास योग्य बता देने की चेष्टा में राखाल ने कुछ भी कमी नहीं की थी। उसमें सावित्री का नाम तो था ही, तरह-तरह के विवरणों के बीच उसकी भौंहों के ऊपर एक छोटे तिल रहने की बात का जिक्र करने में भी उसने गलती नहीं की थी। वह चिह्न इतना ही सुस्पष्ट था कि क्षण भर के दृष्टिपात से ही उपेंद्र ने देख लिया था।

सतीश को बुला देने का अप्रिय कार्य मार्ग में ही खत्म करते चलें या नहीं, इसका निश्चय करते-करते ही भाड़े की गाड़ी ज्योतिष साहब के घर के सामने पहुँच गई और फाटक में प्रवेश करते ही उनकी उत्सुक दृष्टि को किसी ने मानो दुमंजिले कमरे की ओर खींच लिया।

उपेंद्र ने गरदन बढ़ाकर देखा, उन्होंने जिसकी निस्संदेह आशा की थी, ठीक वही मौजूद थी। खुली बड़ी खिड़की पर एक स्थिर प्रतिमा इसी रास्ते से ऊपर ही मानो समूचा प्राणमन उड़ेल कर खड़ी थी। इतनी दूर से अच्छी तरह देख लेना संभव नहीं था, तो भी उनके मानस नेत्रों से खिड़की पर खड़ी होनेवाली के होंठों की कुछ कँपकँपी से लेकर आँखों की पलकों के ऊपर की जलरेखा तक भी छिपी नहीं रही। उसकी इतनी देर की चिंता-ज्वाला अभिमान और अपमान के घात-प्रतिघात की वेदना मिट गई, केवल यही एक बात मन में जाग उठी कि सुरबाला की सारी रात और यह समूचा प्रातःकाल न मालूम किस तरह बीता है। जो ऐसी है, शक्ति रहने की हालत में शायद उसको घर से बाहर निकलने भी नहीं देती। उसने इस अपरिचित शहर के बीच इस गंभीर रात्रि में अपने बीमार पति को अकेले घर से बाहर जाने देकर इतने समय तक कैसे बिताया, इसे सोचकर एक तरफ उनको हँसी आ गई, दूसरी तरफ वैसे ही आँखों के कोने में जल भी आ गया।

सरोजिनी शायद खबर मिलने पर ठीक उसी समय अंदर से दौड़ती हुई बाहर के बरामदे में पहुँच गई। उपेंद्र को देखते ही उसके मुँह पर और उसके नेत्रों पर हँसी की छटा भर गई। गाड़ी से उतरते न उतरते ही वह बोल उठी, "बाहर अब एक पल भी नहीं, एकादम ऊपर चले चलिए।"

उपेंद्र यथासंभव गंभीर मुँह से इसका कारण पूछते समय स्वयं भी हँस पड़े।

तब सरोजिनी ने हँसकर कहा, "अच्छी स्त्री को कल रात को आपने मेरे जिम्मे कर दिया था—न तो स्वयं सो सकी, न तो मुझे ही सोने दिया। सारी रात गाड़ी की आवाज सुनती रही और खिड़की खोलकर देखती रही—यह क्या! पत्र लिखने क्यों बैठ गए! नहीं-नहीं, यह नहीं होगा, एक बार दर्शन तो दे दीजिए उसके बाद जो इच्छा हो कीजिए, अभी नहीं।"

बाहर के बरामदे में एक छोटी सी मेज पर लिखने की सामग्री तैयार थी। उपेंद्र ने एक कागज खींचकर कहा, "पत्र लिख लूँ उसके बाद जो कहिए, मैं कर सकता हूँ, लेकिन इसके पहले नहीं, पाँच मिनट से ज्यादा न लगेगा, इच्छा हो तो जाकर खबर दे सकती हैं।"

सरोजिनी ने उसी तरह हँसते हुए चेहरे से कहा, "मुझे खबर देने की आवश्यकता नहीं है, उन्होंने ही मुझे खबर देने के लिए बाहर भेजा है। अच्छा, मैं पाँच मिनट खड़ी रहती हूँ, आपको साथ लेकर ही चलूँगी।"

उपेंद्र फिर उत्तर न देकर पत्र लिखने लगे। लिखते-लिखते उनके चेहरे पर व्यथा और विरक्ति के जो सुस्पष्ट चिह्न पड़ रहे थे, उन्हें निकट ही खड़ी रहकर सरोजिनी निरीक्षण कर रही थी, इसको वह जान भी न सके।

पत्र समाप्त करके, उसको लिफाफे में भरकर पता लिखकर उपेंद्र ने मुँह ऊपर उठाकर देखा। कोचवान ने आकर सरोजिनी को लक्ष्य करके कहा, "गाड़ी तैयार है।"

उपेंद्र ने पूछा, "क्या आप बाहर जाएँगी?"

सरोजिनी ने कहा, "हाँ, अपना छोटा पियानो मरम्मत करने को दे आई हूँ, उसे एक बार देख आऊँगी।"

उपेंद्र ने खुश होकर कहा, "पता लिखा है, थोड़ा कष्ट उठाकर यह पत्र साईस के हाथ घर में भिजवा दीजिएगा।" यह कहकर उपेंद्र ने सरोजिनी के फैलाए हुए हाथ पर पत्र रख दिया।

सरोजिनी कुछ देर तक उसके सिरानामे की तरफ देखती रही। नाम और पते की दो लाइनों को पढ़ने में अधिक समय नहीं लगा। उसके बाद उसने मुँह ऊपर उठाकर कहा, "सतीश बाबू इस बार हम लोगों के घर पर क्यों नहीं आए?"

"हम लोगों के साथ आया नहीं, सतीश बराबर यहीं रहता है।"

यह समाचार सुनकर सरोजिनी चौंक पड़ी। उपेंद्र के मन की अवस्था यह सब देखने योग्य नहीं थी।

सरोजिनी ने सहज भाव से बोलने की चेष्टा की, "वह कभी इस ओर कदम नहीं रखते, लेकिन इतने दिनों से इतने पास रह रहे हैं।"

उपेंद्र अन्यमनस्क होकर कोई दूसरी ही बात सोच रहे थे। बोले, "मालूम पड़ता है, आप लोगों की बातें उसे याद नहीं हैं।"

यह बात कितनी सहज थी, लेकिन कैसी कठिन होकर सुननेवाली के कानों में जा लगी।

उपेंद्र ने कहा, "अच्छी बात है, दिवाकर कहाँ है?"

"वह भैया के साथ हाईकोर्ट घूमने गए हैं। चलिए, आपको साथ लेकर पहले अंदर पहुँचा आऊँ।" कहकर सरोजिनी घर में चली गई।

बीस मिनट के बाद घर लौटकर जब गाड़ी पर सवार हो गई और आदेशानुसार गाड़ी जब सतीश के डेरे की तरफ रवाना हो गई, तब अंदर बैठी हुई सरोजिनी का हृदय काँपने लगा और गाड़ी जितना ही अग्रसर होने लगी, हृदय का स्पंदन मानो उतना ही प्रबल होने लगा।

उसे लगा, मानो वह ऐसे ही एक महत्त्वपूर्ण काम का भार लेकर जा रही है, जिसकी सिद्धि पर उसके अपने ही भविष्य का भला-बुरा मानो सबकुछ निर्भर कर रहा है।

थोड़ी ही देर में गाड़ी सतीश के डेरे के सामने आकर ठहर गई और साईस पत्र हाथ में लिए उतरा। सरोजिनी ने गाड़ी के एक कोने में सटकर सिकुड़कर बैठी रहकर कान लगाए दरवाजे पर साईस का कराघात सुना। कुछ देर बाद उसके दरवाजा खुलने का शब्द और उसके अंदर जाने की आवाज उसे मालूम हुई और उसके बाद प्रतिक्षण किसी सुपरिचित गंभीर कंठ-स्वर कानों में पहुँचने की आशंका और आकांक्षा से स्तब्ध रोमांचित होकर वह बैठी रही। वह अवश्य जानती थी, गाड़ी और गाड़ी के अंदर जो बैठी हुई है, साईस के मुँह से उसका परिचय पाकर सतीश स्वयं ही आ जाएगा। उसको एक बार भी यह खयाल नहीं आया कि जो व्यक्ति इतने दिनों से इतना निकट रहकर भी इस तरह भूलकर रह सकता है, उसको यह समाचार तनिक भी विचलित नहीं कर सकता।

फिर साईस का कंठ-स्वर दरवाजे के पास सुनाई पड़ा, वह दरवाजा बंद भी हो गया और

क्षण भर बाद ही वह पत्र हाथ में लिये अकेले लौट आया। उसने कहा, ''बाबू घर में नहीं हैं।''

''घर में नहीं हैं?'' पलभर के लिए सरोजिनी स्वस्थ होकर बच गई। मुँह बढ़ाकर उसने कहा, ''पत्र लौटाकर क्यों लाया, जा रख आ।''

साईस ने कहा, ''बाबू कलकत्ता में नहीं हैं, दिन के दस बजे की गाड़ी से घर चले गए।''

यह बात सुनकर न मालूम क्यों उसको यह घर अपनी ही आँखों से देख लेने की अदम्य इच्छा हो गई, उसका ठीक कारण वह स्वयं भी न समझ सकी और दूसरे ही क्षण वह उतर आई, फिर किवाड़ खोलकर अंदर चली गई। हिंदुस्तानी रसोइया चीजों के पहरे पर तैनात था, उसकी सहायता से सभी कमरों में घूम-फिरकर, देखकर नीचे उतरने के रास्ते में रस्सी की अरगनी पर लटकती हुई एक अधमैली चौड़ी पाट की साड़ी पर सरोजिनी की निगाह पड़ गई। कौतूहली होकर प्रश्न करने पर ब्राह्मण ने अपनी बोली में बताया, ''यह माँजी का कपड़ा है।''

तीसरे पहर स्नान कर सावित्री ने अपने पहिनने की भीगी साड़ी सूखने के लिए डाल दी थी, वह उस समय तक टंगी हुई थी। आश्चर्य में पड़कर पूछताछ करने पर इस माईजी के बारे में सरोजिनी को जो बातें मालूम हुईं, उससे वह और भी आश्चर्य में पड़ गई। जो सब घटनाएँ सहज भाव से घटित नहीं होतीं और जिनके अंदर पाप रहता है, उन्हें छान-बीनकर समझ न सकने पर भी सभी लोग अपनी बुद्धि के अनुसार एक प्रकार समझ सकते हैं, यह हिंदुस्तानी भी सपत्नीक उपेंद्र के आने और इस तरह उसी क्षण चले जाने से लेकर आज सवेरे मालिक के अचानक प्रस्थान कर देने के बीच माईजी का जो संपर्क रहा, उसको अनुमान से समझ गया था, विशेष रूप से सतीश का उद्भ्रांत आचरण किसी भी आदमी की दृष्टि से छिपा रहना संभव नहीं था। इसीलिए उसने सावित्री की बीमारी आदि की बहुत सी बातें कह दीं और उसकी देखभाल करने के लिए उसके मालिक को इस तरह व्यस्त और व्याकुल होकर अकस्मात् प्रस्थान करना पड़ा है, यह बात भी उसने एक तरह समझा दी। सरोजिनी यही एक नया तथ्य जान गई कि उपेंद्र वगैरह सबसे पहले इसी घर में आए थे, सामान तक गाड़ी से उतार लिया गया था, लेकिन उसी दम सब उठाकर उसी गाड़ी पर सवार होकर चले गए। फिर भी, उन लोगों में से किसी ने सतीश के नाम का भी जिक्र नहीं किया, उसके बाद आज यह पत्र आया है, स्पष्ट ही समझ में आ गया, उपेंद्र को अपने मित्र के अकस्मात् चले जाने की बात मालूम नहीं है। अधीर उत्सुकता से लगातार इस स्त्री के संबंध में तरह-तरह के प्रश्न करके उसकी अवस्था और सुंदरता के संबंध में उसको जो तालिका मिली, यह सत्य लाँघकर भी बहुत ऊँचाई पर चली गई। आखिर में लौट आने पर जब वह गाड़ी में बैठ गई, तब उसको पियानो की मरम्मत कराने का शौक दूर हो गया था और अज्ञात भारी बोझ से हृदय के अंदर भाराक्रांत हो उठा था।

यह रहस्यमयी कौन है और किस कार्य के सिलसिले में आई थी, यह बात जानी नहीं गई, लेकिन एकाएक छिपाने-चुराने का अस्तित्व उसके मन में दृढता से अंकित हो रहा।

सतीश और किरणमयी पर उपेंद्र की रंजिश और अभिमान जितना बड़ा ही क्यों न हो, उसको प्रधानता देकर कर्तव्य की अवहेलना करना उनकी आदत नहीं है। इसीलिए भोजन आदि के बाद पथरियाघाटा के घर पर लौट जाने की ही उनकी इच्छा थी अवश्य, लेकिन

घोर थकावट ने आज उनको परास्त कर दिया। इसके अलावा सुरबाला ऐसी जिद पकड़े रही कि उसकी अवहेलना करके जाना भी कठिन हो गया।

कई घंटे बाद जब उनकी नींद टूटी, तब दिन शेष नहीं था। हड़बड़ाकर उठकर बैठ जाने के साथ ही पास की तिपाई पर रखे हुए पत्र पर उनकी दृष्टि पड़ गई। उसे उठाकर हाथ में लेकर उन्होंने देखा—पत्र उसी तरह बंद है, जिस कारण ही क्यों न हो, वह सतीश के हाथ में नहीं पड़ा है। आहट पाकर सुरबाला ने कमरे में प्रवेश कर कहा, "सतीश बबुआ यहाँ नहीं हैं, दिन के दस बजे की गाड़ी से घर चले गए हैं।"

यह समाचार सुनकर उपेंद्र का मुख स्याह हो गया। पहले ही खयाल हुआ, इस अपरिचित शहर में हारान की आसन्न मृत्यु-संबंधी जितने कर्तव्य हैं, अब अकेले उन्हीं को संपन्न करने पड़ेंगे। ओह, कितने काम हैं! और कितने भयंकर कष्टकर हैं! लोगों को बुलाना, चीज-सामान जुटा देना, सद्यः विधवा और जननी की गोद से उसके एकमात्र संतान का मृत शरीर खींचकर ढो ले जाना, इस मर्मांतक शोक के दृश्य की कल्पना करके ही उनका सर्वांग पत्थर की तरह भारी और समस्त चित्त पथरिया घाटा के विरुद्ध वक्र होकर खड़ा हो गया।

यह सब काम उपेंद्र की प्रकृति के विरुद्ध है। यथाशक्ति वह इसमें पड़ना नहीं चाहते थे, लेकिन सतीश के लिए यह सब काम कितने सहज थे। गाँव में ऐसा कोई भी आदमी नहीं मरा, जहाँ वह अपना कर्मठ बलवान शरीर लेकर सबसे पहले हाजिर न हुआ हो और सभी अप्रिय काम चुपचाप आडंबर के बिना संपन्न न कर दिए हों। दुर्दिन में सभी उसको खोजते थे और उसके आगमन से शोकार्त्त और विपत्तिग्रस्त गृहस्थ इस दुःख के भी बीच सांत्वना और साहस पाता था। वही जब कलकत्ता छोड़कर चला गया, तब क्षण भर के लिए उपेंद्र को किसी ओर फिर रास्ता नहीं दिखाई पड़ा।

सुरबाला ने पति के मुख का भाव देखकर हारान की अवस्था के बारे में पूछा, लेकिन सतीश का प्रसंग नहीं उठाया। सरोजिनी ने वापस आकर बातों की जानकारी प्राप्त करने के लिए बातचीत के बहाने जो जिक्र किया था, उसी से उसने कल रात की घटना का अनुमान कर लिया था, सतीश उसके पति का कितना बड़ा मित्र है, इसको वह जानती थी, इसीलिए इस व्यथा को उसने छिपा दिया।

सुरबाला की सांसारिक बुद्धि पर कुछ भी आस्था न रहने के कारण ही उपेंद्र किसी दिन भी स्त्री के सामने किसी समस्या का जिक्र नहीं करते थे, लेकिन अभी-अभी वह अपने को इतना विपत्तिग्रस्त समझ रहे थे कि उसी क्षण सारी स्थिति खोलकर प्रकट करके व्याकुल भाव से बोले, "वह मुझे इस विपत्ति में छोड़कर चला जाएगा सुरो, यह मैंने सपने में भी नहीं सोचा था। अकेला इस अनजान स्थान में क्या उपाय करूँ।" यह कहकर उपेंद्र मानो असहाय शिशु की भाँति स्त्री के मुँह की ओर ताकने लगे।

लेकिन आश्चर्य की बात है कि पति की इतनी बड़ी विपत्ति का समाचार पाकर भी सुरबाला के मुख पर तनिक भी घबराहट न दिखाई दी। वह निकट चली आई और उनका एक हाथ पकड़कर बिछौने पर बैठाकर धीरे से बोली, "तो क्यों इतना सोचते हो, इस कलकत्ता में किसी के लिए भी काम नहीं रुकता, चाय तैयार है, हाथ-मुँह धोकर तुम चाय पी लो, छोटे बबुआजी को साथ लेकर मैं भी चल रही हूँ, चलो।"

उपेंद्र ने अवाक् होकर कहा, "तुम चलोगी?"

सुरबाला ने अविचलित भाव से कहा, “अवश्य ही जाऊँगी। किसी स्त्री के दुर्दिन में उसके पास रहना स्त्री का ही काम है।” यह कहकर उसने अनुमति के लिए प्रतीक्षा भी न करके पास के कमरे से चाय लाकर हाजिर कर दी और दिवाकर को खबर देकर बाहर चली गई।

घरों में जब संध्या के दीपक जलाए जा चुके थे, ठीक उसी समय उन लोगों ने पथरियाघाटा के घर में प्रवेश किया। सदर दरवाजा खुला था, लेकिन नीचे कहीं भी कोई नहीं था। अँधेरा टूटा-फूटा घर श्मशान की तरह खामोश था। दोनों को सावधानी से अनुसरण करने का संकेत करके उपेंद्र ऊपर चढ़कर हारान के बंद किवाड़ के सामने आकर क्षणभर के लिए स्तब्ध होकर खड़े हो गए। अंदर से केवल एक मर्मभेदी लंबी साँस कानों में आकर पहुँची। काँपते हुए हाथ से किवाड़ ठेलकर देखते ही अंधकार में बिछौने पर आपादमस्तक वस्त्राच्छादित हारान का मृत शरीर दिखाई पड़ा। उसके दोनों पैरों के बीच मुँह छिपाकर सद्यः विधवा औंधी होकर पड़ी हुई थी, उसने एक बार सिर हिलाकर उठाकर देखा और दूसरे ही क्षण विद्युद्वेग से उठकर खड़ी होकर आर्त्तस्वर से माँ कहकर चीत्कार करके तुरंत ही उपेंद्र के पैरों के नीचे मूर्च्छित होकर गिर पड़ी और उसी क्षण पलभर में सुरबाला ने उद्भ्रांत पति को एक ओर ठेलकर कमरे में घुसकर किरणमयी के मुँह को अपनी गोद में ले लिया।

पच्चीस

अस्थि-माँस-मेद-मज्जा-रक्त से निर्मित इस मानव शरीर में सभी चीजों की एक सीमा निर्धारित है। मातृ-स्नेह भी असीम नहीं है, उसका भी परिमाण है। भारी बोझ दिन-रात खींचकर घूमते रहने से रक्त-संचार जब बंद होने लगता है, तब उस सीमा-रेखा के एक छोर पर खड़ी रहकर जननी भी फिर संतान को ढोकर एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकती। यह स्नेह के अभाव से होता है या सामर्थ्य के अभाव से, इसकी मीमांसा का भार अंतर्यामी के हाथ में है, माँ के हाथ में नहीं। उस दिन जब हारान का मृत शरीर माता की गोद से अलग होकर श्मशान में चला गया, तब अघोरमयी की छाती को चीरकर जो लंबी साँस उसी असीम के पदप्रांत में इस मृत्युवार्त्ता को ढोकर ले गई, वह अपने साथ और कुछ ले गई या नहीं, इसका अनुमान करने की सामर्थ्य मनुष्य में नहीं है।

उनकी अत्यंत ज्वर की दशा में ही हारान की मृत्यु हुई। उसके बाद आठ-दस दिन किस तरह कहाँ से चले गए, वे जान न सकीं।

श्राद्ध के किसी प्रकार समाप्त हो जाने पर उन्होंने उपेंद्र को पकड़ लिया, कहा, “बेटा, पास के घर से मल्लिक घराने की बड़ी बहू काशी, वृंदावन, प्रयाग घूमने जाएँ, क्या उनके साथ जाना उचित नहीं है?”

“क्यों नहीं मौसी, अच्छी तरह से हो सकता है, लेकिन...” कहकर उसने एक बार किरणमयी की ओर देखा।

किरणमयी ने समझकर कहा, “मेरे लिए चिंता न करो बबुआ, मैं दासी को लेकर अच्छी तरह रह सकूँगी।”

लेकिन उपेंद्र इस पर तुरंत ही सम्मति न दे सके, चुप ही रहे।

किरणमयी उनके मुँह की ओर क्षण भर देखती रही। फिर बोली, "या यह भी तो हो सकता है, दिवाकर बबुआ तो कलकत्ता में रहकर ही पढ़ेंगे, ऐसा निश्चय हो चुका है, उनको मेरे ही पास क्यों नहीं रख देते! एक अनजान घर में रहने की अपेक्षा मेरी आँखों के आगे रहना तो अधिक अच्छा है। देखभाल भी होगी, कलकत्ता में अकेला रखने से जो सब भय है, वह भय भी न रहेगा।" यह कहकर उसने उपेंद्र के मुँह पर अपनी दृष्टि स्थिर कर दी।

अघोरमयी अपनी पूरी सम्मति देकर बोल उठीं, "इससे अच्छी और कौन बात है उपेन, यही करो। उस लड़के की देखभाल भी होगी, यह अभागिनी भी जो कुछ है, जरा हिल-डोलकर बचेगी। ये किसी प्रकार जरा बाहर निकल सकने से ही बच जाएगी।" इतनी आसानी से ऐसा सीधा मार्ग आविष्कृत होते देख उन्होंने निश्चित भाव से एक लंबी साँस ली, लेकिन उपेंद्र किरणमयी का साहस देखकर एकदम स्तंभित हो गए। ऐसा एक अचिंतनीय प्रस्ताव उनके मुँह से निकला ही कैसे, यह तो वह सोचने पर भी समझ न सका। दिवाकर जो कुछ भी हो, वह बच्चा नहीं है, वह भी यौवन-प्राप्त पुरुष है। फिर भी, इस परम रूपवती रमणी को अकेले इस निर्जन घर में ठीक मानो बच्चे की ही तरह उसका लालन-पालन करने और सुयोग्य बना देने का हर प्रकार का दायित्व निस्संकोच ग्रहण करने को तैयार देखकर उपेंद्र के मुँह से भली-बुरी कोई बात नहीं निकली। यह रमणी कैसी असाधारण बुद्धिमती है, यह जानना उनके लिए शेष नहीं था। उसने संगत-असंगत, सांसारिक और सामाजिक, विधि-व्यवस्था विशेष रूप से जान-बूझकर ही यह प्रसंग उठाया है, इसमें भी संदेह नहीं है, फिर भी, यह कैसी बात? किस तरह उसने कही?

पलभर में उसने अपनी समस्त पर्यवेक्षण शक्तियों को जाग्रत् और एकत्र करके इस अनंत सौंदर्यमयी के हृदय में भेज देना चाहा, लेकिन कहीं भी उनको प्रवेश का मार्ग नहीं मिला, अपितु कहीं मानो जोरों से टकराकर उसी क्षण वापस आ गई।

लेकिन यह जो पल भर के लिए दोनों एक-दूसरे के मुँह की ओर चुपचाप ताकते रहे, इसी से दोनों के बीच मानो एक नए प्रकार से जान-पहचान हो गई। उनको खयाल हुआ, ऐसी शुद्ध, शांत और आत्मसंयमपूर्ण वैराग्य की मूर्ति उसने और कभी नहीं देखी थी। उस दिन, रात के समय इसके वेश की सजावट देखकर सद्यः समागत उसकी ओर सतीश की दृष्टि झुलस गई थी, खयाल हुआ था, इसकी तुलना नहीं है, इस तरह सजावट न कर सकने से किसी की सजावट ही नहीं होती। आज फिर उसकी यह रूखी, शिथिल असंबद्ध केशराशि और विधवा की सजावट देखकर ज्ञात हुआ ऐसी संभवतः किसी दिन यह दिखाई नहीं पड़ी।

उपेंद्र उस समय बात न कर सके, लेकिन उनके मानस नेत्रों की दृष्टि से इस विधवा के सामने दिवाकर बिल्कुल ही छोटे बच्चे की भाँति तुच्छ हो गया और उस दिन क्यों सतीश को छोटे भाई की तरह अपने पास भेज देने का इनसे अनुरोध किया था, यह बात भी आज बिल्कुल ही स्पष्ट हो गई। उनके परितृप्त मन ने चुपचाप हाथ जोड़े इस महामयी के सम्मुख, अपना अपराध बार-बार स्वीकार करके मन ही मन क्षमा-याचना कर ली। तीनों ही चुप थे। किरणमयी ने पहले बात कही। अपनी दोनों आँखों की करुण दृष्टि पहले की ही तरह उपेंद्र के मुँह पर स्थिर रखकर अनुनय के स्वर से उसने कहा, "दिवाकर को मेरे पास क्या रख न सकोगे बबुआजी?"

उपेंद्र मंत्रमुग्ध की भाँति बोले, "क्यों न रख सकूँगा भाभी! आप यदि उसका भार ले लें,

तो यह परम सौभाग्य होगा।" इतने दिनों के बाद उपेंद्र ने आज पहले-पहल उसको आत्मीय की तरह संबोधन किया। कहा, "दिवाकर मेरे साथ ही तो आया था, अकेले चला गया है शायद, नहीं तो बुलाकर कह देता।"

यह बात सुनकर किरणमयी चकित हो उठी। इस बार उसके मुँह से बात नहीं निकली। अकस्मात् आनंद की बाढ़ ने मानो उसके दोनों किनारों को बहा देने की तैयारी कर दी। इसीलिए वह क्षण भर के लिए दूसरी ओर मुँह फेरकर अपने को सँभालने लगी। इतना थोड़ा सा आत्मीय संबोधन! यह कितना है? किंतु इसी के लिए वह मानो कितने युगों से प्यासी थी, ऐसा उसे ज्ञात हुआ। सतीश ने यही कहकर पुकारा है, दिवाकर यही कहकर पुकारा करता है, लेकिन उसमें और इसमें कितना अंतर है। इस आह्वान से इतने दिनों के बाद उपेंद्र ने उसको जो अपने समीप खींच लिया, एकाएक उसे आशंका हुई इसके प्रचंड वेग को वह संभवतः सँभाल न सकेगी।

लेकिन इन लोगों की इस आकस्मिक मौनता से अघोरमयी शंकित हो उठीं। बोलीं, "बेटा उपेन, तब तो मेरे जाने में कोई विघ्न नहीं है, लेकिन उस काम में तो अब देर नहीं है, मैं क्या इसी समय जाकर मल्लिकजी की बड़ी बहू को कह न आऊँ।"

उपेंद्र किरणमयी की ओर एक बार दृष्टिपात करके बोले, "मैंने तो कह दिया है मौसी, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। तुम्हारी बहूजी के सहमत होने से हो जाएगा। जब उनका भी मत है, तब तुम्हारी तीर्थयात्रा में तो कोई बाधा ही मैं नहीं देखता।"

"तो जाऊँ बेटा, मैं इसी समय जाकर उससे कह आऊँ। यह भी जान आऊँ कब उन लोगों का जाना होगा।"

इतना कहकर अघोरमयी दासी को बुलाकर प्रफुल्ल मुँह से नीचे उतर गईं।

उनकी इस शीघ्रता से उपेंद्र ने मन ही मन संतोष का अनुभव करके कहा, "अच्छा ही हुआ। जिस तरह भी हो, अब कुछ दिनों के लिए उनका बाहर जाना अत्यंत आवश्यक है।"

किरणमयी कुछ भी नहीं बोली। इस समय वह किसी कारण मानो अनमन सी हो गई थी। उत्तर न पाकर उपेंद्र ने फिर कहा, "आपकी सम्मति है न भाभी?"

उपेंद्र के कंठ-स्वर से वह क्षणभर अबोध की भाँति उनके मुँह की ओर देखती रहकर एकाएक मानो सचेत हो उठी। उसने कहा, "अवश्य ही, बबुआजी, अवश्य। वह कैसा अंधकूप है, इसे केवल हम लोग ही जानती हैं। चली जाएँ, कुछ दिनों तक इस दुःख के घेरे से छुटकारा पाकर बच जाएँ।"

उसकी ये बातें इस प्रकार उसके मुँह से बाहर निकलीं कि उपेंद्र ने कष्ट अनुभव किया। पीड़ित चित्त से कुछ देर तक मौन रहकर बोले, "बस दुःख के घेरे से केवल उनका ही नहीं भाभी, आपका भी बाहर निकल जाना उचित है।"

किरणमयी ने कातर दृष्टि से कहा, "मेरा कौन है बबुआजी, किसके पास मैं जाऊँगी?"

उपेंद्र ने प्रश्न किया, "आपके पिता के घर क्या कोई नहीं है?"

किरणमयी हँस पड़ी। बोली, "पिता का घर कहाँ है, यही तो मैं नहीं जानती। मामा के घर पाली-पोसी गई थी। उन लोगों की खबर भी आठ-दस वर्षों से मैं नहीं जानती। दस वर्ष की आयु में ब्याह हो जाने पर वही जो इस मकान में मैं आ गई, मृत्यु न होने से संभवतः अब इसमें से निकल ही न सकूँगी।"

उपेंद्र अत्यंत व्यथित हो गए। फिर सोचकर बोले, ''तो आप भी क्यों मौसी के साथ पश्चिम को नहीं चली जातीं! घूमना भी होगा, तीर्थयात्रा भी होगी।'' कहकर वह किरणमयी का मनोभाव देखकर आश्चर्य में पड़ गए, क्योंकि ऐसे प्रस्ताव से उसने जरा भी आनंद प्रकट नहीं किया। वैसे ही निरुत्साह से नीचे को ताकती रही।

उपेंद्र को तुरंत ही यह ध्यान आ गया कि यह घर छोड़कर जाने में असमर्थ हो रही है। उन्होंने कहा, ''आप इस घर के लिए सोच रही हैं? कोई चिंता मत कीजिएगा। मैं इसकी देखभाल का प्रबंध कर दूँगा। कोई वस्तु नष्ट न होगी।''

इस बार किरणमयी मुसकरा उठी। बोली, ''तुमने संभवतः मेरी उस प्रथम रात्रि का पागलपन स्मरण करके यह बात कही है बबुआजी?''

उपेंद्र घबराकर बोल उठे, ''नहीं, ऐसी बात नहीं है, लेकिन वह भी यदि हो तो उसको भी पागलपन कह रही हैं। उस दशा में सतर्क होना तो सभी के लिए उचित है।''

किरणमयी ने हँसी के साथ कहा, ''कहीं इतना सतर्क होना चाहिए बबुआजी?''

उपेंद्र ने कहा, ''नहीं क्यों! अपने घर-द्वार, धन-दौलत पर ममता किसकी नहीं है? भविष्य की दुश्चिंता किसको नहीं होती? नहीं-नहीं, ऐसी बात आप मत कहिए। उसमें असंगति या अस्वाभाविकता कुछ भी नहीं थी।''

''न रहने से ही अच्छा है, लेकिन मैं तो अब उसको शुद्ध पागलपन के अतिरिक्त और कुछ भी सोच नहीं सकती।'' और एकाएक गंभीर होकर बोली, ''तुमको भी संदेह! छिह! छिह! कैसी कड़ी बात मैंने कह दी थी। स्मरण होने से अब स्वयं ही लज्जा से मरने लगी हूँ।''

यह कहते-कहते उसका सहज-सुंदर मुख अनुपात से मानो पिघल गया। उपेंद्र ने प्रतिवाद नहीं किया, वह चुपचाप ताकते रहे। पलभर मौन रहकर उसने फिर कहा, ''किंतु वह ममता अब कहाँ है बबुआजी? एक बार भी तो यह विचार नहीं आता कि यह घर मेरा रहेगा या हाथ से निकल जाएगा। रहे तो रहे, न रहे तो चला जाए! सोचती हूँ, मार्ग के वृक्षों के नीचे का स्थान भी कोई रोक न सकेगा, मुझे वही काफी होगा।''

उपेंद्र ने इसका भी प्रत्युत्तर नहीं दिया। सद्यःविधवा के वैराग्य की इन थोड़ी सी बातों से उनका हृदय श्रद्धा तथा करुणा से भर उठा।

किरणमयी ने कहा, ''मकान के लिए नहीं बबुआजी, लेकिन माँ के साथ तीर्थ में जाने से भी क्या मैं शांति पाऊँगी? सुनती हूँ उन सब स्थानों में सर्वत्र ही तो बहुत से लोगों की भीड़ होती है।''

उपेंद्र ने गरदन हिलाकर कहा, ''तीर्थस्थानों में तो लोगों की भीड़ होती ही है भाभी, लेकिन आपका और कुछ भले ही न हो, तीर्थ करना तो हो जाएगा। वह भी तो एक काम है।''

फिर किरणमयी उपेंद्र के मुँह की ओर देखकर मुसकरा पड़ी, लेकिन बोली नहीं। वह किसलिए हँस पड़ी, उसका तात्पर्य समझ न सकने के कारण उपेंद्र संभवतः कुछ कहने जा रहे थे, लेकिन एकाएक आश्चर्य में पड़कर उन्होंने देखा पास के कमरे से दिवाकर निकल आया।

''तू क्या इतनी देर से उसी कमरे में था रे!''

किरणमयी ने कहा, ''दिवाकर बबुआ कृपा करके मेरी पुस्तकें ठीक से रख रहे थे। मैं

तुमको बताना भूल गई थी।''

दिवाकर ने निकट आकर कहा, ''कितनी पुस्तकें कैसी दशा में हो गई हैं भाभी, लेकिन खोलकर देखने से ज्ञात होता है, वह कितने यत्न से उन सबको पढ़ते थे।''

किरणमयी ने सम्मति देकर कहा, ''सचमुच ही यही बात है। जिसको पढ़ना कहते हैं, वह उसी तरह पढ़ते थे। तुम्हारे हाथ में वह कौन पुस्तक है बबुआजी?''

दिवाकर ने लज्जित भाव से कहा, ''यह एक उपन्यास है।''

किरणमयी ने हँसकर कहा, ''खूब! खूब! लेकिन, इस उपन्यास का अंतिम भाग अपने हाथ की उस पुस्तक में पाओगे।''

दिवाकर हाथ की पुस्तक की ओर मौन होकर देखता रहा। किरणमयी की बातें उसके हृदय में पीड़ा पहुँचाने लगीं। थोड़ी देर तक चुप रहकर उसने कहा, ''भाभी, जिसको आप मिथ्या घटना कह रही हैं, उसका संभवतः कोई गूढ़ अर्थ हो।''

''इसीलिए, मिथ्या की अवतारणा? तुम जो अनुमान कर रहे हो, वह हो सकता है, यह मैं मान लेती हूँ, लेकिन तो भी यह अनुमान के सिवा और कुछ भी नहीं है और अर्थ जो कुछ भी हो, मार्ग सन्मार्ग नहीं है। यह बात मान लेनी चाहिए कि मिथ्या से भुलावा डालकर सत्य का प्रचार नहीं होता।''

दिवाकर बड़ी देर तक मौन रहा। उसके बाद उसने धीरे-धीरे कहा, ''भाभी, आप आत्मा को नहीं मानतीं?''

''नहीं।''

''क्यों?''

''झूठी बात होने के कारण। इसके अतिरिक्त ऐसा दंभ मुझे नहीं है कि सब कुछ का नाश हो जाएगा, केवल मेरे इस महामूल्य 'मैं' का किसी दिन ध्वंस न होगा, ऐसी कामना भी मैं नहीं करती कि मेरा यह 'मैं' बचा रहे।''

''अच्छा, ईश्वर! उनको भी क्या आप स्वीकार नहीं करतीं?''

''किरणमयी ने हँसकर कहा, ''इतना डरकर क्यों कह रहे हो बबुआजी? इसमें डर की बात कुछ भी नहीं है। नहीं, मैं अस्वीकार भी नहीं करती।''

''तो क्या उनको सोचा भी नहीं जाता?''

''सोचा जाता है बबुआजी, छोटा बनाकर सोचा जाता है। मनुष्य के दोष-गुण को एक में मिलाकर, छोटा-मोटा देवता मानकर, निरक्षर लोग जिस तरह भक्ति-भाव से सोचते हैं, उसी तरह केवल सोचा जाता है। नहीं तो ज्ञान के अभिमान से ब्रह्म बनाकर जो लोग सोचना चाहते हैं, वे केवल अपने को धोखा देते हैं, लेकिन आज और नहीं, ये सब बातें किसी दूसरे दिन होंगी।'' उपेंद्र के मुँह की ओर देखकर हँसते हुए मुख से बोलीं, ''लेकिन बबुआजी बड़े सयाने हो। हम लोगों ने झोंक में आकर तर्क-वितर्क किया और तुमने अपने को बिल्कुल ही बचा रखा। मैं जानती हूँ, तुम सबकुछ जानते हो, लेकिन मन की एक बात भी तुमने किसी को जानने न दी।''

उपेंद्र हँस पड़े। उन्होंने कहा, ''नहीं भाभी, मैं इस संबंध में बिल्कुल ही महामूर्ख हूँ। मैं स्तंभित होकर केवल आप ही की बातें सुन रहा था।''

किरणमयी ने हँसकर कहा, ''व्यंग्य कर रहे हो बबुआजी?''

"नहीं भाभी, सच्ची बात ही कह रहा हूँ, लेकिन सोचता हूँ अपनी इस थोड़ी सी उम्र में आप इतना कब पढ़ गईं, इतना सोचा भी कब!"

प्रशंसा सुनकर किरणमयी का अंतःकरण आनंद से, गर्व से उच्छ्वसित हो उठा, लेकिन उसका दमन करके विनय के साथ उसने कहा, "नहीं-नहीं, वह बात मत कहो बबुआजी, मैं भी महामूर्ख हूँ, कुछ भी नहीं जानती। केवल इतना ही अवश्य जान गई हूँ कि कुछ जान लेने का उपाय नहीं है, इसीलिए इन सब शास्त्रों की दंभपूर्ण युक्ति देखने से ही मेरे शरीर में आग लग जाती है, किसी प्रकार भी अपने आपको फिर सँभालकर नहीं रख सकती। खाते समय, सोते समय, बैठने में भगवान् की दुहाई और धर्म को दाँत से पकड़ना! क्यों भैया? वास्तव में इतना अन्याय जबरदस्ती सहा नहीं जाता बबुआजी।"

उपेंद्र मौन रहे, लेकिन दिवाकर ने अपनी अंतिम चेष्टा करके कहा, "लेकिन यह जोर संभवतः हमारे कल्याण के ही निमित्त उन्होंने प्रकट किया है।"

किरणमयी जल उठी, बोली, "इतनी भलाई की आवश्यकता नहीं है बबुआजी! मानो वे ही लोग केवल मनुष्य बनकर देशभर के पशु-दल को लाठी की ठोकर से अच्छे मार्ग में खदेड़ देने के लिए अवतीर्ण हुए हैं। अपनी भलाई कौन नहीं चाहता। मुझे भी तो समझने देना चाहिए, क्यों इस मार्ग से ही मेरा मंगल है, इससे तो इतना आँख लाल करने, इतने झूठे उपन्यास लिखने की आवश्यकता नहीं पड़ती।" कहते-कहते उसके भीतर का क्रोध स्पष्ट हो उठा।

उपेंद्र को अचानक प्रथम रात्रि की बात स्मरण हो गई। यह है वही मूर्ति। पिंजरे में बंद जंगली पशु का वह मर्मभेदी गर्जन! लेकिन क्या चाहती है यह? किसके विरुद्ध इसका इतना रोष है? शास्त्र और शास्त्रकार की किस जंजीर को तोड़कर यह विधवा मुक्ति-प्रार्थना कर रही है?

उसको शांत करने के अभिप्राय से उपेंद्र ने सविनय हँसी के साथ कहा, "हम दोनों तो आपकी बातों का उत्तर न दे सके भाभी, लेकिन एक व्यक्ति है, जिसके सामने आपको भी तर्क में हारकर आना पड़ेगा, यह मैं कहे देता हूँ।"

किरणमयी अपनी उत्तेजना स्वयं ही समझकर अंत में मन ही मन लज्जित हो गई। उसने भी हँसकर कहा, "ऐसा कौन है, बताओ तो बबुआजी?"

उपेंद्र ने गंभीर होकर कहा, "आप परिहास मत समझिएगा। सच ही कहता हूँ, उसको जीत पाना कठिन है। उसका पढ़ना-लिखना ज्यादा हुआ हो, ऐसी बात नहीं, लेकिन उसकी तर्क-बुद्धि अति सूक्ष्म है। वह भी इन सब पर विश्वास रखती है, उसको निरुत्तर बनाकर आप आ सकें, तभी समझूँगा!"

किरणमयी ने उत्साहित होकर कहा, "भले ही मैं न कर सकूँ, लेकिन सीखकर भी तो आ सकूँगी?" हँसकर उसने कहा, "वह कौन हैं बबुआजी, हमारी छोटी बहू तो नहीं!"

उपेंद्र हँसने लगे। बोले, "वही वास्तव में भाभी, उसकी विचारशक्ति अद्भुत है। तर्क-बुद्धि देखकर समय-असमय पर मैं सचमुच ही मुग्ध हो जाता हूँ। मैं क्या उत्तर दूँगा, क्या प्रश्न करूँगा, यह मानो मैं ढूँढ़कर पाता ही नहीं। हतबुद्धि होकर बैठा रहता हूँ।"

उपेंद्र के मुँह से सुरबाला की इस प्रशंसा से किरणमयी के मुख की दीप्ति बुझ गई। फिर भी, इसमें भाग लेने की उसने इच्छा की, लेकिन इसी की वेदना से समूचे अंग को घेरकर

मानो गले में जकड़कर पकड़ लिया। एकाएक वह बात न कह सकी।

लेकिन, उपेंद्र ने इसे लक्ष्य नहीं किया। उन्होंने पूछा, "उसके साथ संभवतः किसी दिन इस विषय पर आपकी आलोचना नहीं हुई है?"

किरणमयी ने गरदन हिलाकर कहा, "नहीं। केवल दो ही दिन तो वह यहाँ आई थी। वह भी ऐसे समय में नहीं कि कोई बातचीत हो सकती! चलो न, बबुआजी, आज एक बार तुम्हारे तर्कवीर को देख आऊँ।"

उपेंद्र हँसने लगे। उन्होंने कहा, "नहीं भाभी, वह तार्किक बिल्कुल ही नहीं है। वस्तुतः इस विषय के सिवा वह तर्क करती ही नहीं, जो आप कहेंगी, उसी को वह मान लेगी। तीन दिन के बाद वह घर लौट आएगी, अनुमति दें तो यहीं उसे ले आऊँ।"

किरणमयी ने त्रस्त होकर कहा, "नहीं बबुआजी, नहीं। यहाँ लाकर उसको मैं कष्ट देना नहीं चाहती। वह जिस दिन कष्ट स्वीकार करके आई थी, वह मेरे लिए अहोभाग्य था। मुझे तुम ले चलो, मैं चलूँगी। अच्छा, एक बात मैं पूछती हूँ बबुआजी, इतना बड़ा तार्किक गुरु रहते हुए भी तुम दोनों भाई मेरी बातों का उत्तर क्यों न दे सके?"

इन बातों को किरणमयी ने सरल परिहास के रूप में ही करना चाहा, लेकिन वेदना के बोझ से अंतिम बातें भारी होकर प्रकट हो गईं।

दिवाकर चुप हो रहा। उपेंद्र ने कहा, "नहीं भाभी, उसकी वे सब युक्तियाँ सीखी नहीं जातीं। कितनी ही बार तो उन्हें सुन चुका हूँ, किसी प्रकार भी उनको समझ नहीं सका। जो लोग भगवान् को मानते हैं, वे कहेंगे, उनके ही दाहिने हाथ का सर्वश्रेष्ठ दान हैं। सच कहता हूँ भाभी, अनेक बार मुझे ईर्ष्या हुई है कि इसके सहस्त्र भागों का एक भाग भी यदि मैं पा जाता, तो इस दशा में धन्य हो जाता!"

किरणमयी ठीक समझ न सकी कि वह क्या है! तो भी उसका संपूर्ण मुख काला पड़ गया और इसको उसने स्वयं ही स्पष्ट अनुभव करके किसी तरह एक छोटी सी सूखी हँसी से सामने के इन दो पुरुषों के दृष्टिमार्ग से अपने आपको ढक लेना चाहा, लेकिन किसी प्रकार भी उसके मुँह पर हँसी नहीं फूटी।

एकाएक वह सीधी होकर खड़ी हो गई। बोली, "चलो बबुआजी, आज ही मैं उसके साथ भेंट करके आऊँगी। तुमको भी जिसके लिए ईर्ष्या होती है, वह दुर्लभ वस्तु क्या है, उसको देखे बिना मैं किसी प्रकार भी चैन न पाऊँगी।"

उसके आग्रह की अधिकता देखकर उपेंद्र किसी प्रकार भी फिर हँसी को दबाकर न रख सके। किरणमयी ईर्ष्या से इतनी आच्छन्न न हो गई होती तो उसकी इतनी देर की छिपी हुई गंभीरता पलभर में पकड़ ले सकती, लेकिन उस ओर उसकी दृष्टि ही नहीं थी। उसने कहा, "नहीं बबुआजी, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मुझे ले चलो।"

उपेंद्र ने घबराकर दोनों हाथों से माथा छूकर कहा, "छिह! छिह! ऐसी बात मुँह से आप मत निकालिए, भाभी। आप उम्र में छोटी होने पर भी मेरी पूजनीया हैं। अच्छी बात तो है, मौसी वापस आ जाए, चलिए, आज ही आपको ले चलूँ।"

छब्बीस

प्रायः अपराह्न में किरणमयी ज्योतिष बाबू के घर में जाकर उपस्थित हुई। मोटी सादी साड़ी पहिने हुई थी। शरीर पर गहनों का चिह्न भी नहीं था। लंबी रूखी केशराशि बिखरी हुई सिर पर लपेट दी गई थी। उसके नेत्रों में शांत उदास दृष्टि थी, मानो वैधव्य का अलौकिक ऐश्वर्य उसके सर्वांग को घेरकर मूर्तिमान हो रहा था। उस मुँह की ओर देखने से ही आँखें मानो आप ही उसके पैरों में बिछ जाती थीं। सरोजिनी बाहर के बरामदे में एक कुरसी पर बैठकर पुस्तक पढ़ रही थी, दृष्टि उठाकर अकस्मात् वह आश्चर्यजनक रूप देखकर बिल्कुल ही विह्वल हो उठी। उसने किरणमयी को कभी देखा नहीं था। उसका नाम और उसके सौंदर्य के विषय में सुरबाला के मुँह से सुन भर लिया था, लेकिन वह सौंदर्य ऐसा है, इसकी कल्पना भी उसने नहीं की थी।

उपेंद्र ने उसका परिचय दिया, "यही हम लोगों की बहू रानी—सरोजिनी।"

सरोजिनी ने निकट आकर नमस्ते किया।

किरणमयी ने उसका हाथ पकड़कर हँसकर कहा, "तुम्हारा नाम मैंने सबके मुख से सुना है बहन, इसलिए आज एक बार नेत्रों से देख लेने के लिए चली आई हूँ।"

प्रत्युत्तर में सरोजिनी को क्या कहना चाहिए, यह समझ न सकी। अपरिचित नर-नारियों के साथ मिलने-जुलने, वार्त्तालाप करने में बचपन से वह शिक्षित और अभ्यस्त है, लेकिन इस आश्चर्यजनक विधवा नारी के सामने वह चकित रह गई।

किरणमयी ने उपेंद्र की ओर एक बार घूमकर देखा। बोली, "लेकिन आज तो समय नहीं है। अधिक देर तक ठहरने का समय न होगा, बबुआजी, एक बार छोटी बहू के कमरे में चलकर बैठें।"

यह कहकर उसने सरोजिनी की हथेली को जरा सा दबाकर संकेत किया।

लेकिन जिस आवेश में पड़कर किरणमयी आज इस असमय में सुरबाला से भेंट करने आई थी, उस उत्तेजना का कारण उससे अब छिपा नहीं रहा था। मार्ग में आते उसे अनेक बार यह ध्यान आया था, उसके साथ केवल दो ही दिनों का परिचय है, इस सुरबाला का विश्वास और उसकी विद्या-बुद्धि जो भी हो, अकारण ही उसके घर पर धावा बोल देने जैसा अद्‌भुत हास्यास्पद कार्य और कुछ भी हो नहीं सकता। इसीलिए लौट आना ही उचित है, इसमें भी उसे संदेह नहीं था। फिर भी किसी तरह लौट न सकी। किसी ने मानो खींचकर उसे उपस्थित कर दिया। अन्याय! असंगत। यह बात भी उसने मन ही मन बार-बार कही, लेकिन अपनी भार्या के जिस अमूल्य ऐश्वर्य को उपेंद्र ईश्वर का सर्वश्रेष्ठ वरदान कहकर स्वीकार करने में भी लज्जित नहीं हुए, वह कुछ भी नहीं है, उसको वह क्षण भर में परास्त और टुकड़े-टुकड़े करके उसी के नेत्रों के आगे तिनके की भाँति उड़ा दे सकती है, इसको प्रमाणित करने की अदम्य आकांक्षा उसकी छाती के अंदर प्रतिहिंसा की भाँति सुलग रही थी। किसी प्रकार भी वह इसको रोक नहीं सकी। फिर भी, आरंभ से ही उसको यह खटका लगा हुआ था कि सतीश से उपेंद्र का जो परिचय उसे मिला था, उससे उसका मन बार-बार कह रहा था, इच्छा करने से उपेंद्र उत्तर दे सकते थे, लेकिन उन्होंने बात नहीं कही, वह केवल मुसकराते रहे। क्यों? किसलिए? यह क्या केवल सुरबाला के पास ले जाकर उसको एकदम तुच्छ-हीन बना देने के लिए? लेकिन सुरबाला यदि कोई उत्तर न दे? पति की भाँति यों ही मुँह दबाकर हँसकर चुप रह जाए? किस प्रकार वह अपनी विजय-पताका फहरा

सकेगी?

इस प्रकार विचार करते-करते जब उसने सरोजिनी के पीछे-पीछे सुरबाला के कमरे में प्रवेश किया, तब फर्श पर बैठकर काशीदासी महाभारत में भीष्मजी की शरशैया पढ़कर सुरबाला रो-रोकर व्याकुल हो उठी थी। एकाएक किरणमयी को देखकर उसने घबराहट के साथ पुस्तक बंद करके आँखें पोंछ डालीं और उठकर खड़ी होकर उसके दोनों हाथ पकड़कर परम आदर से कहा, "आओ बहन!"

वहीं चटाई पर उसे बिठाकर बोली, "मैंने कल तुम्हारे यहाँ जाने का विचार किया था बहन!"

किरणमयी ने कहा, "मैं भी इसीलिए आज आ गई बहन।"

उपेंद्र निकट ही एक कुरसी खींचकर बैठते हुए बोले, "रोना चल रहा था, संभवतः वह महाभारत है?"

सुरबाला लज्जा से आँचल के छोर से अपनी दोनों आँखें लगातार पोंछने लगी।

उपेंद्र ने कहा, "क्यों तुम उस झूठी रद्दी पुस्तक को लेकर प्रायः समय नष्ट करती हो, यह मैं समझ नहीं पाता। ऊपर से रोना-धोना, आँखों के आँसू...।" बात समाप्त नहीं हुई। सुरबाला आँखें पोंछना भूलकर क्रुद्ध होकर बोल उठी, "सैकड़ों बार तुम यह क्या कहते रहते हो कि...।"

उपेंद्र ने कहा, "कहता हूँ कि यह एकदम झूठ है। और कुछ नहीं कहता।"

इन सब विषयों में उसको रुष्ट करने में अधिक देर न लगती थी। उसने अपने रुष्ट लाल दोनों नेत्रों को पति के मुँह की ओर स्थिर करके कहा, "महाभारत झूठ है? ऐसी बात तुम कभी मुँह से मत निकालो। यह परिहास नहीं है—इससे पाप होता है, यह तो जानते हो?"

उपेंद्र ने कहा, "जानता हूँ, कुछ भी नहीं होता। अच्छा इनसे पूछो, ये भी विश्वास नहीं करतीं।"

इस बार सुरबाला किरणमयी के मुँह की ओर देखकर हँस पड़ी। बोली, "सुनती हो बहन! कहते हैं, तुम महाभारत में विश्वास नहीं करतीं? इनकी ऐसी ही बातें होती हैं! कुछ भी कहते रहते हैं।"

किरणमयी मौन रही। पति-पत्नी के इस अद्भुत वितंडावाद का अर्थ वह समझ न सकी। उसको लगा कि यह एक अभिनय है और उसी को लक्ष्य करके आड़ में कोई एक रहस्य छिपा हुआ है।

उस समय तक किरणमयी ने एक बात भी नहीं कही थी, लेकिन सब वाद-विवाद परिहास के अतिरिक्त और भी कुछ हो सकता है, यह वह सोच न सकी। जिसके साथ दर्शन पर वह तर्क करने आई है, वह जब समस्त महाभारत को ही अखंड सत्य कहकर प्रमाणित करने को कमर बाँधकर बैठी हुई है, तब ऐसी अचिंतनीय बात को सत्य कहकर वह किस प्रकार अपने मन में ग्रहण करेगी। इधर तर्क और बातों की काट-छाँट लगातार चलने लगी, लेकिन किरणमयी केवल तीक्ष्ण दृष्टि से सुरबाला की ओर मौन होकर निहारती रही। देखते-देखते उसके संदेह का नशा भाप की तरह लुप्त हो गया। उसने देखा, सुरबाला के कंठ-स्वर, नेत्रों की दृष्टि, समूचे चेहरे, यहाँ तक कि सर्वांग से संशयहीन दृढ़ विश्वास मानो फूट रहा है। यह विपुल विराट्ग्रंथ उसके लिए प्रत्यक्ष सत्य है। यह तो परिहास नहीं है, यह

मानो सजीव विश्वास है। उसके बाद कुछ क्षण के लिए कौन क्या कहता है, उस ओर उसका ध्यान नहीं रहा। वह मानो अभिभूत की भाँति इस सुरबाला के अंदर अपरिचित भाव की धुँधली आकृति देखने लगी।

लेकिन इस तरह वह कब तक रहती, कहा नहीं जा सकता। सहसा वह उपेंद्र और सरोजिनी की सम्मिलित ऊँची हँसी के स्वर से अपने में लौट आई। उसने देखा हँसी से सुरबाला चकरा गई है। वे बेचारी अकेली थी। इसीलिए किरणमयी को हठात् मध्यस्थ मानकर क्षुब्ध स्वर से कहा, “अच्छा बहन, यह क्या कभी असत्य हो सकता है?”

उपेंद्र ने किरणमयी की ओर देखकर हँसी दबाकर कहा, “भाभी, तर्क यह है, कि भीष्म की शरशैया के समय अर्जुन बाणों से पृथ्वी को विदीर्ण करके गंगाजी को ले आए थे, यह बात झूठ है। वे कभी नहीं लाए।”

सुरबाला ने पति के मुँह की ओर तीव्र दृष्टिपात करके कहा, “यदि नहीं लाए, तो सुनो। कहती हूँ, भीष्मजी ने शरशैया पर लेटकर पानी पीना चाहा, दुर्योधन सोने के पात्र में जल ले आए, उन्होंने नहीं पिया, यह तो असत्य नहीं है। गंगा यदि नहीं आई, तो उनकी प्यास मिटी कैसे?”

सुरोजिनी यह सुनकर चुप न रह सकी। बोली, “कैसे! यदि प्यास मिट गई तो वह उनके उसी सुवर्ण पात्र के जल से ही। उन्होंने दुर्योधन के उसी सुवर्ण-पात्र का जल पिया था।”

इस बार सुरबाला ने अत्यंत उत्तेजित और रुष्ट होकर कहा, “तो क्यों लिखा है कि पिया नहीं? और यदि सोने के पात्र का जल ही उन्हें पीना था, तो उस दशा में अर्जुन को इतना कष्ट उठाकर बाण द्वारा पृथ्वी को विदीर्ण करके गंगा लाने की क्या आवश्यकता पड़ी थी। यह बताओ, बहन तुम ही बताओ, यह तो किसी प्रकार भी असत्य नहीं हो सकता?” यह कहकर उसने क्रुद्ध, लेकिन करुण नेत्रों से किरणमयी को देखा। क्षणभर उपेंद्र की ऊँची हँसी से कमरा भर गया। सरोजिनी खिलखिलाकर हँस पड़ी।

उपेंद्र ने कहा, “लीजिए भाभी, उत्तर दीजिए। गंगाजी यदि नहीं आईं तो प्यास मिटी कैसे? और जब प्यास मिट गई, तब गंगाजी आएँगी क्यों नहीं?” यह कहकर फिर एक बार ठहाका मारकर हँस पड़े।

लेकिन आश्चर्य की बात यह हुई कि किरणमयी इस हँसी में सम्मिलित न हो सकी। वह विस्मित नेत्रों से सुरबाला के मुँह की ओर देखती हुई स्थिर हो रही। उसके बाद अकस्मात् विपुल आवेग से उसको छाती में खींचकर चुपके से बोली, “झूठ नहीं है बहन, कहीं भी, इसमें तनिक भी झूठ नहीं है। गंगाजी तो आई ही थीं। तुमने जो समझा है, जो पढ़ा है, सब सत्य है। सत्य को तो सभी पहचान नहीं सकते बहन, इसलिए परिहास करते हैं।” यह कहते-कहते उसकी दोनों आँखें आँसुओं से भर गईं।

सरोजिनी और उपेंद्र दोनों ही आश्चर्य से उसके मुँह की ओर ताकते रहे, पर किरणमयी ने उस ओर एक बार भी न देखा। उसको उसी तरह छाती में दबाए आँखें पोंछकर धीरे-धीरे बोली, “बहन, जो लोग अनेक धर्म-ग्रंथ पढ़ चुके हैं, वे जानते हैं, आज तुमने जिस तरह सिद्ध कर दिया, इससे अधिक विचार किसी धर्म-ग्रंथ में कोई पंडित किसी दिन कर नहीं

सके हैं, उन सभी लोगों को इसी प्रकार अपने मन की बातें कहनी पड़ी हैं। यह बात जो जानता है, उसमें सामर्थ्य नहीं है कि आज तुम्हारे मुँह की इन थोड़ी सी बातों को सुनकर हँसे।''

यह कहकर उसको छोड़कर सरोजिनी की ओर देखकर बोली, ''क्यों बहन, तुम क्या मेरा विचार-व्यवहार देखकर आश्चर्य में पड़ गई हो! पड़ने की बात ही है।'' कहकर वह मुसकरा उठी।

लेकिन सबसे अधिक आश्चर्यचकित हो गया था उपेंद्र। वस्तुतः किरणमयी के इस अद्भुत भाव-परिवर्तन का कारण वह बिल्कुल ही समझ न सका था। जिसने, अभी कुछ ही क्षण पहले स्पष्ट रूप से कहा था—बुद्धि के अतिरिक्त किसी दूसरे तुलादंड की वह परवाह नहीं करती और जो वस्तु इसके बाहर हैं, उन्हें अंदर प्रवेश कराने की कुछ भी आवश्यकता अनुभव नहीं करती, वह इस अत्यंत सरलता और लड़कपन से किस तरह विचलित हो गई! उसको छाती में खींचकर जो बातें इसने अभी कही हैं, यह तो मन रखने की बात नहीं है। इसके अतिरिक्त किरणमयी अवश्य ही जानती है कि उसने जो कुछ कहा है, उसका यथार्थ तात्पर्य हृदयंगम करना सुरबाला की सामर्थ्य में नहीं है। फिर उसकी आँखों में अकस्मात् आँसू उमड़ आना सबसे आयश्चर्यजनक है। वे कैसे आ गए? इसके अतिरिक्त एक बात और थी, उपेंद्र निस्संदेह जानता था कि इस प्रकार तीक्ष्ण बुद्धि के स्त्री-पुरुष किसी भी अवस्था में आवेग प्रकट करना पसंद नहीं करते। किसी तरह प्रकट हो जाने पर उनकी लज्जा की सीमा नहीं रहती, लेकिन, तनिक सी लज्जा भी उसने अपने व्यवहार से अनुभव की हो, यह लक्षण तो संपूर्ण अपरिचिता सरोजिनी को भी दिखाई नहीं पड़ा।

संध्या हो गई। किरणमयी सबसे विदा होकर धीरे-धीरे गाड़ी पर जा बैठी।

दिवाकर घर में नहीं था, संध्या को घूमने के लिए बाहर चला गया था।

इसलिए इधर-उधर देखकर उपेंद्र को अकेले ही अंदर जा बैठना पड़ा, लेकिन किरणमयी ने फिर मानो उसको देखा ही नहीं। गाड़ी के एक कोने में माथा रखकर वह मौन हो रही।

कुछ समय बीत गया। इस तरह चुपचाप बैठा रहना भी अरुचिकर था। इसके अतिरिक्त उपेंद्र अवश्य ही समझ रहे थे कि किरणमयी कुछ सोच रही है, लेकिन क्या सोच रही है, इसी की परीक्षा करने के लिए उन्होंने कहा, ''देख आईं न। इसी बुद्धिमती को लेकर मुझे गृहस्थी चलानी पड़ती है, लेकिन यों ही तो उससे पार पाने का उपाय नहीं है, उस पर आप आज परिहास करके जो प्रमाण-पत्र दे आईं, उससे तो अब उसके पास तक पहुँचा ही न जाएगा।''

किरणमयी ने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर तक प्रतीक्षा करके उपेंद्र ने हँसकर कहा, ''किंतु यहाँ ही इसका अंत नहीं है भाभी। ऐसी महामूर्ख है कि जन्म से लेकर आज तक अभी झूठ बात बोल ही नहीं सकती।''

किरणमयी पूर्ववत् मौन ही रही। उपेंद्र ने कहा, ''क्यों नहीं बोल सकती, जानती हो? पहले तो तैंतीस करोड़ देवी-देवता उसको चारों ओर से घेरकर पहरा दे रहे हैं, इसके अतिरिक्त जो घटना हुई नहीं है, उसको अपनी बुद्धि-व्यय से कुछ अनुमान करने की शक्ति भी उसमें नहीं है।''

किरणमयी ने रुँधे स्वर से कहा, ''अच्छा ही तो है।''

उपेंद्र ने कहा, "यही अच्छी बात है, मैं ऐसा नहीं समझता। गृहस्थी को चलाने के लिए एकाध झूठ का आश्रय लेना ही पड़ता है, जिससे किसी की कोई हानि नहीं है, बल्कि किसी अशांति या उपद्रव से मुक्ति मिलती है, वैसी झूठी बात में दोष ही क्या है। मैं कहता हूँ, वह अच्छा ही है।

"अच्छा तो है, पर यह बात आप सिखा नहीं सकते?"

"सीखेगी किस तरह भाभी? एक अत्यंत छोटी सी झूठी बात के लिए युधिष्ठिर की दुर्गति हुई थी, यह तो महाभारत में ही लिखा हुआ है। देवी-देवता लोग जिस तरह मुँह बाए उसकी ओर देखते हुए बैठे हुए हैं, उस दशा में जान-बूझकर झूठी बात बोलने से फिर क्या उसकी रक्षा होगी! वे लोग उसे घसीटकर नरक में डुबो देंगे।" फिर थोड़ा सा रुककर बोले, "भाभी, देवी-देवताओं का स्वरूप वह आँखें बंद करके इतना स्पष्ट देख पाती है कि वह एक आश्चर्यजनक बात है। कोई ढाल-तलवार लेकर, कोई शंख-चक्र-गदा-पदम् लेकर, कोई बाँसुरी हाथ में लेकर प्रत्यक्ष रूप से उसके आगे आ खड़े होते हैं। यह सुनकर तो मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं और किसी के मुँह से मैं ऐसा सुनता तो मैं झूठी मनगढ़ंत कहानी कहकर हँसकर उड़ा देता, लेकिन उसके संबंध में यह शिकायत तो मुँह से निकालने का उपाय ही नहीं है। यह कहकर श्रद्धा, प्रेम और गर्व से पुलकित होकर उपेंद्र ने स्नेहपूर्ण कौतुक के स्वर से कहा, "इसीलिए यही सब देख-सुनकर उसे मनुष्य न कहकर जानवर कह देने से भी काम चल सकता है, क्यों भाभी?"

गाड़ी के मोड़ पर घूमते ही मार्ग में उज्ज्वल गैस का प्रकाश एकाएक किरणमयी के मुख पर आ पड़ने से उपेंद्र ने चौंककर देखा; उसका समूचा मुख आँसू से भीगता जा रहा है।

उपेंद्र लज्जा से स्तब्ध होकर मुँह झुकाए बैठे रहे। अनजाने में जहाँ वह आनंद के माधुर्य से निमग्न होकर स्नेह से, संभ्रम से परिहास पर परिहास करता जा रहा था, वहीं ठीक उसी के मुँह के सामने बैठकर वह किस बात की वेदना से रोती हुई वक्ष विदीर्ण कर रही थी, यह बात अब तक उन्हें ज्ञात न हो सकी।

पथरियाघाटा के मकान पर दोनों जब पहुँचे, तब रात एक पहर बीत चुकी थी। प्रायः पूरे रास्ते में किरणमयी चुप ही रही, लेकिन अंदर कदम रखकर तुरंत ही अनुतप्त स्वर में बोल उठी, "हाय मेरा फूटा भाग्य! केवल साथ लेकर घूम ही तो रही हूँ, लेकिन एक बूँद जब भी तुमको नहीं मिला बबुआ। वह इस अभागिनी की दृष्टि में पड़ी ही नहीं। हाथ-मुँह धोओगे? अच्छा, रहने दो। मेरे साथ रसोईघर में चलो, दो पूड़ियाँ पका देने में दस मिनट से अधिक समय न लगेगा। तू चूल्हे में ईंधन जलाकर घर जाना दाई! जा तो झटपट जा! तू बड़ी भली है।"

मुख्य द्वार बंद करके वह द्रुतपद से चली गई।

लेकिन पूड़ा पकाने के इस प्रस्ताव से उपेंद्र अत्यंत घबरा उठे। उन्होंने तीव्र प्रतिवाद करके कहा, "यह किसी प्रकार नहीं हो सकता। भाभी! आज आप बहुत ही थक गई हैं। मैं लौट जाने पर ही खाऊँगा। अपने लिए आपको व्यर्थ कष्ट उठाने न दूँगा।"

"नहीं क्यों?"

"मैंने सोचा था, आज आप बहुत थक गई हैं।"

"थक गई हूँ? भले ही थकी हूँ।" यह कहकर किरणमयी फिर जरा हँस पड़ी। उसके बाद

एकाएक गंभीर होकर बोली, "हाय रे! आज यदि मेरे सतीश बबुआ रहते, अपनी बात अपने मुँह से कहनी न पड़ती। वह सहस्र मुख से वक्तृता आरंभ कर देते। नहीं बबुआजी, उन सब श्रांति-क्लांति का शोक करने की मेरी अवस्था ही नहीं है, इसके अतिरिक्त बंगाली के घर की किसी भी स्त्री के लिए यह बदनामी संभवतः लागू नहीं होती। आत्मीय हो या अनात्मीय हो, पुरुष का खाना नहीं हुआ है, सुनने से बंगाली की लड़की मरने की दशा में रहने पर भी एक बार उठ खड़ी होती है।"

रसोईघर में जाकर, जैसे सतीश को पीढ़ा बिछाकर बैठाती थी, उसी तरह उसने उपेंद्र को बैठा दिया।

दासी चूल्हा जलाकर दूसरी तैयारियाँ करने के लिए बाहर चली गई तो किरणमयी ने अपने इस नवीन अतिथि की ओर देखकर कहा, "अच्छा बबुआजी, मुझे कष्ट होगा, इसलिए बिना खाए ही चले जाने का जो प्रस्ताव किया था, वही यदि और कहीं किसी के सामने करते, तो आज तुमको क्या सजा भुगतनी पड़ती, जानते हो?"

उपेंद्र बोले, "जानता हूँ, लेकिन यहाँ तो वह सजा भोग करने का भय नहीं है भाभी!"

दासी मैदे की थाली रखकर चली गई। किरणमयी ने थाली आगे खींचकर सिर झुकाए मधुर स्वर से कहा, "कहना कठिन है बबुआजी, भाग्य में लिखा रहने से किससे क्या बात हो जाती है, कहाँ और कौन सा भोग भोगना पड़ता है, पहले से उसका कोई लेखा-जोखा नहीं मिलता। भाग्य की लिखावट क्या टाली जा सकती है? नहीं बबुआजी, वह आप ही आकर गरदन पर सवार हो जाती है।"

उपेंद्र यह गूढ़ रहस्य ठीक-ठीक समझ न सके। बोले, "यह तो ठीक ही है।" किरणमयी ने भी उस समय कोई बात नहीं कही। एक बार केवल उपेंद्र के मुँह की ओर ही देखकर आँखें झुकाकर मैदा गूँथने लगी। लगा, मानो वह चुपके-चुपके हँस रही है।

कुछ देर तक चुपचाप काम करते-करते एकाएक आँखें ऊपर उठाए बिना ही उसने कहा, "अच्छा, आज इतना आडम्बर रचकर बहू को दिखाने के लिए ले जाने का क्या मतलब था, बताओ न?"

उपेंद्र ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "आडंबर, दिखावा तो मैंने कुछ भी नहीं किया भाभी।"

किरणमयी बोली, "तो संभवतः कहने में मुझसे गलती हुई। कहती हूँ, इस प्रकार छल-चातुरी करने की क्या आवश्यकता थी?"

उपेंद्र ने कहा, "छल-चातुरी मैंने क्या की?"

किरणमयी ने कहा, "वही जैसे कि मूरख ऊरख, तरह-तरह की बातों का जाल रचकर, किंतु झूठी बातों की काट-छाँट करने से अब क्या होगा बबुआजी? उस बहू को यदि मूर्ख ही समझते हो, तो इस भाभी का भी तो कुछ परिचय पा गए हो? इतनी सरलता से भुलावे में डाल सकोगे, ऐसा सोचते हो?"

"नहीं, यह तो मैंने नहीं कहा।"

किरणमयी ने मुँह ऊपर उठाकर देखा, क्योंकि जिस तरह छोटा सा उत्तर उपेंद्र देना चाहते थे, उस तरह वह दे नहीं सके। इच्छा न रहने पर भी उनका कंठ-स्वर गंभीर हो गया, लेकिन किरणमयी ने इसे लक्ष्य किया या नहीं, यह पता नहीं लगने दिया और उसी तरह परिहास के स्वर में कहा, "तो?"

उपेंद्र अपने कंठ-स्वर की गंभीरता अनुभव करके लज्जित से हो उठे थे, इस बीच उसने भी अपने को सँभाल लिया। हँसकर बोले, भाभी, आपको धोखा देना क्या सहज है? लेकिन छल-चातुरी न करने से तो आप जाती नहीं। मैं कितनी बड़ी मूर्ख को लेकर गृहस्थी चलाता हूँ, यह तो आपको बिना देखे पता न चलता।"

किरणमयी ने कहा, "वह देखने से मेरा लाभ?"

उपेंद्र बोले, "लाभ आपका नहीं है। लाभ है मेरा। सभी अपना दुःख जताकर दुःख कम कर देना चाहते हैं। मनुष्य का स्वभाव यही है। इसीलिए छल-चातुरी करके यदि दुःख भी मैंने दिया हो तो वह आपकी कृपा प्राप्त करने के लिए और किसी कारण नहीं।"

किरणमयी कुछ देर तक मौन रही। उसके बाद उसने बात कही, किंतु मुँह ऊपर उठाकर उसने देखा नहीं। कहा, "अब तो मैं पार नहीं पा सकती बबुआजी यह अभिनय अब बंद कर दो न। अपनी मूर्ख बहू को मूर्ख समझकर यदि कुछ कम प्यार करते, तो संभवतः और कुछ देर तक ये बातें सुनी जा सकती थीं। संभवतः कुछ कृपा भी तुम पा जाते, लेकिन सतीश बबुआ के मुँह से मैं सबकुछ सुन चुकी हूँ। यह तो अच्छी बात है, उसको खूब प्यार करो, लेकिन इसीलिए क्या इस तरह ढोल पीटकर घूमना ठीक है। तनिक भी रुकावट-हिचक नहीं होती?"

यह बात सुनकर उपेंद्र, क्या कहें, क्या सोचें, इसका निश्चय ही न कर सके। यह कैसा बोलने का ढंग है। यह कैसा कंठ-स्वर है! परिहास तो यह किसी प्रकार भी नहीं है, किंतु यह है क्या? व्यंग्य है, ईर्ष्या है, विद्वेष है? यह किस बात का आभास है, जिसे यह विधवा रमणी इस रात्रि में, इस निर्जन कमरे में आज उनके सामने व्यक्त करने का प्रयास कर रही है!

फिर किसी के भी मुँह से कोई बात नहीं निकली। कुछ काल दोनों ही मौन होकर मुँह झुकाए बैठे रहे।

दासी ने दरवाजे के बाहर से एक बार खाँस दिया। उसके बाद तनिक मुँह बढ़ाकर बोली, "अब तो अधिक देर मैं रुक नहीं सकती बहूजी। मुख्य द्वार जरा बंद न कर देने से मैं जा भी तो नहीं सकती।"

किरणमयी ने मुँह ऊपर उठाकर कहा, "जाएगी! तो तुम जरा बैठो बबुआ, मैं मुख्य द्वार बंद करके आ रही हूँ।"

यह कहकर उसके चले जाने पर तुरंत ही इस कमरे में अकेले बैठे हुए उपेंद्र का हृदय एक ऐसी घृणा से भर उठा, जिसका अपने जीवन में पहले कभी उन्होंने अनुभव नहीं किया था। उनका उन्मुक्त चरित्र बहुत दिनों स्फटिक स्वच्छ प्रवाह की भाँति बहता रहा है। कहीं भी कोई रुकावट नहीं पड़ी है। कहीं भी किसी दिन बिंदुमात्र कलंक की छाया आकर भी अपनी परछाईं उन पर फेंक नहीं पाई है, लेकिन आज इस निर्जन कमरे में वही अत्यंत निर्मलता मानो मलिन हो उठी।

सत्ताईस

दासी को विदा करके किरणमयी अपने स्थान पर वापस आकर जब बैठ गई, तब उपेंद्र गरदन उठाकर एक बार देख भी न सके। किरणमयी की दृष्टि से यह भाव छिपा नहीं रहा,

लेकिन वह भी कोई बात न कहकर चुपचाप अपना काम करने लगी।

दस मिनट तक जब इसी तरह समय बीत गया, तब किरणमयी ने धीरे-धीरे कहा, "अच्छा, बबुआ, यदि कोई हमें इस प्रकार चुपचाप बैठे देख ले तो क्या सोचेगा, बताओ तो?" यह कहकर वह मुसकरा पड़ी।

उपेंद्र ने इस हँसी को नेत्रों से न देखने पर भी हृदय में अनुभव किया। कहा, "संभवतः अच्छा न सोचेंगे!"

किरणमयी फिर मुसकरा पड़ी। बोली, "तुमको देख लेने के समय से ही एक बात मुझे प्रायः ही स्मरण हो आती है बबुआ! लेकिन सुनकर फिर उलटा समझकर क्रोध तो न कर बैठोगे?"

"नहीं, क्रोध किसलिए?"

"क्या जानते हो बबुआजी, अच्छे-अच्छे काव्यों में कहा जाता है, वे हमारे देश के हों, या विदेश के ही हों, प्रथम दर्शन से ही एक प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न होना—अच्छा, इसे क्या संभव मानते हो?"

उपेंद्र का मुख एकाएक लज्जा से लाल हो उठा। उसने कहा, "अच्छा-बुरा किसी काव्य के संबंध में मेरा विशेष कोई ज्ञान नहीं है बहूरानी, यह बात मैं नहीं जानता!"

किरणमयी बोली, "यह कैसी बात कहते हो बबुआ? इतना लिख-पढ़ चुके हो, इतनी परीक्षाएँ पास करके कितने ही रुपयों की मिठाइयाँ वसूल कर चुके हो और काव्य के संबंध में तुम कुछ भी नहीं जानते? शकुंतला, रोमियो-जूलियट, इन दोनों को भी क्या तुमने नहीं पढ़ा है?"

उपेंद्र ने कहा, "लेकिन पढ़कर पास करने में तो संभव-असंभव निश्चय नहीं करना पड़ा है। पुस्तक में जो कुछ लिखा है, कंठस्थ करके परीक्षा में लिख आया था। आपकी तरह किसी परीक्षक ने कभी प्रश्न नहीं किया, यह होता है या नहीं। मुझे क्षमा करना पड़ेगा भाभी, ये सब आलोचनाएँ आपके साथ मैं न कर सकूँगा।"

किरणमयी ने उदास होकर एक लंबी साँस लेकर कहा, "इसीलिए पूछा था, मुझ पर क्रोध तो न करोगे?"

"लेकिन क्रोध तो मैंने किया नहीं।"

"न करने से ही अच्छा है!" कहकर किरणमयी ने गरम कड़ाही में घी डाल दिया।

तीन-चार पूड़ियाँ तलकर किरणमयी एकाएक बोली, "जिस बात को मैंने जान लेना चाहा था, उसकी आलोचना ही तुमने करने नहीं दी। मेरा भाग्य ही ऐसा है! लेकिन एक और बात मैं पूछती हूँ बबुआजी, प्रेम को लोग अंधा क्यों कहते हैं?"

उपेंद्र ने कहा, "संभवतः आँखें रहने से जिस मार्ग से मनुष्य नहीं जाता, उस प्रकार के मार्ग में भी वह उसको ले जाता है।"

किरणमयी ने उत्सुक होकर पूछा, "ले जाता है क्या? क्या यह बात सत्य है कि प्रेम अंधा होता है?"

"सच तो अवश्य है। बहुतों की बहुत सी अभिज्ञता से ही तो यह कहावत प्रचलित है।"

किरणमयी ने कहा, "अच्छी बात है। यदि यही होता है, तो अंधा जब गर्त में जाता है, लोग दौड़ते हुए आकर उसे उठा देते हैं। उसके लिए दुःख मानते हैं, जिसमें जैसी शक्ति रहती

है, उसके अनुसार सहायता करने की चेष्टा करता है, लेकिन प्रेम के कारण अंधा बनकर कोई जब गर्त में गिर पड़ता है, कोई भी तो उसे उठा देने के लिए दौड़कर नहीं आता, बल्कि और हाथ-पैर तोड़कर उसी गर्त में मिट्टी डाल दी जाती है। जिस सत्य का मनुष्य स्वयं ही प्रचार करता है, आवश्यकता पड़ने पर उस सत्य की कोई मर्यादा ही नहीं मानता। मेरी बात तुम समझ रहे हो न बबुआ?"

उपेंद्र ने गरदन हिलाकर कहा, "समझ रहा हूँ।"

किरणमयी ने कहा, "समझ सकते हो, इसीलिए तो तुमसे पूछ रही हूँ, लेकिन इसी दशा में देखो, दूसरों के मामलों में बहुत कुछ जानते हुए भी लोग बरबस भूल जाना चाहते हैं। अंधे को आँखवाले की संज्ञा देकर अपने को वीर समझने लगते हैं। दूसरे के विषय में विचार करते समय यह बात उसे स्मरण रहती नहीं कि आँख खो देने पर गर्त में गिर जाने की उसकी संभावना उस मनुष्य की अपेक्षा कुछ भी कम नहीं होती।"

उपेंद्र ने तनिक अप्रसन्न तथा आश्चर्य के साथ कहा, "यह नहीं भी हो सकता है, लेकिन मैं समझ नहीं सकता भाभी, ये सब आलोचनाएँ क्यों कर रही हैं? सच हो, झूठ हो, आपके जीवन के साथ इस मीमांसा का कोई संबंध नहीं है।"

किरणमयी उपेंद्र की अप्रसन्नता देखकर भी हँस पड़ी। बोली, "अंधा आलोचना करके गर्त में नहीं गिरता बबुआ, गिरकर आलोचना करता है। मैं गिर नहीं पड़ी हूँ, या गिर पड़ने के लिए उस ओर बढ़ती नहीं जा रही हूँ, यही बात तुम किस तरह जान गए?"

उपेंद्र ने कहा, "लेकिन आप तो अंधी नहीं हैं। मैंने तो आपकी बड़ी-बड़ी दोनों आँखें देख ली हैं भाभी!"

किरणमयी बोली, "वही तो कठिनाई है बबुआजी, दो प्रकार के अंधे होते हैं, जो लोग आँखें बंद करके चलते हैं, उनके संबंध में तो सोचना नहीं पड़ता, वे पहचाने जाते हैं, लेकिन जो लोग दोनों आँखों से देखते हुए चलते हैं, फिर भी देख नहीं पाते, उन लोगों को ही लेकर सब गड़बड़ियाँ हैं। वे स्वयं भी धोखा खाते हैं, दूसरों को भी धोखा देने से बाज नहीं आते।"

उपेंद्र कुंठित होकर बैठे रहे। उनसे उत्तर न पाकर किरणमयी ने एकाएक उत्सुक होकर मानो प्रश्न किया, "अच्छा, तुमने जो यह बात कही बबुआ कि मेरी बड़ी-बड़ी दो आँखें तुमने देखी हैं, तो वह किस समय देखीं। क्या यह मैं पूछ सकती हूँ?"

उपेंद्र बोले, "वह तो आपके पति की मृत्यु के बाद ही उस दिन आपको जिसने देखा है, वह किसी दिन आपके विषय में भूल न करेगा। क्यों आप अपने को अच्छी कहकर डर रही हैं, यह बात आप ही जानती हैं, लेकिन मैं जानता हूँ, यह बात सच नहीं है। उस दिन आपकी दोनों आँखों में मैंने जो ज्योति देख ली थी, उससे मैं निश्चित रूप से जानता हूँ। कितना भी अंधकार आपके चारों ओर घना होकर क्यों न आ जाए, वह आपको भुलावे में न डाल सकेगा। आप ठीक मार्ग देखकर चिर जीवन चली जा सकेंगी।"

किरणमयी ने कुछ देर चुप रहकर कहा, "इतनी देर में संभवतः मैं यह बात समझ गई हूँ बबुआ, उस दिन जिस तरह चेतना खोकर मैं उनके पैरों के नीचे पड़ी थी, उसे देखकर संभवतः तुम्हारे मन में यह धारणा उत्पन्न हुई।"

उपेंद्र ने सिर हिलाकर कहा, "यह बात भी हो सकती है, लेकिन यह देखना क्या भूल हो सकती है भाभी?"

सुनकर किरणमयी हँस पड़ी। उसके बाद संकोच-रहित सहज कंठ से बोली, "भूल की तरह ही ज्ञात हो रहा है। मैं तो अपने पति को प्यार नहीं करती थी।"

उपेंद्र आश्चर्यचकित होकर निहारते रहे। किरणमयी कहने लगी, "सचमुच ही उनको मैंने किसी दिन प्यार नहीं किया और केवल मैंने ही नहीं, उन्होंने भी मुझे प्यार नहीं किया, तो क्या उस दिन की वह मेरी छलना थी? वह बात भी नहीं है, यह भी सत्य है। सचमुच ही उस दिन मैं अपना होश खो चुकी थी।"

यह कहकर उपेंद्र का स्तंभित मुँह देखकर वह जरा ठिठक गई, लेकिन दूसरे ही क्षण उसे बलपूर्वक दूर करके बोली, "नहीं, डरने से मेरा काम न चलेगा। तुमको सभी बातें आज बता देनी पड़ेंगी।"

उपेंद्र ने कष्ट से मुँह ऊपर उठाकर कहा, "चलेगा क्यों नहीं। मैं सुनना नहीं चाहता, तो भी मुझे क्यों सुननी ही पड़ेंगी?"

किरणमयी ने कहा, "इसका कारण यह है कि तुम हो मेरे गुरु। तुम्हारे सामने सब स्वीकार न करने से मैं किसी प्रकार शांति न पाऊँगी।"

उपेंद्र स्थिर होकर निहारते रहे। किरणमयी दृढ किंतु मृदु स्वर से बोली, "मेरे अंदर जो गंभीर अंतर्दृष्टि तुमने देखी थी बबुआ, वह आँखों की भूल नहीं थी, सच्ची थी, लेकिन बहुत ही क्षणकाल के लिए थी। पति को मैंने किसी दिन प्यार नहीं किया, लेकिन तन-मन से प्यार करने की चेष्टा मैंने आरंभ की थी, लेकिन वे बचे नहीं, मेरी भी वह चेष्टा स्थायी नहीं हुई। पुस्तकों में ये सब बातें पढ़कर कभी मैं सोचती थी, ये झूठी बातें हैं, कभी सोचती थी, कवि की कल्पना हैं, कभी मन में यही विचार करती थी, संभवतः मुझमें प्यार करने की शक्ति ही नहीं है। इसीलिए ऐसा होता है। यह शक्ति मुझमें है या नहीं, आज भी मैं नहीं जानती बबुआ, किंतु प्यार करने की इच्छा मेरी कितनी अधिक है, इस बात का पहले मुझे पता लगा तुमको देखकर। इसीलिए तुम ही गुरु हो।" कुछ देर मौन रहकर मानो आप ही आप उसने कहा, "दो दिनों के बाद तुम लोग चले जाओगे। फिर जब भेंट होगी, तब अपनी बातें कहने योग्य मन की अवस्था संभवतः न रहेगी। हो सकता है कि यही कह देने के लिए तब मैं लज्जा से मर जाऊँगी। नहीं बबुआजी, यह होगा नहीं, आज ही तुमको अपनी सभी बातें सुनाकर मैं निश्चिंत हो जाऊँगी!"

उपेंद्र ने कातर होकर कहा, "भाभी, आज तरह-तरह के कारणों से आपका मन अत्यंत उत्तेजित हो गया है, मैं देख रहा हूँ। इस अवस्था में क्या कहना उचित है, क्या उचित नहीं है, यह समझ न सकने की—नहीं-नहीं, भाभी, मैं अनुरोध कर रहा हूँ किसी दूसरे दिन आकर आपकी सब बातें सुन जाऊँगा, लेकिन आज नहीं।"

किरणमयी ने कहा, "ठीक इसीलिए तो आज तुमको सभी बातें सुनाना चाहती हूँ बबुआजी। फिर उस दिन लज्जा आकर बाधा न डाल दे, सांसारिक भले-बुरे की विचार-बुद्धि मुँह दबाकर पकड़ लेगी। आज मुझे रखकर, ढँककर, समझ-बूझकर, सजाकर, बचाकर कहने की शक्ति भी नहीं है, प्रवृत्ति भी नहीं है, आज ही तो कहने का दिन है। इसके बाद संभवतः तुम इस जन्म में फिर मेरा मुँह न देखोगे, तो भी मैं प्रार्थना करती हूँ और कुछ देर तक मेरी यह दुर्बुद्धि मेरा यह उन्माद बना रहे, जिससे मैं तुम्हारे सामने सब खोलकर कह सकूँ।"

उसके मुख की ओर देखकर उपेंद्र का निर्मल, शुद्ध हृदय अज्ञात भय से त्रस्त हो उठा।

अंतिम बार के लिए बाधा देकर वह बोला, "भाभी, मनुष्य मात्र की ही गुप्त बातें रहती हैं। उन्हें तो किसी के सामने खोल देने की आवश्यकता नहीं है वरन् प्रकट कर देने में अधिक अकल्याण है, केवल तुम्हारा और मेरा ही नहीं और भी दस आदमियों का।"

किरणमयी ने कोई उत्तर नहीं दिया। पूड़ियों का पकाना समाप्त हो गया था। एक थाली में खूब अच्छी तरह सजाकर उपेंद्र के आगे रखकर उसने कहा, "तुम खाओ, मैं अपना कहना समाप्त कर डालूँ।"

"अच्छा है, आप न कहें भाभी।"

किरणमयी ने कहा, "प्रार्थना कर रही हूँ बबुआ, अब मुझे बाधा मत दो। सब सुन लेने पर तुम्हारी इच्छा हो, तो मेरी सास के साथ ही मेरा भी भार ले लेना। इच्छा न हो, तो मैं अपना मार्ग स्वयं ही ढूँढ़ लूँगी। मैंने बहुतों को धोखा दिया है बबुआजी, लेकिन मैं तुमको ठग न सकूँगी।"

"तो कहिए!" यह कहकर उपेंद्र ने पूड़ी का एक टुकड़ा अपने मुँह में डाल लिया।

किरणमयी ने कहा, "तुमको मैंने बता दिया है बबुआजी, पति को मैंने कभी प्यार नहीं किया, उनका प्यार मुझे मिला भी नहीं। इसके लिए हमें कोई दुःख नहीं था। घर में सास-पति दोनों का साथ रहा। एक थे दार्शनिक! वह मुझे जी-जान से पढ़ाने में ही प्रसन्न रहा करते थे और एक थी घोर स्वार्थपरायण, वह जी-जान से मुझे काम में लगाए रहने में ही प्रसन्न थीं। इसी प्रकार दिन बीत रहे थे और संभवतः कट भी जाते, लेकिन एकाएक सब कुछ उलट-पुलट गया। पति बीमार पड़ गए। उनसे मैंने अनेक पुस्तकें पढ़ी हैं। नाटक-उपन्यास भी मैंने कम नहीं पढ़े हैं, लेकिन हम दोनों ही पढ़-पढ़कर केवल हँसते रहते थे। प्यार की गंध भी हममें नहीं थी। इसीलिए कोई आदमी जैसे रहते हैं, जन्म के बहरे, जन्म के अंधे, मेरे पति भी वैसे ही जन्म के नीरस, लेकिन मुझमें कितना रस था, यह उस समय तक भी मैं जान नहीं सकी थी, लेकिन उस बात का एकाएक मुझे पता लग गया कि प्यार करने की और उसे वापस पाने की तृष्णा मेरी भी किसी स्त्री से कम नहीं है, नहीं, नहीं, इतने में ही इन पूड़ियों को हटा रखने से काम न चलेगा।"

उपेंद्र ने उदास होकर कहा, "किसी तरह भी भोजन अच्छा नहीं लग रहा है भाभी।"

किरणमयी ने पलभर मौन रहकर कुछ सोचकर कहा, "मैं जानती हूँ बबुआजी, और थोड़ी देर बाद ही पूरी-तरकारी का स्वाद तुम्हारी जीभ पर जहर बन जाएगा, लेकिन अभी तो इसमें देर थी। तुम और कुछ खा सकते थे।"

उपेंद्र और भी उदास हो गए। किरणमयी उनकी ओर देखकर ही कहने लगी, "यदि मैं यह कहूँ कि तुम्हारे यह न खाने का जो दुःख है, वह मेरा दाहिना हाथ नष्ट हो जाने की अपेक्षा भी अधिक है तो तुम विश्वास न कर सकोगे, लेकिन तुम विश्वास करो या न करो, मैं तो जानती हूँ कि यह सच है! तो भी रुक जाने का उपाय नहीं है बबुआजी, मुझे कहना ही पड़ेगा।"

"अच्छी बात है, कहिए।"

"कहती हूँ। अपने पति की बीमारी में केवल गहनों को छोड़कर और जो कुछ भी मेरे पास संचित था, वह सब ही एक-एक करके चला गया, तब आ गए एक नए पास किए डॉक्टर— अच्छा बबुआ, अनंग डॉक्टर को तुम लोगों ने देखा था न?"

उपेंद्र ने कहा, "हाँ।"

किरणमयी ने विद्रूप की हँसी हँसकर कहा, "उन्होंने ही! वाह रे फूटा भाग्य! इस कमरे में पति मरने की दशा में थे, उस कमरे में मैं चली गई उनको लेकर प्रेम का स्वाद मिटाने।"

उपेंद्र गरदन झुकाए मौन बैठे रहे। किरणमयी और कहने जा रही थी, लेकिन किसी ने मानो उसका गला दबा दिया। थोड़ी देर तक प्रबल चेष्टा करने के बाद सूखे स्वर से बोली, "सुनते ही तुम्हारी गरदन झुक गई, तो भी उस अनंग डॉक्टर को नहीं पहचानते। पहचानने से तुम समझ सकते थे, कितने वर्षों की घोर अनावृष्टि की ज्वाला मेरे इस हृदय के अंदर जमी हुई थी, इसीलिए यह असंभव घटना संभव हो सकी थी। जानते हो, जिस तृष्णा से पनाले से गाढ़े काले पानी को अंजुली से भरकर मुँह में भर लेते हैं, मुझे भी वही पिपासा थी, लेकिन वह खबर मुझे मिली उस पानी को गले के अंदर ढाल देने पर। उसके बाद—ओह! यह कैसा था। कै करने की सी दशा में दिन बीतते रहे।" यह कहते-कहते उसका संपूर्ण अंग थरथरा उठा। एक उत्कट दुर्गंधमय विषाक्त उद्गार मानो उसके गले तक उच्छ्वसित हो उठा। पल भर मौन रहकर अपने आपको सँभालकर किरणमयी ने कहा, "लेकिन मैं कै कर भी न सकी, सास ने मेरा मुँह दबा दिया। उस समय अनंग ने गृहस्थी का आधा भार सँभाल लिया था।"

उपेंद्र उसी भाव से पत्थर की मूर्ति की भाँति बैठे रहे। उनके निर्वाक् झुके हुए मुँह की ओर एक बार देखकर किरणमयी बोली, "उसके बाद आसक्ति-घृणा के, तृष्णा-वितृष्णा के लगातार संघर्ष से जो विष दिन-रात उठने लगा, देव-मानव के निष्ठुर मंथन से पीड़ित वासुकि संभवतः उतना जहर, उतने बड़े अपने मुँह से निकाल न सका था। मुझे जान पड़ता है, इस घर की प्रत्येक ईंट-लकड़ी, दरवाजा-खिड़की, धरन-बँड़ेरी तक विष से नीले रंग की हो गई हैं।"

जरा रुककर उसने कहा, "कितने दिनों में किस प्रकार इसका अंत होता, यह मैं नहीं जानती। कितना ही मैंने सोचा, लेकिन किसी ओर भी इसका कूल-किनारा मेरी निगाह में नहीं पड़ा, लेकिन क्या ही अृमत हाथों में लेकर तुम निकल पड़े बबुआ, कहाँ चली गई वह जहर की ज्वाला और कहाँ रह गई विद्वेष घृणा! पल भर में ये सब ऐसी तुच्छ हो गईं कि अनंग को विदा कर देने में मुझे एक क्षण नहीं लगा। तुम ही मानो आकर मेरे कान में उपाय बता गए। जानते तो हो बबुआजी, स्त्रियाँ गहनों पर कितना प्रेम रखती हैं। बड़े दुःख के मेरे गहने मानो मेरी छाती की पसलियाँ ही थीं। वही जहाँ सिर झुकाए, तुम इस समय बैठे हो, ठीक वहीं पर पसलियों को निकालकर उसके चरणों पर मैंने डाल दिया। मेरे ऊपर उसकी आसक्ति चाहे जितनी ही बड़ी क्यों न रही हो, इतने गहने हाथ में पा लेने से, वह फिर कभी मुँह न दिखाएगा, जन्म भर के लिए मुझे मुक्ति देकर वह चला जाएगा, यह मंत्र तुमने ही मानो मुझे सिखा दिया। ओह! कितना भय, कितनी चिंताएँ मुझे थीं, पीछे कहीं इस दुर्गंध के दबाव में किसी दिन मेरे यह गहने नष्ट न हो जाएँ। वे चले ही तो गए, मैं उनको पकड़कर तो रख ही न सकी, लेकिन ओह! वह कैसी तृप्ति थी, कैसा वह आश्चर्यजनक आनंद था बबुआ, ऐसी ही एक अँधेरी संध्या में जब उन्हीं के लोभ में पड़कर वह अपनी वीभत्स पूछ को मेरे समूचे अंग से खोलकर चोर की भाँति चुपचाप चला गया। मन में अनुभव हुआ कि मैं बच गई।

उपेंद्र को स्मरण आया कि उसके और सतीश के बीच से एक दिन सवेरे चोर की तरह अनंग डॉक्टर चला आया था, लेकिन कोई बात न कहकर वह मौन रह गया था।

किरणमयी कहने लगी, "तुमको स्मरण आ रही है बबुआजी, मेरी उस रात की वह उग्र मूर्ति? उस दिन मैंने क्या-क्या कांड कर डाला था। छिपकर तुम लोगों की बातचीत सुनना, नीचे जाकर तुम लोगों को लाल आँखें करके कितना ही भय दिखाना, उसके बाद तुम लोग चले गए। अपने विष की वह कैसी ज्वाला थी! किंतु उसके बदले में दो वस्तुएँ मुझे मिलीं, बबुआजी, वह था मेरा स्वर्ग, वह था मेरा अमृत। श्रीरामचंद्र के पाद-स्पर्श से पत्थर की अहिल्या जैसे सजीव हो गई थी, मैं भी मानो उसी तरह बदल गई। अहिल्या ने स्त्री बन जाने पर क्या पाया था, मैं नहीं जानती, लेकिन मैंने जो कुछ पा लिया, उसकी तुलना नहीं है। मेरा भाई नहीं था, सतीश को पा गई, अपना-सहोदर भाई और पा गई तुमको—छिह! ऐसा उदास मत हो बबुआ, पुरुष को क्या ऐसी लज्जा शोभा देती है?"

उपेंद्र ने बलपूर्वक सिर सीधा करके दृढ़ स्वर से कहा, "जो लज्जा की वस्तु है, वह स्त्री-पुरुष दोनों के ही लिए समान है भाभी। मैं ये सब बातें सुनना नहीं चाहता—या तो आप चुप हो रहिए, नहीं तो मैं इसी क्षण उठकर चला जाऊँगा।"

किरणमयी ने कहा, "बाध्य होकर क्या?"

उपेंद्र ने कहा, "हाँ।"

किरणमयी ने कहा, "उस दशा में भी बाध्य होकर पकड़ रखने की चेष्टा करूँगी, लेकिन यह मैं पहले ही कह देती हूँ बबुआ, इस बल की परीक्षा में मुझे लाभ के सिवा हानि नहीं है।"

इस उत्तर के बाद उपेंद्र गरदन झुकाकर बैठे रहे। किरणमयी फिर हँसकर बोली, "डरने की बात नहीं है जी, डरने की बात नहीं है, तुम्हारी इच्छा न रहने पर स्वयं तुम्हारे शरीर पर जाकर हाथ रखूँगी, ऐसी पागल अभी तक मैं नहीं हुई हूँ। इच्छा हो तो उठ जाओ, मैं बाधा न दूँगी!"

उपेंद्र मुँह झुकाए मौन होकर बैठे रहे। बादल से छिपा चंद्रमा आँख से दिखाई न पड़ने पर भी चारों ओर की फीकी चाँदनी के आभास से वास्तविक वस्तु जैसे पहचान ली जाती है, इन दोनों नर-नारियों का गुप्त संबंध भी इतनी देर तक उसी प्रकार आवरण में पड़ा हुआ था, लेकिन हवा बहने लगी है, बादल तेजी से हटते जा रहे हैं, हृदय में यह निश्चित रूप से अनुभव करके ही उपेन इस प्रकार भाग जाने की चेष्टा कर रहे थे, लेकिन सब विफल हो गया। एकाएक एक हवा का झोंका आ जाने से समस्त आवरण फटकर जहाँ तक दिखाई पड़ता है, वहाँ तक सामने आकाश हो गया।

किरणमयी ने धीरे-धीरे कहा, "जाने भी दो, तुमको जो मैं प्यार करती हूँ, यह तुमको बताकर मानो मैं बच गई। अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वही करो, मुझे कुछ भी कहना नहीं है, लेकिन यह विचार मत करना बबुआजी, मैंने अंधी आशा से भूलकर यह बात बता दी है। मैं तुमको पहचानती हूँ, मैं जानती हूँ यह निष्फल है। रक्षक होने के लिए आकर तुम भक्षक न हो सकोगे, किसी प्रकार भी नहीं, यह मैं जानती हूँ।"

इतनी देर में उपेंद्र ने बात कही। उन्होंने मृदु स्वर से प्रश्न किया, "यह श्रद्धा यदि मेरे ऊपर है तो आपने बताया क्यों?"

किरणमयी ने कहा, "इसके दो कारण हैं। पहला यह है कि न बताने से मैं पागल हो जाती। दूसरा कारण यह है कि तुमको सब बातें न बताकर तुम्हारा आश्रय लेना मेरे लिए असंभव है। उस दशा में मुझे केवल यही ज्ञात होता है कि सुरबाला ही मानो मुझे खिला-पहना रही है, लेकिन अब यदि इसके बाद भी तुम मेरा भार लेते हो, तो ज्ञात होगा कि तुम्हारा ही खा रही हूँ, पहन रही हूँ और किसी का नहीं। अच्छा, सुरबाला से भी मेरी बातें बतलाओगे तो?"

उपेंद्र ने कहा, "नहीं।"

किरणमयी ने प्रश्न किया, "नहीं क्यों? सुनने से वह दुःखी होगी।"

उपेंद्र ने कहा, "नहीं भाभी, वह दुःखी न होगी। वह बहुत ही मूर्ख है। भले घर की लड़की पति के अतिरिक्त और किसी पुरुष को किसी अवस्था में भी प्यार कर सकती है, यह बात सहस्र बार कहने पर भर उसके दिमाग में न घुसेगी! अब अनुमति दें तो मैं उठूँ?"

इस बात ने किरणमयी को तीक्ष्ण आघात पहुँचाया, लेकिन उसने सहज स्वर से कहा, "अनुमति न देने पर भी तो उपाय नहीं है, देनी ही पड़ेगी, लेकिन जरा और बैठो। तुमको जो मैंने प्यार किया था, यही तो केवल बताया गया, लेकिन भूल जाना भी चाहा था, आज यह बात भी तुमको ज्ञात नहीं है, लेकिन इसमें मेरा गुरु कौन है, जानते हो बबुआ? वही जो मूर्खा में अग्रगण्य लड़की छोटी बहू बनकर तुम लोगों के घर में गई है, वे ही।"

उपेंद्र के मुख पर आश्चर्य का आभास देखकर किरणमयी ने कहा, "हाँ, वे ही। तुम लोग जिसको पशुराज कहकर परिहास करते हो, वही सुरबाला मेरी गुरु है, तुमने जो बात सिखाई, उन्होंने उसे ही भुला देना चाहा। वे मेरी पूज्य हैं।"

उपेंद्र चुप होकर बैठे रहे। किरणमयी कहने लगी, "तुमको मैं बार-बार कहती हूँ बबुआजी, आज तो तुम्हारे पैरों पर अपनी लज्जा के समस्त जंजाल को तिलांजलि मैंने दे दी है, तो उसका समस्त फलाफल जानकर ही। मैं जानती हूँ, तुम्हारी सुरबाला है और है तुम्हारी कठोर पवित्रता। वह है स्फटिक की भाँति स्वच्छ, वज्र की भाँति कठोर, उसके शरीर पर दाग लगा सकूँ, यह बल मुझमें नहीं है, लेकिन जानते तो हो बबुआजी, मनुष्य का ऐसा ही जला हुआ स्वभाव है कि जो बात उसकी शक्ति के बाहर है, उसी पर उसका सबसे अधिक मोह रहता है। भगवान् को कोई पा नहीं सकता। इसीलिए मनुष्य सबकुछ देकर उसको पाना चाहता है। इसीलिए मुझे यही ध्यान आता है कि तुम मेरे लिए इतनी बड़ी अप्राप्य वस्तु न रहते तो संभवतः मैं तुमको इतना अधिक प्यार नहीं करती, लेकिन जाने दो उस बात को।"

क्षण भर मौन रहकर सहसा एक लंबी साँस लेकर किरणमयी ने कहा, "एकलव्य के जैसे द्रोणजी गुरु थे, मेरी गुरु वैसे ही सुरबाला है, लेकिन वह कैसे हो गई, वही आज तुमको बात बताकर मैं छुट्टी दूँगी। वहीं जहाँ तुम खाने के लिए बैठे हो बबुआ, एक दिन रात के समय सतीश बबुआ भी उसी तरह खाने के लिए बैठे हुए थे। किस प्रकार मुझे स्मरण नहीं है, एकाएक तुम लोगों की चर्चा छिड़ गई। जानते ही हो, वह मेरे ऐसे भाई हैं कि तुम लोगों की बातें चलने पर बिल्कुल मस्त हो जाते हैं। तब उनको सँभालना कठिन ही है। मेरी अपनी भी

तब प्रायः वही दशा थी। प्रेम की मदिरा उस समय तुरंत ही पात्र में भरकर पीकर, तुम्हारे नशे में तब मेरे हाथ-पाँव अशक्त हो गए थे, दोनों आँखें लुढ़कती जार रही थीं, ऐसे ही समय में सतीश बबुआ ने कितने ही उदाहरण दे-देकर बताया कि तुम अपनी सुरबाला को कितना प्यार करते हो। कब तुमने उसको छोटी चेचक की बीमारी होने पर आहार-निद्रा छोड़ दी थी, कब उसने तुम्हारे सिर में जरा सा दर्द उठने पर सारी रात हाथ में पंखा लेकर सिरहाने बैठकर बिता दी थी, इसी प्रकार की कितने दिनों और कितनी रातों की छोटी-मोटी कहानियाँ। उनकी तो वे सब सुनी हुई बातें थीं। संभवतः कोई झूठी थी अथवा बढ़ा-चढ़ाकर कही गई थी, लेकिन उससे हम दोनों की कोई हानि नहीं हुई। तुम दोनों पति-पत्नी में प्रेम की गंगा बहती जा रही है। हम दोनों भाई-बहन देखते-देखते उसमें निमग्न हो गए। उसके बाद बड़ी रात को सतीश अपने डेरे पर चले गए, लेकिन मैं उसी रसोईघर में बैठी रही। कितनी देर तक, मैं नहीं जानती, बाहर निकलकर मैंने देखा कि सामने ही शुक्रतारा उगा हुआ है। मुझे एकाएक यह स्मरण आया कि सुरबाला का मुँह मानो ऐसा ही है, ऐसा मधुर है, ऐसा ही उज्ज्वल है। ठीक इसी प्रकार ही संभवतः उसके मुँह से आँखें हटाई नहीं जातीं। मन ही मन उसको मैंने कहा, "तुमको तो मैंने देखा नहीं है कि तुम कैसी हो, लेकिन जैसी भी क्यों न हो, आज से तुम मेरी गुरु हो गईं। तुम्हारे पास से ही मैंने पति-प्रेम का पाठ लिया। प्रेम का स्वाद मैं पा गई हूँ, इसको अब मैं छोड़ न सकूँगी। प्रेम मुझे अवश्य ही चाहिए, मुझे प्रेम करना ही पड़ेगा तो दूसरे को प्यार करके क्यों इसको व्यर्थ करूँ? आज भी तो मेरे पति जीवित हैं, अभी तक तो मैं विधवा नहीं हुई हूँ, तो फिर क्यों मैं यह भूल करूँ? तुम्हारी ही भाँति आज से मैं अपने पति को ही प्यार करूँगी और किसी को नहीं। यह कहने के साथ ही मेरा मन मानो अपनी सारी शक्ति को एकत्रित करके बोला—प्रेम वापस पाने की आशा तुमको नहीं है, यह सच है, लेकिन तो भी तुमको ही प्यार करना पड़ेगा, लेकिन मेरा ऐसा ही फूटा भाग्य है बबुआ कि वह बचे नहीं। मेरी साधना अंकुर में ही सूख गई। इसीलिए उनकी मृत्यु के दिन मेरा जो मुख तुम लोगों ने देखा था, उसमें एक बिंदु भी छलना नहीं थी।" यह कहते-कहते उसका कंठ स्वर करुण और गीला होता जा रहा था, उपेंद्र ने इसे लक्ष्य किया, लेकिन उन्होंने कोई बात नहीं कही।

किरणमयी स्वयं भी कुछ देर मौन रहकर बोली, "बबुआजी, जो लोग मूर्ख हैं, जो कट्टर हैं, वे समझेंगे नहीं, लेकिन तुम जानते हो, संसार में सभी वस्तुओं के ही प्राकृतिक नियम हैं। उस नियम की उपेक्षा न करके पति-पत्नी में से कोई भी अपने उस चिर मधुर संबंध पर पहुँच नहीं सकता। ब्याह का मंत्र कर्तव्य-बुद्धि दे सकता है, भक्ति दे सकता है, सहमरण की प्रवृत्ति दे सकता है, लेकिन माधुर्य देने की शक्ति तो उसमें नहीं है। वह शक्ति है केवल उस प्रकृति के हाथ में। उसके दिए हुए नियमों के पालन में जब समय था, सामर्थ्य थी, जब हम दोनों ही दोनों पैरों से उस नियम को कुचलते रहे, उसका कोई सम्मान हमने नहीं किया। आज असमय में, जबकि पति मृतप्राय हैं, प्रयोजन होने के कारण उनके पास मैं जाऊँगी किस मार्ग से? लेकिन तो भी मैंने पतवार छोड़ नहीं दी है बबुआजी। आशा थी एक मार्ग संभवतः तब तक भी खुला था। वह था उनकी सेवा का। मैंने सोचा था, अपनी पति-सेवा से ही संभवतः एक दिन उनको मैं पाऊँगी, लेकिन ऐसी ही अभागिनी हूँ मैं, उतना सा भी अवसर नहीं मिला, वह इहलोक त्याग करके चले गए।"

उपेंद्र ने आश्चर्य से मुँह ऊपर उठाकर देखा, किरणमयी की दोनों आँखें आँसुओं से भर गई हैं। उन्होंने कहा, "मैंने सुना है, आपने जैसी उनकी सेवा की है, वैसी सेवा कोई मनुष्य कर नहीं सकता। उस ओर पत्नी के कर्तव्य में आपकी कोई त्रुटि नहीं हुई है।"

किरणमयी ने कहा, "संभवतः वह नहीं हुई है, लेकिन मनुष्य नहीं कर सकता तो मैं ही कैसे कर सकी बबुआजी? यह बात नहीं है, वैसी सेवा सभी स्त्रियाँ कर सकती हैं, लेकिन मैंने तो कर्तव्य कहकर कुछ भी नहीं किया है। दूसरे सभी मार्ग बंद थे, इसीलिए मैंने अपनी सेवा के द्वारा उनको पाना चाहा था। इसीलिए उस ओर शक्ति के अनुसार मैंने कभी अवहेलना नहीं की। मैंने सोचा था, यदि एक बार उनको हृदय में पा जाऊँ, तो जितने दिन बचूँगी, जहाँ जितने दिन रहूँगी, शांत भाव से जीवन बिता सकूँगी, लेकिन मेरी सारी चेष्टाएँ विफल हो गईं। उनको पाना आरंभ अवश्य कर दिया था, लेकिन पा न सकी। पहले से ही वही जो तुम मेरे हृदय को घेरे रहे, किसी प्रकार भी वहाँ से फिर तुमको मैं हटा न सकी, अपने पति को भी अपने हृदय में न पा सकी।"

उपेंद्र उठ खड़ा हुआ। बोला, "रात हो गई भाभी, मैं जाता हूँ।"

किरणमयी भी उठ खड़ी हुई। बोली, "चलो, तुमको द्वार तक पहुँचाकर मुख्य द्वार बंद कर आऊँ। कल भेंट होगी न?"

"नहीं, कल मैं घर जाऊँगा।"

"और किसी दिन भेंट होगी?"

"हो जाना ही तो संभव है। नमस्कार भाभी।"

"नमस्कार बबुआ! दिवाकर को यहाँ भेजोगे न?"

"भेजूँगा तो अवश्य ही भाभी। उसके माँ-बाप नहीं हैं, मैं ही इतने दिनों से उसकी देखभाल करता रहा हूँ। आज से उसको मनुष्य बनाने का भार जबकि आपने लेना चाहा है, वह भार आप ही के हाथ मैंने सौंप दिया।"

किरणमयी के नेत्रों में आँसू उमड़ते आ रहे थे। उसने कहा, "इतनी बातें सुन लेने के बाद भी इतने बड़े विश्वास का भार मेरे ऊपर किस प्रकार डालोगे बबुआ? तुम दिवाकर को कितना प्यार करते हो, यह तो मैं जानती हूँ।"

उपेंद्र ने दरवाजे के बाहर आकर कहा, "इसीलिए तो मैंने आपको दे दिया भाभी। मैं जिसको प्यार करता हूँ, उसका अकल्याण आपसे कभी न होगा, यही तो मुझे विश्वास है।" कहकर शीघ्रता से आगे बढ़ गए। किरणमयी ने अँधेरी गली में अपना मुँह बढ़ाकर ऊँचे स्वर से पूछा, "एक बात और तुम मुझे बता जाओ बबुआ, सतीश क्या कलकत्ता में नहीं हैं?"

उपेंद्र ने दूर से ही उत्तर दिया, "नहीं।"

किरणमयी ने फिर पूछा, "वह जब मुझे बिना बताए चला गया है, तो वह बड़े ही दुःख से गया है बबुआ। उसको क्या तुमने इस घर में आने को मना कर दिया है?"

उपेंद्र ने कहा, "करने की इच्छा थी, लेकिन मैंने किया नहीं।"

किरणमयी ने पूछा, "यदि इच्छा ही थी, तो किया क्यों नहीं?"

उपेंद्र चुप हो रहे।

उत्तर न पाकर किरणमयी ने कहा, "ऐसी इच्छा क्यों हुई थी, वह भी क्या मैं नहीं जान सकती?"

उपेंद्र ने कहा, "मुझसे भूल हो गई। जो भी हो, वह कहाँ है, इसका पता लगाकर आपके पास आने के लिए उसको पत्र लिख दूँगा। उससे ही पूछ लेना।" यह कहकर उपेंद्र दूसरे प्रश्न की प्रतीक्षा किए बिना ही अँधेरी गली को पार कर गए।

अट्ठाईस

जो पक्की सड़क सीधी संथाल परगने के बीच से होती हुई वैद्यनाथ से दुमका को गई है, उसी के निकट बगीचे में वैद्यनाथ से प्रायः दो कोस की दूर पर बँगला था। कलकत्ता से चले आने पर सतीश पता लगाकर इस बंगले को किराए पर लेकर रह रहा था। अपने साथ समझौता कर लेने के लिए वह इस एकांत स्थान पर अज्ञातवास कर रहा था। इसीलिए जब उसने देख लिया कि इसके आसपास गाँव नहीं है, सामने के मार्ग में लोगों का चलना-फिरना भी बहुत कम है, तब प्रसन्न होकर उसने कहा, "यही मुझे चाहिए। ऐसी ही निर्जन नीरवता की मुझे आवश्यकता है।"

कलकत्ता से वह जो दुःख और अपयश का बोझ लेकर आया था, एकांत में बैठकर एक-एक करके इन्हीं सबका लेखा-जोखा कर लेना उसके मन को अभीष्ट था। सबसे पहले सावित्री को अत्यंत घृणा करने की उसे आवश्यकता है, दूसरी बात पथरियाघाटा की बहूरानी को भूल जाना चाहिए और तीसरी बात उपेन भैया के साथ संबंध विच्छेद कर ही देना पड़ेगा। इन सब कठिन कामों को इस वन में बैठकर पूरा कर डालना ही उसका उद्देश्य है। उसके साथ था बिहारी और देशी रसोइया ब्राह्मण। बिहारी का काम था बाबू की सेवा करके शेष समय में रसोइया के साथ वादानुवाद करके उसे मूर्ख और अनाड़ी सिद्ध करना और दूसरे का काम था दाल-भात पकाकर शेष समय में बिहारी के साथ झगड़ा करके यही सिद्ध करना कि सब्जी आदि का पैसा दोनों हाथों से चुरा रहा है, इसीलिए इन लोगों का समय तो एक तरह बीतने ही लगा, लेकिन जो मालिक थे, वे प्रतिक्षण केवल तत्त्वचिंतन में ही मगन रहते थे। संसार में कामिनी-कंचन ही सभी अनर्थों की जड़ है, वैराग्य ही परम वस्तु है, पक्षियों की बोली ही चरम संगीत है, वन-पर्वत ही सौंदर्य का सच्चा आदर्श है, इस सत्य को पूर्ण रूप से हृदयंगत करना ही उनकी साधना की वस्तु है। इसलिए बरामदे में एक टूटी आरामकुरसी पर सारा दिन बैठकर सतीश पक्षियों का कलरव कान खड़े कर सुनने लगा। महुआ के वृक्ष पर हवा की सों-सों की आवाज किस राग-रागिनी से भरी हुई है, इस पर विचार करने लगा, आकाश में भाँति-भाँति के बादलों को देखकर उच्छ्वसित होकर मन ही मन प्रशंसा करने लगा और दूर पहाड़ पर बाँसों की पत्तियों में आग लगाने की आवाज सारी रात जागता हुआ सुनने लगा।

इधर माँस-मछली खाना छोड़कर उसने सात्त्विक भोजन आरंभ कर दिया और कहीं से पत्थर का एक टुकड़ा लाकर दिन को उसकी पूजा करने और रात को आरती उतारने लगा।

फिर भी, इस नवीन पद्धति की जीवन-यात्रा के साथ किसी समय भी उसका परिचय नहीं था। इससे पहले बराबर ही उसको पक्षियों के स्वर की अपेक्षा सितार की ध्वनि ही मधुर लगती रही है, हवा में राग-रागिनी का अस्तित्व है, इसकी स्वप्न में भी उसने कल्पना नहीं की और आकाश में मँडराते हुए बादलों ने किसी दिन भी उसे विचलित नहीं किया।

वास्तव में, प्रकृति देवी की इन सब शोभा-संपत्तियों की वे चाहे जितनी भी बहुमूल्य क्यों न हों, खबर लेने का अवकाश सतीश को कभी भी नहीं था! जहाँ गाना-बजाना होता था, जहाँ थिएटर-नाटक होते थे, जहाँ फुटबाल-क्रिकेट के खेल होते थे, वहाँ सतीश दिन बिताया करता था। कहाँ मारपीट करनी पड़ेगी, किस बैठक में स्टेज बनाना पड़ेगा, किसके घर का मुर्दा जलाना पड़ेगा, किसकी विपत्ति में दस रुपए जुटाकर देने पड़ेंगे, ये ही उसके कार्य थे। पक्षियों के गान में माधुर्य है या नहीं, कोयल पंचम स्वर से पुकारती है या नहीं, आकाश-पट पर किसकी तूलिका रंग फैलाती हैं, नदी का जल कलकल शब्दों से किस वाणी की घोषणा करता है, कामिनी-कंचन संसार में किस परिमाण में अनर्थ की जड़ हैं इन सब सूक्ष्म तत्त्वों ने कभी भी उसके मस्तिष्क में प्रवेश नहीं किया था, और इनके लिए दुःख प्रकट करते भी उसको किसी ने नहीं देखा था। यह है सीधा-सादा मनुष्य, संसार का कारोबार वह सीधे ढंग से ही कर सकता है, जिसको वह प्यार करता है उसको बिना विचार किए ही करता है, और उसके ऊपर कोई आघात पड़ने पर क्या करना चाहिए, इसका निश्चय नहीं कर सकता। इस संसार में दो नर-नारियों को उसने सबसे अधिक प्यार किया था। एक है सावित्री और दूसरे हैं उसके उपेन भैया। सावित्री उसको धेखा देकर दुराचारी विपिन के साथ कहाँ चली गई और उपेन भैया कोई प्रश्न न करके ही एक अँधेरी रात में उसको छोड़कर चले गए। केवल खड़ा होने का एक स्थान था, वह था किरणमयी के पास, लेकिन उस द्वार को भी बंद देखकर लौट आने का फिर उसे साहस नहीं हुआ। इसीलिए वह इस निर्जन स्थान में आकर आकाश-वायु, पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों के साथ बरबस एक नया संपर्क स्थापित करके वैराग्य-साधना में लग गया था, लेकिन जीवन में सदा ही जो मनुष्य आमोद-प्रमोद, मित्र-स्वजनों को लेकर हल्ला-गुल्ला मचाकर ही दिन बिताता रहा, उसी की इस नवीन चेष्टा से बूढ़े बिहारी की आँखों में जब-तब आँसू आ जाते थे।

वह किसी दिन आकर कहता, "बाबू, दो भलेमानस बंगाली सामने के मार्ग से संभवतः त्रिकूट देखने जा रहे हैं।"

बात समाप्त न होते ही—सतीश 'कहाँ है रे?' कहकर झटके से उछल उठने के बाद तुरंत ही 'जाने दो' कहकर उदास मुख से अपनी कुरसी पर बैठ जाता।

बिहारी कहता, "बुलाकर तनिक बातचीत...।"

सतीश कहता, "किसलिए?" उसके बाद एक सूखी हँसी हँसकर कहता, "मुझे अब उस सब बातचीत का प्रयोजन नहीं है, अच्छा भी नहीं लगता। तू जानता है बिहारी, वन के पक्षी आजकल मुझे गाना सुनाते हैं, पेड़-पौधे बातें करते हैं, हवा बहकर देश भर की कितनी ही कहानियाँ मुझे सुनाती हैं, मुझे अब फालतू लोगों के साथ हास-परिहास में समय नष्ट करने की इच्छा नहीं होती है। यदि मेरे यथार्थ मित्र कोई कहे जा सकते हैं तो ये ही लोग हैं। समझ गया न बिहारी।" बिहारी निरुत्तर म्लान मुख से लौट जाता है, लेकिन बड़ी देर तक मालिक का यह करुण कंठ-स्वर उसके कानों में गूँजता रहता है।

बिहारी की एक आदत थी कि वह कोई वचन देकर उसे तोड़ नहीं सकता था। बहुत से विशेष भले आदमी जिस लोभ को सँभाल नहीं पाते, उसे सँभालने की शक्ति इस छोटे बिहारी में थी। मन ही मन एक प्रकार से समझ सकता था कि उस रात को सावित्री किस प्रकार की धोखाधड़ी मचाकर चली गई। वह सतीश की विशेष हितैषिणी है और सतीश को

वह प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी, इस विषय में बिहारी के मन में कुछ भी संदेह नहीं था, फिर भी वह किसलिए, जो अपराध उसने किया नहीं है, उसे ही स्वीकार करके और जो पाप किसी दिन था ही नहीं उसी का बोझ अपने हाथों से सिर पर रखकर अपने मालिक को इतनी व्यथा दे गई इस बात पर निरंतर विचार करके भी वह कुछ समझ नहीं पाता था, लेकिन सुना जाता है कि सावित्री पर बिहारी की असीम भक्ति थी। उसको वह माँ कहकर पुकारता था और शापभ्रष्टा देवी समझता था। इसीलिए अपनी बुद्धि में कूल-किनारा न पाकर वह यह कहकर अपने मन को शांत कर लेता था कि अंत में कुछ भला ही होगा और इस भलाई की आशा से ही वह उस संबंध में बिल्कुल ही चुप हो गया था। स्वामी का मुख देखकर सावित्री की वास्तविक दशा खोलकर कह देने के लिए कभी-कभी उसके हृदय में भारी आवेश उठ आता था, तब यह कहकर वह अपने आपको सँभाल लेता था कि अपनी माँ की अपेक्षा तो बाबू को मैं अधिक प्यार नहीं करता, वह स्वयं ही जबकि यह दुःख दे गईं तो मैं क्यों बाधा पहुँचाऊँ! वह बिना समझे ही तो मुझे सिर की सौगंध दिलाकर मना नहीं कर गई हैं।

इसी प्रकार इन लोगों के एकांतवास की अवधि बीत रही थी। संभवतः कुछ समय और भी बीत जाता, लेकिन एकाएक एक दिन बाधा पड़ गई।

जिसे काल वैशाखी कहते हैं, उस दिन वही समय था। समस्त दिन मन में यद्यपि दुर्दिन का कोई लक्षण नहीं था, लेकिन लगभग तीसरे पहर बीस मिनट के अंदर ही आकाश में प्रबल तूफान छा गया। पल भर में सतीश ने घोड़े के पैरों की आवाज सुनकर देखा, एक अच्छा घोड़ा पीठ पर साज लिये तूफान के साथ उन्मत्त वेग से भागता चला जा रहा है। सतीश ने पुकारकर कहा, "बिहारी, वह किसका घोड़ा दौड़ता हुआ भाग गया, जानता है?"

बिहारी ने कमरे में बत्ती साफ करते-करते कहा, "किसी बाबू-वाबू का होगा।"

सतीश ने पूछा, "इस तरफ बाबू और कौन है रे यहाँ?"

बिहारी ने कहा, "इस तरफ भले ही न हों, देवघर से प्रायः बाबू-भैया लोग गाड़ी पर सवार होकर त्रिकूट देखने, तपोवन देखने के लिए आते हैं। उन्हीं लोगों में से किसी का होगा। तूफान के डर से दौड़ रहा है।"

"तब तो बड़ी मुश्किल है।" यह कहकर सतीश फिर अपनी आरामकुरसी पर लेट गया, लेकिन उस बात को वह अपने मन से निकाल न सका। उसके मन में विचार उठने लगा, कुछ भी हो स्त्री के साथ रहने से विपत्ति तो साधारण नहीं हो सकती। इस स्थान में गाड़ी-पालकी तो दूर की बात है, एक आदमी की सहायता पाना भी कठिन है। इसके अतिरिक्त संध्या होने में तो देर नहीं है। संभवतः वर्षा होने लगेगी। सतीश बैठा न रह सका, बरामदे के कोने से लाठी उठाकर बाहर निकल पड़ा। मार्ग में आकर उसने देखा, पत्थरों का चूरा आँधी के वेग से छर्रों की भाँति शरीर में बिंध रहा है और संपूर्ण मार्ग में धूल और बालू से अँधेरा हो गया है। एकाएक उस अंधकार से तूफान की ओर से एक हो-हो की चिल्लाहट आने लगी। होली की छुट्टी पाकर हिंदुस्तानी दरबानों का दल जिस प्रकार की चिल्लाहट-भरी आवाज करते हुए रास्ते में निकल पड़ता है, यह उसी प्रकार की आवाज थी। बात क्या है, यह देखने के लिए सतीश ने उस धूलि में कुछ मार्ग तय करते ही देखा, मार्ग पर एक

टमटम है और उसी को घेरकर आठ-दस आदमी आनंद-ध्वनि कर रहे हैं। किसी के सिर पर टोपी है, किसी के सिर पर पगड़ी है, सभी का पहनावा हिंदुस्तानी है।

यह आनंद किस बात का है, यह बात जानने के लिए सतीश ने और कई कदम आगे बढ़ते ही देखा, टमटम की एक बाँह पकड़कर एक स्त्री माथा झुकाए अत्यंत सिमटी हुई खड़ी हुई है और उसी को लक्ष्य करके जमा हुए लोग जिस भाषा का प्रयोग कर रहे हैं, उसे उच्चारण कर पाना किसी सभ्य आदमी के लिए संभव नहीं है। सतीश को पहले यह ध्यान आया कि ये लोग इस ओर कहीं इस स्त्री को लेकर आनंद मनाने आए थे और अब घोड़ा भाग जाने से एक प्रकार की खुशी मना रहे हैं। एक बार उसने सोचा कि लौट जाए, लेकिन मालूम नहीं वह क्यों आज किसी प्रकार भी कौतूहल रोक न सका। ठीक उसी समय आश्चर्य के साथ उसकी निगाह पड़ गई उस स्त्री के पहनावे पर। संध्या और बालू के अंधकार में भी जान पड़ा कि उसका पहनावा मानो बंगाली स्त्रियों की तरह का है। पैरों में लखनऊ के बने जूते नहीं हैं, बल्कि अंग्रेज स्त्रियाँ जो पहनती हैं, वे ही हैं।

अकस्मात्! उस स्त्री ने ऊँचे स्वर से पुकारकर कहा, ‘‘महाशय! मुझे बचाइए!’’

‘‘बचाइए!’’ एक ही क्षण में सतीश के वैराग्य का नशा हवा हो गया। कामिनी अत्यंत घृणित है, इस तत्त्व को वह भूल गया—बाघ की तरह कूदकर वह एकदम ही उस औरत के निकट जा खड़ा हुआ। उसने कहा, ‘‘क्या हुआ है?’’

उस स्त्री ने इतनी देर तक अकेले बहुत ही कष्ट सहन किया था। इस बार मुँह ढककर बैठ गई और रोने लगी।

सतीश ने व्यग्र होकर पूछा, ‘‘क्या बात है? क्या हो गया है?’’

‘‘ये लोग मेरा बहुत अपमान कर रहे हैं।’’

‘‘अपमान कर रहे हैं? कौन हैं ये लोग?’’

‘‘मैं नहीं जानती।’’

‘‘जानती नहीं हो?’’ सतीश एक ही साथ बहुत से प्रश्न कर बैठा, ‘‘तुम कौन हो? कहाँ से आई हो? तुम्हारे घर के लोग कहाँ हैं? यह गाड़ी किसकी है?’’

उस स्त्री ने आँखें पोंछकर रुँधे कंठ से कहा, ‘‘मेरा सईस घोड़ा पकड़ने के लिए साथ-साथ दौड़ता गया है, और कोई नहीं हैं। मैं त्रिकूट देखने के लिए आई थी, प्रायः आती हूँ। वहाँ से ही ये लोग मुझे तंग करते आ रहे हैं।’’

सतीश ने क्रुद्ध होकर कहा, ‘‘अच्छा किया है। आप क्या मेम साहब हैं कि टमटम हाँककर इतनी दूर तक आई हैं? आप क्या अंग्रेज की स्त्री हैं कि जहाँ भी इच्छा हो, अकेले जाने पर कोई भय नहीं है? हमारे देशी आदमी असहाय देशी स्त्रियों को पाने से उसका अपमान करेंगे, उनके ऊपर अत्याचार करेंगे, यही है इस देश का नियम, इसे क्या आपके माँ-बाप नहीं जानते?’’

यह कहकर हिंदुस्तानियों में जो सबसे बड़ा था, उसके ऊपर अग्निदृष्टि डालकर उसने कहा, ‘‘तुम लोग यहाँ खड़े क्यों हो?’’

उसने कहा, ‘‘हमारी खुशी।’’

उन लोगों की आँखों की ओर देखने से ही समझ में आता था कि उन्होंने या तो भाँग, गाँजा अथवा दोनों ही वस्तुओं का सेवन किया है। सतीश ने हाथ से सीधा मार्ग दिखाकर

संक्षेप में कहा, "जाओ...।"

उत्तर में उस व्यक्ति ने अपने मुँह को अत्यंत विकृत बनाकर कहा, "अरे, जाओ रे...।" प्रत्युत्तर में सतीश ने उसके गाल पर ऐसा एक थप्पड़ लगा दिया कि वह उस 'रे' शब्द को ही जरा सा खींच लेने का अवसर भर पा गया, उसके बाद बेहोश होकर मार्ग पर चक्कर खाकर गिर पड़ा और उसके पास निरीह की भाँति जो छोकरा खड़ा था, वह बिना अपराध के ही सतीश के बाएँ हाथ का चपेटा खाकर टमटम के सईस के बैठने के स्थान पर और उसके बाद पहिए के नीचे आँखें बंद करके बैठ गया। बाकी जो कई आदमी थे, उनमें से कुछ तो नशे के गुण से हतबुद्धि की भाँति देखते खड़े रहे। सतीश ने सामने के आदमी को बुलाकर कहा, "अब तुम जाओ।"

प्रत्युत्तर में वह बिजली की भाँति तेजी से सबके पीछे जा खड़ा हुआ।

सतीश ने उस स्त्री से कहा, "उठिए...।"

वह चुपचाप उठ खड़ी हुई। सतीश ने कहा, "पानी आने में देर नहीं है, आइए मेरे साथ।"

स्त्री ने डरते-डरते कहा, "मैं क्या शहर तक पैदल चल सकूँगी?"

सतीश ने कहा, "शहर में नहीं, मेरे घर पर। उसी बगीचे में। पानी आ रहा है, अब खड़ी रहकर सोचने से काम न चलेगा। न चलेंगी, तो यहीं आ रहा है, अब खड़ी रहकर भीगिए, मैं जा रहा हूँ।"

स्त्री ने कहा, "चलिए।"

बूँद-बूँद पानी गिरना आरंभ हो गया और आँधी का वेग शिथिल होने पर भी रुका नहीं था। दोनों कुछ देर तक चुपचाप चलते रहे, बगीचे के फाटक के सामने एकाएक सतीश बोला, "लेकिन घर पर कोई स्त्री नहीं है, मैं अकेला रहता हूँ।"

स्त्री ने पूछा, "तो फिर आपकी रसोई पकाने, घर-गृहस्थी का काम कौन करता है? स्वयं करते हैं?"

"नहीं, नौकर है, लेकिन वह भी कोई स्त्री नहीं है।"

"भले ही न हो, लेकिन आप खड़े क्यों हो गए? चलते-चलते बताइए न।"

सतीश ने कुंठित होकर कहा, "यही कहता हूँ कि मेरे यहाँ कोई स्त्री नहीं है। इस रात्रि को अंदर जाने से पहले आपको बता देना उचित है।"

स्त्री ने कहा, "यदि उचित है तो वहीं क्यों न बता दिया, लेकिन मैं अब खड़ी नहीं रह सकती, मेरे हाथ-पैर काँप रहे हैं। इसके अतिरिक्त मुझे बड़ी प्यास लगी है।"

"आइए, आइए!" कहकर सतीश घबराकर अँधेरे बगीचे में मार्ग दिखाता हुआ चलने लगा। इन सब भद्दी घटनाओं के बाद यह कैसे थक गई है, यह मन ही मन अनुभव करके सतीश लज्जित हो उठा। थोड़ी देर के बाद ही उसने धीरे-धीरे कहा, "आपकी आवाज मैंने कहीं सुनी है, ऐसा ज्ञात हो रहा है।" स्त्री ने इसका उत्तर नहीं दिया, लेकिन वह समझ गई कि अंधकार में सतीश उसका मुँह नहीं देख सका। बरामदे में जाकर सतीश की टूटी आरामकुरसी पर बैठकर कहा, "साथ में बिहारी है न?"

यह कहकर उसने ऊँचे स्वर से पुकारा, "बिहारी, मेरे लिए एक गिलास पानी तो लाओ।"

बिहारी उधर के बरामदे में था। पुकार सुनकर पानी लेकर उपस्थित हुआ। बरामदे की

दीवाल पर टिमटिमाती हुई एक मिट्टी के तेल की ढिबरी जल रही थी, उसी क्षीण प्रकाश में उसने उस स्त्री को देखते ही पहिचानकर आश्चर्य के साथ कहा, "बहनजी, आप हैं!"

"यह तो लंबी कहानी है।" कहकर स्वयं उठकर बिहारी के हाथ से पानी का गिलास लेकर सारा का सारा एक साँस में पीकर बिहारी के हाथ में लौटाकर उसने कहा, "भैया को खबर देनी पड़ेगी बिहारी। पता बता देने से इस रात को तुम मकान का पता लगा सकोगे न?"

बिहारी ने गरदन हिलाकर कहा, "नहीं बहनजी, मैं तो शहर का कुछ भी नहीं जानता। इसके अतिरिक्त बूढ़ा आदमी ठहरा, इस आँधी-पानी में अँधेरे मार्ग में क्या चल सकूँगा?"

"तब क्या होगा बिहारी? यदि घोड़ा जाकर अस्तबल में घुस गया होगा, तो भैया सोच में पड़कर व्याकुल हो जाएँगे। किसी भी उपाय से उनको खबर देनी होगी कि कोई भय नहीं है, मैं निरापद हूँ।" बिहारी ने सोचकर कहा, "हमारा रसोइया ब्राह्मण इसी देश का आदमी है, राह-घाट सब पहचानता है। ज्योतिष बाबू का डेरा बताने से वह अवश्य ही जा सकेगा।"

सतीश यह जान गया कि वह स्त्री कौन है। उसने कहा, "भैया को एक पत्र लिख दीजिए।"

उस स्त्री ने कहा, "वह तो लिखना पड़ेगा ही।"

सतीश बोला, "इस प्रकार लिख दीजिएगा कि बहन को मेम साहब बना देने का फल आज क्या हुआ। साहब आदमी सुन लेने पर संभवतः प्रसन्न ही होंगे।"

व्यंग्य सुनकर सरोजिनी क्रुद्ध हो गई। उसका आज का आचरण दुर्भाग्यवश अत्यंत भद्दा हो गया था, यह सच है और इसके लिए उसे स्वयं भी कम पछतावा नहीं हुआ, लेकिन दूसरा कोई आदमी इसीलिए बार-बार मेमसाहब के साथ तुलना करके व्यंग्य बोलेगा तो वह सहा नहीं जा सकता। उसने कड़े स्वर से उत्तर दिया, "भैया को आप ही लिख दीजिए, उनकी बहन को कैसी विपत्ति से आज आपने बचा लिया है!"

उसकी खीझ का कारण सतीश समझ गया, लेकिन स्वयं वह यह सब साहसी चाल सह नहीं सकता था। उसने कहा, "लिख देना ही उचित है। इस पर भी यदि आप लोगों के समाज को होश आवे।"

सरोजिनी ने कहा, "हमारे समाज के प्रति आपको बड़ी घृणा है न? आपकी धारणा यह है कि हम लोग मनुष्य नहीं हैं?"

प्रत्युत्तर में सतीश भी हँसी को दबाकर कुछ कहने जा रहा था। ऐसे ही समय बिहारी ने हनुमान पांडेजी को लाकर उपस्थित किया। सरोजिनी ने हैंड बेग खोलकर पाँच रुपए निकालकर कुरसी की बाँह पर रखकर कहा, "यह है तुम्हारा इनाम पांडेजी, यदि इसी शहर में जाकर यह चिट्ठी दे आ सको...।" यह कहकर उसने पूरा पता बता दिया।

पांडेजी ने अपनी एक महीने की आमदनी पर ललचाई दृष्टि डालकर एक क्षण में ही राजी होकर हाथ बढ़ा दिया। उसके पसारे हुए हाथ में सरोजिनी उन थोड़े से रुपयों को रखकर चिट्ठी लिखने के लिए कमरे के अंदर चली गई। लिखने की मेज सामने ही थी। थोड़ी ही देर के बाद उसने पत्र लाकर पांडेजी के हाथ में दे दिया। पांडेजी सावधानी से अपनी मिरजई में रखकर बाएँ हाथ में छोटी लालटेन और हाथ में खूब लंबी और मोटी बाँस की लाठी लेकर

बाहर की मूसलाधार वर्षा में ही पल भर में अंतर्ध्यान हो गए।

बिहारी ने कुंठित भाव से कहा, "बाबू, महराज कब लौटेगा, इसका ठिकाना नहीं, रसोई का क्या होगा?"

सतीश सरोजिनी के मुँह की ओर एक बार देखकर, बात को दबा रखने के लिए लापरवाही के साथ बोला, "अरे, छोड़ो भी! वह पीछे हो जाएगी।"

बिहारी की घबराहट उससे कुछ भी कम नहीं हुई। उसने कहा, "किस प्रकार हो जाएगी, मैं तो समझ नहीं पाता बाबू!"

सतीश ने रुष्ट होकर कहा, "तुझे समझना न पड़ेगा बिहारी, तू जा। यह सब मैं ठीक कर लूँगा। इसके अतिरिक्त आज मुझे भूख भी नहीं है।"

बिहारी एक कदम भी नहीं डिगा। क्यों इस बात पर उसने तनिक भी विश्वास नहीं किया, क्योंकि पहले तो साधारण लोगों की अपेक्षा मालिक की भूख की मात्रा अधिक है, इसके अतिरिक्त इतने दिनों की नौकरी में उसने उसमें इस वस्तु की कमी एक दिन भी नहीं देखी। संकोच से उसने कहा, "यह क्या हो सकता है बाबू!"

सतीश ने तिरस्कारपूर्वक कहा, "यही तो तेरा दोष है बिहारी, तू सभी बातों में तर्क करता है। कह रहा हूँ कि यह सब मैं ठीक कर लूँगा, जाने के लिए कह रहा हूँ, जाता नहीं, मुँह के आगे खड़ा रहकर बराबरी का जवाब दे रहा है।"

बिहारी क्षुब्ध चित्त से चला जा रहा था। सरोजिनी ने पुकारकर वापस बुलाकर कहा, "आज मेरे ही कारण तुम लोगों पर इतनी विपत्ति आ पड़ी है बिहारी! रसोई की तैयारी क्या कुछ भी नहीं हुई है?"

बिहारी ने कहा, "हुई क्यों नहीं है बहनजी, किंतु रसोई बनाएगा कौन? महराज के लौट आने में कितनी देर होगी, इसका तो कोई ठिकाना नहीं है।" यह कहकर वह अप्रसन्न मुँह से जाने लगा।

सरोजिनी ने कहा, "मेमसाहब या जो भी हूँ, तो भी आपके साथ एक ही जाति की तो हूँ। उसके हाथ का तैयार खाना खाने से क्या किसी की जाति जाएगी?"

प्रश्न सुनकर सतीश हँस पड़ा। बोला, "जाति जाएगी या नहीं, मैं कह नहीं सकता, किंतु मेमसाहब के हाथों की बनी रसोई गले से नीचे उतरेगी या नहीं, यही असली बात है।"

"ऐसी बात है! मेम साहब के हाथ की बनी रसोई खाने से वे भूल न सकेंगे।" यह कहकर सरोजिनी हँसी और इत्र की गंध से समूचे कमरे को मानो तरंगति करके तेज कदम से उठकर दूसरे कमरे में चली गई। पाँच-छह मिनट के बाद जब वह बाहर आई, तब उसकी ओर देखकर सतीश क्षण भर के लिए मुग्ध हो गया।

जूता-मोजा के बदले दोनों पैर खाली थे। रेशम की कुर्ती-साड़ी के बदले केवल कमीज पर एक सादी लाल पाढ़ की धोती पहने थी। देखकर सतीश की दोनों आँखें शीतल हो गईं। उच्छ्वसित कंठ से बोला, "क्या ही सुंदर आज दिखाई पड़ रही हैं! मानो लक्ष्मी देवी ही हैं।"

सुनकर सरोजिनी की शिराओं में आनंद की बाढ़ आ गई, लेकिन अत्यंत लज्जा से सिर झुकाकर उसने कहा, "जाइए, परिहास करने से पकाऊँगी नहीं, कहे देती हूँ। तब उपवास करना पड़ेगा।"

लेकिन इस लज्जा को उसने उसी क्षण दबा दिया, क्योंकि वह जानती थी, लज्जा को प्रश्रय देने से वह उत्कट हो उठती है। इसीलिए सिर ऊपर उठाकर उसने हँसते हुए कहा, ‘‘प्रशंसा बाद में होगी। अब रसोईघर किस मुहल्ले में है, दिखा देने को कह दीजिए।’’ कहकर वह स्वयं ही आगे बढ़ गई।

उनतीस

भोजन करने के बाद बरामदे में दो कुर्सियों पर दोनों ही आमने-सामने बैठे थे।

सरोजिनी ने कहा, ‘‘एक बात हम लोगों में से किसी के ध्यान में नहीं आई कि भैया के मकान का पता यदि महराज ढूँढ़ने पर न लगा सका तो स्वयं ही एक गाड़ी बुला लावेगा, लेकिन यह यदि न हो सका तो क्या होगा सतीश बाबू?’’

सतीश ने कहा, ‘‘यह बात ध्यान में आने पर भी विशेष कोई लाभ न होता। इतनी रात को इतनी दूर कोई गाड़ीवाला भी संभवतः आना नहीं चाहता या तो आपको यहीं रात्रिवास करना पड़ेगा या फिर पैदल चलना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त तीसरा उपाय नहीं है।’’

‘‘मैं पैदल चल सकती हूँ, लेकिन आपके अतिरिक्त किसी अन्य के साथ नहीं।’’

‘‘इसका अर्थ? मेरे साथ जाने से ही क्या विपत्ति की संभावना नहीं है?’’

‘‘क्यों नहीं।’’ लेकिन उसकी पूरी जिम्मेदारी आपके ऊपर है। जवाबदेही आपको करनी पड़ेगी, मुझे नहीं।’’

सतीश ने कहा, ‘‘मुझे क्यों जवाबदेही करनी पड़ेगी? मेरा अपराध?’’

‘‘और किसी के सामने आप भले ही न करें, अपने सामने तो करनी ही पड़ेगी।’’

यह कहकर एकाएक सरोजिनी चुप हो गई।

सतीश ने फिर उसका प्रतिवाद नहीं किया, लेकिन उसने स्पष्ट अनुभव किया, दोनों की क्षणिक नीरवता के बीच से लज्जा की हवा का एक झोंका बह गया।

‘‘कोई आ रहा है न?’’ यह कहकर सरोजिनी कुरसी छोड़कर उठ पड़ी और कुछ देर तक बरामदे की रेलिंग पर टिककर अँधेरे बगीचे की ओर देखती हुई खड़ी रही।

थोड़ी ही देर के बाद जब ‘कोई नहीं है’ कहकर वह अपने स्थान पर लौट आई और अपने कपड़े-लत्ते एक बार फिर अच्छी तरह सँभालकर बैठ गई, तब सतीश कोई बात ही न कह सका।

इसके बाद दोनों ही चुप होकर बैठे रहे। तब तक बाहर तूफान बंद हो जाने पर भी वर्षा रुकी नहीं थी। एकांत स्थान में स्वल्प प्रकाशयुक्त बरामदे में ये दोनों तरुणावस्था के नर-नारी एक-दूसरे के आमने-सामने जब नीरव हो बैठे रहे, तब एक और अंधे देवता अंतरिक्ष में अवश्य ही मुँह दबाकर हँसे होंगे।

आज की यह उद्दाम चंचल बाह्य प्रकृति अपनी सारी सजीवता के संघर्ष से सतीश के निराश तथा पीड़ित चित्त को फिर एक मार्ग की ओर तीव्र गति से प्रेरित करने लगी।

सरोजिनी ने एकाएक प्रश्न किया, ‘‘आपके इस वनवास का अर्थ क्या है?’’

सतीश बोला, ‘‘अर्थ कुछ अवश्य ही है।’’

"वह तो है ही, लेकिन किसी को भी न बताकर क्यों भाग आए?"

"लेकिन मैं भाग आया हूँ, यह समाचार किसने दिया?"

सरोजिनी ने जरा हँसकर कहा, "समाचार को मैंने स्वयं ही आविष्कार किया है। आप जिस दिन सवेरे चले आए, उस दिन मैं स्वयं आपके डेरे पर जा पहुँची थी।"

सतीश ने आश्चर्य से कहा, "समझ गया। उपेन भैया संभवतः मुझे ढूँढ़ने के लिए गए थे और आप उनके साथ थीं। वे जाएँगे, यह मैं जानता था, लेकिन मुझे अनुपस्थित पाकर उन्होंने क्या कहा?"

सरोजिनी ने कहा, "उन्होंने अवश्य ही कुछ कहा था, लेकिन मैंने सुना नहीं। क्यों कि वे स्वयं वहाँ नहीं गए, मेरे हाथ से उन्होंने चिट्ठी भिजवा दी थी।"

सतीश ने पूछा, "उसके बाद?"

सरोजिनी ने कहा, "मैंने जाने पर सुना, आप सवेरे की गाड़ी से चले गए हैं। मन में न जाने क्या विचार आया कि ब्राह्मण महराज से कहकर दरवाजा खुलवाकर सारे डेरे को घूम-घूमकर मैंने देखा। बाहर के बरामदे में एक साड़ी सूख रही थी, पूछने पर ज्ञात हुआ कि यह कपड़ा है माईजी का। वे बीमार हैं, आप उनको लेकर पश्चिम को चले गए हैं। अच्छा, वह कौन हैं? कहाँ, इस डेरे में तो उनको मैं देख नहीं रही हूँ।"

सतीश का चेहरा पीला पड़ गया। कुछ देर तक मौन रहकर कहा, "ब्राह्मण महराज ने कहा कि मैं उनको साथ लेकर पश्चिम को चला गया हूँ? बदमाश! झूठा! उपेन भैया ने उस पर विश्वास कर लिया?"

सतीश के मुँह का भाव और कंठ-स्वर सुनकर सरोजिनी आश्चर्य में पड़ गई। उसने कहा, "उपेन बाबू तो थे नहीं, और विश्वास करने में भी दोष क्या है? यह माईजी आपकी कौन हैं सतीश बाबू?"

सतीश ने उपेक्षा से कहा, "मेरी कौन! कोई भी नहीं, हमारे पुराने डेरे की नौकरानी। शैतान! बदमाश औरत! बूढ़ी उम्र में बीमारी से मर रही है, इसीलिए कुछ भीख माँगने आई थी। मैं उसको लेकर पश्चिम को चला गया हूँ, हरामजादा उल्लू मेरे सामने कहे तो उसका...।"

सरोजिनी के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। थोड़ी देर तक चुपचाप देखती रहकर उसने कहा, "दासी! लेकिन इस बात से आप इतना उत्तेजित क्यों हो रहे हैं?"

सतीश ने कहा, "अनुचित निंदा करने से कौन उत्तेजित नहीं होता, बताइए?"

"वह उस रात को बेहोश हो गई थी!"

सतीश ने ठीक उसी तरह उत्तेजित स्वर से कहा, "हाँ, हो गई थी, लेकिन इससे भी क्या हुआ? उसका बेहोश हो जाना क्या मेरा अपराध है? और आप भी उसके बारे में इतने सम्मान के साथ बातें क्यों कह रही हैं? घर की दासियों और नौकर-चाकरों से आप लोग 'आप' 'जैसी आज्ञा' कहकर बातें करती हैं?"

सरोजिनी ने इसका उत्तर नहीं दिया, वह मौन होकर बैठी रही। इतनी देर तक उसके हृदय में जो आनंद का चाँद उग गया था, उसको न जाने कहाँ से काले बादलों ने आकर घेर लिया। एक बार उसके मन में यह प्रश्न उठा, क्यों उस रात को उपेंद्र सपत्नीक उसके डेरे पर आकर तुरंत ही चले गए थे, लेकिन उसने प्रश्न नहीं किया। मन ही मन एक वह एक प्रकार

से समझ गई थी, इसमें कुछ ऐसी बातें हैं, जिन्हें उपेंद्र स्वयं ही प्रकट नहीं कर सके हैं और सतीश भी न कर सकेगा।

लेकिन यह क्षुब्ध नीरवता दोनों को ही खलने लगी, और चुपचाप न रह सकने के कारण सरोजिनी ने धीरे-धीरे पूछा, ''एक बात मैं आपसे पूछ सकती हूँ?''

सतीश ने जरा अभिमान के स्वर से कहा, ''कौन बात?''

''आपने इतने दिन हम लोगों के इतने निकट रहकर भी कभी दर्शन नहीं दिया, क्यों?''

सतीश के पास इस प्रश्न का उत्तर नहीं था। उसने कहा, ''तरह-तरह के कारणों से समय नहीं मिला।''

''कारण क्या है? लिखना-पढ़ना?''

''नहीं, लिखना-पढ़ना तो नाम मात्र का चलता है। उससे मुझे किसी दिन कहीं जाने में रुकावट नहीं होती।''

सतीश के डेरे पर उस अज्ञात स्त्री की चर्चा छिड़ जाने के बाद से ही उसके हृदय में एक ज्वाला धधक रही थी, इन अनाप-शनाप बातों से भरी कैफियत से उस ईर्ष्या की दाह और भी बढ़ गई। सतीश को छिपे तौर से प्यार करती तो यह सब छिपाना-चुराना संभवतः उसके लिए छिपा ही रह जाता, किंतु प्रेम की अंतर्दृष्टि को इतनी सरलता से प्रसारित न किया जा सका। ठीक बात क्या है, इसकी जानकारी न होने पर भी उसका हृदय किस तरह मानो असल बात समझ गया, सतीश ने व्यथा-भरे आश्चर्य के साथ सरोजिनी की ओर देखा। उसके कंठ की आवाज में झगड़े का जो दबा हुआ स्वर था, उसने सतीश के कानों में तीक्ष्ण भाव से पहुँचकर सावित्री की याद दिला दी, किंतु इसके बीच ही सरोजिनी भी उसको प्यार कर सकती है, ऐसी संभावना सतीश के मन में सपने में भी उदित नहीं हुई। इसीलिए उसकी इस उत्तप्त प्रश्नोत्तर माला का वास्तविक कारण वह स्पष्ट रूप से देख न सका। इसको उच्च शिक्षा प्राप्त महिला का कोरा-स्पर्धाभरा अभिमान कल्पना करके वह स्वयं भी मन ही मन जल उठा और उसने उत्तर भी उसी तरह दिया।

सरोजिनी चुप हो गई और सतीश भी चुपचाप मुँह झुकाए चुप हो रहा।

एक गाड़ी आकर फाटक के सामने खड़ी हो गई, और ज्योतिष बाबू ऊँचे स्वर से सतीश का नाम लेकर पुकारते-पुकारते बत्ती और आदमियों के साथ बगीचे में आ गए।

असंख्य धन्यवाद, निमंत्रण-आमंत्रण आदि यथाविधि संपन्न करके ज्योतिष जब अपनी बहन को साथ लेकर प्रस्थान करने को तैयार हो गए, तब सतीश ने सरोजिनी से पूछा, ''एक बात आपसे पूछना बाकी रह गया। हारान बाबू नामक एक उपेन बाबू के मित्र थे, उनके क्या हाल हैं, आप बता सकती हैं?''

ज्योतिष ने कुछ आश्चर्य के साथ उसका उत्तर दिया, ''वाह! आपने सुना नहीं? वह तो मर गए।''

यह समाचार सुनकर सतीश थोड़ी देर तक स्तब्ध खड़ा रहा, फिर बोला, ''उनकी माँ, उनकी स्त्री, वे लोग कहाँ हैं, आप जानते हैं?''

सरोजिनी ने इसका उत्तर दिया। उसने कहा, ''वे लोग तो अपने मकान में ही हैं। निश्चय हुआ है कि दिवाकर बाबू उनके मकान में रहकर कॉलेज में पढ़ेंगे—वे उनका भार लेंगी।''

ज्योतिष ने एकाएक अपनी बहन से पूछा, ''हारान बाबू की स्त्री हम लोगों के घर एक

दिन आई थीं न?"

सरोजिनी ने कहा, "हाँ बड़ी देर तक वह रही थीं, बहुत सी बातें की थीं।"

उसके अपने बारे में क्या बातें हुई थीं, पति के शोक से भाभी की क्या हालत हुई थी, आदि जानने के लिए सतीश ने सरोजिनी के मुँह की ओर एक उत्सुक दृष्टि डाली, क्योंकि उसके विषय में कड़ी आलोचना हुई थी, इसमें उसे संदेह नहीं था, लेकिन उस अस्पष्ट प्रकाश में या तो सरोजिनी उनके चेहरे का भाव न समझ सकी, अथवा समझकर भी, सतीश का कौतूहल दूर करने की आवश्यकता उसने नहीं समझी। उसने भैया को आगे चलने के लिए हलका धक्का लगाकर मृदु स्वर से कहा, "अब देर मत करो भैया, चलो...।"

"हाँ बहन, चल।" कहकर सतीश को नमस्कार करके वह बोले, "फिर एक बार आपको असंख्य धन्यवाद सतीश बाबू! कल-परसों एक दिन गरीब के यहाँ भी चरण-धूलि पड़ जाती तो अच्छा होता।"

सतीश ने प्रतिनमस्कार करके अस्पष्ट स्वर से जो कुछ कहा, वह समझ में नहीं आया। सरोजिनी लौटकर खड़ी हो गई और सतीश को एक छोटा सा नमस्कार करके चली गई।

तीस

दो महीने पूर्व हारान की मृत्यु के समय केवल दो-चार दिनों के ही लिए कलकत्ता में रहकर दिवाकर वापस चले जाने को बाध्य हो गया, इस बार यह निश्चय हो जाने से कि वह किरणमयी के संरक्षण में रहकर कलकत्ता के कॉलेज में बी.ए. पढ़ेगा, वह अपने नए खरीदे हुए स्टील के बक्स में किताबें, कागज और कपड़े आदि भरकर एक दिन शाम को हारान बाबू के पथरियाघाटा के मकान पर जा पहुँचा।

किरणमयी ने उसको अल्पवयस्क छोटे भाई की तरह स्नेह के साथ ग्रहण किया।

मामा के घर में सुरबाला के अतिरिक्त दिवाकर की देखभाल करनेवाला कोई नहीं था। फिर उस देखभाल में भी महेश्वरी की कड़ी दृष्टि, शनि की दृष्टि की भाँति अधिकांश समय में ही बहुत सा रस सुखा डालती थी, लेकिन यहाँ इन सब उपद्रवों में से एक भी नहीं था।

उपेक्षा से लगाया हुआ गमले का पौधा संयोगवश पृथ्वी की गोद में आश्रय पाकर काफी रस मिलने से जिस प्रकार उसकी सूखी पतली जड़ें मिट्टी के भीतर सहस्रों भुजाएँ बढ़ाने लगती हैं, किरणमयी के आश्रय में भी दिवाकर की ठीक वही दशा हुई।

महानगरी के विस्तृत और विचित्र वातावरण में पड़कर देखते-देखते उसकी संकुचित आशा तथा अंधकारपूर्ण भविष्य फड़क उठा। अपने को उसने बड़े रूप में अनुभव किया। बी.ए. फेल करके विद्याभ्यास का उसका पुराना बंधन छिन्न हो गया है, फिर भी नए बंधन में अभी देर है, इस मधुर अवकाश काल में वह निरंतर सर्वत्र घूम-घूमकर ज्ञान संग्रह करने लगा।

इसी प्रकार दिन बीत रहे थे। अघोरमयी विभिन्न तीर्थस्थानों में घूमकर एक दिन घर लौट आईं। इसके पहले दो-एक दिन जो उन्होंने दिवाकर को देखा था, तब पुत्र-शोक से मन इतना दुःखी था कि इसके चेहरे की ओर नजर ही नहीं पड़ी। आज इस दाढ़ी-मूँछविहीन सुंदर कांतिवाले मनोहर लड़के की ओर देखते ही उनका मातृ-हृदय स्नेह से पिघल गया।

उन्होंने कहा, "दिबू, मैं रिश्ते में तुम्हारी मौसी लगती हूँ, मुझे मौसी कहकर पुकारना बेटा।"

इसके भी माँ-बाप जीवित नहीं हैं, सुनकर उनकी दोनों आँखें छलछला आईं और बड़े-बड़े दो बूँद अश्रुकण आँचल के छोर से उन्होंने पोंछ डाले। उन्होंने कहा, "भगवान् ने मेरे हारान को छीन लेने पर भी यदि मुझ अभागिनी को बचा रखा है, तो अब इने-गिने दिन जीवित रहूँ, तू बेटा मुझे छोड़कर कहीं मत जाना।" यह कहकर हाथ से उसका मस्तक छूकर उन्होंने अपनी उँगलियों का छोर चूम लिया। उनकी बातें सुनकर और आँखों के आँसू देखकर दिवाकर आँखों के आँसू छिपाकर सामने से हट गया। इसके बाद कुछ ही दिनों में उनका दिवाकर के प्रति पुत्र-प्रेम जादूगर के माया-वृक्ष की भाँति बढ़ता ही चला गया। सच बात यह है कि इस पुत्रहीना जननी ने कुछ दिन प्रवास में बिताकर घर लौट आने पर पुत्र का अभाव समूचे हृदय से पूरा कर लेना चाहा।

एक ओर वह थीं और दूसरी ओर थी किरणमयी, आदर-यत्न की कोई सीमा नहीं रही।

जीवन के इस आकस्मिक परिवर्तन के प्रथम कुछ दिन उसको कुछ रूखे से जान पड़े, चिरभ्यस्त अनधिकार का संकोच बिल्कुल कट जाना नहीं चाहता था, तो भी थोड़े ही दिनों में उसका संकीर्ण मन इन दोनों नारियों के अपरिमित स्नेह से अपरिमित रूप से फैल गया। अंत में एक दिन उसके बहुक्लेशार्जित दुःख सहने के अभ्यास सूखे चमड़े की भाँति शरीर से अज्ञात रूप से झर गए, इसको वह जान भी न सका।

इधर जो कुछ देखने की वस्तुएँ थीं, उनका देखना हो गया।

अब वह जब तक घर से बाहर नहीं निकलता, उसको बहुत काम रहता है। टूटी छत के निर्जन कोने में पेंसिल-कापी लेकर गंभीर मुँह से वह बैठा रहता है, स्नान-भोजन की बात उसे स्मरण ही नहीं रहती, बहुत बुलाहट के बाद उसको नीचे उतारा जा सकता है। उसके मानस राज्य के इन नवीन उपद्रवों को भय के साथ लक्ष्य करके अघोरमयी कहने लगीं, "इसी घर का दोष है। मेरे हारान ने लिख-पढ़कर प्राण दे दिया, इसको भी देखती हूँ उसी रोग ने पकड़ लिया है—नहीं बाबू, पराया लड़का...।" किरणमयी सब कुछ ही लक्ष्य कर रही थी। उसने हँसकर कहा, "इसकी चिंता तुम मत करो माँ, उन्होंने जो लिखने-पढ़ने में मन लगाया है, उससे परमायु घटती नहीं, बल्कि बढ़ती है।"

इसके कुछ ही दिन बाद 'चंद्रोदय' में दिवाकर की 'जहर की छुरी' नामक कहानी प्रकाशित हुई। 'सूर्योदय' पत्र ने उसकी समालोचना करके कहा, "बंगाल के गौरव, सुप्रसिद्ध नवीन लेखक श्रीयुत दिवाकर बंद्योपाध्याय लिखित प्रेम का एक सच्चा चित्र।"

इस निर्लज्ज चापलूसी को एक अकाट्य सत्य मानकर ग्रहण करने में दिवाकर ने तनिक भी संकोच नहीं किया। प्रथम यौवनावस्था। इसके बीच ही उसने दो-चार भक्त इष्ट-मित्रों की सहायता से सुनहली टोपी माथे पर पहन ली थी, 'सूर्योदय' के संपादक ने उसके ही चारों तरफ पोथियों की एक माला लपेट दी, अपरूप साहित्य का यह किरीट माथे पर धारण कर दिवाकर एक दिन सवेरे गर्वोन्नत मुख से रसोईघर में आ पहुँचा। उसके हाथ में वही 'सूर्योदय' पत्र था।

किरणमयी रसोई पका रही थी, बोली, "तुम्हारे हाथ में यह कैसी पत्रिका है बबुआ?"

"ओह! यह एक मासिक पत्र 'सूर्योदय' है, नया निकला है, लेकिन कुछ भी कहो भाभी,

खूब लिखता है!''

दोपहर को काम-काज से छुट्टी पाकर किरणमयी 'सूर्योदय' खोलकर बैठ गई।

इधर-उधर देखते-देखते ठीक जगह पर ही उसकी दृष्टि पड़ गई। दिवाकर पासवाले कमरे में ही था। उठकर उसके पास जाकर उसने कहा, ''कहो बबुआ, 'जहर की छुरी' कहाँ है? समलोचना तो तुमने दिखा दी, अब असल चीज निकालो।''

दिवाकर लज्जित होकर विनयपूर्वक कहने लगा, ''ओह! वह कहानी? वह तो कुछ भी नहीं है, वह तो हड़बड़ी में लिखी हुई है।''

किरणमयी हँसकर बोली, ''भले ही हो, तुम मुझे दो।'' यह कहकर उसने आप ही ढूँढ़कर 'चंद्रोदय' का वह अंक निकाल लिया, वहीं उसे खोलकर वह कुरसी पर बैठ गई। वह मौन होकर पढ़ने लगी, लेकिन दिवाकर आशा और आकांक्षा की तीव्र उत्तेजना छिपाकर झूठमूठ एक पुस्तक के पन्ने उलटने लगा। उसकी 'जहर की छुरी' नामक कहानी की नायिका असाधारण सुंदरी है और षोडशी है। धनवान जमींदार की लड़की होकर भी उसने दैवयोग से एक दरिद्र रूपवान युवक को प्रेम किया है। जमींदार को यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने विजयकुमार को देश निकाला दे दिया, लेकिन नगेंद्रनंदिनी को कुछ भी ज्ञात नहीं था, बसंत संध्या को मालती कुंज में बैठकर वह माला गूँथ रही थी। उधर रूप से मुग्ध पूर्णचंद्र पेड़ की ओट में झाँक रहा था, लेकिन आकाश में आने का साहस नहीं करता। प्रभात की कल्पना करके बीच-बीच में कोयल कूकती है, ऊपर लुब्ध भौंरा गुनगुनाता हुआ निद्रालसा मालती की नींद तोड़ रहा है। उस समय धीरे-धीरे वह कौन आ रहा है? हाँ, वही तो है! लेकिन यह कैसा वेश है? गेरुआ कपड़ा, अंग पर विभूति, गले में रुद्राक्ष की माला। नगेंद्रनंदिनी के हाथ से मालती की माला गिर पड़ी। विजयेंद्र ने निकट आकर गीले कंठ से कहा, ''विदाई दो, जा रहा हूँ।''

नगेंद्रनंदिनी के सिर पर, मानो सहसा वज्रपात हो गया। हृदय में लाखों बिच्छुओं ने डँस लिया। जान पड़ा, मानो हृदय के सैकड़ों टुकड़े हो रहे हैं। उसकी आँखों में चंद्रमा का प्रकाश काला पड़ गया, कानों में कोयल की कूक उल्लू की चिल्लाहट में बदल गई। युवती फिर खड़ी न रह सकी, मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

यहाँ तक पढ़कर किरणमयी ने सहसा मुँह उठाकर कहा, ''छोटे बबुआ, तुम अवश्य ही किसी को प्यार करते हो? ठीक है?''

दिवाकर ने आश्चर्य में पड़कर कहा, ''मैं?''

''जी हाँ, तुम। अवश्य ही छिपे तौर से तुम किसी को प्यार करते हो।''

इस आकस्मिक अपवाद की प्रबल लज्जा से दिवाकर हतबुद्धि हो गया। क्षण भर बाद कुंठित और व्यग्र होकर बोला, ''मैं? छिह! राम कहो... कभी नहीं...किसी तरह भी नहीं...।''

''नहीं? बबुआ को किसी दिन बिच्छू ने डंक नहीं मारा?''

“नहीं, किसी दिन नहीं।”
किरणमयी ने कहा, “आश्चर्य है! क्या किसी को डंक मारते भी नहीं देखा है?”
“नहीं, यह भी मैंने नहीं देखा है।”
किरणमयी ने और भी आश्चर्य में पड़कर कहा, “तुम्हारा हृदय भी किसी दिन सैकड़ों टुकड़ों में फट गया हो, यह भी तो नहीं मालूम होता, किसी दिन तुमने किसी को प्यार नहीं किया, छोटा सा बिच्छू भी तुमने नहीं देखा, वज्राघात की व्यथा भी कैसी होती है, यह भी नहीं जानते, तो फिर विरह ऐसा भयानक होता है, इसका पता तुमको कैसे लगा?”
कुछ क्षण चुप रहकर उसने धीरे-धीरे कहा, “तो इतने मनुष्य जो लिख रहे हैं, उन सभी ने क्या प्यार किया है या स्वयं विरह की ज्वाला सह चुके हैं? कब ज्वाला सहने का अवसर पाऊँगा, इस आशा में बैठे रहने से तो देखता हूँ साहित्यचर्चा भी छोड़ देनी पड़ेगी।”
उसकी उत्तेजना देखकर किरणमयी ने हँसकर कहा, “इसी को साहित्य-चर्चा कहते हैं? इसको कहते हैं अनधिकार चर्चा।” कहते-कहते उसके मुँह की हँसी अकस्मात् अत्यंत कठोर हो उठी और उसकी अपनी ही बातें मानो हृदय के अंतस्तल को हिलाकर रक्त से भीगकर भारी और लाल हो आईं।
दिवाकर ने कोई बात नहीं कही। किरणमयी थोड़ी देर तक चुप रही। उसने भारी गले को साफ करके कहा, “यह क्रोध-अभिमान की बात नहीं है बबुआ, यह भाग्य की बात है, यह बहुत बड़े अभाग्य की बात है। इस संसार में जिन दो-चार अभागों को इस निगूढ़ रहस्य का सच्चा परिचय देने का सच्चा अधिकार प्राप्त होता है, इस गुरुभार को उन्हीं के हाथों में छोड़कर दूसरे कामों में मन लगाओ, उससे काम भी होगा, नुकसान भी कम होगा। व्यर्थ छत के कोने में मुँह भारी बनाकर बैठे-बैठे कल्पना करने से कोई लाभ नहीं होगा, यह बात मैं तुमको निश्चित रूप से कहे देती हूँ।”
दिवाकर ने नरम होकर कहा, “कल्पना क्या कोई वस्तु ही नहीं है?”
किरणमयी ने कहा, “कुछ भी नहीं है, यह बात मैं नहीं कहती, लेकिन कोरी कल्पना, जो वस्तु गढ़ सकती है, वह प्राण नहीं डाल सकती। ढो सकती है, मार्ग नहीं दिखा सकती। उसी राह दिखाने के प्रकाश का पता जब तक तुम नहीं पाते, तब तक तुम्हारा बिच्छू केवल तुम्हीं को डंक मारेगा और किसी के शरीर पर डंक गड़ा न सकेगा।”
उसकी अंतिम बात पर दिवाकर मन ही मन जल उठा और मुँह उदास बनाकर बैठा है, देखकर किरणमयी ने फिर मुसकराकर कहा, “लेकिन मैं सोचती हूँ बबुआ कि तुम्हारे इस ‘सूर्योदय’ महाशय के आँसू न रुकने का कारण क्या है? अंत में नगेंद्रनंदिनी विष खाकर मर तो नहीं गई?”
कुपित दिवाकर ने कोई उत्तर नहीं दिया।
किरणमयी कहानी के अंतिम भाग पर दृष्टि डालकर बोल उठी, “यही तो है!” यह कहकर ऊँचे स्वर से वह पढ़ने लगी, लेकिन श्मशान में वह किसका शव लोग लिए जा रहे थे? किसके पीछे वे असंख्य मनुष्य छाती पीटते-पीटते चले जा रहे हैं? किसके शोक में नृपति तुल्य परम प्रतापी जमींदार पागल की भाँति हो गए हैं? ओह! यह क्या ही हृदयविदारक दृश्य है! विजयेंद्र धीरे-धीरे उसी ओर अग्रसर होने लगा, इसके आगे किरणमयी और न पढ़ सकी। हँसकर पत्रिका दिवाकर के ऊपर फेंककर उसने कहा, “बहुत

देर हो गई, जाऊँ।" यह कहकर हँसती हुई वह चली गई।

इकतीस

पाँच-छह दिन बाद एक दिन मध्याह्न में दिवाकर ने किरणमयी के कमरे में जाकर आश्चर्य के साथ देखा, वह अत्यंत ध्यान लगाकर एकाग्र चित्त से भूमि पर बैठी हुई हस्तलिखित मूल संस्कृत रामायण पढ़ रही है। किरणमयी साधारण गृहस्थ घर की स्त्रियों की अपेक्षा अधिक पढ़ी-लिखी है और बँगला, अंग्रेजी दोनों भाषाएँ अच्छी तरह जानती है, यह बात दिवाकर जानता था, लेकिन इस कारण ही हाथ की लिखी संस्कृत पोथी पढ़ने की योग्यता भी अच्छी तरह है, ऐसी बात दिवाकर ने स्वप्न में भी नहीं सोची थी। पल भर में आश्चर्य और श्रद्धा से झुककर वह वहीं बैठ गया।

किरणमयी ने हाथ के पन्ने को ठीक स्थान पर रोककर मुँह ऊपर उठाकर कहा, "अचानक ऐसे असमय में कैसे आए?"

दिवाकर ने जरा कुंठित होकर कहा, "तुम पढ़ रही हो, यह मैंने नहीं सोचा था भाभी। मैं समझता था संभवतः...।"

"सो रही हूँ। इसीलिए एकांत सोचकर मुझे जगाने आए हो?"

दिवाकर ने लज्जा से लाल होकर कहा, "जब-तब इस तरह परिहास करती रहोगी तो मैं घर छोड़कर भाग जाऊँगा, कहे देता हूँ भाभी।"

किरणमयी ने हँसकर कहा, "भाग जाऊँगा, कहने से ही क्या भागा जा सकता है? भूलभुलैया का मार्ग मालूम रहना चाहिए। अच्छा, बैठो, बैठो। क्रोध करके उठना न पड़ेगा। मैं सोचती थी बबुआ, द्वार बंद करके बैठे-बैठे 'जहर की छुरी' के बाद तलवार-कटार की तरह कोई बड़ी चीज तैयार कर रहे हो। इसीलिए मैंने भी बुलाया नहीं। नहीं तो, मुझे ही क्या दोपहर को रामायण पढ़ना अच्छा लगता है?"

दिवाकर ने पूछा, "रामायण में तुम विश्वास करती हो?"

किरणमयी ने कहा, "करती हूँ।"

दिवाकर ने अत्यंत आश्चर्य में पड़कर कहा, "किंतु बहुत से लोग नहीं करते। वास्तव में इसमें इतने झूठ, इतने असंभव, इतने प्रक्षिप्त अंश हैं कि उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता।"

किरणमयी ने जरा हँसकर पोथी को हाथ में ठेलकर कहा, "यही तो मूल ग्रंथ है। इसमें से प्रक्षिप्त विषयों को निकाल दो तो देखूँ?"

दिवाकर ने सहमकर कहा, "मैं किस तरह निकालूँगा भाभी, मैं तो संस्कृत नहीं जानता।"

किरणमयी ने कहा, "जानते नहीं हो, इसीलिए इस प्रकार झट से ऐसी बात तुम्हारे मुँह से निकल गई। विद्या न रहने से ही अविद्या आ घुटती है। उसके ही फलस्वरूप मनुष्य जिस बात को नहीं जानता, वही दूसरों को बता देना चाहता है, जो समझता नहीं, वही अधिक समझाना चाहता है। बुरी आदत को छोड़ दो।"

दिवाकर अत्यंत लज्जित हो गया। यह बात कहने का उसका कोई विशेष उद्देश्य नहीं था।

उसने सोचा था धर्मग्रंथ में अश्रद्धा या अविश्वास दिखाने से भाभी प्रसन्न होंगी।

किरणमयी ने जरा हँसकर कहा, "लिखना कैसा हो रहा है?"

दिवाकर ने कहा, "मैं तो अब लिखता नहीं हूँ।"

किरणमयी आश्चर्य से बोली, "लिखते नहीं हो! कहते क्या हो बबुआ? लेकिन तुमने जो कुछ लिखा था, वह बुरा नहीं था। छोड़ क्यों दिया, बताओ तो?"

दिवाकर बोला, "क्यों लज्जित कर रही हो भाभी, मैंने उसके बाद बहुत विचार करके देखा है, तुम्हारी बात सत्य है। मेरा यह लेख दूसरे की चोरी भले ही न हो, दूसरे का अनुकरण है तो अवश्य! वास्तव में मैं प्रेम का क्या जानता हूँ, कि इतनी बातें लिखने लगा। इसीलिए अब मैं लिखता नहीं, केवल सोचता हूँ।"

"सोचते हो, दिन-रात क्या सोचते हो, बताओ तो? मुझे ही तो नहीं?"

दिवाकर ने इस बात पर ध्यान न देकर कहा, "फिर भी, मुझे लगता है कि उपन्यास लिखने की झक को भी मैं किसी दिन छोड़ न सकूँगा। आज इसीलिए यही सोचकर मैं यहाँ आया हूँ कि तुमसे कुछ सीखूँगा।"

किरणमयी ने कहा, "मुझसे तुम क्या सीखोगे बबुआ, प्रेम?"

दिवाकर ने प्रबल लज्जा को किसी प्रकार रोककर गंभीर होकर कहा, "सब कुछ सीखूँगा। आवश्यकता पड़ेगी तो वह भी सीखूँगा।"

किरणमयी ने भी मुँह को कृत्रिम गंभीरता से परिपूर्ण करके कहा, "लेकिन इसमें एक बखेड़ा है बबुआ! मुझे पकड़कर प्रेम सीखने लगोगे तो लोग क्या कहेंगे!"

दिवाकर झट से उठ खड़ा हुआ। बोला, "जाओ, मैं जा रहा हूँ, तुम तो केवल मजाक करती हो।"

किरणमयी ने लपककर उसका हाथ पकड़कर मुसकराकर कहा, "तो स्पष्ट कहो न भाई, कि परिहास नहीं चाहते, सच्ची बात चाहते हो।"

दिवाकर अपना हाथ तेजी से खींचकर शीघ्रतापूर्वक बाहर चला गया।

किरणमयी ने मन ही मन हँसकर अपनी पोथी बंद कर दी। उसके बाद उचित स्थान पर उसे रखकर वह धीरे-धीरे दिवाकर के कमरे में चली गई।

दिवाकर मुँह उदास बनाए खिड़की के बाहर देखता हुआ चुपचाप बैठा था, किरणमयी ने कहा, "क्रोध करके क्यों चले आए, बताओ तो?"

दिवाकर ने बिना मुँह घुमाए ही कहा, "यह सब हँसी-मजाक मुझे अच्छी नहीं लगती।"

किरणमयी क्षण भर चुप रहकर मीठे स्वर से बोली, "तुम तो मेरे देवर लगते हो बबुआ! तुम्हारे साथ तो हँसी-मजाक चलनी ही चाहिए। यह सब न करने से मैं कैसे जिंदी रह सकूँगी, बताओ तो!"

इस स्नेह-भरे कोमल स्वर से दिवाकर का क्रोध शांत हो गया।

आज सहसा पहले-पहल उसे ज्ञात हो गया कि यह तो सत्य ही है। मुझे लज्जित होने की तो कोई बात ही नहीं है। हम लोगों का संबंध ही तो हास-परिहास का है।

यह बात झूठी भी नहीं कि बंगाली समाज में देवर-भौजाई में एक मधुर हास-परिहास का संबंध प्रचलित है और ठीक कहाँ पर इसकी सीमा-रेखा है, यह भी बहुतों की दृष्टि में नहीं पड़ती, पड़ने की आवश्यकता भी वे नहीं समझते, लेकिन इस निर्दोष हास-परिहास की

अधिकता से कभी-कभी कितने विष-बीज झर पड़ते हैं और अदृश्य में, वे ही बीज अंकुरित होकर विषवृक्ष में परिणत हो जाते हैं और किसी समय समूचे पारिवारिक बंधन को कलुषित कर देते हैं, इसका हिसाब-किताब लोग रखते हैं?''

दिवाकर ने मुँह फेरकर अभिमान के स्वर से कहा, ''मैं सीखने गया और तुमने परिहास करके मुझे भगा दिया।''

किरणमयी ने बिछौने के एक छोर पर बैठकर कहा, ''क्या सीखने गए थे?''

दिवाकर ने कहा, ''वही तो मैंने कहा था कि कहानी लिखने का झक मैं किसी प्रकार भी छोड़ न सकूँगा। इसीलिए मैंने सोचा है कि तुम सिखा दोगी, बोलती जाओगी, मैं लिखता जाऊँगा।''

किरणमयी ने हँसकर कहा, ''वह तो फिर मेरा ही लिखना होगा बबुआ।''

''होगा तो होने दो, लेकिन मेरा तो सीखना होगा। केवल जानने से ही तो नहीं होता, व्यक्त करने की शक्ति भी तो होनी चाहिए।''

''वह तो चाहिए ही। लेकिन व्यक्त करोगे क्या, सुनूँ तो?''

''वही तो तुम बता दोगी भाभी!''

किरणमयी चुप हो रही। केवल हँसते हुए मुख से ताकती रही।

दिवाकर भी कुछ क्षण स्थिर रहकर बोला, ''यहाँ जो इतनी देर तक तुम रामायण पढ़ रही थीं भाभी, मैं उसी की बात कहता हूँ। सीता के जिस रूप की अग्नि में रावण सपरिवार भस्म हो गया, नारी का वह रूप क्या है? और अकेला रावण ही तो नहीं, ऐसे अनेक रावणों का इतिहास मौजूद है। कवि लोग कहते हैं रूप की प्यास। तुमने भी उसी तरह की उपमा दी है। तुम यह मत सोचना भाभी, कि मैं तुमसे तर्क कर रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे पैरों के पास बैठकर मैं बहुत दिनों तक सीख सकता हूँ। मैं तो केवल यही जानना चाहता हूँ कि इसे प्यास कहते हैं क्यों? पानी देखने से ही तो मनुष्य को प्यास नहीं लग जाती। तो फिर रूप देखने से ही उसको प्यास क्यों लगेगी?''

किरणमयी ने मुँह ऊपर उठाकर एकाएक हँसकर कहा, ''प्यास लगती है क्या बबुआ?''

इस हँसी और प्रश्न का यथार्थ अर्थ समझकर दिवाकर पलभर के लिए हतबुद्धि सा हो गया, लेकिन दूसरे ही क्षण अपने को सँभालकर बोल उठा, ''अवश्य लगती है।''

उसका संकुचित और दबा हुआ साहस इतनी देर में किस हद तक जाग गया था, इसे वह स्वयं भी नहीं जानता था। उसने कहा, ''न लगने से संसार में बड़े-बड़े कवि लोग शकुंतला भी नहीं लिखते, रोमियो जूलियट भी नहीं लिखते। इसीलिए मैं जानना चाहता हूँ। भाभी, नारी का यह रूप वास्तव में क्या वस्तु है और प्रेम भी उसके साथ इस प्रकार घनिष्ठ रूप से लिपटा क्यों रहता है?''

किरणमयी ने गंभीर होकर कहा, ''तब तो तुम्हारी अवस्था अभी उतनी बिगड़ी नहीं है।''

दिवाकर व्यथित होकर बोला, ''सभी बातों को यदि तुम हँसकर उड़ा दोगी भाभी, तो रहने दो। मैं अब कुछ न पूछूँगा।''

उसकी ओर देखकर किरणमयी ने विषाद का ढोंग रचकर कहा, ''मैं मूर्ख स्त्री हूँ बबुआ, मैं इन सब बड़ी-बड़ी बातों का हाल क्या जानूँ, जो तुम क्रोध कर रहे हो?''

दिवाकर को उस दिन की बात याद आ गई, जिस दिन वेद के प्रति भी अवहेलना भरी उक्ति सुनकर उसने कानों में उँगली डाल ली थी। उसने कहा, "मैं जानता हूँ भाभी, तुम भारी पंडित हो। तुम चाहो तो सभी विषय मुझे समझा सकती हो।"

किरणमयी ने कहा, "समझा सकती हूँ? अच्छा यदि मैं कहूँ कि स्त्री का रूप एक भ्रम मात्र है, वास्तव में यह कुछ भी नहीं है, मृग-मरीचिका की भाँति मिथ्या है। क्या तुम विश्वास करोगे?"

दिवाकर ने कहा, "नहीं। इसका कारण यह है कि मरीचिका भी मिथ्या नहीं है, चाहे वह कुछ भी हो, दर्पण में मनुष्य का प्रतिबिंब पड़ता है। वह प्रतिबिंब है, आदमी नहीं है। साँप को रस्सी समझकर पकड़ने जाना भूल है, मरीचिका को भी पानी समझकर पकड़ने जाना भूल है, लेकिन रूप के पीछे तो मनुष्य केवल रूप की ही तृष्णा से दौड़ जाता है भाभी।"

किरणमयी ने कहा, "बबुआ, अभी तुमने दर्पण में प्रतिबिंब देखने की उपमा दी है। जिस दिन तुम समझ जाओगे कि रूप भी मनुष्य का प्रतिबिंब ही है, मनुष्य नहीं है, उसी दिन प्रेम का पता पाओगे, लेकिन छोड़ो इस बात को, मैं पूछती हूँ कि रूप के ही पीछे मनुष्य क्यों दौड़ता हुआ जाता है?"

"यह मैं नहीं जानता। भ्रमर जैसी स्त्री को छोड़कर भी गोविंदलाल रोहिणी के पीछे दौड़ गया था। यह बात मुझे बहुत ही अद्भुत ज्ञात होती है।"

"लेकिन उसका फल क्या हुआ?"

"फल जो कुछ भी हो भाभी, इस पर विचार करने का भार मनुष्य के हाथ में नहीं है। रोहिणी में रूप था, गुण नहीं था, किंतु रूप के साथ गुण रहने से गोविंदलाल की क्या दशा होती, कहा नहीं जा सकता।"

किरणमयी मौन ही रही। बी.ए. फेल हुए इस लड़के पर मन ही मन उसकी श्रद्धा नहीं थी। केवल फेल हो जाने के ही कारण नहीं, पास हो जाने पर भी, वह सोचती कि ये लोग केवल पाठों को कंठस्थ करके केवल पास भर कर सकते हैं और कुछ नहीं कर सकते, किंतु आवश्यकता पड़ने पर इनका शिक्षित मन तर्क भी कर सकता है, यह धारणा ही उसकी नहीं थी। उसने कहा, "रूप प्रतिबिंब नहीं है, इस बात को इतने असंदिग्ध रूप से स्थिर मत रखो। जो भी हो, मैं तुमसे पूछती हूँ बबुआ, ये सब बातें तुमने स्वयं ही सोची हैं या किसी की सोची हुई बात सुनकर कह रहे हो?"

दिवाकर ने मुसकरा कर कहा, "नहीं भाभी, मेरी अपनी ही बातें हैं। बचपन से ही भगवान् ने मुझे सोचने की सुविधा दी थी।"

किरणमयी ने क्षणभर मौन रहकर कहा, "फिर इतनी सुविधा रहने पर भी रूप का तत्त्व ढूँढ़कर तुम न पा सके, लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि सतीश बबुआ ने भी मुझसे ठीक यही बात एक दिन पूछी थी और भी एक व्यक्ति ने पूछी थी और आज तुम भी पूछ रहे हो। मैं सोचती हूँ मेरा रूप देखकर ही क्या तुम लोगों के मन में यह प्रश्न नहीं आता?"

दिवाकर एकाएक चौंक पड़ा। लज्जा से उसका मस्तक फट जाने लगा। उसने अपना मुँह झुकाकर कहा, "मुझे क्षमा करो भाभी, मैं जानता नहीं था।"

किरणमयी ने हँसते हुए कहा, "एकाध बार नहीं भाई, तुमको तो मैं सौ बार क्षमा करती हूँ।" यह कहकर और पल भर मौन रहकर उसने मानो मन में आनेवाली एक दुविधा को

जोर से धकेलकर निकाल दिया और अपनी अत्यंत सुंदर ग्रीवा जरा ऊँची कर एक प्रकार के कोमल करुण स्वर से बोली, "बबुआ, आज तुमने जितनी बातें मुझसे पूछी हैं, उनका यदि स्पष्ट उत्तर देने लगूँ, तो मेरी बातें दंभ की तरह होंगी। उसे तुमको भूल जाना पड़ेगा, नहीं तो, अपनी भूल से मुझे गलत समझकर सब ही बातों को तुम गड़बड़ कर दोगे। मेरी बात तुम्हारी समझ में आती है न?"

दिवाकर ने चुपचाप सिर हिला दिया।

किरणमयी क्षणभर स्थिर रहकर कहने लगी, "मेरे शरीर का यह रूप केवल पुरुषों की ही दृष्टि में नहीं, मेरी अपनी भी दृष्टि में एक अद्भुत वस्तु है। इसी से इसकी बात मैंने बहुत सोची है। जो कुछ मैंने सोचा है, संभवतः वही ठीक भी है। हो सकता है; नहीं भी हो, लेकिन वह जो कुछ भी हो, अपनी इस भावना को जब एक देवर से कहने में मैंने संकोच नहीं किया, तब तुमसे कहने में भी मैं न हिचकूँगी। अपने आपको देखकर मुझे कैसा जान पड़ता है, जानते हो? ज्ञात होता है संतान धारण करने के लिए जो सब लक्षण सबसे अधिक उपयोगी हैं, वह नारी का रूप है। सारे विश्व के साहित्य में, काव्य में, यही वर्णन उसके रूप का वास्तविक वर्णन है।"

दिवाकर मौन होकर निहारता रहा। किरणमयी उसके स्तब्ध मुख पर नवीन यौवन की सद्यःजाग्रत् क्षुधा की मूर्ति अकस्मात् अनुभव करके संकोच से एकाएक रुक गई, लेकिन पल भर में, दूसरे ही क्षण उस भाव को बलपूर्वक दबाकर बोली, "वास्तव में बबुआ, इसी स्थान पर मानो रूप का एक छोर दिखाई पड़ता है। इसीलिए नारी का बाल्य रूप मनुष्य को आकर्षित करने पर भी उसे उन्मत्त नहीं करता। फिर जबकि वह संतान धारण करने की उम्र पार कर जाती है, तब भी ठीक यही दशा हो जाती है। सोचकर देखो बबुआ, केवल नारी की ही नहीं, पुरुष की भी यही दशा है। तभी एक नारी का रूप रहता है, जब तक कि वह संतानोत्पत्ति कर सकती है। यह सृष्टि करने का सामर्थ्य ही उनका रूप है, यौवन है, सृष्टि करने की इच्छा ही उसका प्रेम है।"

दिवाकर ने धीरे से कहा, "लेकिन...।"

किरणमयी बीच ही में रोककर बोल उठी, "नहीं, लेकिन के लिए इसमें स्थान नहीं है। विश्व चराचर में जिस ओर इच्छा हो, आँखें उठाकर देखो, वही एक बात मिलेगी बबुआ, सृष्टितत्त्व की मूल बात तुम्हारे सृष्टिकर्ता के ही लिए रहे, लेकिन इसके काम की ओर एक बार ध्यान से देखो। तुम देखोगे इसका प्रत्येक अणु-परमाणु निरंतर अपने को नए रूपों में सृजन करना चाहता है। किस प्रकार वह अपने को विकसित करेगा, कहाँ जाने से, किसके साथ मिलने-जुलने से, क्या करने से यह और भी सबल तथा उन्नत होगा, यही उसका अविराम उद्यम है। दृश्य हो, अदृश्य हो, अंदर हो, बाहर हो, इसी से प्रकृति का नित्य परिवर्तन होता रहता है और इसीलिए नारी में पुरुष जब ऐसा कुछ देख पाता है, ज्ञान से हो या अज्ञान से हो, जहाँ वह अपने को अधिक सुंदर और सार्थक बना सकेगा, तो उस लोभ को वह किसी प्रकार भी रोक नहीं पाता।"

दिवाकर ने धीरे से कहा, "तब तो इस दशा में चारों ओर ही मारकाट मच जाती?"

किरणमयी ने कहा, "कभी-कभी मच जाती है अवश्य, लेकिन मनुष्य में लोभ दमन करने की शक्ति, स्वार्थत्याग करने की शक्ति, समझ तथा शासन की शक्ति, कितनी ऐसी शक्तियाँ

हैं, जिनके कारण चारों ओर एक ही साथ आग नहीं लग सकती। फिर भी इस सामाजिक मनुष्य का ही एक दिन ऐसा था, जबकि प्रवृत्ति के अतिरिक्त और किसी का शासन नहीं मानता था। रूप का आकर्षण ही उसकी दुर्दमनीय प्रवृत्ति का संचालक था। वही था उसका प्रेम बबुआ, इसको ही संस्कृति तथा सभ्यता के वस्त्र पहनाकर सजावट सिंगार से तैयार कर देने से उपन्यास का निर्दोष प्रेम हो जाता है।"

दिवाकर ने चकित होकर कहा, "कहाँ तो पाशविक प्रवृत्ति की ताड़ना और कहाँ स्वर्गीय प्रेम का आकर्षण! जो मनुष्य पशु की प्रवृत्ति से भरा हुआ है, वह शुद्ध, निर्मल, पवित्र प्रेम की मर्यादा क्या समझेगा? इस वस्तु को वह पाएगा कहाँ? तुम किसके साथ किसकी तुलना करने चली हो भाभी?"

"मैं तुलना नहीं करती भाई। केवल यही बता रही हूँ कि दोनों हैं एक ही वस्तु। इंजिन की जो वस्तु उसको आगे की ओर ढकेलकर ले जाती है, वही वस्तु उसे पीछे को भी ठेल सकती है, दूसरी नहीं। जो प्रेम कर सकता है, वही केवल सुंदर-असुंदर सभी प्रेमों में अपने को डुबा सकता है, दूसरा नहीं। उसकी जिस वस्तु ने भ्रमर को प्रेम किया था, ठीक वही वस्तु उसको रोहिणी की ओर भी खींच ले गई थी, लेकिन हरलाल तो वह कर नहीं सका। उसने सांसारिक भले-बुरे, कर्तव्य-अकर्तव्य, सुविधा-असुविधा पर सोच-विचार करके आत्मसंयम किया था, लेकिन गोविंदलाल यह नहीं कर सका। फिर भी हरलाल गोविंदलाल से अच्छा मनुष्य नहीं था, बहुत बुरा था। तो भी उसने जिसे घृणा से त्याग दिया था, दूसरे ने उसी को सिर पर चढ़ा लिया।"

"यह सिर पर चढ़ा लेना तरह-तरह के कारणों से व्यर्थ हो सकता है, लेकिन समस्त दुःख-ग्लानि-लज्जा के अतिरिक्त, एक बृहत्तर सार्थकता का संकेत एक व्यक्ति को खींचकर एक-दूसरे के पास ले जाता हो, ऐसी बात भी तो कोई बलपूर्वक कह नहीं सकता भाई!"

दिवाकर क्षोभ के साथ बोला, "तुम्हारी सभी बातों को यद्यपि मैं समझ नहीं सका, लेकिन पवित्र प्रेम स्वर्गीय नहीं है, ऐसी अद्‌भुत बात को मैं किसी प्रकार भी मान नहीं सकता, भाभी।"

किरणमयी ने कहा, "तुम्हारे मानने पर तो कुछ भी निर्भर करता बबुआ! हम लोगों का यह शरीर भी तो अत्यंत नश्वर है, बिल्कुल ही पार्थिव वस्तु है, लेकिन इसमें तो मैं कोई दुःख का कारण नहीं देखती। शिशु जन्म लेने के बाद जब तक अपने जड़ शरीर में सृष्टि-शक्ति का संचय नहीं करता, तब तक प्रेम का सिंहद्वार सबके लिए बंद ही रहता है। प्रवृत्ति की ही ताड़ना से वह उस सिंहद्वार को पार कर जाता है। उसके पहले वह अपने माता-पिता को, भाई-बहन को प्यार करता है, इष्ट-मित्रों को भी प्यार करता है, किंतु जब तक उसका पंचभूत का शरीर बड़ा नहीं हो जाता, तब तक तुम्हारे पवित्र प्रेम की कोई भी खबर का अधिकार उसको नहीं मिलता। तब तक स्वर्गीय आकर्षण उसे तिल भर भी नहीं हिला पाता। पृथ्वी का आकर्षण तो सदा से ही उपस्थित है, लेकिन उस आकर्षण से वृक्ष का पका फल ही आत्मसमर्पण करता है, कच्चा फल नहीं कर सकता। उसका रेशा-गूदा पृथ्वी के रस से ही पकता है, स्वर्गीय रस से नहीं पकता। सुंदर पुष्प रूप से, गंध से, मधुमक्खियों को खींचकर फल में परिणत हो जाता है। वही फल फिर समय पर भूमि पर गिरकर अंकुर में परिणत हो जाता है—यही है प्रवृत्ति, यही है उसका स्वर्गीय प्रेम। सारे विश्व में यह जो

अविच्छिन्न सृष्टि-नाटक चल रहा है, रूप का खेल चल रहा है, वह स्वर्गीय नहीं है, इसलिए दुःख मानने या लज्जित होने का तो कोई कारण ही मैं नहीं देखती।"

कुछ रुककर किरणमयी बोली, "अंधकार में भूतों के भय से यदि नेत्र बंद करके ही तुम आराम पाते हो, तो मैं तुमको नेत्र खोलकर देखने को नहीं कहती, लेकिन मैं प्रवृत्ति की ताड़ना नहीं चाहती, स्वर्गीय प्रेम का ही उपभोग करूँगी, प्रेम ऐसी साधारण वस्तु नहीं है।"

दिवाकर ने पूछा, "तो फिर संसार में पवित्र प्रेम, घृणित प्रेम—ये दो क्यों हैं?"

किरणमयी हँस पड़ी। बोली, "तुम्हारा यह तर्क तो ठीक सतीश बबुआ के तर्क की तरह हुआ। संसार में इन दोनों के रहने बात है, इसीलिए है। जिसको तुम घृणित कहते हो, वास्तव में वह तो सुबुद्धि का अभाव है अर्थात् जिसको प्रेम करना उचित नहीं था, उसे ही प्रेम करना। अपनी ही असावधानी से पेड़ से गिरकर हाथ-पैर तोड़ लेने का अपराध पृथ्वी के प्रत्याकर्षण पर मढ़ देना और प्रेम को कुत्सित, घृणित कहना एक ही बात है। बबुआ, इसी प्रकार संसार में एक का अपराध दूसरे के सिर पर रख दिया जाता है।" यह कहकर एकाएक किरणमयी मौन हो रही और अपने हृदय में क्या है, इसे मानो भलीभाँति देखने लगी। दूसरे ही क्षण बोली, "जीवन का प्रत्येक अणु-परमाणु, अपनी उत्कृष्ट परिणति के बीच विचार करने का लोभ किसी प्रकार भी संवरण नहीं कर सकता। जिस देह में उसका जन्म होता है, उस देह में जब उसकी परिणति की निर्दिष्ट सीमा समाप्त हो जाती है, तब वही उसकी यौवनावस्था कही जाती है। तभी वह दूसरी देह के संयोग से सार्थक होने के लिए शिराओं और उपशिराओं में विपल्व का जो तांडव नृत्य आरंभ करती है, उसे तो पंडित लोगों ने नीति-शास्त्र में पाशविक कहकर घृणा की है। इसका तात्पर्य समझ न सकने से ही हतबुद्धि विज्ञ लोग इसे घृणित कहते हैं, वीभत्स कहकर सांत्वना पाते हैं, लेकिन आज मैं तुमको निश्चित रूप से कहती हूँ बबुआ, कि इतना बड़ा आकर्षण किसी प्रकार भी ऐसा घृणित, ऐसा हीन नहीं हो सकता। यह सत्य है। सूर्य के प्रकाश की भाँति सत्य है। ब्रह्मांड के आकर्षण की भाँति सत्य है। कोई भी प्रेम किसी दिन घृणा की वस्तु नहीं हो सकता।"

यह बात सुनकर दिवाकर सचमुच ही विह्वल हो उठा। उसकी छाती में एक प्रकार की धड़कन होने लगी। ऐसा उत्तप्त तीव्र कंठ-स्वर तो उसने किसी दिन सुना ही नहीं था। नेत्रों की ऐसी उत्कट दृष्टि भी तो उसने कभी नहीं देखी थी।

डरते-डरते उसने पुकारा, "भाभी!"

"क्यों बबुआ?"

"मेरे जैसे नासमझ को उपदेश देने में संभवतः तुम्हारा धीरज नहीं रहता।"

"यह क्या बबुआ, मुझे तो बहुत ही अच्छा लग रहा है।"

दिवाकर ने जरा हँसने की चेष्टा करके कहा, "अच्छा लगने से तुम्हारे मुँह से ये सब उलटी-सीधी बातें क्यों निकलतीं? अभी-अभी तुमने स्वयं ही कहा कि जिसे प्रेम करना उचित नहीं है, उसे प्रेम करने को ही घृणित प्रेम कहते हैं, फिर कह रही हो, इसका तात्पर्य समझ न सकने के कारण ही विज्ञ लोग उसे बुरा कहते हैं। तो फिर सत्य कौन है?"

किरणमयी ने कहा, "दोनों ही सत्य हैं।"

"विधवा रोहिणी को प्यार करना क्या गोविंदलाल का अनुचित काम नहीं था?"

“प्रेम करना क्या कोई एक काम है कि उसका न्याय-अन्याय होगा? स्त्री को छोड़ जाना ही उसका बुरा काम था।”

दिवाकर फिर एक बार उत्तेजित हो उठा। बोला, “छोड़कर चला जाना तो अवश्य ही बुरा काम है। हजार बार बुरा काम है! लेकिन अपनी स्त्री को छोड़कर किसी दूसरी स्त्री को मन ही मन प्यार करना भी क्या अन्याय नहीं है?”

उसकी उत्तेजना पर किरणमयी हँसने लगी। बोली, “बबुआ, अपने को इतना शक्तिशाली न समझना चाहिए, अहंकार का कुछ कम रहना ही ठीक है। तुम क्यों सोचते हो कि मनुष्य इच्छा करने से ही जो चाहे, कर सकता है? गोविंदलाल इच्छा करने से ही रोहिणी को प्यार कर सकता था या फिर नहीं भी कर सकता था, क्या तुम्हारी यही धारणा है?”

“नहीं, मेरी यह धारणा नहीं है। इच्छा के साथ प्रयत्न भी करना चाहिए।”

किरणमयी ने कहा, “फिर उसके साथ अक्षमता और क्षमता भी तो रहनी चाहिए! केवल प्रयत्न करने से ही काम नहीं चलता। उस छत के नीचे बैठे-बैठे यदि तुम्हारे सिर पर पेड़ भी उग जाए, तो भी कालिदास की भाँति तुम एक और मेघदूत न लिख सकोगे। मेघ देखकर तुमको आँधी-पानी की आशंका ही होगी। सरदी लग जाने के भय से ही तुम व्याकुल हो उठोगे, विरही का दुःख सोचने का समय न पाओगे। लाख प्रयत्न करने से भी नहीं। यह अक्षमता अस्थि-मज्जा से मिली हुई है। इसको जीता नहीं जा सकता।” यह कहकर वह चुप हो गई।

दिवाकर ने भी उत्तर नहीं दिया। सिर झुकाए मौन होकर बैठा रहा। बहुत देर तक फिर कोई बात न निकली। निस्तब्ध कमरे के कोने से केवल एक जीर्ण-शीर्ण पुरानी घड़ी से टिक्-टिक् शब्द आने लगा।

बहुत देर तक मौन रहकर किरणमयी एकाएक बहुत ही मीठे स्वर से बोली, “तुमसे और दो बातें कहना चाहती हूँ। उस दिन तुम्हारी ‘जहर की छुरी’ लेकर चाहे जो कुछ मैंने कह डाला हो बबुआ, मैंने यह भी देखा था कि तुम्हारे हृदय में एक ऐसी भी वस्तु है, जो वास्तव में ही प्रेमिक है, सचमुच कवि है। इस वस्तु को यदि तुम नष्ट न करना चाहो तो दूसरों को अपराधी बनाने के सुख से अपने को ही वंचित करना होगा। इस बात को कभी मत भूल जाना कि कवि विचारक नहीं है। नीति-शास्त्र के मत के साथ यदि तुम्हारा मत अक्षर-अक्षर न भी मिले, तो उससे तुम लज्जित मत होना। मैं जानती हूँ मनुष्य दूसरे की असमर्थता और अपराध को एक ही तराजू पर तोलकर दंड देता है, लेकिन उनके बटखरे उधार लाने से तुम्हारा काम न चलेगा। तुमने बार-बार गोविंदलाल का उल्लेख किया था। वही गोविंदलाल कितनी बड़ी शक्ति के सामने परास्त होकर सर्वस्व त्याग कर चला गया था। इस संसार में जिन्होंने केवल भले-बुरे का विचार करने का भार लिया है, यह प्रश्न उनका नहीं है, यह प्रश्न तुम्हारा है। हत्या के अपराध में जज साहब जब किसी अभागे को फाँसी की सजा देते हैं, तब वे विचारक हैं, लेकिन अपराधी की हृदय की दुर्बलता अनुभव करके जब वे सजा हल्की कर देते हैं, तब वे कवि बन जाते हैं। बबुआजी, इसी प्रकार संसार के सामंजस्य की रक्षा होती है, इसी प्रकार संसार की भूलें, भ्रांतियाँ और अपराध असहनीय नहीं होने पाते। कवि केवल सृष्टि ही करता है, यह बात नहीं है, कवि सृष्टि की रक्षा भी करता है। जो स्वभावतः सुंदर है, उसको जैसे और भी असुंदरता के साथ प्रकट करना उसका काम है, जो

सुंदर नहीं है, उसको असुंदर के हाथों से बचाना भी उसका काम है।''
दिवाकर ने जरा सोचकर कहा, ''इस दशा में क्या अन्याय को प्रश्रय देना न होगा?''
किरणमयी ने कहा, ''ठीक मैं नहीं जानती। हो भी सकता है। सुनती हूँ, मन के विरुद्ध अत्यंत घृणा उत्पन्न कर देना भी संभवतः कवि का ही काम है, लेकिन अच्छे के प्रति अत्यंत लोभ जगा देना क्या उसकी अपेक्षा बड़ा काम नहीं है? इसके अतिरिक्त जब तक इस संसार से पाप बिल्कुल ही मिटा न दिया जाएगा, जब तक मनुष्य का मन पत्थर न बन जाएगा, तक तक इस पृथ्वी में अन्य, भूल-भ्रांति होती ही रहेगी और उसे क्षमा करके प्रश्रय भी देना ही पड़ेगा। पाप दूर करने की शक्ति भी नहीं है, सहन करने का सामर्थ्य भी न रहेगा, तो उससे ही क्या कोई सुविधा होगी बबुआ?''
दिवाकर ने उत्तर दिया, ''सुविधा ही तो सबकुछ नहीं है। असुविधा में भी तो न्याय धर्म का पालन करना चाहिए। जो शुभ है, जो निर्मल है, जो सूर्य के प्रकाश की भाँति है, उसको सबसे ऊपर स्थान देना उचित है।''
किरणमयी ने कहा, ''नहीं। यदि पाप मनुष्य के रक्त के साथ न लगा रहता तो उस दशा में तुम्हारा कहना ही सच होता। एक न्याय के अतिरिक्त संसार में और कुछ भी न रहने पाता। दया, माया, क्षमा आदि चित्तवृत्तियों के नाम तक भी किसी को ज्ञात न रहते। तुम सूर्य के प्रकाश के श्वेत रंग के साथ न्याय की तुलना कर रहे थे, लेकिन क्या श्वेत रंग सब रंगों के मेल से ही नहीं बनता। यह उज्ज्वल प्रकाश जैसे टेढ़े शीशे के भीतर जाने से रंगीन हो उठता है, उसी प्रकार न्याय भी अन्याय, अधर्म, पाप-ताप के टेढ़े रास्ते से दया, माया, क्षमा से चित्रित होकर दिखाई देते हैं। अन्याय को क्षमा करने से अधर्म को ही प्रश्रय देना होता है, यह बात मैं मानती हूँ, लेकिन अधर्म भी तो क्षमा का रूप नहीं, यह बात भी तो स्वीकार किए बिना नहीं रह सकती। तर्क करके संभवतः मैं अपनी बात तुमको समझा न सकूँगी बबुआजी, लेकिन जो क्षमा प्रेम के भीतर से पैदा होती है, उस प्रेम का मर्म यदि तुम किसी दिन जान जाओगे तो समझ जाओगे कि अन्याय, अधर्म, अक्षमता को क्षमा कर प्रश्रय देना धर्म का ही अनुशासन है, लेकिन दिन तो अब बहुत ही ढल गया बबुआजी, क्या आज तुमको भूख-प्यास नहीं लगी है?''
यह कहकर घबराकर वह कमरे से बाहर निकल गई।
संध्या के बाद दिवाकर खाना खाने के लिए बैठा तो धीरे-धीरे बोला, ''आज सारा दोपहर का समय मेरा बहुत ही आनंद से बीता। कितनी नई बातें मैं सीखीं, यह मैं कह नहीं सकता।''
किरणमयी ने मुसकराते हुए कहा, ''अनेक बातें ही तुमने सीखी हैं? तो मुझे अपना गुरु मानना चाहिए।''
दिवाकर उत्साहित होकर बोल उठा, ''अवश्य, अवश्य, सौ बार मैं तुमको अपना गुरु स्वीकार करता हूँ? सच कहता हूँ भाभी, यदि इस तरह सदा ही तुम्हारे पास रहने पाऊँ तो मुझे और कुछ नहीं चाहिए।''
''क्या कहते हो? इतने में ही इतना आकर्षण?''
''दिवाकर का चित्त उसकी बातों की धारा में मगन हो गया था, सरल मन से बोला, ''तुमको छोड़कर एक दिन भी मैं कहीं रह न सकूँगा भाभी।''

किरणमयी हँस पड़ी और बोली, "चुप-चुप, यदि कोई सुन लेगा तो चकित हो जाएगा।"

दिवाकर होश में आकर अत्यंत लज्जित हो गया।

बत्तीस

बिछौना बिछाते-बिछाते किरणमयी उसी के एक कोने में बैठकर म्लान करुण कंठ से बोली, "यह क्या तुम्हारी नौकरी है या व्यवसाय है बबुआजी कि इसकी सफलता-विफलता मालिक की इच्छा पर या दुकान की खरीद-बिक्री पर निर्भर करेगी? यह तो अपने हृदय का धन है। बाहर के लोगों में इसे विफल करने की शक्ति नहीं है बबुआ।" यह कहकर वह कुछ देर तक आँखें मूँदे बैठी रही।

दिवाकर ने भक्ति भरे चित्त से उस सुंदर मुख की ओर देख धीरे-धीरे कहा, "अच्छा भाभी, तुम क्या आँखें मूँदने पर अपने स्वामी का मुख अंतःकरण में देख पाती हो?"

किरणमयी ने आँखें खोलकर कुछ विस्मित होकर कहा, "स्वामी का? हाँ, देख पाती हूँ, जो मेरे यथार्थ स्वामी हैं, वे निश्चय ही मेरे इसी स्थान में रहते हैं।" कहकर उसने अंगुली से अपना हृदय दिखाया।

दिवाकर ने इस बात को सरल भाव से समझकर नम्रता से कहा, "लेकिन इसे देखने से क्या लाभ है भाभी? तुम देवी-देवता नहीं मानतीं, तुम इहलोक-परलोक को भी नहीं मानतीं, फिर मरने के बाद तुम किस प्रकार उनके पास जाओगी?"

किरणमयी ने कहा, "मरने के बाद मैं किसी के पास नहीं जाना चाहती।" यह सुनकर दिवाकर मानो हतबुद्धि होकर ताकता रहा और उसका प्रश्न सुनकर किरणमयी भी थोड़ी देर के लिए अवाक् हो गई, लेकिन दूसरे ही क्षण वह जोर से हँसकर बोली, "लेकिन जब-जब तुम मेरे संबंध में बातें क्या सुनना चाहते हो?"

"क्या जानूँ भाभी, पर मुझे सुनने की बड़ी इच्छा होती है।"

किरणमयी ने बिछौने की चादर बिछा देने के बहाने मुँह घुमाकर कहा, "मैं एक आदमी के पास जाना चाहती हूँ, लेकिन वह मरण के उस पार नहीं है, इसी पार है।"

दिवाकर ने कहा, "लेकिन वे तो मरण के उस पार चले गए हैं। इस पार किस प्रकार फिर तुम उनको पाओगी।"

किरणमयी ने हँसकर कहा, "वह मेरा अब भी इसी पार में उपस्थित है, अब तक चली भी गई होती, लेकिन...।"

"लेकिन क्या भाभी?"

"केवल यदि मुझे वह बता देता कि वह मुझे चाहता है या नहीं।"

दिवाकर ने फिर आश्चर्य में पड़कर पूछा, "कौन इस पार है? कौन बताएगा कि वह तुमको चाहता है या नहीं? तुम कहती क्या हो भाभी?"

किरणमयी के मुख पर पल भर के लिए एक मलिन छाया पड़ गई, लेकिन क्षण भर में ही वह हट गई और फिर उसका समूचा मुख उज्ज्वल हो उठा। कृत्रिम क्रोध के स्वर में उसने कहा, "तुम बड़े ही दुष्ट हो बबुआजी। अपना मुँह खोलकर स्वयं कुछ भी नहीं कहना चाहते, केवल मेरे मुँह से एक सौ बार सुनना चाहते हो? जाओ, उसकी खबर मैं तुमको बता न

सकूँगी।" यह कहकर अपने मुँह को जरा ओट में करके वह मुसकराने लगी। दिवाकर ने यह हँसकर देख लिया और एक अज्ञात आवेग में उसका हृदय तीव्र गति से धड़कने लगा। अपने को सँभालकर उसने कहा, "मेरे पास कहने की कौन सी बात है भाभी, कि मुँह खोलकर मैं तुमसे कहूँगा?"

किरणमयी उसकी ओर घूमकर खड़ी हो गई। बोली, "इतने दिनों से तुमको मैंने इतना सिखाया, वह सबका सब क्या व्यर्थ हो गया? एक बार अपनी छाती पर हाथ रखकर देखो तो वहाँ एक भयानक बात खलबली मचा रही है या नहीं? सच कहो।"

दिवाकर ने मंत्रमुग्ध की भाँति कहा, "क्या बात है, मुझे क्या सिखाया तुमने?"

किरणमयी ने कहा, "तुमने मुझे आश्चर्य-चकित कर दिया बबुआजी। इसी आयु में क्या अभिनय करना सीख गए हो? लेकिन तुम मुँह खोलकर न कहोगे तो मैं भी कुछ न कहूँगी, इससे मेरी ही छाती फट जाए या तुम्हारी ही फट जाए!" यह कहकर ही एकाएक झुककर दिवाकर की ठोड़ी को एक बार हाथ से हिलाकर वह तेजी से कमरे से बाहर चली गई।

तैंतीस

बहुत दिनों के बाद आज फिर प्रातःकाल अघोरमयी मुहल्ले की कई बूढ़ी स्त्रियों के साथ कालीजी के दर्शन करने कालीघाट गई थीं। बता गई थीं कि माता की आरती हो जाने पर थोड़ी रात बीत जाने पर घर लौटूँगी।

रात के लगभग आठ बजे थे। दिवाकर अपने बिछौने पर चुपचाप लेटा हुआ था। उसके सिरहाने एक मिट्टी का दीपक टिमटिमाता हुआ जल रहा था। इसी क्षण प्रकाश में थोड़ी ही देर पहले वह दुर्गेशनंदिनी नामक पुस्तक पढ़ रहा था। उसी को मुँह पर रखकर वह संभवतः मन ही मन आयशा के ही विषय में सोच रहा था। उसी समय आकर किरणमयी ने पूछा, "छोटे बबुआ, क्या सोच रहे हो?"

दिवाकर ने मुँह पर से उस पुस्तक को बिना हटाए ही कहा, "कुछ नहीं, सिर में बहुत दर्द है?"

किरणमयी ने कहा, "तो अच्छी दवा हो रही है। सिरहाने दीपक जला रखने से क्या सिर-दर्द मिट जाता है बबुआजी?"

दिवाकर ने कहा, "यह पुस्तक कल ही लौटा देनी है, इसीलिए इसे समाप्त कर रहा हूँ।"

किरणमयी ने कहा, "नेत्र बंद करके आयशा की चिंता करते रहने से ही पुस्तक समाप्त न होगी भाई, आँखें खोलकर पुस्तक पढ़ी जाती है। तो रहने दो, खा-पीकर ही समाप्त करना। अब चलो, खाना ठंडा हो रहा है।"

दिवाकर की उठने की इच्छा नहीं थी। उसने विनय के साथ कहा, "अभी रहने दो भाभी, मौसी को आ जाने दो, तभी खाऊँगा।"

किरणमयी ने कहा, "वह किस समय लौटेंगी, इसका क्या ठीक है बबुआ? आज मेरी भी तबीयत ठीक नहीं है। सोचती हूँ, उनके कमरे में उनका भोजन ढककर रख दूँगी। फिर थोड़ा सोऊँगी। उठो, तुमको खिला दूँ।"

फिर दिवाकर का मुख कानों की जड़ तक लाल हो गया। वह लज्जित होकर करवट

बदलकर लेट गया।
किरणमयी ने उसके पास आकर कहा, ''चलो उठो। मुझे छुट्टी दो। करवट बदलकर सोने की आवश्यकता अब नहीं है।'' रसोईघर से नौकरानी का स्वर सुनाई पड़ा, ''मैं यहाँ से सुन रही हूँ, तुम नहीं सुन पातीं बहू? माँ नीचे पुकार रही हैं।''
किरणमयी लौट आई और फिर उसी संदूक पर बैठ गई। क्रोध करके बोली, ''घमंड तो कम नहीं है। मैं जाकर दरवाजा खोल दूँ, तू नहीं खोल सकती?''
''मेरे हाथ खाली नहीं हैं, इसी से कहना पड़ा है बहू।'' यह कहकर नौकरानी बड़बड़ाती हुई शीघ्रता से नीचे चली गई। दरवाजा खोलते ही अघोरमयी झिझककर बोल उठीं, ''तुम दोनों के कान क्या एकदम बहरे हो गए हैं। आध घंटे से किवाड़ का कुंडा बजा रही हूँ।''
इस बार नौकरानी भी गरज उठी। बोली, ''अंधी-बहरी न होती तो क्या तुम्हारे घर नौकरी करने आती माँजी? अब तुम किसी आँख-कानवाली को रख लो, मुझे जवाब दे दो। रसोईघर से मैं सदर दरवाजे की पुकार न सुन पाऊँगी।''
अघोरमयी ने कोमल होकर कहा, ''बहू कहाँ है?''
दासी ने अस्फुट स्वर से कहा, ''देवर को लेकर सारा दिन प्रेम-लीला हो रही है और क्या होगा? अभी जो मैंने दरवाजा खोल देने को कहा तो नेत्र लाल करके मेरे गरूर का ताना मारने लगीं। ''अरे, यह तो बड़े बाबू आ गए।'' कहकर दासी सहमकर बगल में जा खड़ी हुई।
अघोरमयी ने मुँह घुमाकर कहा, ''उपेन, चलो बेटा, ऊपर चलो।''
''चलो मौसी, चल रहा हूँ।'' कहकर उपेंद्र अघोरमयी के पीछे-पीछे सीढ़ियों पर चढ़ने लगे, लेकिन दासी के मुँह से निकली सभी बातें उनके कानों में पहुँच चुकी थीं।
ऊपर आकर अघोरमयी ने कड़े स्वर से पुकारा, ''कहाँ हो, बहू, जरा बाहर तो आओ। उपेन आ गया है...।''
अँधेरी कोठरी में बैठी किरणमयी की छाती धड़कने लगी और बिछौने पर लेटे हुए दिवाकर का सर्वांग शिथिल हो गया।
अघोरमयी ने फिर पुकारा, कहाँ गई? एक चटाई तो लाकर बिछा दो बहू, उपेंद्र क्या खड़ा ही रहेगा?''
किरणमयी ने बाहर आकर बरामदे में चटाई बिछा दी। उसके मुँह से सहसा बात नहीं निकली।
उपेंद्र ने निकट आकर प्रणाम करके कहा, ''आप अच्छी तरह तो हैं भाभी?''
किरणमयी ने अपने को सँभाल लिया। गरदन हिलाकर कहा, ''हाँ, तुम कैसे हो बबुआजी? बहू अच्छी तरह हैं न? खबर न देकर इस प्रकार अचानक कैसे आ गए?''
लेकिन किरणमयी का कंठ-स्वर सुनकर उपेंद्र आश्चर्य में पड़ गए। गले में मानो कहीं रस का लेशमात्र भी नहीं था, बिल्कुल ही सूखा और नीरस था।
उपेंद्र ने कहा, ''मुवक्किल के पैसों से यह आना हुआ है भाभी, फिर कल तीसरे पहर ही मुझे लौट जाना पड़ेगा। कालीघाट का काम समाप्त करके बाहर निकलते ही मैंने मौसी को देखा, तब से साथ ही साथ हूँ। दिवाकर की खबर क्या है, बताइए तो। बाहर गया है क्या?''
किरणमयी ने कहा, ''सिर में दर्द है, इसीलिए लेटे हुए हैं। क्या मालूम संभवतः सो गए

हैं।”

अघोरमयी का स्वभाव अच्छा नहीं था। यों तो बहू का दोष दिखाने का अवसर पाते ही वह उसे कभी छोड़ती नहीं थी, उस पर से दिवाकर पर भी उनका चित्त प्रसन्न न था। सवेरे उसको अपने साथ लेकर उन्होंने कालीघाट जाना चाहा था, लेकिन काम का बहाना करके दिवाकर ने अस्वीकार कर दिया था। तीखे स्वर से बोलीं, “अभी तो तुम उसके कमरे से निकली हो बहू, वह सो गया है या नहीं, यह भी तुम नहीं जानतीं?”

“नहीं जानती।” कहकर किरणमयी ने सास पर एक विषभरी दृष्टि डाल दी।

उपेंद्र ने ऊँचे स्वर से पुकारा, “दिवाकर!”

कोई आहट नहीं मिली।

फिर उन्होंने पुकारा, “दिवाकर सो गया है क्या?”

वह जाग ही रहा था, इस प्रकार की उपेक्षा न कर सका। ‘आता हूँ’ कहकर धीरे-धीरे बाहर आ खड़ा हुआ। प्रणाम करके अस्पष्ट स्वर से पूछा, “तुम कब आ गए छोटे भैया?”

“सवेरे। तेरे सिर में दर्द है क्या?”

“बहुत साधारण।”

“अघोरमयी ने क्रोध करके कहा, “सिर में दर्द होगा नहीं बेटा। पहले तो कुछ इधर-उधर घूम-फिर भी आते थे। अब तो तुम घर से एकदम ही बाहर नहीं निकलते। सवेरे मैंने कहा, ‘मेरे साथ जरा कालीघाट चलो तो बेटा।’ तुमने जवाब दिया, ‘नहीं मौसी, मुझे काम है।’ तुमको कौन काम था, बताओ तो?”

दिवाकर चुपचाप खड़ा रहा।

उपेंद्र ने पूछा, “चिट्ठी-पत्री लिखना तूने बंद कर दिया है। किसी कॉलेज में भर्ती हुआ?”

दिवाकर ने मीठे स्वर से कहा, “कॉलेज खुलते ही भर्ती होऊँगा। अभी तक नाम नहीं लिखाया है।”

यह सुनकर उपेंद्र के दोनों नेत्र अंगारे की तरह जलने लगे। बोले, “कॉलेज खुले सोलह-सत्रह दिनों से अधिक हो गए हैं, तुझे संभवतः यह भी जानकारी नहीं है?”

दिवाकर का चेहरा कागज जैसा सफेद पड़ गया। वह काठ की मूर्ति की भाँति खड़ा रहा।

अघोरमयी अत्यंत क्रुद्ध होकर कहने लगीं, “उसको खबर कैसे होगी उपेन? इन दोनों में दिन-रात न जाने क्या हँसी-खेल, काना-फूसी, गप्प-शप्प होते रहते हैं, इसे ये ही लोग जानते हैं! मैं बार-बार कहती हूँ, बहू, पराया लड़का है, लिखने-पढ़ने के लिए यहाँ आया है, उसके साथ आठों पहर इतना मिलना-जुलना किसलिए? भले ही देवर है, जवान देवर के साथ कुछ लाज-शर्म भी करनी चाहिए?’ लेकिन कौन किसकी सुनता है?”

उपेंद्र की ओर देखकर बोलीं, “तू यहाँ बैठा है उपेन, इसीलिए, नहीं तो अब तक आकर मेरा झोंटा मुट्ठी में पकड़ लेती। यह मेरी बहू ऐसी ही लक्ष्मी है! मैं शपथपूर्वक कह सकती हूँ उपेन, सब दोष इसी मुँहजली का है।”

किरणमयी चुपचाप निकट ही खड़ी थी—एक बात का भी उसने उत्तर नहीं दिया। धीरे-धीरे वह रसोईघर की ओर चली गई।

अघोरमयी ने उसी प्रकार क्रुद्ध स्वर में कहा, “अजी, यह बड़े आदमी की लड़की है न? मेरे लड़के ने दिन भर खाया नहीं है, कुछ खाने-पीने का प्रबंध करोगी? इस प्रकार चले जाने से

तो काम न चलेगा!"

किरणमयी लौटकर खड़ी हो गई। फिर स्वाभाविक स्वर से बोली, "इसी के लिए जा रही हूँ माँ।" उपेंद्र को लक्ष्य करके कहा, "भाग मत जाना बबुआ! मुझे कुछ पूड़ियाँ बना लाने में दस मिनट से अधिक समय न लगेगा।"

स्तब्ध मूर्च्छितप्राय दिवाकर से उसने कहा, "छोटे बबुआ, चलो तुमको वहीं खाने को दे दूँ, रसोईघर में चलो। माँ दासी को क्या दुकान पर जरा भेज दूँ बबुआजी के लिए कुछ मिठाई खरीद लाए?"

अघोरमयी या उपेंद्र कोई भी उसकी बातों का उत्तर न दे सके। इस बहू के अपरिमित संयम और असीम अहंकार ने मानो एक ही साथ बुद्धि के परे होकर, कुछ देर के लिए इन लोगों को निर्वाक् वज्राहत सा बना दिया।

लगभग एक घंटे तक बातचीत करके अघोरमयी संध्या-वंदना और माला जपने के लिए चली गईं। किरणमयी ने निकट आकर कहा, "मैंने अपने कमरे में तुम्हारा खाना परोस रखा है, बबुआ, उठो।"

उपेंद्र चुपचाप उठकर आसन पर जा बैठे। किरणमयी पास ही भूमि पर बैठ गई। बोली, "आज थोड़ा-बहुत जो कुछ है, इसी से खा पी लो बबुआजी और अधिक वस्तुएँ पकाने से व्यर्थ में बड़ी रात हो जाती।"

उपेंद्र ने मुँह ऊपर उठाकर देखा। दीपक के क्षीण प्रकाश में उनका चेहरा पत्थर की भाँति कठोर दिखाई पड़ रहा था। भोजन की थाली को एक ओर ठेलकर वह बोले, "भाभी, खाने के लिए इतना ही यथेष्ट है, लेकिन, मैं खाने के लिए नहीं आया हूँ, आपके साथ एकांत में दो बातें करने आया हूँ।"

किरणमयी ने कहा, "यह तो मेरा अहोभाग्य है, लेकिन खाओगे क्यों नहीं?"

उपेंद्र पल भर टकटकी बाँधे निहारते रहे। उनका कठोर मुख मानो और भी कठोर दिखाई पड़ने लगा। उन्होंने कहा, "आपका छुआ खाने में मुझे घृणा हो रही है।"

किरणमयी चुपचाप गरदन झुकाए बैठी रही। बड़ी देर बाद मुँह ऊपर उठाकर वह धीरे-धीरे बोली, "तो इस दशा में खाने की आवश्यकता नहीं है।" यह कहकर उसने फिर सिर झुका लिया। बाद को फिर मुँह ऊपर उठाकर जरा हँस पड़ी। बोली, "घृणा होने की तो बात ही है! लेकिन तुम्हारे मुँह से ऐसी बात सुनूँगी, ऐसा मैंने कभी विचार ही नहीं किया था। केवल एक ही मनुष्य ऐसा था, जो घृणा से थाली ठेल सकता था, वह है सतीश। तुम नहीं बबुआ।"

उपेंद्र क्रोध से, घृणा से, आश्चर्य से अवाक् होकर देखने लगे। किरणमयी उसी प्रकार शांत कठोर भाव से कहने लगी, "तुम्हारा क्रोध कहो, तुम्हारी घृणा कहो, सब ही तो दिवाकर के लिए है न बबुआजी, लेकिन विधवा के लिए जैसा वह है, वैसे ही तो तुम हो, उसके साथ मेरा संबंध कहाँ तक कैसा जा पहुँचा है, यह तो तुम लोगों का केवल अनुमान मात्र है, लेकिन उस दिन जबकि अपने ही मुँह से मैंने तुम्हारे प्रति अपना अनुराग प्रकट कर दिया था, उस दिन तो मेरी दी हुई भोजन की थाली इस प्रकार घृणा से तुमने हटा नहीं दी थी। अपनी बात होने से क्या कुलटा स्त्री के हाथ की मिठाई में प्रेम की मिठास अधिक मिलती है बबुआ?"

उपेंद्र ने अंदर के न दबाने योग्य अपने क्रोध को बलपूर्वक रोककर कहा, "भाभी, आपको स्मरण दिला देता हूँ कि आज भी मेरी सुरबाला जीवित है। वह कहती है, 'मुझे जो एक बार स्नेह करता है, उसकी मजाल नहीं है कि फिर किसी दूसरे को स्नेह करे।' मैंने केवल इसी भरोसे पर दिवाकर को आपके हाथों सौंप दिया था! मैंने सोचा था, इन विषयों में सुरबाला से कभी भूल नहीं होती।"

बात समाप्त भी नहीं हुई थी कि किरणमयी ने अकस्मात् अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर कहा, "ठहरो बबुआ, उससे भूल हुई है, तुमसे नहीं हुई है, इस बात पर तुमने कैसे संशय छोड़कर विश्वास कर लिया।"

उपेंद्र एकाएक उठ खड़े हुए। बोले, "रात बीतती जा रही है, तर्क करने का समय मेरे पास नहीं है भाभी। मैं आपको पहचानता हूँ! लेकिन इस बात को आप निश्चित रूप से जान लीजिए कि आप किसी को प्यार न कर सकेंगी, वह सामर्थ्य ही आपमें नहीं है। आप केवल सर्वनाश ही कर सकेंगी। छिह! छिह! अंत में दिवाकर को...।"

घृणा से उनका गला रुँध गया, लेकिन सामने ताककर देखा, किरणमयी का समूचा चेहरा बदरंग हो गया है मानो किसी ने उसकी छाती के ठीक बीच में गोली मार दी हो।

दरवाजे के बाहर से अघोरमयी ने पूछा, "तुम्हारा खाना हो चुका बेटा उपेन?"

"नहीं मौसी, खाया नहीं, तबीयत ठीक नहीं है।"

"तबीयत ठीक नहीं है? यह क्या है रे? तो आज फिर यहीं सो जा, अब मत जा बेटा!"

"नहीं मौसी, मुझे जाना ही होगा।" कहकर उपेंद्र बाहर चले आए। दिवाकर के कमरे के सामने आकर उन्होंने पुकारा, "दिवा!"

दिवाकर दीपक बुझाकर लेटा हुआ था। उसके हृदय की बात केवल अंतर्यामी ही जान रहे थे। अस्पष्ट शब्दों से "हाँ" कहकर काँपते पैरों से वह बाहर आकर खड़ा हुआ।

उपेंद्र ने कहा, "अपना सामान बाँधकर ठीक कर ले, मेरे साथ चलना पड़ेगा।"

अघोरमयी आश्चर्य में पड़कर घबराहट के साथ बोलीं, "यह क्या उपेन, इस रात के समय लड़का कहाँ जाएगा?"

"मेरे साथ जाएगा। इसके लिए चिंता क्या है मौसी। जल्दी से ठीक-ठाक कर ले रे, मैं गाड़ी ला रहा हूँ।"

अघोरमयी उपेंद्र का हाथ पकड़कर विनय करने लगीं, "नहीं बेटा, आज अमावस्या की रात में किसी प्रकार भी उसका जाना न हो सकेगा। लड़का ही तो है, हो सकता है कि कुछ अनुचित ही कर गया हो, यहाँ न रखना चाहो हो कल-परसों चला जाएगा, लेकिन आज रात को तो मैं किसी प्रकार भी न जाने दूँगी।"

बाधा पाकर उपेंद्र ने हताश होकर कहा, "लेकिन उसको एक रात भी यहाँ रखने की मेरी इच्छा नहीं है मौसी। अच्छा, आज अमावस्या की रात बीत जाने दो, लेकिन कल सवेरे फिर आप मत रोकिएगा। दिन में दस बजे के भीतर ही उसे ज्योतिष के घर भेज देना।" यह कहकर अघोरमयी को प्रणाम करके शीघ्रता से वह नीचे उतर गए। मुख्य द्वार के निकट अँधेरे में पीछे से उनकी चादर को किसी ने खींचा। मुँह फेरकर देखते ही किरणमयी ने झुककर उनके दोनों पाँव पकड़ लिये। कहा, "मेरी छाती फटती जा रही है बबुआ, सब झूठी बातें हैं। छिह! छिह! तुम मुझे ऐसी नीच समझ रहे हो!"

“चुप रहिए! बहुत अभिनय आप कर चुकीं, अब और नहीं।” कहकर उपेंद्र ने अत्यंत घृणा से उसके माथे को जोर से धकेल दिया। धकेलने के साथ ही पैरों को छोड़कर वह एक ओर झुककर गिर पड़ी।

“नास्तिक! अपवित्र! निर्लज्ज!” कहकर उपेंद्र उसकी ओर तनिक भी न देखकर शीघ्रता से बाहर चले गए।

किरणमयी फौरन उठ बैठी। संभवतः उसने चिल्लाकर कुछ कहना चाहा, लेकिन उसके गले से आवाज नहीं निकली। केवल खुले दरवाजे की ओर निहारती रही और नेत्रों से मानो आग की चिनगारियाँ निकलने लगीं।

बहुत दिन पूर्व ठीक इसी स्थान पर खड़ी रहने पर उसके दोनों नेत्रों से ऐसी ही उन्मत्त दृष्टि, ऐसी ही प्रज्वलित बह्नि-शिखा दिखाई पड़ी थी जिस दिन सतीश के साथ उपेंद्र पहले-पहल यहाँ आकर बाहर निकले थे। फिर आज अंतिम विदाई के दिन भी उसी के विरुद्ध उन्हीं दोनों आँखों में उसी तरह आग जलने लगी।

“अरी बहू! तुम इस तरह क्यों बैठी हो?”

“तू क्या घर जा रही है।” कहकर किरणमयी हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई और दासी का हाथ पकड़कर बोली, “जरा मेरे कमरे में चल तो, तुझसे दो बातें कर लूँ।” यह कहकर वह उसे बलपूर्वक अपने कमरे में खींच ले आई और चिराग तेज करके उसने बक्स खोलकर उसमें से चाँदी के दो मोटे-मोटे कड़े निकालकर दासी के हाथ में दे दिए और कहा, “तेरी लड़की के लिए पहनने को दे रही हूँ, नहीं-नहीं, मेरे सिर की कसम, तुझे लेना ही पड़ेगा, संभवतः फिर कभी भेंट न हो।” यह कहते-कहते उसकी आँखों से झरझर आँसू बहने लगे।

“यह कैसी बात बहू!” कहकर दासी विह्वल दृष्टि से निहारती रही।

किरणमयी ने आँखें पोंछते-पोंछते कहा, “तेरे अतिरिक्त मेरा अपना कोई नहीं है। तू मुझे यहाँ से बचा। यहाँ रहने से मेरी छाती फट जाएगी।”

दासी ने चुपचाप किरणमयी को सिर से पैर तक ध्यान से देखकर कहा, “मैं सब समझती हूँ बहू, मैं भी तो औरत ही हूँ। मेरे मर्द ने जिस दिन पोखरे के घट पर रोककर कहा था, ‘मैं अब जाता हूँ मुक्ता, संभवतः अब फिर भेंट न होगी!’ तब मैंने भी तो उसके पैरों पर गिरकर रोकर कहा था, ‘मुझे अपने साथ ले चलो, छोड़कर चले जाने से मेरी छाती फट जाएगी!’ शायद कल सवेरे ही छोटे बाबू जानेवाले हैं?”

किरणमयी ने कहा, “हाँ! लेकिन कलकत्ता में अब हमारा रहना न हो सकेगा। कहाँ जाएँ, बता तो भला?”

दासी तनिक भी चिंता न करके बोली, “तो तुम अराकान जाओ न, सुख से रहोगी। मेरी छोटी बहन भी वहीं है। मेरा नाम लेने से वह तुम लोगों को बड़े आदर से रखेगी। आज है मंगलवार, कल तड़के ही जहाज छूटेगा। वहाँ जाओगी बहू?”

किरणमयी ने दासी का हाथ थामकर कहा, “जाऊँगी।”

दासी ने धैर्य देकर कहा, “तुम लोग तैयार रहना, मैं तड़के ही गाड़ी लेकर आऊँगी। कोई भी न जान सकेगा कि तुम लोग कहाँ चले गए। जाओ बहू, जाओ, छोटे बाबू को छोड़कर तुम बचोगी नहीं।”

“बबुआजी!”

उस समय संभवतः रात बीत चुकी थी, भोर का समय था, दिवाकर चौंककर उठ बैठा। ठीक सामने ही किरणमयी दिखाई दी।

दिवाकर ने चौंककर कहा, "कौन, भाभी हो क्या?"

"हाँ बबुआजी, मैं ही हूँ।" कहकर वह विह्वल दिवाकर की छाती के ऊपर अचानक औंधी होकर गिर पड़ी। बोली, "बबुआजी, सुनती हूँ, तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे? कहाँ जाओगे? देखूँ तो!"

उत्तर में दिवाकर अवाक् हो गया, उसके दोनों नेत्रों में आँसू भर आए।

किरणमयी उठ बैठी और आँचल से उसके नेत्र पोंछकर बोली, "छिह! क्यों रोते हो भाई!"

"भाभी, मैं तो निरुपाय हूँ। छोटे भैया ने तो आज सवेरे ही मुझे चले जाने को कहा है।"

उपेंद्र का नाम सुनते ही किरणमयी क्रोध से अंधी होकर बोली, "कौन है छोटे भैया! कौन है यह! वह क्या मेरी अपेक्षा भी तुम्हारा अधिक अपना है। तुमको देखे बिना क्या उसकी भी छाती फट जाती है? नहीं बबुआ, संसार में किसी में ऐसी शक्ति नहीं है कि हम दोनों को अलग कर सके। बाहर गाड़ी खड़ी है, चलो, हम लोग चलें।"

"कहाँ भाभी?"

"जहाँ मैं ले चलूँगी, वहीं चलना होगा।"

"अच्छा चलो।" कहकर दिवाकर उठने को तैयार हो गया। एक बार उसको यह विचार हुआ कि वह जागता नहीं है, नींद के नशे में स्वप्न देख रहा है, लेकिन दूसरे ही क्षण किरणमयी का अनुसरण करता धीरे-धीरे बाहर आ गया।

चौंतीस

कोई कीड़ा जैसे पतंगे को बरबस खींच लाता है, उसी प्रकार मानो किसी अमोघ मंत्र के बल से किरणमयी अर्धचेतन अभागे विमूढ़चित्त दिवाकर को जहाजघाट पर खींच ले गई और टिकर लेकर अराकान जानेवाले जहाज पर जा बैठी। इस जहाज में भीड़ न रहने के कारण जहाज के अधिकारियों ने इन दोनों का पति-पत्नी समझकर एक केबिन में दिवाकर और किरणमयी को स्थान दे दिया। उसी जगह किरणमयी को बिठाकर दिवाकर डेक के एक एकांत स्थान पर रेलिंग पकड़कर खड़ा हो गया। धीरे-धीरे डेक पर यात्रियों की भीड़ कम होने लगी, कुलियों का हल्ला-गुल्ला बंद हो गया और लंगर उठाए जाने के कर्कश शब्द से जहाज के अंदर बैठे दिवाकर की छाती के अंदर भी कंपन हो लगा। पल भर में जहाज भागीरथी के मध्य भाग में पहुँचा और अपार समुद्र में प्रवेश करने के उद्देश्य से धीरे-धीरे गतिमान होने लगा। जब ठीक मालूम हो गया कि जहाज चल रहा है, तब दिवाकर की दोनों आँखें आँसुओं से भर गयीं और उसने अपनी दोनों हथेलियों से मुख को जोर से दबाकर किसी प्रकार रुलाई के वेग को रोककर अपनी लज्जा को छिपा लिया। पूरब की ओर का आकाश उस समय बालसूर्य की आभा से लाल हो उठा था और उधर उसके आने के विषय में संदेह न रखनेवाले उपेन भैया ज्योतिष साहब के घर शैया त्याग कर उठे नहीं थे। भाग जाने के उद्देश्य से घर से बाहर निकल पड़ने के समय से जो भयंकर अव्यक्त ग्लानि दिवाकर के

चित्त में एकत्रित होती जा रही थी, उसका अंत कितना कुत्सित और दुःखकर है, उसका दृश्य अब उसके नेत्रों के सामने स्पष्ट हो उठा। एक भले घर की गृहस्थ बहू को कुल से निकालकर वह स्वयं किसी अनजान देश में ले जा रहा है। ऐसी असंभव बात उसके हृदय में अब तक आई ही नहीं थी। अपनी शिक्षा, अपने संस्कार, चरित्र, स्कूल, कॉलेज, देश, मित्र और सर्वोपरि अपने उपेन भैया, सभी से वह किस प्रकार निर्मम भाव से विच्छिन्न होता जा रहा है, इस बात को वह उसी समय स्पष्ट रूप से समझ गया, अपने उपेन दादा के लिए वह आज एक बालक मात्र है। उसी उपेन भैया का मनोभाव, इस समाचार को सुनकर कैसा हो उठेगा, यह स्मरण करके उसकी छाती की धड़कन बंद सी होने लगी। उसी स्थान पर वह दोनों घुटनों के बीच माथा टेककर बैठ गया और एक ही क्षण में उसकी अदम्य आँखों से आँसू झरने लगे। उसी समय किरणमयी उसके पास आ खड़ी हुई और उसके माथे पर हाथ रखकर स्नेह-भरे स्वर से बोली, ''बबुआ, जरा कमरे में चलो।''

बहुत चेष्टा से और बड़ी देर में दिवाकर अपनी आँखों के आँसू रोककर मुँह झुकाए उठ खड़ा हुआ और धीरे-धीरे किरणमयी के पीछे-पीछे केबिन में जा पहुँचा। किरणमयी ने दरवाजा बंद करके दिवाकर को अपने पास बिठाया। उसके दोनों हाथों को अपने हाथ में लेकर उसके मुँह को देखकर अत्यंत करुण स्वर से पूछा, ''तुम रो क्यों रहे थे भाई?''

यह प्रश्न सुनकर दिवाकर के नेत्रों से फिर आँसू झरने लगे।

किरणमयी ने अपने आँचल से उन्हें पोंछकर कहा, ''सच-सच बताओ, बबुआ, तुम मुझे प्यार करते हो या नहीं?''

दिवाकर कुछ भी न कह सका। बिल्कुल ही छोटे बच्चे की भाँति घबराने लगा।

किरणमयी ने आँसू से भीगे उसके मुख को अपनी छाती पर खींचकर दबा लिया और धीरे-धीरे उसके माथे पर अंगुलियाँ फेरती हुई चुपचाप सांत्वना देने लगी।

इसी प्रकार बहुत समय बीत गया। बड़ी देर में दिवाकर की अश्रुधारा अपने आप ही समाप्त हो गई तो पहले की अपेक्षा उसका मन भी कुछ हलका हो गया। वह उठ बैठा। फिर कुछ भी न कहकर दरवाजा खोलकर धीरे-धीरे कमरे से बाहर हो गया। जहाज उस नदी के तट से हटकर टेढ़ी-मेढ़ी चाल से, रेत से बचता हुआ, जल को नापता हुआ धीरे-धीरे समुद्र की ओर चला जा रहा था और छोटी-छोटी डोंगियाँ और माल से लदी नावें, बड़े जहाज की बड़ी मर्यादा की रक्षा करती हुई दूर-ही-दूर रहकर अत्यंत सावधानी से बढ़ती जा रही थीं।

दिवाकर रेलिंग के पास एक कुरसी खींचकर उस पर बैठ गया और दूरी पर या निकट के जल-थल में जो कुछ उसे दिखाई पड़ने लगा, उसी से मन-ही-मन अत्यंत पीड़ा तथा वेदना के साथ सदा के लिए विदाई लेने लगा और अंतःकरण की असह्य पीड़ा अंतर्यामी से निवेदन करने लगा।

थोड़ी देर में केबिन से फिर पुकार हुई।

''दिन बहुत चढ़ आया। तुम स्नान कर आओ। तब तक मैं तुम्हारे खाने-पीने का प्रबंध करती हूँ।''

वह स्वयं अभी-अभी स्नान कर चुकी थी। पीठ पर भीगे बालों को फैलाकर केबिन के फर्श पर बैठकर हंडिया का मुँह खोलकर वह खाद्य-सामग्री का हिसाब-किताब लगा रही थी। रात में ही नौकरानी की सहायता से उसने यह सब सामग्री जुटा ली थी।

दिवाकर ने उत्तर दिया, “तुम खाओ, मुझे तनिक भी भूख नहीं है भाभी।”

किरणमयी ने मुँह ऊपर उठाकर देखा। बोली, “यह नहीं होगा। तुम न खाओगे तो मैं भी न खाऊँगी। तुम इस समय मेरे सर्वस्व हो, तुमको खिलाए बिना मैं किसी प्रकार भी न खा सकूँगी।”

यह बात सुनकर दिवाकर लज्जा से गड़ सा गया और कोई भी बात न कहकर बाहर चले जाने को ज्यों ही तैयार हुआ कि किरणमयी ने उसे पकड़कर कहा, “यह तो सप्तरथियों का चक्रव्यूह है बबुआजी, भागकर कहाँ जा रहे हो? प्रवेश करने का पथ है, लेकिन बाहर निकलने का पथ क्या सभी जानते हैं? यदि यही इच्छा थी तो इस विद्या को उपेन भैया से तुमने सीख क्यों नहीं लिया?”

कुछ देर मौन रहकर वह बोली, “परिहास की बात नहीं है बबुआजी, मेरी बात मानो—जाओ, स्नान कर आओ और कुछ खा लो। उसके बाद बाही रेलिंग पकड़कर जितनी इच्छा हो रोते रहना, मैं रोकूँगी नहीं, लेकिन यह भी मैं बताए देती हूँ बबुआ, कि आँखों के आँसू की इसके बाद बहुत आवश्यकता पड़ेगी, बिना आवश्यकता के व्यर्थ में खर्च कर डालने से पीछे कहीं पछताना न पड़े।”

दिवाकर ने कोई उत्तर नहीं दिया। आनेवाले दिनों के इस निष्ठुरतम परिणाम के संकेत को सिर झुकाए सुनकर स्नान के लिए चुपचाप बाहर चला गया और सूने कमरे में किरणमयी भी मौन होकर बैठी रही, क्योंकि उसके उपहास के इस शूल ने केवल दिवाकर को ही नहीं, वरन् सहस्रों गुणा बढ़कर स्वयं उसकी अपनी ही छाती में भी यातना भर दी।

बाहर आकर दिवाकर इधर-उधर घूमने लगा। फिर जहाज के जिस हिस्से में तीसरे दर्जे के यात्री एक-दूसरे से सटे हुए बैठे थे, वहीं चला गया और विभिन्न प्रांतों के तरह-तरह के यात्रियों में रहकर अपने को भुला रखने का उपाय खोजने लगा। इस भारतवर्ष में कितनी विभिन्न जातियाँ हैं, कितने विचित्र पहनावे हैं, कितनी अज्ञात भाषाएँ हैं, यह पहले-पहल अपने जीवन में देखकर दिवाकर आश्चर्य में पड़ गया। जहाज के अंदर भी वही जनता की भीड़ थी और तरह-तरह की भाषाओं के मिश्रण से जो अपरूप शब्द उठ रहे थे, वे भी विचित्र थे। सीढ़ियों से उतरकर दिवाकर वहाँ जा पहुँचा और निर्विकार आश्चर्य से स्तब्ध हो रहा।

थोड़े से स्थान पर अधिकार जमाने के लिए इसके पहले यात्रियों में जो ठेला-ठेली और धक्कम-धक्का मचा हुआ था, वह अब बंद हो गया था। अपने-अपने अधिकृत स्थान पर बिछौना बिछाकर अपने सामने सामानों को घेरा बना वे यथासंभव निश्चिंत हो गए थे और अब उनको अपने निकट के यात्रियों पर ध्यान देने का भी अवसर मिला था। प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे का संतोषजनक परिचय पाने के लिए उत्सुक था।

एक स्थान पर दिवाकर की दृष्टि पड़ते ही उसने देखा कि एक बंगाली चिल्लाकर उसे बुला रहा है, “बाबूजी, इधर आइए, जरा आइए!”

उस व्यक्ति के पास एक हृष्ट-पुष्ट स्त्री बैठी हुई थी। उसने भी उत्सुकतापूर्ण नेत्रों से उसके आने का अनुरोध किया। दिवाकर बड़े परिश्रम से बहुत से लोगों के तिरस्कार और झिड़कियाँ सहता, भीड़ के बीच में सावधानी से पैर रखता हुआ उनके पास जा पहुँचा। उसके पहुँचते ही उस मनुष्य ने अपने पास के टीन के संदूक पर बैठने की जगह दिखाकर

कहा, "यह मेरा संदूक टीन का नहीं है, असली लोहे का है, आप आराम से बैठिए। आप कौन हैं?"
दिवाकर ने कहा, "ब्राह्मण।"
उसी क्षण उस मनुष्य ने दोनों हाथ बढ़ाकर दिवाकर के जूतों के ऊपर से ही पदधूलि लेकर अपनी जीभ पर, माथे पर और गले पर लगाकर कहा, "सोच रहा था, ये कई दिन कैसे बीतेंगे। आप कहाँ बैठे हैं?"
दिवाकर ने उँगली से ऊपर दिखा दिया।
उसने पूछा, "आप केबिन में हैं? चाहे जहाँ रहें, संध्या को रोज एक बार पदधूलि दे जाया करें। कहाँ जाइएगा? रंगून?"
दिवाकर ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं, अराकान।"
"अराकान में तो मैं भी रहता हूँ। आज बीस वर्षों से मैं वहीं रह रहा हूँ। आपको तो मैंने कभी नहीं देखा। यही पहली बार जा रहे हैं? वहाँ आपके कोई स्वजन संबंधी हैं क्या? नहीं हैं? नहीं भी हों तो क्या, कुछ भी चिंता मत कीजिएगा। आप लोगों की दया से मैं वहाँ के एक मकान का मालिक हूँ। मेरे मकान में बहुत से कमरे खाली पड़े हुए हैं। आप मेरे साथ ही चलिए।" पास बैठी हुई स्त्री को दिखाकर कहा, "यह मेरी पत्नी हैं।"
यह स्त्री अब तक टकटकी बाँधे दिवाकर की ओर देख रही थी। उसने बहुत ही मोटे गले से पूछा, "क्या आपकी पत्नी आपके साथ हैं?"
दिवाकर ने मुँह लाल करके सिर हिलाकर किसी प्रकार बतला दिया, "हाँ, साथ ही हैं।" उसकी बातें टेढ़ी-मेढ़ी थीं, ललाट पर गोदना था, माँग में सिंदूर की चौड़ी रेखा थी, नाक में नथ थी और दोनों कानों में बीस-तीस बालियाँ थीं। आँचल का जो थोड़ा सा भाग माथे पर था, वह भी उत्साह तथा आवेश से नीचे खिसक गया। उसने कहा, "बहुत बुरा स्थान है, मग लोगों का देश है, लेकिन मेरे मकान की ओर आँख उठाने का साहस किसी का नहीं है। मैं साधारण मकानवाली नहीं हूँ। उस देश में ऐसा कोई आदमी नहीं है, जो कामिनी से डरता न हो। आप मेरे ही मकान में रहिएगा, डरने की कोई बात नहीं है। किराया पाँच रुपया है, आप चार ही रुपया महीना दीजिएगा। ऐ मकानवाले, आपके कारखाने में इनको कोई काम मिल ही जाएगा।"
मकानवाले ने जरा हिचककर कहा, "कोई न कोई काम मिल ही जाएगा।"
दिवाकर ने पूछा, "आपका नाम?"
"हरीश भट्टाचार्य! नहीं, नहीं, ऐसा न करें, अपराध लगेगा। मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, केवट (मल्लाह) हूँ।"
मकानवाली ने कहा, "ऐ मकानवाले, अब तो चिवड़ा भिगो दूँ।"
मकानवाले का ध्यान टूट गया। धीरे-धीरे उसने कहा, "भिगो दो।"
दुनियादारी से अनजान दिवाकर इस संकेत का अर्थ अब समझ गया। वह उठ खड़ा हुआ। बोला, "मैं अब जा रहा हूँ, फिर आऊँगा।"
रात की शीतल वायु तेज गति से बह रही थी। ऊपर डेक प्रायः जनशून्य था। माथे पर कृष्ण पक्ष का गंभीर नीला आकाश था, नीचे वैसा ही समुद्रा का नीला जल था। उसके ही बीच दिवाकर अपने अंतःकरण की गंभीर कालिमा को निमज्जित करके कुछ क्षण के लिए

शांति अनुभव कर रहा था। उसी समय एकाएक किसी के कोमल हाथों के स्पर्श से उसका ध्यान भंग हो गया। घूमकर देखा, किरणमयी है।

किरणमयी ने कहा। क्या हो रहा है बबुआ! तुम क्या आमरण अनशन व्रत कर रहे हो?"

दिवाकर ने उत्तर नहीं दिया, चुप ही रहा।

किरणमयी ने पल भर उत्तर की प्रतीक्षा की, फिर, "कमरे में चलो," कहकर वह बलपूर्वक उसे केबिन में खींच ले गई और भूमि पर बिछाए हुए बिछौने पर बिठाकर बोली, "कुछ भी यदि नहीं समझते तो कम से कम इतना तो अवश्य ही समझ सकते हो कि बहुत रोने-धोने से भी तो जहाज तुमको देश को वापस न ले जाएगा। बिना खाए सूखकर मर जाने पर भी नहीं, समुद्र के जल में कूद पड़ने पर भी नहीं। अराकान तुमको चलना ही पड़ेगा। तो क्या निरर्थक स्वयं सूखकर मुझे भी सुखा रहे हो? जो देती हूँ, ले लो, जितना खा सको, खाओ उसके बाद जहाज जब अराकान पहुँच जाएगा, तब जहाँ इच्छा हो, उतर जाना, जब इच्छा हो लौट आना, तुम्हारी शपथ खाकर कहती हूँ, बबुआ, मैं रोकूँगी नहीं।" यह कहते-कहते किरणमयी का कंठ-स्वर तीखा हो उठा और भूख-प्यास से व्याकुल दोनों नेत्र आग की तरह जलने लगे। दिवाकर सिर ऊपर उठाकर मुग्ध की भाँति निहारने लगा। आज इतने दिनों के बाद उसे ज्ञात हुआ, मानो परदे की ओट में उसे सत्य वस्तु अचानक ही दिखाई पड़ गई। किरणमयी के दोनों सुंदर नेत्रों की वासना-दीप्ति भूखी दृष्टि के अंदर और जो कुछ भी क्यों न हो, लेकिन उसके लिए तनिक भी प्रेम नहीं है। फिर भी उसने कोई बात नहीं कही, चुपचाप अपने नेत्र नीचे किए दोनों घुटनों बीच सिर छिपाए पत्थर की तरह बैठा रहा।

थोड़ी ही देर के बाद किरणमयी उठ पड़ी और एक हांडी से कुछ मिठाई एक छोटी सी तश्तरी में ले आई। दिवाकर के सामने तश्तरी रखकर घुटनों पर टेककर ऊँची हो बैठ गई और बलपूर्वक एक हाथ से उसका मुँह ऊपर को उठाकर एक-एक करके उसके मुँह में डालने लगी। इसी प्रकार सब समाप्त करके किरणमयी ने पल भर कुछ सोचा, फिर दूसरे ही क्षण झुककर दिवाकर के भीगे हुए होंठों को चूमकर खिलखिलाकर हँस पड़ी।

इस विषैले चुंबन और निष्ठुर हँसी को दिवाकर ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर सह लिया, लेकिन रात को जब एक ही बिछौने पर सोने का प्रबंध होने लगा, तब वह किसी प्रकार भी स्थिर न रह सका। वह उठकर खड़ा हो गया और बोला, "यह नहीं होगा भाभी, यह मैं किसी दशा में भी न कर सकूँगा। मुझे तुम छोड़ दो, मैं जहाँ भी हो सकेगा, बाहर कहीं जाकर सो रहूँगा, लेकिन तुम्हारी आज्ञा का पालन करने के लिए किसी प्रकार भी मैं कोठरी में रात न बिता सकूँगा, किसी प्रकार भी न होगा।"

किरणमयी उस समय बिछौना बिछा रही थी, पलटकर उसने देखा। दिवाकर फिर दृढ़ स्वर से बोला, "यह किसी प्रकार भी न होगा।"

किरणमयी ने पहले तो हँसने की चेष्टा की, लेकिन हँसी नहीं आई, "क्या सोना नहीं होगा?"

उसके दोनों नेत्र घायल शेरनी की भाँति जल उठे। उसने दाँतों पर दाँत दबाकर धीरे-धीरे कहा, "तुम क्या समझते हो कि सारा अपराध मेरे सिर मढ़कर भले आदमी की तरह देश लौट जाकर, अपने उपेन भैया के पाँव स्पर्श करके शपथ खाकर कहोगे कि 'मैं साधु हूँ और

तुम्हारे उपेन भैया सिर ऊपर उठाकर चलेंगे? यह न होगा बबुआ! तुम मेरी सब बात न समझ सकोगे, समझने की आवश्यकता भी नहीं है, तुम साधु हो या नहीं हो, इसके लिए भी कुछ चिंता नहीं करती, लेकिन अपराध के भार से जब मेरा सिर झुक जाएगा, तब मैं ऐसी दशा न होने दूँगी कि तुम्हारे उपेन भैया अपना सिर ऊपर उठाकर चल सकेंगे, यह तुम निश्चय जान लो।"

यह कहकर वह बिछौना बिछाने लगी और पास ही गद्दीदार बेंच पर दिवाकर सिर झुकाए बैठा रहा।

रात को दोनों एक ही बिछौने पर आस-पास सो रहे। भाग्य के फेर से सर्वस्व दान देकर जैसे हरिश्चंद्र ने चाण्डाल के हाथ अपने को सौंप दिया था, वैसी ही घृणा के साथ दिवाकर ने किरणमयी के बिछौने के किनारे आत्मसमर्पण कर दिया, लेकिन उसकी यह घृणा किरणमयी से छिपी न रही।

सारी रात लगातार उसके अर्धसुप्त दोनों कानों में कहीं से रुलाई का प्रवाह सा पहुँचने लगा और उसी के बीच में किसी की क्रुद्ध लंबी साँसें रह-रहकर गरज उठने लगीं। भोर में शरीर हिल जाने से वह जाग उठा और जागते ही समझ गया कि बाहर प्रचण्ड वेग से हवा बह रही है और जहाज का हिलना आरंभ हो गया है। नेत्र खोलकर उसने देखा, किरणमयी का कोमल बायाँ हाथ उसकी छाती पर निद्रित सर्प की भाँति पड़ा हुआ है। पीछे वह जागकर कहीं उसे काट न खाए, इस आशंका से उसने मानो उठने का साहस नहीं किया, फिर नेत्र बंद करके पड़ा रहा। हवा और जहाज हिलने का वेग क्रमशः बढ़ने लगा और किरणमयी की नींद टूट गई। दिवाकर की छाती पर पड़े हुए हाथ को जरा दबाकर उसने धीरे से पूछा, "बाहर वह क्या हो रहा है, तूफान आया है क्या?"

"दिवाकर ने कहा, "हाँ।"

"क्या होगा?"

दिवाकर ने कुछ भी उत्तर न दिया।

किरणमयी ने कहा, "संभवतः तुम भगवान् से यही प्रार्थना कर रहे हो कि जहाज टूट जाता तो अच्छा होता, यही बात है न बबुआजी?"

दिवाकर ने कहा, "नहीं।"

बस एक छोटी सी बात, "नहीं, तुम मनुष्य नहीं हो, पत्थर के बने हो बबुआ!" यह कहकर उसने बलपूर्वक दिवाकर को अपनी छाती में खींच लिया और बोली, "जहाज यदि डूब जाए, तो हम दोनों इसी तरह मरें। बहकर किनारे जा लगेंगे, लोग देखेंगे, अखबारों में खबर छपेगी, तुम्हारे उपेन भैया पढ़ेंगे, यह कैसी बात होगी बबुआ!"

इस काल्पनिक चित्र की घृणित कल्पना ने दिवाकर को ठेलकर उठा दिया और किरणमयी के बंधन से बल लगाकर अपने को मुक्त कर हिलता-डोलता वह कोठरी के बाहर चला गया।

पैंतीस

डेक पर कुरसी पर बैठकर वह टकटकी लगाए निहारता रहा। छाती के अंदर कैसा होने

लगा था, उसको अस्पष्ट रूप से अनुभव करने के अतिरिक्त बुद्धि द्वारा हृदयंगम करने की शक्ति उसमें नहीं थी। जहाज पर ऊँची-ऊँची लहरें उन्माद की भाँति उछलती हुई गिर रही हैं, फिर चूर्ण-विचूर्ण होकर विलीन होती जा रही हैं, फिर दौड़ती हुई आ जाती हैं, फिर लुप्त हो जाती हैं। इसी के घात-प्रतिघात का खेल दिवाकर आत्मविस्मृत होकर देखने लगा। ऊपर पूरब के आकाश में दिगंत के धुँधले बादल पहाड़ की तरह उमड़ते जा रहे थे और उनके ही पीछे बालसूर्य उग चुका है या नहीं, इस खबर को नीचे पहुँचाने के लिए किरण की एक रेखा को भी मार्ग नहीं मिला। दूसरे ही क्षण डेक पर जहाज के खलासी घबराकर इधर-उधर आने-जाने लगे और कप्तान का घण्टा बार-बार बजने लगा। तूफान का वेग लगातार बढ़ता ही जा रहा है और भविष्य में और भी बढ़ जाएगा, इसका संकेत आकाश के बादलों और समुद्र की लहरों ने जहाज के कप्तान से लेकर नीचे की कामिनी नामक मकानवाली औरत तक सभी को सुस्पष्ट रूप से दे दिया। उसी समय एक खलासी ने आकर कहा, "बाबू, पानी बरसने में अब देर नहीं है, आँधी-पानी में बाहर बैठकर क्यों कष्ट पाएँगे, केबिन में चले जाइए। देखिए, वहाँ न जाने अब तक क्या हो रहा है!"

दिवाकर ने घबराकर पूछा, "क्या हुआ है वहाँ?"

खलासी चटगाँव का मुसलमान था। हँसकर न समझने योग्य अपनी बोली में बोला, "कुछ भी नहीं हुआ है, लेकिन जहाज बहुत हिल रहा है न, इसीलिए कह रहा हूँ बाबू, आप जाकर देखिए वहाँ औरतें क्या कर रही हैं। इतनी हिलोरें सहना बहुत ही कठिन है।"

दिवाकर उठ खड़ा हुआ और तुरंत ही समझ गया कि खलासी की बात बिल्कुल ही सच है। वह गिरने लगा था, उसे पकड़कर खलासी ने कहा, "चलिए बाबू, आपको पहुँचा आऊँ।" उसी की सहायता से दिवाकर किसी प्रकार केबिन के दरवाजे तक पहुँचा। दरवाजा ठेलकर अंदर जाकर उसने देखा, किरणमयी बिछौना छोड़कर पास की लोहे की बेंच पर उसके ही एक छोर को जोर से दबाकर पट होकर लेटी हुई है। दिवाकर उसके सिरहाने जाकर बैठ गया। बोला, "कष्ट हो रहा है भाभी?"

किरणमयी ने बात नहीं कही, सिर भी ऊपर नहीं उठाया, केवल चुपचाप दिवाकर की गोद में अपना दायाँ हाथ रखकर पड़ी रही। जहाज उलटने-पलटने लगा। बाहर क्रुद्ध हवा सायं-सायं शब्द से चिल्लाहट मचाने लगी और उत्ताल तरंगों के उड़ते हुए पानी के छींटे प्रबल वेग से छोटी खिड़की के मोटे शीशे पर बार-बार पछाड़ खा-खाकर गिरने लगे।

उसका सिर चकराने लगा और बैठा रहना असंभव जानकर उस पतली सी बेंच पर ही किरणमयी के सिर के पास सिर रखकर वह मूर्च्छित की भाँति लेटा रहा।

किरणमयी ने सहलाकर उसका सिर छूकर मृदु स्वर में कहा, "लेट रहे हो, सिर में चक्कर आ रहा है क्या?"

दिवाकर ने कहा, "हाँ।"

किरणमयी ने कुछ क्षण मौन रहकर पूछा, "अच्छा बबुआ, तूफान तो बराबर बढ़ता ही जा रहा है, जहाज क्या डूब जाएगा, तुम्हारा यही खयाल है?"

दिवाकर ने कहा, "नहीं।"

किरणमयी ने कहा, "हाँ, नहीं-नहीं, तुम कचहरी में क्या गवाही दे रहे हो बबुआजी?" यह कहकर बड़ी देर तक चुप पड़ी रही। बहुत देर के बाद धीरे-धीरे बोली, "डूब जाने से ही

अच्छा होता। यदि न भी डूबे तो भी इस प्रकार हम लोगों के कितने दिन चलेंगे?''

दिवाकर ने उत्तर नहीं दिया, देखकर किरणमयी ने दिवाकर के सिर को हाथ से हिलाकर कहा, ''सुन रहे हो न?''

''सुन रहा हूँ। जितने दिन चल सकेंगे, चलने दो।''

''उसके बाद?''

''उसके बाद भी समुद्र में जल रहेगा, गले में बाँधने के लिए रस्सी भी मिल जाएगी। दोनों में से किसी एक को चुन ही लेना पड़ेगा!''

इतनी देर के बाद दिवाकर के मुँह से एक बड़ी बात सुनकर किरणमयी बड़ी देर तक चुपचाप पड़ी रही। उसके बाद वह स्वाभाविक स्वर से बोली, ''ऐसा मत करो, घर लौट जाओ। तुम तो पुरुष हो, जाकर कह देने से ही बात समाप्त हो जाएगी। संभव है कि इसकी भी आवश्यकता न पड़ेगी, तुम्हारे अपने लोग इस बात के लिए कोई चर्चा-बखेड़ा करना न चाहेंगे।''

दिवाकर चुप हो रहा। ऐसा प्रस्ताव चाहे जैसा भी लोभनीय क्यों न हो, वह इसे ग्रहण न कर सका। बड़ी देर तक मौन रहकर बोला, ''और तुम?''

किरणमयी पहले की ही भाँति सहज शांत स्वर में बोली, ''मुझे यहीं रह जाना पड़ेगा।''

दिवाकर ने कहा, ''कैसे रहोगी, वहाँ कौन है?''

किरणमयी ने कहा, ''कोई नहीं।''

''तो फिर?''

''तो भी रहना ही पड़ेगा।''

दिवाकर उत्कंठा से उठ बैठा। बोला, ''तनिक स्पष्ट बताओ न भाभी, तुम कह रही हो कि कोई नहीं है, फिर भी रह जाओगी, कैसे, मैं तो समझ ही नहीं पाता। तुम क्या वहाँ अकेली ही रहोगी?''

किरणमयी हँस पड़ी। उस हँसी को दिवाकर देख न सका, देखता तो समझ जाता। किरणमयी ने कुछ देर तक मौन रहकर कहा, ''नहीं बबुआ, अकेली न रह सकूँगी, मेरी वह आयु नहीं है! लेकिन तुमसे इन बातों की आलोचना की आवश्यकता नहीं है।'' यह कहकर उसने दिवाकर का दायाँ हाथ अपने मुँह के पास खींचकर व्यथा से कहा, ''लेकिन तुमको मैंने व्यर्थ ही कष्ट दिया। इसके लिए क्षमा माँग रही हूँ बबुआ।''

दिवाकर फिर अवसन्न की भाँति लेटा रहा, लेकिन इतना समझ गया कि घर लौट जाने के अँधेरे मार्ग के लिए जो आशा-प्रदीप पल भर पहले ही उसने मूढ़ की भाँति जला दिया था, उसको बुझा देने का समय आ गया है।

प्रदीप बुझ गया अवश्य, लेकिन उसकी दुर्गंध से भरी हवा से दिवाकर की छाती मानो भारी बोझ से दब गई। रुँधी हुई साँस की गंभीर पीड़ा से वह उठ बैठा और तीखे स्वर से पूछा, ''तुम क्या अब तक मुझसे परिहास कर रही थीं भाभी?''

''मुँह-चोर नाजुक स्वभाववाले दिवाकर की इस आकस्मिक उग्रता से किरणमयी चौंक पड़ी, ''कैसा परिहास बबुआजी!''

''मेरे घर लौट जाने की बात। इस व्यंग्य की क्या आवश्यकता थी?''

किरणमयी ने कहा, ''परिहास या व्यंग्य कुछ तो मैंने नहीं किया।''

"तो क्या यह सच है?"
"सच ही तो है भाई।"
"तुम अकेली रह जाओगी, यह भी क्या सच है?"
"यह भी सच है।"
"ओह! इसीलिए क्या तुम अराकान जा रही हो! लेकिन किसके पास किस तरह से रहोगी, सुनूँ तो?"
प्रत्युत्तर में किरणमयी ने केवल एक लंबी साँस ली।
फिर हँसकर उसने कहा, "किसके पास मैं किस हैसियत से रहूँगी, वह जान लेने से तुमको क्या लाभ होगा बबुआ? जबकि तुम लौट ही जाओगे, फिर इस अनावश्यक कौतूहल की कुछ सार्थकता ही नहीं है।"
दिवाकर कुछ क्षण स्थिर रहा। फिर बोला, "लौट जाऊँगा ही, यह बात तो मैंने एक बार भी नहीं कही। वह तो तुम्हारे ही मुँह की बात है, मेरे मुँह की नहीं।"
किरणमयी ने कहा, "यह ठीक है, लेकिन मेरे मुँह से तुम्हारे मन की बात ही निकल पड़ी है।" यह कहकर वह तीव्र प्रतिवाद की आशा करके प्रतीक्षा करती रही, लेकिन प्रतिवाद नहीं हुआ। किरणमयी उसको सोचने का समय देकर धैर्य धारण किए रही। बहुत समय बीत गया, बाहर आँधी-पानी के लगातार आक्रमण से जहाज काँपने लगा, खलासियों का अस्पष्ट कोलाहल बीच में स्पष्ट सुनाई पड़ने लगा, किरणमयी के धीरज के बाँध भी टूट जाने की नौबत आ गई, लेकिन काठ की बनी इस छोटी सी कोठरी की निस्तब्धता पूर्ववत् बनी रही।
दिवाकर प्रतिवाद न करेगा, इस बात पर किरणमयी के मन में जब तनिक भी संशय न रह गया, तब उसने लंबी साँस छोड़कर धीरे-धीरे कहा, "तो क्या तुम्हारा लौट जाना ही पक्का रहा?"
दिवाकर ने कहा, "नहीं।"
किरणमयी ने फिर कोई प्रश्न नहीं किया।

छत्तीस

उस रात को आंधी-पानी का वेग कम हो गया। लगातार ऊधम मचाकर उन्मत्त सागर भोर होते-होते शांत हो गया, लेकिन ऊपर का आकाश-प्रकाश प्रसन्न नहीं हुआ, मुँह भारी बनाए ही रहा।
इसी समय दिवाकर बाहर आकर एक आराम कुरसी पर लेट गया। न जाने क्यों, आत्मग्लानि की ज्वाला आज उसको पहले की भाँति जला नहीं रही थी, लज्जा का वारिधी भी आज वैसा दुस्तर नहीं जान पड़ा—कहीं पर मानो हरे रंग के पेड़-पौधों से भरा हुआ एक धुँधला सा किनारा उसे दिखाई पड़ने लगा। हृदय का असह्य बोझ; इस प्रकार जब हलका हो गया, तब स्थिर होकर दिवाकर फिर एक बार किरणमयी के तर्क पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने लगा। कल रात को किरणमयी ने यह कहकर तर्क किया कि हम लोग यथार्थ में अन्याय तभी करते हैं, तब किसी को उसके न्यायोचित अधिकार से वंचित करते हैं।

इसीलिए किसी कार्य में प्रवृत्त होने के पूर्व यही देखना आवश्यक है कि हम किसी के सच्चे अधिकार में हाथ डाल रहे हैं या नहीं! फिर यह अधिकार जैसा बाहर है, भीतर भी वैसा ही है। अपने ऊपर भी अपना एक सच्चा अधिकार है, अपना होने के कारण वह किसी से तुच्छ नहीं है। उस अधिकार के बाहर किसी का हस्तक्षेप सहना अपने ऊपर अन्याय करना है, यही मेरी कहानी है।

क्षण भर स्थिर रहकर उसने कहा था, "हम लोग चोरी-डकैती आदि प्रकार के जिस दूसरे के अधिकार में हाथ डालकर अन्याय करते हैं, शराबी के लिए पैसे जुटाकर उसे देकर भी वही अन्याय करते हैं; क्योंकि उसके अच्छे रहने के अधिकार में हम हस्तक्षेप करते हैं।"

दिवाकर चुपचाप सुन रहा था, यह देखकर किरणमयी ने फिर कहा था, "यद्यपि सामाजिक लोगों का यह अधिकार अत्यंत व्यापक है और कहाँ इसकी सीमा रेखा है, कदम रखने से अनाधिकार प्रवेश न होगा, इस बात को लेकर संसार में अनेक ही द्वंद्व हुए हैं, अनेक मतभेद हैं, तो भी सीमा तो एक ही है, इस विषय में किसी को संदेह नहीं है। इस सीमा का उल्लंघन करने की शक्ति किसी में नहीं है, समाज में भी नहीं है। समाज इस सीमा को लाँघकर केवल दूसरों को ही नष्ट नहीं करता, बल्कि स्वयं अपने को भी कमजोर बनाता है, नष्ट कर डालता है। तुमको अपना मन इतना उदास बनाकर रहने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती बबुआजी, यदि तुम एक बार इसी बात को सोचकर देखते हो कि मुझे घर से निकालकर किसी के सच्चे अधिकार पर हस्तक्षेप किया है या नहीं! मैं हूँ विधवा, मेरे ऊपर किसी का न्यायसंगत अधिकार नहीं है, तुम हो अविवाहित, तुम्हारे हृदय पर किसी का अधिकार नहीं है, अतएव मुझे प्यार करके तुमने कुछ भी अन्याय नहीं किया है, यह बात समझना तो कठिन नहीं है।"

दिवाकर ने हतबुद्धि होकर कहा था, "यह क्या भाभी, यदि अवैध प्रणय अन्याय नहीं है तो फिर संसार में अन्याय क्या है?"

किरणमयी ने कहा था, "अवैध क्या है? जिसको तुम अवैध समझ रहे हो, वह तुम्हारा संस्कार है, वह युक्ति नहीं है। अच्छी बात है, तुम्हारी अवैध वस्तु क्या है, सुनूँ तो?"

दिवाकर ने उत्तेजित होकर उत्तर दिया था, "जो विवाह के द्वारा सुपवित्र नहीं है, जिसको समाज स्वीकार नहीं करता, जिसे आत्मीय स्वजन, इष्टमित्र घृणा की दृष्टि से देखेंगे, वही अवैध है। यह तो एक सीधी सी बात है।"

किरणमयी ने हँसकर उत्तर दिया था, "सीधी बात कहाँ है? जरा विचार करके देखने से ज्ञात हो जाएगा कि सीधी बातें भी ऐसी टेढ़ी हो जाती हैं कि दुनिया की बहुत सी टेढ़ी वस्तुएँ ही उसके सामने हार मान जाती हैं। तुमको तो मैंने अनेक बार कहा है बबुआ, तुम्हारा यह सुपवित्र-अपवित्र ज्ञान, संस्कार है, युक्ति नहीं है। इस संसार में ही स्त्री-पुरुष के ऐसे अनेक मिलन हुए हैं, जिन्हें किसी प्रकार भी पवित्र नहीं कह सकते। मैं इस संबंध में उदाहरण देकर बात बढ़ाना नहीं चाहती, तुम्हारी इच्छा हो तो इतिहास-पुराण पढ़कर देखो। फिर भी, उन मिलनों को भी समाज ने स्वीकार कर लिया था और अंत में वे विवाह के मंत्रों से भी सुपवित्र बना लिये गए थे। बबुआजी, हमारे पथरियाघाटा के उस मकान के पास यदि कण्व मुनि का आश्रम रहता, तो शकुंतला ने जो काण्ड कर डाला था, उसके कारण केवल मुनि-महाराज को ही अपने भाई-बंधुओं के साथ नहीं, बल्कि पथरियाघाटा के

सभी लोगों को जाति से च्युत हो जाना पड़ता। कहाँ, उस प्रेम-कहानी को पढ़ने में तो किसी भी सती-साध्वी का मुख-मंडल लज्जा से लाल नहीं हो जाता।

"...नहीं-नहीं, तुम घबराओ मत बबुआ, मैं सती-साध्वी स्त्रियों पर कटाक्ष नहीं करती अथवा इस युग से उस युग की तुलना भी नहीं करती। यह युग यही युग बना रहे और वे लोग जहाँ हैं, वहीं अच्छे होकर रहें। मुझे किसी में आपत्ति नहीं है, लेकिन उस युग की शकुंतला को इस युग के स्त्री-पुरुष किस कारण अपने हृदय में बुरी कहकर घृणा नहीं कर सकते, यही एक विचित्र बात है।"

क्षणभर चुप रहकर उसने कहा, "घृणा क्यों नहीं कर सकते, जानते हो, बबुआजी? केवल इसीलिए वे घृणा नहीं कर सकते, बबुआ कि उनका मिलन चाहे जैसा भी क्यों न रहा हो, मिलन के आदर्श को उन्होंने शुद्ध रूप में ही रखा था। क्षणभर में ही जिस बंधन में अपने को सदा के लिए बाँध लिया था, वह बंधन पक्का नहीं है, ऐसा संदेह या किसी प्रकार का संकोच उन्होंने मन में नहीं रखा था। वास्तविक बात क्या है, इस पर अच्छी तरह विचार करके देखो।"

दिवाकर को एक बात भी अच्छी नहीं लगी थी। उसने असहिष्णु होकर कहा, "आदर्श चाहे जैसे भी क्यों न हों, आजकल का समाज इसे स्वीकार न करेगा और जिसकी समाज से स्वीकृति न मिलेगी, वह चाहे वैध हो या अवैध हो, उसके द्वारा समाज पर आघात ही पहुँचेगा। समाज में रहकर समाज पर आघात करना और आत्महत्या करना दोनों बराबर हैं।"

किरणमयी ने उत्तर दिया था, "बबुआजी, समाज पर आघात करना और समाज के अविचार पर आघात करना एक वस्तु नहीं है। तुमको तो मैं पहले ही बता चुकी हूँ कि सब वस्तुओं में ही एक सच्चा अधिकार रहता है। समाज उद्धत होकर जब सत्य की सीमा को लाँघता है, तब उस पर आघात करना ही उचित है। इस आघात से समाज नहीं मरता, उसको चेतना मिल जाती है। उसका मोह छूट जाता है। लिखना-पढ़ना सीखने के लिए ही हो या देश के ही लिए हो, विलायत जाना समाज ने स्वीकार नहीं किया है। इसके कारण उसे बार-बार चोटें खानी पड़ी हैं। तो भी, ऐसी ही उसकी कठोर प्रतिज्ञा है कि वह आज तक भी अपना अहंकार छोड़ नहीं सका है। इससे क्या तुम समाज के सुविचार की प्रशंसा करते हो?"

दिवाकर ने कहा, "नहीं, मैं ऐसा नहीं करता। इसे अच्छा समझने का कारण नहीं है, इसीलिए।"

किरणमयी ने कहा, "ठीक यही बात है, लेकिन यह असंदिग्ध स्पष्ट उत्तर तुमको कहाँ से मिला है, अपनी बुद्धि-विवेचना से, समाज से तो नहीं?"

दिवाकर ने उत्तेजित होकर उत्तर दिया, "लेकिन यदि सभी कामों में अपनी बुद्धि-विवेचना का प्रयोग करने लगे, तब तो समाज भी न टिकेगा।"

किरणमयी ने कहा था, "मैं तो तुमको अब तक यही बात बताने का प्रयत्न करती रही हूँ। सभी कामों में अपनी बुद्धि लगाने से जैसे समाज नहीं रहता, समाज भी यदि सदा और सभी कामों में अपना ही मत चलाना चाहे तो उससे भी मनुष्य नहीं टिकता। मनुष्य ही भूल करना और अन्याय करना जानता है, समाज क्या नहीं जानता बबुआजी? दोनों की ही

सीमा निर्धारित हैं—मूर्खता से हो, प्रवृत्ति के झोंके से हो, अनुचित हठ के कारण ही हो, जिस प्रकार भी क्यों न हो, उसका उल्लंघन करना ही अमंगल है। उस अमंगल को रोक रखने की शक्ति तुम्हारे भगवान् में भी नहीं है।''

दिवाकर ने इसके उत्तर में कोई बात नहीं कही। किरणमयी ने कुछ देर चुप रहकर फिर कहा था, ''फिर भी, यह सीमा किसी भी समाज में सर्वदा एक ही स्थान में बँधी नहीं रहती। आवश्यकता के अनुसार यह बदलती रहती है।''

दिवाकर ने पूछा, ''कौन बदलता है?''

किरणमयी ने कहा था, ''कोई भी नहीं बदलता। जिस नियम से विश्व-ब्रह्मांड में परिवर्तन होता है, उसी नियम से यह भी आप ही आप परिवर्तित होता है। बदल गया है या नहीं, इसका पता उसी समय चल जाता है, जब कोई इस पर प्रहार करता है।''

बाहर थमती हुई आँधी की दबी हुई आवाज को भेदकर ऊपर जहाज के घण्टे में बारह बज गए। डेक की एक कुरसी पर लंबी साँस लेकर दिवाकर चुपचाप बैठा हुआ था, एकाएक दबी हुई आवाज से पुकार हुई, ''बबुआ!''

दिवाकर चौंक उठा। झटपट उसने उत्तर दिया, ''क्यों भाभी?''

किरणमयी ने कहा, ''तुम लौट जाओ।''

दिवाकर ने जोर लगाकर कहा, ''किसी प्रकार भी नहीं।''

किरणमयी ने कहा, ''नहीं क्यों? बिना समझे-बूझे तुमने एक अन्याय किया है, समझ लेने पर भी उसका प्रतिकार न करोगे, पाप का बोझ ढोते फिरोगे, मैं तो इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझती बबुआ।''

दिवाकर ने कहा, ''तुम नहीं समझतीं, मैं समझता हूँ। इसके अतिरिक्त लौट जाने से ही क्या पाप का बोझ उतर जाएगा भाभी?''

किरणमयी ने कहा, ''आज ही उतर जाएगा, यह बात मैं नहीं कहती, लेकिन दो दिनों बाद उतर भी सकता है।''

दिवाकर ने मृदु कंठ से पूछा, ''लेकिन मैं जाऊँगा कहाँ?''

किरणमयी ने कहा, ''अपने घर, अपने आत्मीय स्वजनों के पास, अपने उपेन भैया के पास। सब ही तो तुम्हारे हैं।''

दिवाकर क्षण भर चुप रहकर बोला, ''तुम जो कुछ मेरे पास है, कह रही हो, वह मेरा नहीं है, यह तुम भी जानती हो। हैं केवल उपेन भैया, लेकिन उनको तो तुम पहचान नहीं सकी हो। उनके ही पास मुझे लौट जाने को कहती हो भाभी?''

''हाँ, उपेन के ही पास लौट जाने को कहती हूँ!''

दिवाकर थोड़ी देर तक मौन रहा। फिर धीरे-धीरे बोला, ''मैंने सोचा था, तुम उनको पहचान चुकी हो, लेकिन तुमने पहचाना नहीं। मैं भी उनको पहचानता हूँ, ऐसी बात नहीं है, संभवतः अच्छी तरह उनको पहचाना भी नहीं जा सकता, लेकिन बचपन से उन्होंने मेरा पालन-पोषण किया है, अतः मैं इतना तो समझ गया हूँ कि अब इसके बाद उनके सामने जाकर खड़ा होने की अपेक्षा मेरे लिए आग में कूद जाना ही सरल है।''

एकाएक किरणमयी चकित हो उठी। दिवाकर के मुँह की ओर देखकर बोली, ''क्यों, वह क्या इतने निष्ठुर हैं? जो अपराध तुम्हारा नहीं है, उसको समझाकर बताने से भी क्या वे

तुम्हें दण्ड देंगे? यह बात कभी संभव नहीं हो सकती बबुआजी!"

किरणमयी के आकस्मिक उत्साह के प्रति दिवाकर ने ध्यान नहीं दिया। दीवार पर जो बत्ती टँगी हुई थी, उसी ओर देखता हुआ अन्यमनस्क की भाँति धीरे-धीरे बोला, "उनको कोई बात समझाकर कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। न जाने किस प्रकार वे सब कुछ जान जाते हैं, अवश्य ही मैं तुम्हारी तरह यह नहीं सोच सकता कि मेरा दोष है, लेकिन यदि तुम्हारी ही बात ठीक हो, यदि सचमुच ही मैं निर्दोष हूँ, तो उस दशा में जिस दिन मैं उनके पास जाकर खड़ा हो जाऊँगा, उसी दिन वे जान सकेंगे, लेकिन मैं खड़ा न हो सकूँगा। तुमने दंड की बात कही थी, तो मैं कैसे जानूँ भाभी कि वे कैसा दंड मुझे देंगे। अब तक कभी भी उन्होंने मुझे कोई दंड नहीं दिया।"

वह और कुछ न कह सका, दोनों हथेलियों से आँखें ढँककर चुप हो रहा।

किरणमयी ने कोई बात नहीं कही। दोनों नेत्र खोलकर उसके मुख की ओर निहारती रही। उसके हृदय में जो विप्लव चल रहा था, उसको केवल अंतर्यामी ही जान सके।

थोड़ी देर के बाद दिवाकर ने बात कही। अत्यंत व्यथित कंठ से वह कहने लगा, "कल तुमने कहा था कि तुम उपेन भैया का सिर नीचा कर दोगी। उस दिन रात के समय तुम लोगों में क्या बातें हुई थीं, किस क्रोध में आकर तुमने बात कही थी, इसे मैं अभी तक समझ नहीं सका। संभवतः इसका कोई कारण तुम्हारे लिए होगा ही, लेकिन वह कारण चाहे जैसा भी हो, उस सिर को नीचा कर देने का दुःख कितना बड़ा है, इस बात को यदि तुम जानतीं, तो यह बात तुम मुँह से न निकालतीं। तुम ऐसी चेष्टा मत करना। जब तक वह स्वयं नीचा होकर हम लोगों की ओर न देखेंगे, तब तक उनके सिर को नीचा कर देने की शक्ति संसार में किसी में नहीं है भाभी।"

उसी गंभीर रात्रि में ये दोनों विपरीत प्रकृतियाँ उपेंद्र के प्रति भक्ति, श्रद्धा और प्रेम के तट पर पहुँचकर एकाएक बहुत ही अच्छी तरह सम्मिलित हो गईं, यहाँ कोई विरोध ही नहीं था। जहाँ कहने की अपेक्षा सुनने, समझने की अपेक्षा समझाने की अभिलाषा ही अत्यंत प्रबल हो उठी।

भोर में किस समय दिवाकर बिछौना छोड़कर बाहर चला गया, इसका पता निद्रामग्न किरणमयी को नहीं चला। इसीलिए नींद टूटते ही वह दिवाकर के लिए व्याकुल हो उठी। कल रात को बातों ही बातों में किरणमयी बहुत सी बातें जान गई थी। दिवाकर वास्तव में कितना निस्सहाय है और अपने उपेन भैया से अलग हो जाना उसके लिए कैसी चोट पहुँचानेवाली दुर्घटना है, इस बात को अत्यंत स्पष्ट रूप से समझ लेने के बाद से किरणमयी अपने नारी-हृदय के अंतस्तल में तनिक भी शांति नहीं पा रही थी। इस सरल, विनीत, सत्यवादी और सच्चरित्र को उसके प्रारंभ में ही अकारण पथभ्रष्ट कर देने का अपराध उसकी निद्रावस्था में भी उसको बींध चुका था। इसीलिए निद्रा भंग होते ही एक अभिनव स्नेह के साथ इस निरपराध अभागे की ओर उसने पहले ही मुँह घुमाकर देखा, दिवाकर नहीं था। उठकर बाहर गई, पर वहाँ भी नहीं दिखाई पड़ा। जहाज के काम करनेवाले लड़के से ढूँढ़ने के लिए कहा, वह भी न पा सका।

उसी समय से किरणमयी अत्यंत व्याकुलता से प्रतीक्षा कर रही थी, लेकिन आज उसकी इस उत्कंठा के बीच भी बहुत दूर से आई हुई मृदु सुगंध की भाँति एक अस्पष्ट आनंद का

आभास पाकर उसका हृदय पुलकित हो रहा था।
उसे अति तुच्छ दिवाकर के साथ, जिसको वह कभी भी प्यार न कर सकी, अपनी ही कुबुद्धि के कारण उसकी घर-गृहस्थी उसे सँभालनी पड़ेगी। प्रेम का अभिनय करना पड़ेगा, जहाज पर चढ़ जाने के बाद से यही धिक्कार उसको भीतर ही भीतर मानो पागल बनाता जा रहा था।
लेकिन कल गंभीर रात्रि में उपेंद्र के राजसिंहासन के नीचे बैठकर संधिपत्र पर जब दोनों के हस्ताक्षर हो गए, तब मानो उसकी निद्रा भंग हो गई और इस निरीह लड़के के लिए करुणा और व्यथा से वह इधर जिस प्रकार व्यथित हो उठी थी, उसी प्रकार इस अवश्यंभावी घृणा से मुक्ति पाकर मानो वह बच गई।
कमरे में अकेली बैठकर लंबी साँस छोड़ती हुई बार-बार यही बात कहने लगी—अब मुझे भय नहीं है, मुझे कोई भय नहीं है। जिसको मैं प्यार न कर सकूँगी, कम से कम स्नेह देकर भी उसके मन की कालिमा तो बहुत कुछ पोंछ सकूँगी, तो भी, एक भय उसके हृदय में झाँकने लगा, पीछे प्रलोभन को न रोक सकने के कारण दिवाकर पतंगे की भाँति जल मरने को कटिबद्ध हो जाए, तो क्या गति होगी, उसके रूप के आकर्षण में कैसी अमोध शक्ति है, यह बात तो उससे छिपी नहीं थी।
उसे अपने मृत पति की बात स्मरण हो आई। वही नीरस, कठोर विद्या का मूर्तिमान अभिमान। उसके पास तो वह एक दिन भी जा न सकी थी, तो भी उसके दिन कटे ही थे। लिखने-पढ़ने, भात पकाने, सास की झिड़कियाँ सुनने और घर के काम-काज करने में ही दिन व्यतीत हो जाता था। फिर रात में थकावट से चूर होकर किसी समय वह सो जाती थी, फिर प्रभात होता, फिर रात आती, इसी प्रकार महीने पर महीने, वर्ष पर वर्ष बीत गए थे। भीख माँगने के लिए कोई भिखारी मकान में नहीं आया। किसी पड़ोसी ने भी आकर नहीं पूछा कि तुम कैसी हो, एक दिन के लिए भी सूर्य-किरणों ने प्रकाश नहीं दिया, एक क्षण के लिए भी आकाश की वायु ने मार्ग भूलकर प्रवेश नहीं किया, तो भी दस साल का लंबा समय बीत गया था। उसे अपने माँ-बाप की बात तो स्मरण नहीं पड़ती, केवल स्मरण पड़ती है कि बाल्यावस्था में कालना के पास के एक छोटे गाँव में रहनेवाले दुःखी मामा के घर से बहू के वेश में निकलकर उसने इस अँधेरे घर में प्रवेश किया था। उसी समय से उस मृत्यु-दिवस तक गुरु-शिष्य का वह कठोर संबंध कभी दूर नहीं हुआ। पति ने एक दिन के लिए भी आदर नहीं किया, प्यार करते थे या नहीं, एक दिन के लिए भी उन्होंने यह बात नहीं बताई।
बँगला, संस्कृत, अंग्रेजी के पाठ याद करने को देते थे, पाठ सुनते थे। पाठ याद न करने पर तिरस्कार करते थे, मारते भी थे। क्रोध, अभिमान करने पर कभी मानते नहीं थे, रोते-रोते सो जाने पर किसी दिन जगाकर खाने के लिए मुझसे नहीं कहा, यही उसके वधू जीवन का इतिहास है।
सास की परीक्षा और भी कठोर थी। वहाँ अत्यंत छोटी सी भूल के लिए भी क्षमा नहीं थी। अघोरमयी ने अपने रसोईघर की कलसी-सँड़सी से लेकर जलती हुई लकड़ी तक के चिह्न इस छोटी बहू के शरीर पर अंकित कर दिए थे। एक दिन किसी अपराध पर उन्होंने उसके सिर के सब बाल काट दिए थे। दुःख से, अभिमान से, जब बहू रसोईघर के एक कोने

में मुँह ढँककर फूट-फूटकर रोने लगी थी, तब पीठ पर जलती हुई लकड़ी से मारकर उन्होंने चुप रहने का आदेश दिया था। जल जाने का वह घाव ठीक होने में एक महीने का समय लगा था।

एकाएक वही घाव मानो फिर कसकने लगा। किरणमयी क्षण भर के लिए चंचल होकर स्थिर होकर बैठ गई।

कब किशोरावस्था को पार करके उसने यौवनावस्था में पैर रखा, यह बात उसे स्मरण नहीं रही। संभवतः उषा की भाँति चुपके-चुपके ही प्रभात का वह उज्ज्वल प्रकाश फूट उठा था।

यौवन में, अनजान दशा में, जबकि शरीर सौंदर्य से परिपूर्ण हो उठने लगा, तब वह पति के साथ सूक्ष्म विषय पर विचार करने में व्यस्त हो रही थी। क्यों उसका शारीरिक पीड़न समाप्त हो गया, क्यों वह गृहिणी हो चली, यह बात एक बार सोचने का भी उसे अवसर नहीं मिला। पति कहा करते थे, "सुख ही जीवन का एकमात्र ध्येय है; शेष सब ही उपलक्ष्य हैं। दया, धर्म, पुण्य, ये सभी उपलक्ष्य हैं। इहकाल की हो या परकाल की, अपनी हो या और पाँच आदमियों की, स्वदेश की हो या विदेश की, किस उपाय से सुख-वृद्धि की जा सकती है, यही जीवन का कर्म है और जाने में हो या अनजाने में, इसी चेष्टा में लोगों का सारा जीवन समाप्त हो जाता है और यही एकमात्र मापदंड है, जिसके द्वारा सब भले-बुरे का वजन किया जा सकता है, अपने लिए है या दूसरे के लिए, इस ओर दृष्टि मत डालना। किरण, तुम केवल यही समझने का प्रयत्न करना कि इससे सुख की मात्रा बढ़ती है या नहीं।"

किरणमयी कहती, "ठीक ऐसा ही करूँगी, लेकिन किस प्रकार मैं जानूँगी कि मेरे कामों में संसार में सुख की समष्टि बढ़ रही है? सुख का स्वरूप तो सब की दृष्टि में एक सा नहीं होता।"

हारान अपनी शून्य दृष्टि से पलभर तक जालों तथा कालिख से भरी कड़ियों की ओर देखकर कहते, "खंड-खंड करके देखने से एक तो नहीं है, लेकिन समग्र रूप से देखने से एक ही है। तुमको इसी पर विचार करना चाहिए।"

किरणमयी के लिए सुख का कोई रूप स्पष्ट नहीं था। वह असहिष्णु होकर बोल उठती, "खंड-खंड करके या समग्र रूप से, ये सब बातें केवल कहने के लिए हैं। अपने को काक सुख कैसे मिलता है, इसी बात को बड़े जोर से मनुष्य समझ सकता है, वह भी सब समय, सब अवस्थाओं में नहीं, जबकि अपने ही संबंध में मनुष्य भूल से नहीं बच पाता, तब सारे विश्व का दायित्व हाथ में लेने का साहस जिसे हो, होने दो, मुझे तो ऐसा साहस नहीं होता। उस पार के वे जूट मिलवाले संभवतः सोचें कि काशी के सभी मंदिरों को तोड़कर जूट मिलें खड़ी कर देने से मनुष्य के सुख की मात्रा बढ़ जाएगी, लेकिन सभी क्या ऐसा ही सोचेंगे? सुख नामक वस्तु क्या है, यह बात जब तक मुझे समझाकर न बता सकोगे, तब तक मैं तुम्हारी कोई बात नहीं सुनूँगी।" यह कहकर ज्यों ही किरणमयी उठकर जाने को प्रस्तुत होती, त्यों ही हारान उसका हाथ पकड़कर कहते, "जरा बैठो तो। इतना पढ़-लिखकर भी यदि तुम इतनी छोटी सी बातों से रुष्ट हो जाओगी तो सबकुछ ही झूठ हो जाएगा। देखो किरण, मैं तुमसे सच कहता हूँ, मैं ठीक नहीं जानता कि सुख नामक वस्तु क्या है। किसी देश में कोई भी इसे जान पाया या नहीं, यह बात मुझे ज्ञात नहीं है। संभवतः यह बात जानी भी नहीं

जाती। हमारे देश में बहुत दिन पूर्व तीन प्रकार की चेष्टाएँ दुःख-निवृत्ति के लिए हो चुकी हैं, उनको अलग करके जो वस्तु शेष रह जाती है, वही सुख है, यह कह देने से भी काम नहीं चलता।''

प्रत्युत्तर में किरणमयी अत्यंत अधीर होकर बोल उठती, ''जब कहने से काम नहीं चलता, तब किसी के सुख का परिहास करना जैसा असंगत है, साधारण रूप से सुख के परिमाण को बढ़ा देने की चेष्टा करना भी वैसा ही पागलपन है। भले-बुरे की तौल करने के पूर्व तुम्हारा तुलादंड ठीक होना चाहिए। उसको तुम किस आदर्श से ठीक करोगे, इसे तो मैं समझ नहीं पाती।''

इसी प्रकार शिक्षा और गृहस्थी के बीच पड़कर किरणमयी बालिकावस्था से बढ़कर सयानी हो गई थी। आज एक-एक करके उसे ये सब बातें स्मरण आने लगीं। इसी प्रकार उसकी चिंता की धारा जब वर्तमान दुःख को लाँघकर बहुत दूर जाकर अतीत के अगाध अतल दुःख के सागर में डूबती हुई गोते खा रही थी, उसी समय दिवाकर शुष्क म्लान मुख लिए केबिन के भीतर आया। उसको देखते ही किरणमयी के दुःख-स्वप्न का नशा पल भर में हट गया। यह अपने मुख को स्नेह की हँसी से उज्ज्वल बनाकर तिरस्कार के स्वर में बोली, ''बात क्या है बताओ तो बबुआजी? किस धुन में घूम रहे हो, क्या खाना-पीना नहीं होगा? तुम तो अच्छे लड़के हो भाई।''

उसके कंठ-स्वर से दिवाकर इतने दिनों के बाद चौंक पड़ा। अचानक उसे लगा मानो कितने ही सहस्र वर्ष बीत चुके हैं, भाभी का ऐसा स्वर उसे सुनने को नहीं मिला। उस स्वर में आक्षेप की ज्वाला नहीं थी। जो स्वर सचमुच ही स्नेह की वेदना से कोमल होकर निकलता है, वहाँ मनुष्य के कान भूल नहीं करते, किसी तरह उसे पहचान लेते हैं। दिवाकर अभिभूत की भाँति निहारता रहा।

किरणमयी ने फिर मुसकराकर कहा, ''सवेरे से अब तक तुम कहाँ थे?''

दिवाकर ने धीरे से कहा, ''नीचे।''

''नीचे? इतनी देर तक नीचे क्यों बैठे रहे? एक बार ऊपर आकर कुछ खा जाने का अवकाश तुम्हें नहीं मिला?''

प्रत्युत्तर में दिवाकर केवल मौन होकर टकटकी बाँधे देखता ही रहा। किरणमयी ने पूछा, ''तुम नीचे क्या कर रहे थे?''

उसके मुख पर बड़ी बहन का वही निर्मल स्नेह-हास्य था, स्नेह की वैसी ही मधुरता थी, जिसे कलकत्ता आकर किरणमयी से पाकर दिवाकर कृतार्थ हो गया था। आनंद से दिवाकर के नेत्रों में आँसू छलछला आए। उसने किसी प्रकार रोककर कहा, ''भाभी, नीचे एक बंगाली अपनी स्त्री को साथ लिये अराकान जा रहा है, उनका वहाँ मकान भी है।''

किरणमयी ने कहा, ''क्या कहते हो बबुआ?''

दिवाकर ने कहा, ''मैं सच कहता हूँ भाभी, वे लोग बड़े अच्छे आदमी हैं।''

किरणमयी उसकी बात के बीच में ही बोल उठी, ''तो ऐसी अवस्था में हम लोग उनके ही मकान में जाकर ठहर सकते हैं। उनकी स्त्री के साथ मेरा परिचय क्या तुम करा सकते हो?''

दिवाकर ने प्रसन्न होकर कहा, ''क्यों न करा सकूँगा? मकानवाली कह रही थी तुम्हारे साथ एक बार...।''

किरणमयी ने आश्चर्य में पड़कर पूछा, "मकानवाली कौन है बबुआ?"
दिवाकर ने कामिनी का संक्षिप्त परिचय देकर कहा, "हरीश बाबू इसी नाम से अपनी स्त्री को पुकारते हैं, उनका अपना एक मकान भी तो है।"
सुनकर किरणमयी मौन हो रही, क्योंकि 'मकानवाली' शब्द इसके पूर्व कलकत्ता में नौकरानियों के मुँह से जिन मकानवालियों के लिए उसने सुना था, उनमें से कोई भी भले घर की गृहिणी नहीं थी। इसीलिए दिवाकर जब उनको अपने साथ यहाँ लाने के लिए तैयार हुआ तो उस समय किरणमयी ने तनिक हँसकर स्निग्ध स्वर से कहा, "वे लोग अच्छे आदमी तो हैं न बबुआ?"
दिवाकर उसी क्षण गरदन हिलाकर आवेग के साथ बोला, "बहुत ही अच्छे आदमी हैं वे लोग भाभी। एक बार बातचीत करने से...।"
किरणमयी ने कहा, "तो आज रहने दो न। किसी दूसरे दिन।"
दिवाकर सिर हिलाकर बोला, "नहीं भाभी, मैं तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ, वह इसी समय आना चाहती है, जबकि उनके ही मकान में जाकर ठहरना पड़ेगा तब, जाऊँ भाभी बुलाने?" यह कहकर दिवाकर अत्यंत अधीर होकर उठ खड़ा हुआ और साथ ही उसके नेत्रों और कंठ-स्वर से छोटे भाई का स्नेह-भरा हठ निकलकर मानो किरणमयी की भूल को गरम शूल की तरह बनाकर उसके हृदय में बिंध गया। एकाएक प्रबल शोक-भरी लंबी साँस उसके गले तक उमड़ उठी और निकलते हुए आँसू को छिपाने के लिए किरणमयी ने किसी प्रकार कहा, 'अच्छा, तो जाओ।"
यह बात सच है कि किसी अपरिचित स्थान को जाने के मार्ग में कोई मित्र या साथी मिल जाए तो यह सौभाग्य की ही बात मानी जाती है। अंत में यही विचार करके संभवतः उसने दिवाकर के व्यग्र अनुरोध को स्वीकार किया था, लेकिन जब वह सचमुच ही उसे बुलाने के लिए जल्दी बाहर चला गया तो उस समय अपनी अवस्था स्मरण करके किरणमयी को बड़ी लज्जा जान पड़ने लगी। जो आकर उपस्थित होगी, वह बंगाली औरत है, उम्र बड़ी हो चुकी है। कौन जाने उसके नेत्रों को धोखा देना संभव होगा या नहीं। दिवाकर की आयु के साथ उसकी आयु की तुलना करने से बंगाली समाज की दृष्टि में अच्छी न जँचेगी, केवल इसी बात का विचार करके किरणमयी लज्जा से संकुचित हो उठी।
थोड़ी ही देर बाद दिवाकर के पीछे-पीछे मकानवाली आ पहुँची। उसकी ओर दृष्टिपात करने के साथ ही किरणमयी को पता चल गया कि यह भले घर की स्त्री नहीं है। जो स्त्रियाँ कलकत्ता में दासीवृत्ति करके जीवन-निर्वाह करती हैं, यह उन्हीं में से एक है। उसकी छाती के ऊपर से एक बोझ हट गया। हँसते हुए मुख से उसने कहा, "आओ, बैठो?"
किरणमयी का रूप देखकर मकानवाली अभिभूत होकर खड़ी रही। बाद को गले में आँचल डालकर उसने झुककर प्रणाम किया और दरवाजे के निकट बैठकर कहा, "बाबू के मुँह से सुनकर मकानवाले ने कहा, जाओ तो ब्राह्मणी हैं, उनको प्रणाम कर आओ। तो माँजी, मगों के देश में तो तुम जा रही हो, लेकिन वहाँ कोई भी ऐसा मर्द या औरत नहीं है, जो मकानवाली के मकान में चूँ तक भी करे। झाड़ू से मारकर उसका विष झाड़ फेंकूँगी न?" यह कहकर झाड़ू के अभाव में मकानवाली ने केवल अपना हाथ ऊपर उठाकर दिखा दिया
उसके मुँह की ओर एकाएक दृष्टिपात करके मकानवाली बोल उठी, "यह कैसी बात है

बहू, तुमने अपना सिर ऐसा धो डाला है कि माँग में सिंदूर का तनिक भी चिह्न नहीं है। सिंधोरा जरा दे दो तो, मैं माँग में सिंदूर लगा दूँ।''

किरणमयी इसके लिए पहले से ही तैयार बैठी थी। उसने बायाँ हाथ दिखाकर कहा, ''नहीं, सिर धोरे से नहीं, मेरी माँग का सिंदूर एक साल से काली माई के पैरों से बँधा हुआ है। उस वर्ष बाबू के प्राणों की आशा नहीं थी, सिंदूर को बंधक रखकर ही अपनी सुहाग की चूड़ियों को बचा सकी हूँ।'' यह कहकर एक लंबी साँस खींचकर उसने दिवाकर की ओर कनखियों से देखा, उसका मुख लज्जा से और कुंठा से एकदम बरदरंग हो गया था।

''ऐसी बात है!'' कहकर मकानवाली ने सहानुभूति प्रकट करके कहा, ''तो हमारे यहाँ अराकान में भी कालीजी का मंदिर है। वहाँ पहुँचते ही पूजा चढ़ाकर सिंदूर बंधक से छुड़ा लेना बहू, नहीं तो लोग न जाने क्या सोचने लगेंगे। अराकान जैसी बुरी जगह तीनों लोकों में कहीं भी कोई है क्या? केवल हमारे ही डर से वहाँ के लोग कुछ-कुछ दबे रहते हैं, नहीं तो...।''

किरणमयी ने हँसकर कहा, ''इसी विषय पर तो बाबू के साथ आज दो दिनों से बातचीत चल रही है। वे तुम दोनों की बहुत ही प्रशंसा कर रहे थे। वह तुम्हारे सामने मैं क्या कहूँ? जहाज पर चढ़ने के बाद से हम दोनों भय के मारे सूखे जा रहे हैं। क्या होगा? यह तो भगवान् ही...।''

बात पूरी भी न हो सकी, ''भय कैसा माँजी!'' कहकर अभय प्रदान करके मकानवाली अपनी बड़ाई की झड़ी लगाने लगी और देखते-देखते दोनों की घर-गृहस्थी, सुख-दुःख की कहानी इस प्रकार जम गई कि कोई भी यह नहीं कह सकता कि दस मिनट पहले दोनों में तनिक भी परिचय नहीं था।

निकट ही कुरसी पर दिवाकर जो बैठा तो फिर उस पर से उठा नहीं। किरणमयी कितनी ही असत्य बातें कैसे निःसंकोच और सहूलियत के साथ बे रोक-टोक बोल सकती है, यह सुनते-सुनते वह मानो हत-चेतन की भाँति स्तब्ध हो गया था। इतनी देर बाद एकाएक होश में आकर वह ज्योंही उठकर चले जाने को तैयार हुआ, त्योंही किरणमयी बोल उठी, ''सारा दिन तो तुमने खाया नहीं, फिर बाहर जा रहे हो क्या?'' प्रत्युत्तर में दिवाकर ने जो बात कही, वह सुनाई नहीं पड़ी, लेकिन समझ में आ गई। किरणमयी ने घबराकर कहा, ''नहीं, नहीं, यह नहीं होगा। तुम एक बार बाहर जाओगे तो फिर शीघ्र न आओगे, यह मैं जानती हूँ।'' मकानवाली के मुँह की ओर देखकर हँसते हुए मुख से उसने कहा, ''सास-ससुर नहीं हैं, ब्याह होने के बाद से मुझे सदा इसी बात का दुःख रहता है। खिलाने के लिए मानो मारपीट तक करनी पड़ती है।'' फिर तनिक मुसकराकर बोली, ''मैं ही ऐसी हूँ कि जोर-जबरदस्ती करके खिला-पिला सकती हूँ और कोई स्त्री होती तो आँसू बहाते-बहाते और रोते-रोते उसके दिन बीत जाते।''

घोर लज्जा से दिवाकर का सिर एकदम झुक गया।

मकानवाली ने हँसकर कहा, ''हाँ बाबू, इसी प्रकार क्या तुम दोनों विदेश में जाकर घर-गृहस्थी चलाओगे? लेकिन मेरे मकान में यह न होगा बाबू, मैं बहू को दुःख न देने दूँगी, यह मैं कहे देती हूँ।'' किरणमयी के मुँह की ओर देखकर वह एकाएक पूछ बैठी, ''हाँ बहू, बाबू संभवतः तुमसे उम्र में बहुत बड़े नहीं हैं, समान ही उम्र के जान पड़ते हैं, ठीक है न?''

किरणमयी ने उसी क्षण सिर हिलाकर कहा, "कुलीन ब्राह्मण का घर ही तो है, मैं ही आयु में बड़ी न हुई, यही मेरा सौभाग्य है! हम दोनों एक ही उम्र के हैं! वैसाख में उनका जन्म हुआ था और मेरा जन्म आषाढ़ में हुआ था, यही सिर्फ दो ही महीने के ही तो बड़े हैं। बहुत से लोग तो मुझे ही आयु में बड़ी बताते हैं। यह कैसी लज्जा की बात है।" यह कहकर किरणमयी मुँह बंद कर मुसकराने लगी।

मकानवाली इस हँसी में सम्मिलित नहीं हुई, बल्कि गंभीर मुँह से उसने कहा, "कुलीन घर के लिए यह लज्जा की क्या बात है! सुनती हूँ कि दस वर्ष के वर के साथ पचास वर्ष की बुढिया का भी ब्याह हो जाता है। भले ही हो जाए, इसके लिए कोई बात नहीं। वहाँ जाकर पूजा चढ़ाकर सिंदूर चूड़ी पहन लेना, नहीं तो सुहागिन की तरह नहीं जान पड़ती हो। अब मैं जाती हूँ, तुम लोग खाओ-पीओ, फिर संध्या के बाद आऊँगी।" यह कहकर किरणमयी के पैरों की धूलि सिर पर चढ़ाकर वह उठ खड़ी हुई।

सैंतीस

सतीश के एकांतवास की व्यवस्था यद्यपि आज भी वैसी ही है, लेकिन उसकी उस वैराग्य-साधना की धारा इस बीच ठीक मार्ग से हटकर कितनी दूर चली गई, यह बात जिस किसी ने दो महीने पूर्व देखी है, उसी की दृष्टि में पड़ जाएगी।

जो मनुष्य अपनी इच्छा से निर्वासन का दंड ग्रहण कर इस स्वजन-शून्य स्थान में अकेले रहने के लिए आया है, उसका एकाएक वेशभूषा के प्रति अनुराग बढ़ जाने का कारण क्या है और किसलिए पक्षियों के गान के बदले में उसकी अपनी गाने की पुस्तकें फिर पेटी के अंदर से निकल पड़ी हैं और सारंगी, सितार, बाँसुरी आदि बाजे क्यों अपने-अपने अनादृत स्थानों को छोड़कर फिर पुराने मित्रों की भाँति मेज के ऊपर आ जमा हुए और उसके मुख की वह मलिन छाया भी किस प्रकार सहसा तिरोहित हो गई, यह सब सोचने की बातें हैं।

वास्तव में दो-तीन महीने पूर्व के सतीश और इस समय के सतीश में इतना अंतर हो गया है कि एकाएक उसको पहचानना भी कठिन हो गया है।

यद्यपि इस इतने बड़े अद्‌भुत परिवर्तन का कारण खोलकर न बताने से भी संभवतः काम चल सकता था, लेकिन केवल यही भय हो रहा है कि कहीं संथाल परगने की असाधारण आबोहवा अच्छी समझकर कितने ही नासमझ लोग उस ओर दौड़ न पड़ें।

इसलिए इतना ही बता देना आवश्यक है कि यद्यपि किसी ओर से विवाह का प्रस्ताव अभी तक स्पष्ट रूप से उठाया नहीं गया है, फिर भी आत्मीय स्वजनों के निकट सतीश और सरोजिनी के मन की बात सुस्पष्ट हो जाने में कुछ भी दोष नहीं था।

सरोजिनी की माँ जगत्तारिणी का आग्रह ही इस विषय में सबसे प्रबल है, यह एक बात एक वर्ष पूर्व कलकत्ता में ही ज्ञात हो गई थी, लेकिन आग्रह व्याकुलता से अधिक रहने के कारण ही संभवतः केवल जगत्तारिणी के मन में ही इस संशय की भी एक छाया पड़ी थी कि उनकी शिक्षाभिमानिनी कन्या, पुराने समाज और संस्कारों को अच्छा न समझकर सतीश को ग्रहण करने को प्रस्तुत होगी या नहीं। अभी थोड़े दिन हुए, वह अपने नैहर शांतिपुर गई है। जाते समय वह इस बात का संकेत कर गई हैं कि वहाँ से लौटते ही वह यह

बात पक्की कर देंगी।

सवेरे सतीश बेले पर नया तार चढ़ा रहा था। उसी समय बिहारी के साथ एक भले आदमी आ गए। ज्योतिष के घर के मुनीम थे। जगत्तारिणी के साथ वह शांतिपुर गए थे, फिर उनके साथ ही लौट आए हैं।

मुनीम ने नमस्कार करके कहा, ''माँजी ने आज आपको निमंत्रण भेजा है। वहीं भोजन करना पड़ेगा।''

खबर सुनकर सतीश की छाती मानो उछल उठी, उसने पूछा, "वह कब लौटीं?"

मुनीम ने कहा, "आज तीन दिन हुए।"

प्रायः छह-सात दिनों से सतीश उस ओर नहीं गया था। अपने संबंध की बात अत्यंत स्पष्ट हो जाने के बाद से ज्योतिष बाबू के घर जब-तब जाने में उसे लज्जा जान पड़ती थी। उसने कहा, "अच्छा, आप माँजी से कह दीजिएगा, मैं दस-ग्यारह बजे के अंदर ही आ जाऊँगा।"

"जैसी आज्ञा!" कहकर वह आदमी नमस्कार करके चला गया।

सतीश को निमंत्रण भेजकर भी जगत्तारिणी भोजन का कोई उद्योग न करके ही निश्चिंत थीं, क्योंकि उनकी धारणा थी कि सतीश संध्या के पहले न आएगा। अब मुनीम के मुँह से यह समाचार सुनकर वह घबरा गई और रुष्ट भी हो उठीं।

आज एकादशी थी। उनको अपने लिए किसी तैयारी की आवश्यकता नहीं थी और जो विधवा ब्राह्मणी उनके घर रसोई पकाती थी, वह भी दो दिन से शांतिपुर में ही मलेरिया ज्वर से बीमार पड़ गई थी।

बहुत ही झुँझलाकर उन्होंने मुनीम से कहा, "तुम इस वक्त के लिए निमंत्रण क्यों दे आए? तुमको क्या तनिक भी बुद्धि नहीं है?"

मुनीम ने डरते-डरते कहा, "मैंने तो कही नहीं, उन्होंने स्वयं ही इस वक्त आने की बात कही थी।

जगत्तारिणी ने तब क्रोध करके कहा, "तो तुम ही जाओ, देखो मछली कहाँ मिलती है, जाकर जल्द खरीद लाओ।"

आज सवेरे ही जिस लिए उनका मन बिगड़ गया था, उसका कारण था। सतीश के पास निमंत्रण भेजने के बाद ही उनको खबर मिली कि कल रात को सहसा शशांकमोहन फिर आ पहुँचे हैं। इस आदमी को उसके अंग्रेजी चाल-ढाल के कारण वे किसी दिन अच्छी दृष्टि से नहीं देखती थीं और विशेष रूप से जबसे उन्होंने सुना था कि वह सरोजिनी से विवाह करना चाहता है, तभी से वह मनुष्य उसकी दोनों आँखों का शूल सा बन गया था। बीस दिन पूर्व जब वह किसी काम के बहाने कलकत्ता से यहाँ आया था, तब जगत्तारिणी ने उससे एक प्रकार स्पष्ट रूप से कह दिया था कि उसकी कन्या के साथ उनका विवाह होना असंभव है, तो भी यह निर्लज्ज, बिना सूचना दिए ही पुनः आ गया है, सुनकर उनका चित्त संशय से कंटकित हो उठा था। इसके अतिरिक्त यह खबर कुछ पहले उनको मिल गई होती तो वह संभवतः सतीश को निमंत्रण ही नहीं भेजतीं। किसलिए यह खबर ठीक समय पर उनको नहीं दी गई, इसके लिए ज्योतिष से लेकर घर के नौकर तक पर बिगड़ उठी थीं। सरोजिनी बाहरी बैठकखाने से निकलकर किसी प्रकार माँ की दृष्टि से बचकर ऊपर चली जा रही थी, शशांकमोहन के आने की खबर वह भी नहीं जानती थी, लेकिन जगत्तारिणी ने उसका सिर से पैर तक क्षणभर निरीक्षण किया और क्रोध के स्वर से कहा, "घूमना हो गया न? अब जूता-मोजा तो थोड़ी देर के लिए खोल डालो बेटी। सतीश आज यहाँ खाएगा, मैं स्वयं रसोई न पकाऊँगी तो वह तुम्हारे इस क्रिस्तान के घर में पानी तक भी न स्पर्श करेगा। आओ, घँघरे-टँगरे को उतारकर मेरे रसोईघर में आओ। बूढ़ी माँ की जरा सहायता करने से तुम्हारे ईसामसीह रुष्ट न होंगे बेटी! आओ!"

माँ क्रोध में आने पर किस प्रकार आग की मूर्ति सी बन जाती थीं और सच-झूठ को

लाँघकर जो मुँह से निकलता था, बोल जाती थीं, यह बात किसी से छिपी नहीं थी। सरोजिनी ने कुंठित होकर कहा, "मैं अभी आती हूँ माँ।"

लेकिन माँ का क्रोध इससे भी शांत नहीं हुआ। उन्होंने कहा, "आकर ही तुम मुझे निहाल कर दोगी बेटी! सत्रह-अठारह साल की उम्र हो गई, आज तक थोड़ा सा भात पकाना भी नहीं सीखा। मैं भी गरीब के घर की लड़की नहीं थी बेटी, लेकिन उसी उम्र से गृहस्थी चलाती आ रही हूँ। जिस घर में धर्म-कर्म नहीं है, उस घर में लड़के-लड़कियों को पैदा करना ही व्यर्थ है!" इस कठोर मंतव्य को कड़े स्वर से व्यक्त करके जगत्तारिणी मुँह झुकाकर स्वयं ही रसोईघर में चली गईं।

अड़तीस

एकाएक अपने भाई की बीमारी का तार पाकर जगत्तारिणी को शीघ्रता से शांतिपुर जाना पड़ा था। इसलिए उस समय सतीश के सामने प्रस्ताव रखने का अवसर उन्हें नहीं मिला। आज उसे अच्छी तरह खिला-पिलाकर बात चलाएँगी, मन-ही-मन संकल्प करके, सबेरे उठने के साथ ही उन्होंने मुनीम को निमंत्रण दे आने को भेज दिया था। इसी बीच यह ऐसी घटना हो गई, जिसको किसी ने सोचा भी नहीं था। जिसका आना सबसे अधिक अप्रीतिकर है, एकाएक वही शशांकमोहन सवेरे की ट्रेन से आ पहुँचे हैं, सुनकर जगत्तारिणी के क्रोध का ठिकाना न रहा। मनुष्य की अत्यंत ईर्ष्यालु वस्तु के एकाएक बाधाग्रस्त हो जाने से उसके संदेह का ठिकाना नहीं रहता। इसीलिए ठीक उसी समय एकाएक सरोजिनी को बाहर से आते देखकर उनके समूचे शरीर में विष की ज्वाला फैल गई और यह विचार उत्पन्न हो गया कि शशांक के इस अचानक लौट आने में संभवतः इस आभागिनी लड़की का भी कोई हाथ है। बैरिस्टर लड़के पर तो वह किसी दिन भी पूर्ण विश्वास न कर सकी थीं। वास्तव में उनको दोष दिया भी नहीं जा सकता। उनके हिंदू आचार-भ्रष्ट लड़के-लड़की सतीश की आचार-परायणता को प्रेम की दृष्टि से भी देख सकते हैं, इस बात को वे अपने हृदय में ग्रहण ही नहीं कर सकती थीं।

लड़की को कड़ी बातें सुनाकर वह रसोईघर में चली गईं और दासी को रसोई की तैयारी ठीक करने का आदेश देकर स्नान करने चली गईं, लेकिन एक घंटे के बाद लौट आने पर लड़की की ओर देखकर माता के नेत्र शीतल हो गए।

इसी बीच झटपट स्नान करके रेशमी साड़ी पहिनकर वह माँ के रसोईघर में चली गई थी और हँसिए से तरकारी काट रही थी। पास ही बैठी हुई दासी उसे बताती जा रही थी।

जगत्तारिणी ने चुपचाप क्षणभर निहारकर कहा, "हिंदू की लड़की और किसी भी पोशाक में अच्छी नहीं लगती। तुझे देखकर आज मुझे इसका पता चल गया बेटी। तेरी ओर देखकर इतनी खुशी मुझे और किसी दिन नहीं हुई थी।"

सरोजिनी लज्जा से सिर झुकाकर काम करने लगी। माँ उसी को ताने सुनाकर कहने लगीं, "मैं सब समझती हूँ बेटी, सब समझती हूँ। चाहे वह जितनी परीक्षाएँ क्यों न पास करे, मैं उसे बंदर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कहती, और जिसका संकेत पाकर वह निर्लज्ज फिर यहाँ आ जाए, मेरे जीवित रहते यह बात न होगी, यह मैं शपथ खाकर कहे देती हूँ

बेटी!"

थोड़ी देर तक चुप रहकर उन्होंने फिर कहा, "ज्योतिष कहता है कि लड़कपन में जिसको जैसी शिक्षा मिलती रहती है, उसके मन का खिंचाव भी उसी ओर हो जाता है, लेकिन यह बात सच होगी क्यों? दिन-रात हैट-कोट पहने न रहने से वह पंसद न आएगा, यह बात किस शास्त्र में लिखी है बेटी!"

तैयारी पूरी करके जगत्तारिणी रसोई बनाने बैठीं और एक बार बोलीं, "मेरी मनोकामना भगवान् यदि पूरी कर दे तो तू देख लेना बेटी, उससे तेरा भला ही होगा।"

सरोजिनी सिर झुकाए माँ की मनोकामना क्या है, स्पष्ट रूप से सुन लेने की आशा से कान खोले रही, लेकिन जगत्तारिणी ने फिर उस बात को खोलकर नहीं बताया, अपने मन से वह रसोई पकाने लगीं, वे चुपचाप मन ही मन क्या आलोचना करने लगीं, सरोजिनी यह समझ गई और हैट-कोट के विषय में जिस लज्जाजनक अपवाद का संकेत करके उन्होंने उसको बार-बार चोट पहुँचाई, उसका प्रतिवाद करना भी कठिन नहीं था, लेकिन अत्यंत असहिष्णु स्वभाववाली जगत्तारिणी को कोई भी बात अंत तक सुनाई नहीं जा सकती, यह सोचकर वह चुपचाप बैठी रही।

दिन के लगभग दस बजे कुछ हल्ला-गुल्ला सुनाई पड़ा। मुनीमजी कहीं से खोजकर एक बहुत बड़ी रोहू मछली ले आए थे।

जगत्तारिणी ने रसोईघर से झाँककर मछली देख ली तो प्रसन्न होकर कहा, "वाह! यह तो बड़ी है, लेकिन...।"

सरोजिनी ने कहा, "सतीश बाबू के आने में देर है माँ, अभी दस नहीं बजे हैं।"

जगत्तारिणी ने कहा, "बजने-बजाने की बात नहीं है बेटी, आज तो मेरी एकादशी है, मैं मछली छुऊँगी नहीं। सोचती हूँ कि तुम्हारा ब्राह्मण रसोइया इसे पका सकेगा या नहीं? अच्छा देख तो एलोकेशी, उस घर की रसोई कहाँ तक बन चुकी है?"

दासी के बाहरे जाते ही सरोजिनी ने लज्जित होकर मुँह से धीरे से कहा, 'तुम बताती रहोगी तो क्या मैं न बना सकूँगी?"

जगत्तारिणी ने आश्चर्यभरे मुँह से कहा, "तू बना सकेगी?"

"बना सकूँगी माँ। तुम केवल बतला दो।"

दासी ठिठककर खड़ी हो गई। ऐसी सुंदर बड़ी रोहू मछली के अनजान के हाथ में पड़ जाने की आशंका से वह डर गई। बोली, "यह कैसे हो सकेगा माँ, बाहरी आदमी खानेवाले हैं।"

जगत्तारिणी ने कुछ देर तक कुछ सोचकर कहा, "इससे क्या? मेरा सतीश तो कोई बाहरी नहीं है, वह तो मेरे घर का ही लड़का है। तू मुँह बाए खड़ी मत रह एलोकेशी, उस ओर के चूल्हे को अच्छी तरह लीपकर मछली काटना। तू भी एक काम कर बेटी। रेशमी साड़ी पहिने रहने से तो सुविधा न होगी। अच्छा रहने दे, अपना आँचल अच्छी तरह कमर में लपेट ले।" फिर हँसकर उन्होंने कहा, "आज मछली पकाने से ही तेरा इस विद्या का श्रीगणेश हो जाए। मैं आशीर्वाद देती हूँ, आज के दिन तू सदा मछली ही पकाया करे।"

इस आशीर्वाद से सरोजिनी ने अपना मुँह और भी नीचे झुका लिया। एक घंटे के बाद ज्योतिष किसी काम से माँ के पास आया। रसोईघर के दरवाजे के निकट खड़ा होकर अत्यंत

आश्चर्य से अवाक् हो गया। ध्यान से देखकर उसने कहा, "वह कौन रसोई बना रही है माँ! सरोजिनी है क्या?"

माँ ने हँसकर कहा, "देख तो पहचान सकता है या नहीं!"

"पहचान न सकने की ही बात है माँ, लेकिन वह क्या सचमुच ही रसोई बना रही है या गरदन में ढोल बाँधकर बैठी हुई है।"

माँ ने एक गूढ़ बात का संकेत करके कहा, "हिंदू की लड़की को क्या सीखने की आवश्यकता पड़ती है रे, यह बात तो हम लोग जन्म से ही सीखी रहती हैं, लेकिन...।"

"लेकिन क्या माँ?"

लड़के को तनिक आड़ में ले जाकर जगत्तारिणी ने कहा, "लेकिन मैं अब सोच रही हूँ कि यदि सतीश सुन लेगा तो वह उसके हाथ की बनाई रसोई खाएगा या नहीं।"

ज्योतिष के हँस उठते ही सरोजिनी ने मुँह ऊपर उठाकर देखा। ज्योतिष ने कहा, "माँ तुम सतीश को मनु या पीरों की श्रेणी में रखती हो?"

माँ ने कहा, "तुम लोगों से तो अच्छा ही है!"

ज्योतिष ने कहा, "क्या अच्छा है, सुनूँ तो? सरोजिनी जाकर दाल-भात पकाकर दे आई थी, तभी उस रात को उसे भोजन मिला था, नहीं तो उपवास ही करना पड़ता, यह क्या जानती हो?"

माँ ने गद्गद होकर आश्चर्य से पूछा, "कब रे?"

ज्योतिष ने उस रात की सारी घटना वर्णन करके सुना दी। सुनकर आनंद से विह्वल होकर अभिमान के स्वर से उन्होंने लड़की से कहा, "धन्य है बेटी तू! मैं तभी से सोच में पड़ी हुई मर रही हूँ और तू चुप है?"

ज्योतिष ने हँसकर कहा, "वह भी कैसे जान पाएगी माँ कि तुम मन-ही-मन सोच में पड़कर मरती जा रही हो? लेकिन उस दिन तो मैं खा नहीं सका था, आज खाकर देखता हूँ कि जन्म लेने के साथ ही यह रसोई पकाना कैसे सीख चुकी है।" यह कहकर वह हँसते-हँसते बाहर चला गया।

जगत्तारिणी ने लड़की के लज्जा से झुके मुख की ओर देखकर कहा, "लज्जा की क्या बात है बेटी! अपने ही लोगों को रसोई बनाकर खिलाओगी, इससे बढ़कर सौभाग्य की बात किसी लड़की के लिए और क्या हो सकती है? मैं तब तक पूजा कर आती हूँ?" यह कहकर वह थोड़ी देर के लिए बाहर चली गई।

उसके बाद सारा दिन बीत गया, लेकिन सतीश दिखाई न पड़ा। न आने का कारण भी किसी ने आकर नहीं बताया। सारा दिन छटपटाकर जगत्तारिणी ने संध्या के बाद ज्योतिष को बुलाकर कहा, "अवश्य ही वह किसी झंझट में पड़ गया है, तुमने किसी को खबर लेने के लिए भेज नहीं दिया?"

ज्योतिष ने लापरवाही के साथ उत्तर दिया, "उतनी दूर मैं किसको भेजने जाऊँ माँ?"

जगत्तारिणी ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "क्यों, क्या दरबान एक बार नहीं जा सकता था?"

"आवश्यकता क्या है माँ?"

"यह तू क्या कह रहा है ज्योतिष? उसकी तबीयत खराब हो गई है या नहीं, यह खबर

लेने की भी क्या आवश्यकता नहीं है?''

''क्या आवश्यकता है? वह हमारा आत्मीय भी नहीं है, मित्र भी नहीं है, उसके लिए चिंतित होकर मरते रहने की मैं कोई आवश्यकता नहीं देखता।'' यह कहकर ज्योतिष बाहर चला गया।

केवल इसी थोड़े से समय में सतीश अब उनका कोई नहीं है, उनके मुँह पर लड़के का वह उत्तर जगत्तारिणी को दुःस्वप्न की भाँति जान पड़ा। वह वहीं खड़ी रहीं। थोड़ी ही देर में उपवास से निर्बल हुए मस्तिष्क में कितनी ही प्रकार की विचारधाराएँ घूम गईं, इसे वह भली प्रकार समझ भी न सकीं।

चुपचाप ऊपर जाकर अपने बिछौने पर लेट जाने पर जगत्तारिणी ने सरोजिनी को अपने पास बुलाया और उसके मुख की ओर देखते ही वह और भी डर गईं। थोड़ी देर तक मौन रहकर उन्होंने कहा, ''सरोजिनी, सतीश क्यों नहीं आया, तू जानती है?''

सरोजिनी ने कहा, ''नहीं।''

लड़की के इस अत्यंत संक्षिप्त उत्तर से जगत्तारिणी उठ बैठीं और बोलीं, ''नहीं, यदि तुम जानती ही नहीं तो आदमी भेजकर जान लेने में क्या हुआ था? यह भी मेरे कहने की बात थी?''

सरोजिनी ने मधुर कंठ से कहा, ''भैया का कहना है कि आदमी भेजने की आवश्यकता नहीं है।''

''क्यों नहीं है, यह बात मैं जान लेना चाहती हूँ। जाओ, अभी तुरंत दरबान को भेज दो, जाकर उसकी खबर ले आए।''

''वह तो नहीं है माँ, भैया ने उसे उपेन बाबू के पास तार देने के लिए भेज दिया है?''

''उपेन बाबू को? एकाएक उनके पास तार भेजना क्यों पड़ा?''

''मैं सब बातें नहीं जानती। माँ, तुम भैया से ही पूछ लो।'' यह कहकर सरोजिनी माँ की एक प्रकार से उपेक्षा करके चली गई। अब जगत्तारिणी को एकाएक लगा कि सतीश को अवश्य ही इसके बीच मना कर दिया गया है। इसका कारण क्या है, यह बात कोई भी उनको बताना नहीं चाहता, यह सच है, पर कोई विशेष कारण है, इसमें कोई संदेह नहीं और इस भीषण अनिष्ट का मूल वही शशांकमोहन है और इसी दुरभिसंधि को लेकर वह फिर आया है, इसमें भी उन्हें कोई संदेह नहीं रहा, लेकिन कारण चाहे जितना भी भयानक क्यों न हो, उनके स्वयं उपस्थित रहने की दशा में भी लड़के-लड़की ने उनकी अनुमति के बिना ही सतीश को मना कर दिया है, वह विचार मन में आते ही उनका चित्त क्रोध से परिपूर्ण हो उठा। उसी क्षण उन्होंने एलोकेशी को ज्योतिष को बुला लाने को भेज दिया। इसके आने पर उन्होंने पूछा, ''तूने सतीश को इस मकान में आने के लिए मना कर दिया है?''

ज्योतिष ने आश्चर्य में पड़कर कहा, ''नहीं, यह तुमसे किसने कहा?''

''उपेन के पास तूने सतीश के विषय में कोई तार भेजा है?''

''हाँ।''

''क्या किया है सतीश ने?''

ज्योतिष तनिक चुप रहकर बोला, ''जो काम किया है, वह यदि सच हो तो उस दशा में

उसके साथ हम लोगों का अब कुछ भी संबंध नहीं रह सकता।''

''यह खबर तुझे किसने दी, शशांकमोहन ने। वह दुष्ट है। उसकी बातों पर मैं तनिक भी विश्वास नहीं करती।''

ज्योतिष ने कहा, ''मैं कहता हूँ लेकिन उसकी आधी बात भी यदि सच हो तो मैं कहता हूँ माँ कि सतीश की परछाई छूने में हमें घृणा होनी चाहिए!''

लड़के के तप्त कंठ-स्वर में जगत्तारिणी ने कोमल होकर कहा, ''अच्छी बात है, मुझे स्पष्ट करके ही बता दे न बेटा कि क्या हुआ है। सतीश ने कोई चोरी-डकैती नहीं की है, हत्या करके भी भाग नहीं आया है कि उसकी परछाईं छूने से भी तुम लोगों को घृणा होगी। लड़का ही ठहरा, यदि किसी प्रकार की गलती उसने कर भी डाली हो तो कितने ही लोग ऐसा करते हैं, सुधरते कितनी देर लगती है?''

ज्योतिष ने सिर हिलाकर कहा, ''नहीं माँ, ऐसे अपराध क्षमा नहीं किए जा सकते। वस्तुतः सरोजिनी तो क्षमा न कर सकेगी, यह बात मैं तुमको निश्चित रूप से बताए देता हूँ।''

जगत्तारिणी ने कुछ सोचकर कहा, ''उसका अपराध क्या है, सुनूँ तो?''

''फिर सुन लेना माँ। उपेन की चिट्ठी जब तक नहीं आती, तब तक इस आलोचना की आवश्यकता नहीं है।'' यह कहकर ज्योतिष दुबारा अनुरोध सुनने के पूर्व ही कमरे से बाहर चला गया।

इतनी देर तक उत्तेजना के आवेगों से जगत्तारिणी बिछौने पर बैठी हुई थीं, लड़के के चले जाने पर निर्जीव की भाँति पड़ गईं और लंबी साँस लेकर बोलीं, ''भगवान्, इस कलिकाल में किसी को भी तुमने विश्वास करने योग्य नहीं रखा है!''

अनुमान से ही वह बहुत सी बातें समझ गईं, इसीलिए केवल सतीश के लिए नहीं, पति की बातों को स्मरण करके उनकी दोनों आँखों से आँसू झरने लगे।

रात को उन्होंने लड़की को बुला भेजा था। एलोकेशी ने सरोजिनी की कोई आहट न पाकर, लौटकर कहा, ''बहनजी सो गई हैं।''

यह सुनकर उन्होंने अपने सिर पर हाथ पटका। वह लड़की ऐसी बुरी खबर सुनकर भी सो सकती है अर्थात् वह सतीश की अपेक्षा मन-ही-मन उसी बंदर के प्रति अधिक अनुराग रखती है। यह बात सोचकर लड़की के प्रति उनके क्रोध और अनादर की सीमा न रही।

दूसरे दिन लगभग तीन बजे फाटक के सामने साइकिल खड़ी करके सतीश ने बाहरी बैठकखाने में प्रवेश किया।

उसके सूखे मुँह पर इधर-उधर बिखरे हुए रूखे बालों ने उपस्थित सभी लोगों की दृष्टि आकर्षित की। सरोजिनी ने मुँह ऊपर उठाकर देखा, लेकिन कोई बात नहीं कही। ज्योतिष ने पूछा, ''आपकी तबीयत क्या ठीक नहीं है सतीश बाबू?''

सतीश ने तनिक हँसने का प्रयास करके कहा, ''नहीं।''

किसी ने फिर कोई भी बात नहीं कही, यह देखकर सतीश मन-ही-मन अत्यंत आश्चर्य में पड़ गया। वह सोचते-सोचते आ रहा था कि आज वहाँ पहुँचने के साथ ही अभियोग-शिकायत का अंत न रहेगा। इसीलिए अपने घर के अंदर जाने को तत्पर होकर स्वयं ही कहा, ''कल के अपराध के लिए पहले माँ से क्षमा माँग आऊँ, उसके बाद दूसरा काम

होगा।"

शशांक अब तक तीखी दृष्टि से सतीश की ओर देख रहा था। उसी ने कहा, "माँ अभी सो रही हैं, उनको जगाकर अभी क्षमा माँगने के लिए जल्दी ही क्या है? बैठिए, आपके साथ कुछ बातें करनी हैं।"

उसकी बातों के ढंग से सतीश अत्यंत आश्चर्य में पड़कर बोला, "मेरे साथ?"

शशांक बोला, "जी हाँ, दुर्भाग्यवश करने की आवश्यकता ही तो है।" फिर ज्योतिष को दिखाकर बोला, "आप तो जानते ही हैं, मैं उनका एक परम मित्र हूँ, नहीं-नहीं, ज्योतिष बाबू, आप उठिएगा मत, आपके भाग जाने से कैसे काम चलेगा? अपनी नालिश आप लोगों के सामने ही करना चाहता हूँ। आप दोनों ही बैठिए।" यह कहकर उसने सरोजिनी की ओर तिरछी दृष्टि से देखा, लेकिन सरोजिनी इस प्रकार गरदन झुकाए रही कि उसने कुछ देखा ही नहीं।

शशांक ने सामने की मेज पर हाथ पटककर कहा, "बचपन से मेरा यही स्वभाव है कि जिन लोगों को प्यार करता हूँ, उनके संबंध में किसी प्रकार भी मैं उदासीन नहीं रह सकता। इसीलिए कल यह बात सुनते ही मैंने मन ही मन कहा, यह तो अच्छी बात नहीं है, सतीश बाबू के इस निर्जनवास की खबर लेनी चाहिए। आप संभवतः रुष्ट होंगे सतीश बाबू! लेकिन मैं तो अपने स्वभाव के विरुद्ध चल नहीं सकता। आपका क्या विचार है ज्योतिष बाबू?"

ज्योतिष चुपचाप सिर झुकाए बैठा रहा। सतीश भी चुपचाप निहारता रहा।

इन श्रोताओं की अटूट नीरवता के बीच शशांक की उत्तेजना का वेग अपने आप ही ढीला पड़ गया। उसने पहले की अपेक्षा संयत कंठ से कहा, "ज्योतिष मेरे परम मित्र हैं, इसीलिए आपसे कुछ प्रश्न करने का मुझे अधिकार है। आप तो जानते हैं...।"

उसी बात के बीच में ही सतीश ने गरदन हिलाकर कहा, "नहीं, मैं मित्रता की बात कुछ भी नहीं जानता, लेकिन आपका प्रश्न क्या है, सुनूँ तो!"

शशांक ने गले को साफ करके कहा, "मैं जान लेना चाहता हूँ कि आप यहाँ आकर क्यों ठहरे हैं?"

सतीश ने कहा, "मेरी इच्छा। आपका दूसरा प्रश्न?"

कुछ घबराहट में पड़कर ज्योतिष के मुँह की ओर देखकर शशांक कहने लगा, "राखाल बाबू को कलकत्ता का डेरा खोजने में बड़ी कठिनाई हुई है। सतीश बाबू को वे पहचानते हैं, उन्होंने ही कहा...।"

सतीश के दोनों नेत्र अँगारे की तरह जलने लगे, उसने कहा, "चूल्हे में जाए राखाल बाबू। आप अपनी बात कहिए।"

इस बार ज्योतिष ने मुँह ऊपर उठाकर कहा, "सतीश बाबू, शशांक मेरे अनुरोध से ही आपसे पूछ रहा है। आपकी इच्छा हो तो उत्तर नहीं भी दे सकते हैं, लेकिन उसका अपमान आप मत कीजिए। हम लोगों के साथ आपने जो व्यवहार किया है, उसको ध्यान में रखने से आपसे कोई भी प्रश्न करना उचित नहीं था, केवल अपनी माँ के कारण ही मुझे आपके अपने ही मुँह से एक बार सुन लेने की आवश्यकता है। अच्छी बात है, मैं ही प्रश्न करता हूँ, सावित्री कौन है; और उसके साथ आपका क्या संबंध है?"

सतीश पल भर मौन होकर निहारता रहा, फिर बोला, "सावित्री कौन है, यह मैं नहीं

जानता ज्योतिष बाबू, लेकिन उसके साथ मेरा क्या संबंध है, इसका उत्तर देने की मैं आवश्यकता नहीं समझता।''

''क्यों?''

''क्योंकि कहने से भी आप लोग समझ न सकेंगे।''

''लेकिन जिस प्रकार भी हो, हम लोगों का समझ लेना आवश्यक है। उसको लाकर आपने कहाँ रखा है, यह बता देने से ही संभवतः हम समझ जाएँगे।''

सतीश ने ज्योतिष के मुँह पर अपने जलते हुए नेत्र स्थिर करके शांत स्वर से कहा, ''देखिए ज्योतिष बाबू, मैंने किसी दिन प्रार्थना करके आप लोगों के साथ घनिष्ठता बढ़ाने की चेष्टा नहीं की, इसीलिए प्रश्नोत्तर के बहाने कुछ अप्रिय बातों से तर्क-वितर्क करने की आवश्यकता मैं नहीं समझता। मैं समझ गया हूँ क्या घटना हुई है। इसलिए आप दोनों को जितना जानने की आवश्यकता है, उतना मैं स्वयं बतलाता हूँ। सावित्री कहाँ चली गई है, यह मैं नहीं जानता। क्यों आप जानना चाहते हैं? उसका विवरण एकदम आवश्यक है, लेकिन यह बात स्वयं ही सच्ची है कि सावित्री चाहे जो हो, यदि अपनी इच्छा से वह मुझे छोड़कर चली न जाती, तो मैं जितने दिनों तक जीवित रहता, उसे अपने माथे पर रखता। यह बात केवल आप ही लोगों के सामने नहीं, सारी दुनिया के सामने स्वीकार करने में मुझे लज्जा नहीं मालूम होती। आशा है, इसके बाद और कुछ पूछने की आप लोगों को जरूरत नहीं है। रहने पर भी मैं उत्तर न दे पाऊँगा।''

सतीश के संक्षिप्त उत्तर से सभी एक साथ नेत्र फैलाकर देखते हुए पत्थर की मूर्ति की भाँति बैठे रह गए। सरोजिनी के मुँह पर उसकी यह अमानुषिक हृदयहीन स्पर्द्धा असीम निर्लज्जता को भी बहुत दूर छोड़कर चली गई। बहुत देर तक स्तंभित की भाँति बैठे रहकर ज्योतिष ने बड़े यत्न से अपने को होश में लाकर सिर हिलाकर कहा, ''नहीं, अब आपसे हम लोगों को कुछ भी पूछना नहीं है। जो कुछ था, वह उपेन के उत्तर से पूरा हो गया है, यह देखिए।'' कहकर उसने तार का फार्म उसके सामने डाल दिया।

''उपेन भैया का तार? कहा, देखूँ तो?'' कहकर सतीश ने व्यग्र हाथों से फार्म उठा लिया। पूरा पढ़कर और लौटाकर थोड़ी देर चुप हो रहा। उसके बाद एक लंबी साँस लेकर बोला, ''सब सच है। मेरे उपेन भैया कभी झूठ नहीं बोलते। सचमुच ही मैं अच्छा नहीं हूँ, वास्तव में मेरे साथ किसी को संपर्क न रखना चाहिए। शायद मैं खुद ही मन ही मन इस बात को समझ गया था, इसीलिए एक दिन इस तरह जंगल में भाग आया था।'' यह कहते-कहते उसका कंठ-स्वर मानो किसी मंत्र-बल से ज्वरपीड़ित मनुष्य की आवाज की तरह गद्गद हो गया, लेकिन किसी ने कोई बात नहीं कही और सतीश स्वयं भी स्तब्ध होकर बैठा रहा, लेकिन दूसरे ही क्षण कहीं छाती की लंबी साँस के साथ उसे जान पड़ा कि एक जटिल समस्या की मीमांसा हो गई। कल सवेरे भी जगत्तारिणी के निमंत्रण के साथ ही उसके मन में कितनी ही चिंताएँ उत्पन्न हुई थीं। सरोजिनी का हृदय पाने की आकांक्षा एकाएक कब उसके हृदय में जाग उठी थी, इस बात की अभी इस समय याद नहीं पड़ रही थी, यह सच है, लेकिन निभृत अंतःकरण में उसकी आकांक्षा तो थी ही। नहीं तो ऐसी घटना कैसे हो गई? यह अमृत किस समुद्र के मंथन से निकला था? सावित्री को खो देने के बाद से ही उसने इस सत्य की जानकारी कर ली थी कि युवती रमणी का मन पाना एक बात है, लेकिन उस

प्राप्ति को काम में लगाना पूर्णतः भिन्न वस्तु है, क्योंकि यह प्राप्ति जब नर-नारियों के निभृत हृदय में गुप्त रीति से चुपके-चुपके पूर्णता को पहुँचती रहती है, तब संसार के बाहरी लोगों को उसका पता नहीं चलता, लेकिन जिस दिन बाहरी लोगों की सम्मति के बिना और एक कदम भी आगे बढ़ने का उपाय नहीं रह जाता, उसी दिन घोर दुःख का दिन आ जाता है। यह पा जाना कितना कठिन है, यह रत्न कितना दुर्लभ है, बाहर के लोग इस पर विचार ही नहीं करते, वे केवल अपने शास्त्रों को लेकर, समाज को लेकर, लोकाचार को लेकर, विरुद्ध स्वर उठाकर हल्ला मचाते हैं, बाधा पहुँचाते हैं, काम को विफल करते हैं, यही मानो उनका कर्तव्य है। सरोजिनी को शायद वह प्यार करता है। उस ओर से भी यदि प्रतिदान का भाव जाग उठा हो तो, उसको वह कहाँ किस जगह पर प्रतिष्ठित करेगा? समाज तो दोनों के भिन्न हैं।''

कल भी उसे अपने वृद्ध पिता का चिंतित गंभीर मुख बार-बार याद आ रहा था। उपेंद्र भैया के घर के भट्टाचार्यजी का तीखा स्वर हजारों बार उसके कानों में आकर बिंध गया था, मुहल्ले के शत्रु-मित्र सभी लोगों का तेज सिर हिलाना उसके कलेजे पर बहुत बार धक्का पहुँचा चुका है, तो भी इस विरोधी जगत् के सभी लोगों की सम्मिलित 'नहीं-नहीं,' की आवाज के बीच केवल सरोजिनी का मौन लज्जानत मुख ही उसे सबल बनाकर रख सका था।

लेकिन आज जब कोई भय नहीं है, एक दिन में अचिंतनीय उपाय से सभी गाँठें खुल गईं और सभी दुश्चिंताएँ टल गईं, जान बच गई।

ये सब बातें मन ही मन बोलकर वह चौंक पड़ा और तुरंत ही मुँह ऊपर उठाकर उसने देखा कि सभी उसी तरह सिर नीचा किए हुए चुपचाप बैठे हुए हैं। सरोजिनी के मुँह की ओर उसने देखा, लेकिन प्रायः कुछ भी उसे दिखाई नहीं पड़ा। तब उसी को संबोधन करके उसने कहा, ''तुम-आप मेरे पुराने डेरे पर एक दिन जिसकी साड़ी सुखाने के लिए टंगी हालत में देख आई थी, उसी का नाम है सावित्री। मैंने सोचा था, एक दिन खुद ही आपको सभी बातें बताऊँगा, लेकिन किसी दिन वह सुयोग मुझे नहीं मिला, वह साहस भी मुझमें नहीं था।''

इतना कहकर वह उठ खड़ा हुआ और बोला, ''ज्योतिष बाबू, दोष मेरा है, यह मैं अनुभव कर रहा था, इसीलिए मेरे मन में सुख नहीं था।'' यह कहकर वह थोड़ी देर तक चुप रहकर बोला, ''फिर भी किसी दिन मैंने किसी को धोखा नहीं दिया, सब बातें मैं जानता हूँ, तो भी मुझे अब कुछ कहना नहीं है।''

ज्योतिष ने मुँह ऊपर उठाकर कुछ कहना चाहा, लेकिन गले से आवाज नहीं निकली।

सतीश ने मानो एक लंबी साँस को रोककर कहा, ''मैं जा रहा हूँ। मेरा एक अनुरोध है, मेरी बातों की आलोचना करके आप लोग मन खराब मत कीजिएगा। मैं किसी बहाने से आप लोगों के सामने न आऊँगा, मुझे आप लोग भूल जाइएगा।'' यह कहकर वह धीरे-धीरे बाहर चला गया।

ज्योतिष ने बगल की ओर निगाह उठाई तो डरते हुए देखा कि सरोजिनी का सिर बिल्कुल ही उसके घुटनों के पास झुक पड़ा है, ''अरे सरोजिनी! सरोजिनी!'' कहकर उसके चिल्ला उठते ही सरोजिनी की शिथिल मुट्ठियाँ कुरसी की बाँहों से खिसक गईं और वह

नीचे दूरी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। अभिमान और अपमान के क्रोध से ज्योतिष की बुद्धि ऐसी आच्छन्न हो गई थी कि सतीश के विदा हो जाने का यह कांड सरोजिनी को कितना बड़ा आघात पहुँचाएगा, इसका खयाल ही उसे नहीं था।

इसीलिए बड़ी शुश्रूषा के बाद सरोजिनी को जब होश आ गया और वह जब रोते-रोते हिलते-डुलते उस कमरे को छोड़कर चली गई, तब ज्योतिष के सिर पर मानो बिल्कुल ही वज्र गिर पड़ा।

बहन को वह केवल प्राणाधिक प्यार ही नहीं करता था, बल्कि अपनी सर्वांगसुंदरी लावण्यवती शिक्षित बहन उज्ज्वल आत्म-मर्यादा ज्ञान पर भी उसको अगाध विश्वास था, लेकिन भीतर-ही-भीतर वह इतना अधिक प्यार भी कर सकती थी और यह सब किसी काम में भी न लगेगा, यह सब जानते हुए भी एक चरित्रहीन लंपट के पैरों में सब कुछ न्योछावर कर, होश गँवाकर सूखी घास की तरह गिर पड़ेगी, यह आशंका कल्पना में भी उसने नहीं की थी और उसके चेहरे पर वेदना का जो चित्र उसने अभी अंकित होते देख लिया, वह कितना बड़ा है, इसका निरूपण करने की शक्ति उसमें न थी, तो भी वह बहुत देर तक जड़वत् बैठा रह गया, फिर शशांकमोहन की तरफ देखकर बोला, ''आप शायद आज की गाड़ी से कलकत्ता लौट जाएँगे?''

शशांकमोहन ने कहा, ''नहीं, वहाँ ऐसा कोई जरूरी काम नहीं है।''

ज्योतिष और कुछ प्रश्न न करके अंदर चला गया और अपने कमरे में जाकर दरवाजा बंद करके लेट रहा। उस रात को शशांकमोहन को अकेले ही भोजन करना पड़ा, क्योंकि ज्योतिष की आहट बिल्कुल ही नहीं मिली।

जगत्तारिणी एक-एक करके लड़के से सब कुछ सुनकर लंबी साँस छोड़कर बड़ी देर तक स्तब्ध ही रहीं। उसके बाद बोलीं, ''यह सब मेरे ही दुर्भाग्य का फल है।'' परलोकगत पति को याद करके उन्होंने कहा, ''मैं खुद तो सारा जीवन इसी तरह जलती-भुनती रही हूँ, अब जो दिन आगे बाकी हैं, उनमें भी यदि लड़के-लड़की के कारण न जलना पड़ा तो मेरे पापों का पूरा प्रायश्चित्त कैसे होगा? अच्छा बेटा, तुमको जो पसंद हो, उसी के साथ बहन का ब्याह कर दो, मैं अब कुछ न बोलूँगी।''

फिर एक लंबी साँस लेकर उन्होंने कहा, ''मन अंतर्यामी है, इसीलिए अचानक उसका आना सुनकर ही उस दिन मेरी छाती धड़क उठी थी ज्योतिष।''

लेकिन ज्योतिष ने कोई बात नहीं कही। वह मन ही मन समझ रहा था कि काम इतना सहज नहीं है। इसीलिए जो कुछ हो गया है, वह हो ही गया, कहकर आँखें बंद करके बैठे रहने से ही काम न चलेगा। हो सकता है कि एक दिन उस चरित्रहीन के पास खुद जाकर उसे समझा-बुझाकर लौटा लाना पड़े।

कल सारा दिन उसने सरोजिनी को एक बार भी कमरे से बाहर आते नहीं देखा, लेकिन आज तीसरे पहर चाय पीने के लिए बाहरी कमरे में प्रवेश करते ही उसने देख लिया कि पहले से ही सरोजिनी आ गई है और शशांकमोहन के साथ धीरे-धीरे बातचीत कर रही है।

ज्योतिष पास आकर एक कुरसी खींचकर बैठ गया। यद्यपि बहन के श्रीहीन मलिन मुँह की तरफ देखने पर उसे कुछ भी समझना बाकी न रहा, तो भी उसकी छाती पर से मानो एक भारी पत्थर उतर गया।

खी-पी लेने के बाद भी बड़ी देर तक बहुत सी बातें हुईं, लेकिन उस दिन की किसी ने भी चर्चा नहीं की। संध्या के बाद बहुत कुछ स्वच्छंद चित्त से बहन को चले जाते देखकर ज्योतिष ने मन ही मन कहा, ''दुर्घटना को मैंने जितने बड़े रूप में अनुमान किया था, वह उतने बड़े रूप में नहीं है। हो सकता है कि थोड़े ही समय में सबकुछ ठीक हो जाएगा।''

उस दिन बड़ी रात तक दोनों मित्रों में बातचीत होती रही, यहाँ तक कि ज्योतिष ने अपनी आशा की बात भी इशारे से व्यक्त कर दी। वस्तुतः सरोजिनी अपने प्रथम झमेले को सँभाल लेने के बाद भी सतीश के इतने बड़े घृणित आचरण के साथ मन ही मन शशांकमोहन की तुलना करके न देखेगी, यह बात दोनों को ही एक तरह असंभव सी मालूम हुई।

दूसरे दिन दोपहर को खाने-पीने के बाद सरोजिनी अपने ऊपरवाले सोने के कमरे के खुले जंगले के पास एक कुरसी पर बैठकर रास्ते की तरफ देख रही थी। एकाएक उसे मालूम हुआ कि कुछ दूर पर एक माल-असबाब से लदी बैलगाड़ी के पीछे-पीछे जो दो आदमी छाता लगाए चले जा रहे हैं, उनमें से एक बिहारी है। सरोजिनी सतर्क होकर खिड़की की छड़ पकड़कर खड़ी हो गई। गाड़ी धीरे-धीरे उसकी खिड़की के सामने आ पहुँची और एक आदमी ने मुँह ऊपर उठाकर देखा तो साफ तौर से मालूम हो गया कि वह बिहारी है। सरोजिनी ने हाथ हिलाकर उसे बुलाया तो तुरंत ही बिहारी अपने साथी को आगे बढ़ने को कहकर छाता बंद करके खिड़की के नीचे आ खड़ा हुआ। सरोजिनी ने कहा, ''बिहारी, घुसने के साथ ही बाईं तरफ सीढ़ी है। ऊपर चले आओ।''

उस समय घर के सभी लोग दिवानिद्रा में पड़े हुए थे। बिहारी तुरंत सीढ़ियों से सरोजिनी के कमरे में ऊपर चला गया और उसको प्रणाम करके पैरों की धूलि माथे पर चढ़ा ली।

सरोजिनी ने मन ही मन आशीर्वाद देकर कहा, ''तुम लोगों की गाड़ी तो रात को ग्यारह बजे के बाद मिलेगी, अभी तो बहुत समय है। रसोइया महराज साथ ही है, वह सब सामान कुली से उतरवा लेगा, तुम जरा बैठो।''

बिना पूछे ही वह समझ गई थी कि सतीश यहाँ का डेरा छोड़कर कहीं दूसरी जगह जा रहा है।

बिहारी अपनी चादर के छोर से माथे का पसीना पोंछकर नीचे भूमि पर बैठ गया।

थोड़ी देर तक मौन रहकर सरोजिनी ने इस प्रकार भूमिका बाँधकर कहा, ''अच्छा बिहारी तुम तो कभी ब्राह्मण की लड़की के सामने झूठ नहीं बोलते?''

बिहारी ने जल्दी से जीभ काटकर कहा, ''बाप रे, ऐसा करने से क्या मेरी रक्षा होगी बहनजी! सात जन्म काशीवास करने पर भी तो यह पाप दूर न होगा।''

सरोजिनी ने स्निग्ध दृष्टि से इस देहाती धर्मभीरू बूढ़े के मुख की ओर देखकर स्नेह-भरी हँसी के साथ कहा, ''यह बात तो मैं जानती हूँ बिहारी, तुम कभी झूठ नहीं बोलते, लेकिन मैं जो कुछ पूछूँगी, वह तुम किसी से बता न सकोगे, अपने बाबू से भी नहीं।''

बिहारी ने कहा, ''मुझे किसी से कहने की आवश्यकता क्या है बहनजी?''

सरोजिनी ने थोड़ी देर तक मौन रहकर असल बात को उठाया, पूछा, ''अच्छा, सावित्री कौन है बिहारी?''

बिहारी ने सरोजिनी के मुख की ओर देखकर कहा, ''मेरी सावित्री बेटी की बात पूछ रही

हो बहनजी? मैं नहीं जानता बहनजी कि वह मेरी बेटी, जिसे मैं जननी की तरह आदर देता था, किसके शाप से पृथ्वी पर जन्म लेकर कष्ट पा रही है! मेरी लड़की तो मानो लक्ष्मी की प्रतिमा है।''

बहुत दिन हो गए, बिहारी को सावित्री का नाम तक मुँह से निकालने का अवसर नहीं मिला था। उसका कंठ-स्वर गीला हो गया और नेत्रों की दृष्टि धुँधली हो गई।

सावित्री का उल्लेख होते ही बूढ़े का मनोभाव इस प्रकार बदलते देखकर सरोजिनी आश्चर्य में पड़ गई।

बिहारी ने धीरे से आँखें पोंछकर कहा, ''जिस दिन वह मेरी बेटी राखाल बाबू के मेस में दासी-वृत्ति करने के लिए आई, उस दिन उसको देखकर सब लोग अवाक् हो गए? उसके मुख पर बराबर ही हँसी खिली रहती थी! राखाल बाबू थे मैनेजर और मैं था नौकर, लेकिन उसकी दृष्टि में सभी समान थे, सभी का समान आदर-यत्न करती थी, फिर भी कभी मैंने उसे उदास नहीं देखा बहनजी!''

बूढ़ा मानो अपना संपूर्ण हृदय खोलकर बातें कर रहा था। इसीलिए उसके स्वाभाविक भक्तिउच्छ्वास से सरोजिनी मुग्ध हो गई और उसके विद्वेष की ज्वाला भी मानो पिघलकर आधी हो गई। बिहारी कहने लगा, ''बहनजी, शास्त्र में लिखा है लक्ष्मीजी ने एक बार किसी अपराध के कारण विष्णु की आज्ञा से दासी-वृत्ति की थी, मेरी बेटी भी मानो वैसे ही किसी दोष से नौकरी करने आई थी और तरह-तरह के दुःख पाकर अंत में चली गई। जिस दिन वह चली गई, वह दिन मानो अब तक भी मेरे हृदय में गुंथा हुआ है बहनजी।''

सरोजिनी ने धीरे से पूछा, ''वह अब कहाँ है बिहारी?''

बिहारी ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया, उसके मुँह की ओर देखकर वह चुप हो रहा।

सरोजिनी ने फिर से पूछा, ''क्या तुम नहीं जानते बिहारी?''

बिहारी इस बार सिर हिलाकर बोला, ''ठीक-ठीक मैं नहीं जानता, लेकिन फिर भी कुछ जानता हूँ, लेकिन वह बात बताने को तो वह मना कर गई है, मैं तो बता न सकूँगा।''

सरोजिनी ने पूछा, ''मना क्यों कर गई है?''

क्यों कर गई, यह तो बिहारी स्वयं भी समझ नहीं सका था। फिर भी, इस निषेध को बहुत दिन तक मानकर चलना, वह किस प्रकार है, यह जान न सकना, उसको इस जीवन में फिर एक बार आँखों से न देख सकना, यह सब बिहारी के लिए कितना असह्य था, इसे वह स्वयं ही जानता था, विशेषतः जब भी किसी बातचीत में सतीश की तीखी कड़ी व्यंग्य-भरी बातें सावित्री के विरुद्ध सुनता, तब सभी बातें खोलकर बता देने के लिए उसके मन में आँधी सी बहने लगती थी, लेकिन इस पर भी बूढ़े ने आज तक अपनी शपथ को भंग नहीं किया। यदि किसी दिन असह्य जान पड़ा तो उसी क्षण इसी बात का स्मरण किया है कि सावित्री जब स्वयं ही चुपचाप इतना बड़ा कलंक ढो रही है, तब अवश्य ही इसके भीतर कोई विशेष बात है, जो उसकी बुद्धि के परे है। सावित्री के प्रति उसकी श्रद्धा और विश्वास का अंत नहीं था।

लेकिन अब एक दूसरी लड़की उस बात को जान लेने के लिए उत्सुकता प्रकट करने लगी, तब सारी बातें कह देने के लिए उसके हृदय में भी उथल-पुथल सी मच गई। कुछ देर चुप रहकर उसने कहा, ''मैं बता सकता हूँ बहन जी, यदि तुम मेरे बाबू से न कहो।''

सरोजिनी मन ही मन बड़े ही आश्चर्य में पड़ गई। बिहारी जानता है, लेकिन सतीश नहीं जानता और उसी को बताने की विशेष रूप से सावित्री ने मनाही की है, इसका क्या कारण है, वह सोचने पर भी समझ न सकी। उसने कहा, "नहीं, बिहारी, मैं किसी से न बताऊँगी, तुम कहो।"

बिहारी पलभर मौन रहा, फिर संभवतः यह सोचकर कि इस काम के असत्य का पाप उसको स्पर्श करेगा या नहीं, वह धीरे-धीरे कहने लगा।

सावित्री सतीश को प्राणों से अधिक स्नेह करती थी और इसी कारण राखाल बाबू ने डाह से झगड़ा करके सतीश को डेरा छोड़ देने को बाध्य किया था और सतीश बाबू कभी-कभी शराब भी पीते थे, इत्यादि कोई भी बात उसने नहीं छिपाई।

सरोजिनी मंत्रमुग्ध की भाँति सारी बातें सुनती रही। संभवतः ऐसे एकाग्रचित्त से, इतने ध्यान से और किसी ने भी किसी की बातें नहीं सुनी होंगी। जिस राखाल बाबू से शशांकमोहन को खबर मालूम हुई थी, संयोगवश उस मनुष्य का इतिहास भी सरोजिनी से छिपा न रहा।

सावित्री का घर कहाँ है या उसके नैहर या ससुराल का परिचय क्या है, इन सबका पता तो बिहारी न दे सका, फिर भी उसने बार-बार यह बात कही कि वह ब्राह्मण की लड़की है, विधवा है, सुंदरी है, लिखना-पढ़ना जानती है, केवल भाग्य के फेर से वह दासी वृत्ति करने के लिए आई थी। बिहारी ने कहा, "इतना अधिक वह प्यार करती थीं, लेकिन बाबू मेरी बेटी से बाघ की तरह डरते थे बहनजी! शराब पीकर डेरे में आने का साहस तक उनको नहीं होता था। विपिन बाबू नामक बाबू का एक बदचलन मित्र था, उनके साथ मिलकर गाने-बजाने के लिए बाबू बुरी जगहों में जाया करते थे, ज्योंही यह खबर मेरी बेटी के कानों में पहुँची, उनका जाना एकदम बंद हो गया। फिर तो उनमें यह साहस नहीं रहा कि सावित्री की बात टालकर वहाँ जाते।" यह कहकर बिहारी ने गर्व से सरोजिनी के मुख पर दृष्टिपात किया।

सतीश के ऊपर एक और नारी के इतने बड़े अधिकार की बात ने सरोजिनी की छाती में बर्छी सी चुभा दी, फिर भी उसने धीरे-धीरे पूछा, "अच्छा बिहारी, उनसे इतना डरने की सतीश बाबू को क्या आवश्यकता थी?" बिहारी ने जैसा समझा था, वैसा ही उसने बताया। बोला, "सावित्री बहुत ही तेजस्वी थी बहनजी, हमारे बाबू ही नहीं, डेरे भर के सभी लोग मन-ही-मन उससे डरते थे। एक दिन की बात मैं बता रहा हूँ। उस दिन बड़ी रात को कहीं से शराब पीकर और शराब की एक बोतल अपने साथ लिए बाबू डेरे पर लौटे। उन्होंने सोचा था कि इतनी रात को सावित्री अवश्य ही अपने डेरे पर चली गई होगी। मैं जाग रहा था, मैंने दरवाजा खोल दिया। उन्होंने पूछा, "सावित्री चली गई है न बिहारी?' मैंने कहा, 'नहीं बाबू, आज वह नहीं गई, यहीं है।' यह सुनते ही शराब की बोतल रास्ते में फेंककर वह धीरे-धीरे चोर की तरह मकान के अंदर गए। डर के मारे उनका नशा पलभर में समाप्त हो गया। बताओ तो बहनजी, उनके सिवा बाबू को क्या और कोई काबू में रख सकेगा?"

सरोजिनी चुपचाप कुछ देर तक बैठी रही, फिर बोली, "सतीश बाबू क्या अब भी शराब पीते हैं बिहारी?"

बिहारी ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं, लेकिन फिर आरंभ कर देने से कितनी देर लगेगी

बहनजी? इसीलिए तो आज दो दिनों से केवल यही सोच रहा हूँ कि इस दुस्समय में यदि सावित्री बेटी एक बार आ जाती!''

सरोजिनी ने उत्सुक होकर पूछा, ''क्यों बिहारी?''

बिहारी ने कहा, ''मैं सदा से ही देखता आ रहा हूँ कि मन खराब होने पर ही बाबू शराब पीना शुरू कर देते हैं। एक उपेन बाबू से डरते हैं, पर कौन जाने उनके साथ भी क्या हो गया है। उस रात को वह मकान में घुसे तो उसी क्षण उनकी दृष्टि सरोजिनी पर पड़ गई, देखते ही जो वह चले गए, उसके बाद से कोई भी किसी काम नाम नहीं लेता, तो तुम ही बताओ बहनजी, उनके सिवा बाबू को और कौन सँभाल सकता है?''

फिर थोड़ा रुककर कहने लगा, ''बीमारी की खबर पाने के बाद से ये पाँच-छह दिन बाबू के किस प्रकार बीते हैं, यह मैंने अपनी आँखों से देखा है। परसों नींद से उठकर तार से खबर पाकर वे मुँह ढँककर लेटे रहे, फिर सारा दिन उठे ही नहीं। उसके बाद रात की गाड़ी से घर चले गए। मुख से केवल यही बात कह गए, ''बिहारी, तुम सब सामान घर ले जाना।''

सरोजिनी ने घबराकर पूछा, ''कौन बीमार है बिहारी?''

बिहारी ने आश्चर्य में पड़कर कहा, ''यहाँ से जाते समय क्या बाबू तुम लोगों को कुछ भी नहीं बता गए बहनजी?''

सरोजिनी ने सिर हिलाकर कहा, ''नहीं, कौन बीमार है?''

बिहारी ने लंबी साँस लेकर कहा, ''तो भूलकर सीधे चले गए हैं, इस मकान में नहीं आए? जिस दिन सवेरे यहाँ से उनके पास भोजन के लिए निमंत्रण गया था, उसी दिन चिट्ठी आई थी कि बूढ़े बाबू बीमार हैं। इसीलिए वह खाने के लिए न आ सके। तार भेजकर स्वयं ही सारा दिन डाकघर में खड़े रहे, लेकिन कोई खबर नहीं मिली। उसके बाद परसों सवेरे एकदम अंतिम खबर आई। रात की गाड़ी से बाबू घर चले गए।''

सरोजिनी चौंक पड़ी, ''सतीश बाबू के पिताजी मर गए?''

बिहारी ने कहा, ''हाँ, बहनजी।''

''उनको क्या हो गया था?''

''उमर बहुत हो गई थी। केवल किसी बहाने से प्राण निकल गए।'' यह कहकर बिहारी ने भीगी आँखों को पोंछकर कहा, ''और किसी बात के लिए मैं दुःख नहीं करता, लेकिन उस बूढ़े के मर जाने से बाबू को अपना कहने के लिए और कोई नहीं रह गया। इसीलिए इधर दो दिनों से मैं केवल यही सोच रहा हूँ कि अब से वह क्या करने लगेंगे, इसे माँ दुर्गा ही जानती हैं।'' यह कहकर बूढ़े ने चादर के छोर से अपनी दोनों आँखों को एक बार फिर अच्छी तरह पोंछ डाला। सरोजिनी की आँखों से आँसू गिरने लगे। उसने कहा, ''इस समय से सतीश बाबू अच्छे भी तो हो जा सकते हैं। बुरे ही हो जाएँगे, यह भय तुमको क्यों हो रहा है बिहारी?''

बिहारी अन्यमनस्क होकर बोला, ''न जाने क्यों?'' उसके बाद मुँह ऊपर उठाकर बोला, ''बाबू अच्छे हो जाएँ, उनकी मति उस ओर न जाए, यही मेरी कामना है, लेकिन जाते समय गाड़ी पर चढ़कर उन्होंने जो यह कहा था, ''जाने दो, एक तरह से रक्षा ही हुई, संसार में अब किसी के लिए चिंता न करनी पड़ेगी। तुमसे मैं सच कह रहा हूँ बहनजी, उसी समय से जब भी वह बात स्मरण आती है, त्योंही छाती के भीतर आग सी धधकने लगती

है। उनके हाथ में अब रुपयों के बड़े ढेर आ जाएँगे। बाबू के संगी-साथी भी अच्छे नहीं हैं, बुरे मार्ग से चलने पर अब उनको कौन रोकेगा?'' यह कहकर बिहारी ने अनजान में ही फिर एक बार सुननेवाले की छाती में गरम बर्छा भोंककर अपने दोनों हाथ माथे पर रख लिये।

सरोजिनी ने आघात सहकर मृदु स्वर से कहा, ''अच्छी बात तो है बिहारी, उनको ही आने के लिए तुम चिट्ठी क्यों नहीं लिख देते?''

बिहारी ने कहा, ''पता मैं नहीं जानता। यदि मैं स्वयं ही एक बार काशी जा सकता तो जिस तरह भी होता, खोजकर-ढूँढ़कर उसको लौटा लाता, लेकिन मुझे तो यह उपाय नहीं है। बाबू को अकेले छोड़ जाने की भी इच्छा नहीं होती! इसके अतिरिक्त मैं तो कभी काशी नहीं गया, वहाँ की जानकारी मुझे नहीं है।'' यह कहकर उसने निरुपाय की भाँति सरोजिनी के मुँह की ओर देखा। स्पष्ट रूप से ही यह बात समझ में आ गई कि सतीश का यह परम हितैषी बूढ़ा नौकर स्वामी के अवश्यंभावी अमंगल की आशंका से घबराकर उससे चुपचाप आश्वासन पाने की प्रतीक्षा कर रहा है, लेकिन सरोजिनी ने उसे कोई सांत्वना नहीं दी, केवल चुपचाप निहारती रही।

''तो अब मैं जा रहा हूँ बहनजी।'' कहकर बिहारी उठ पड़ा और सरोजिनी के पैरों में झुककर प्रणाम करके फिर पदधूलि लेकर कमरे से बाहर चला गया, लेकिन दूसरे ही क्षण वह अकस्मात् लौट आया और हाथ जोड़कर सामने खड़ा हो गया।

''क्या है बिहारी?''

''एक बात की विनती करूँगा बहनजी!''

सरोजिनी ने बड़े कष्ट से म्लान हँसी हँसकर कहा, ''कौन सी बात?''

बिहारी ने वैसे ही हाथ जोड़े करुण स्वर से कहा, ''मैं जात का ग्वाला, देहाती गँवार और बूढ़ा आदमी हूँ। बातें कहने में यदि कुछ भूल हो गई हो तो आप खयाल मत कीजिएगा।''

सरोजिनी की आँखों में आँसू भर आए, लेकिन प्राणपण से उन्हें रोककर गरदन हिलाकर उसने कहा, ''नहीं।''

उसके मुँह से यही एक 'नहीं' शब्द सुनकर बिहारी मानो निर्भय हो गया। उसने अपने को देहाती गँवार कहकर अपनी बुद्धिहीनता का परिचय दिया, तो भी वास्तव में वह नासमझ नहीं था। इसीलिए, सरोजिनी ने क्यों सावित्री की बातें सुनने के लिए उसे रास्ते से बुलाया था, क्यों वह इतने ध्यानपूर्वक उसकी कहानी सुन रही थी, इन सभी बातों का अर्थ उसके सामने अकस्मात् सूर्य के प्रकाश की भाँति स्पष्ट हो उठा। अनजान दशा में उसने इतनी देर तक इस तरुणी को इतनी वेदना दी, इसके लिए उसके हृदय में पश्चात्ताप की कोई सीमा नहीं रही। तब बिहारी ने अत्यंत करुण स्वर से कहा, ''मैं जानता हूँ, तुम्हारी बातों की बाबू कभी अवहेलना न कर सकेंगे, तुम इच्छा करने से बाबू की इस बुरे समय में रक्षा कर सकती हो, लेकिन मेरा मन कहता है कि तुमने मानो उनको त्याग दिया है माँ।'' बिहारी ने यही पहली बार सरोजिनी को 'माँ' संबोधन किया। 'माँ' कहकर अपना काम बनाने की युक्ति बूढ़ा खूब जानता था।

सरोजिनी के आँसू रोकने पर भी अब न रुके, दोनों आँखों से बड़ी-बड़ी बूँदें बूढ़े के सामने ही झर पड़ीं, लेकिन झटपट उन्हें पोंछकर उसने कहा, ''नहीं बिहारी, मुझसे कुछ भी न होगा, मैं अब उनकी किसी बात में नहीं हूँ।''

बिहारी ने सिर हिलाकर कहा, "माँ कहकर पुकारा है, मैं आपके लड़के की जगह हूँ। उनसे जो कुछ भी गलती हुई हो, मैं अपना कसूर मानता हूँ।" यह कहकर बिहारी झुककर सरोजिनी के पैरों की धूलि सिर पर चढ़ाकर बोला, "लेकिन तुम तो मेरे बाबू को पहचानती ही हो? इस विपत्ति के दिन में अभिमान करके तुम मुझको मार डालोगी, यह तो मैं कभी न होने दूँगा।"

सरोजिनी का घोर अभिमान पिघल गया। सतीश को क्षमा करने के लिए वह एक बार उन्मुख हो उठी, लेकिन उसके साथ ही बूढ़े के मुँह से सावित्री का सारा प्रसंग सुनना स्मरण हो जाने से उसका पिघला हुआ चित्त पल भर में फिर सूखकर काठ बन गया। उसने गरदन हिलाकर शांत-कठोर स्वर से कहा, "बिहारी तुम डरो मत। सावित्री के आ जाने से ही फिर सब कुछ ठीक हो जाएगा, लेकिन तुम लोगों का कुछ भी उपकार न होगा।"

यह निष्ठुर प्रत्युत्तर सुनने के लिए बिहारी बिल्कुल तैयार नहीं था। अपने सर्वविजयी प्रेम के सामने यह सूखा कंठ-स्वर ऐसा कठोर होकर सुनाई पड़ा कि वह कुछ क्षण के लिए विह्वल की भाँति केवल ताकता रहा। उसके बाद फिर एक भी बात न कहकर, फिर एक बार प्रणाम कर वह बाहर निकल गया।

उनतालीस

क्षय रोग से ग्रस्त पत्नी को लेकर उपेंद्र पाँच-छह महीने तक नैनीताल में रहकर अभी कुछ दिन हुए बक्सर लौट आए हैं। यह है सुरबाला की अंतिम इच्छा। उस दिन, संध्या के बाद स्निग्ध दीपक के प्रकाश में बड़ी देर तक मौन देखते रहने के बाद यह परलोक की यात्री धीरे-धीरे पति के हाथ पर अपना दायाँ हाथ रखकर बोली, "तुम्हारी बातों पर अब किसी दिन संदेह नहीं होता। आज मुझे एक बात सच्चाई के साथ बता दोगे? भुलावे में नहीं डालोगे?"

उपेंद्र ने स्त्री के मुँह पर झुककर कहा, "कौन बात पशु?"

सुरबाला पलभर चुप रहकर बोली, "तुमको मैं फिर पाऊँगी तो?"

उपेंद्र ने स्त्री के माथे पर से रूखे बालों को हटाकर शांत दृढ स्वर से कहा, "अवश्य पाओगी।"

"अच्छा, कितने दिनों में पाऊँगी? मैं तो शीघ्र ही जा रही हूँ, लेकिन उतने दिनों तक कहाँ तुम्हारे लिए बैठी रहूँगी?"

"स्वर्ग मैं रहोगी। वहाँ से मुझे बराबर देख सकोगी।"

"लेकिन मैं अकेली किस तरह रहूँगी? अच्छा, सभी डॉक्टर जवाब दे चुके हैं? ऐसी कोई दवा नहीं है, जिससे मैं बचूँ? मेरे चले जाने से तुमको बहुत कष्ट होगा।"

एक बूँद आँसू का जल किसी प्रकार भी उपेंद्र सँभाल न सके, टप करके सुरबाला के ललाट पर चू पड़ा।

उसके संपूर्ण हृदय को मथित करके आकुल पुकार फूट निकली, "भगवान् पति के हृदय में तुमने केवल इतना प्यार ही दिया, लेकिन इतनी भी शक्ति नहीं दी कि स्नेहास्पद को एक दिन भी अधिक पकड़ रखें।"

सुरबाला अपने दुबले हाथ को उठाकर पति की आँखें पोंछकर बोली, "तुम्हारी रुलाई मैं सह नहीं सकती, मेरी और एक बात मानोगे?"

उपेंद्र ने गरदन हिलाकर कहा, "मानूँगा।"

सुरबाला ने कहा, "तब तो मेरी छोटी बहन शची के साथ छोटे बबुआजी का ब्याह कर देना। मैंने बहुत दिनों से उनको देखा नहीं है, दो-चार दिनों में पढ़ाई में कौन बड़ी हानि हो जाएगी, एक बार कलकत्ता से आने के लिए तार दे दो न।"

उपेंद्र की छाती में फिर एक बाण बिंध गया। दिवाकर को सुरबाला कितना प्यार करती थी, इसे वह जानते थे, तो भी उसकी अंतिम इच्छा पूरी करने का कोई उपाय नहीं है, दिवाकर की परम कीर्ति को बहुत दिन तक उन्होंने अपनी स्त्री से छिपा रखा था, आज भी उसको प्रकट नहीं किया। तार देने का अनुरोध बातों से बहलाकर बोले, "लेकिन उसके साथ शची का ब्याह करने की राय पहले तो तुम्हारी नहीं थी पशु। केवल मेरी सम्मति से ही अंत में तुमने अपनी राय दी थी। अब मेरा अपना विचार भी बदल गया है। शची के लिए बहुत अच्छे विवाह संबंध मैं ठीक कर दूँगा, लेकिन इस ब्याह की आवश्यकता नहीं है सुरो।"

सुरबाला ने कहा, "नहीं, यह नहीं होगा, छोटे बबुआजी के साथ ही शची का ब्याह कर देना।"

उपेंद्र आश्चर्य में पड़कर बोले, "क्यों, बताओ तो?"

सुरबाला ने कहा, "उसका मुँह देखकर तुम किसी दिन फिर हमारे लिए पराए न हो सकोगे, इसके अतिरिक्त वह मकान में रहेगी तो तुमको भी देख सकेगी।"

उपेंद्र ने अन्यमनस्क होकर कहा, "अच्छा, यदि असंभव न हुआ तो कर दूँगा।"

इसके तीन दिन बाद खबर पाकर उपेंद्र के मना करते रहने पर भी महेश्वरी आ गई। सुरबाला ने उनकी गोद में सिर रखकर कहा, "मेरे चले जाने पर उनके ऊपर जरा निगाह रखना बहन, मैं तो जाती हूँ, वह फिर भी ब्याह न करेंगे, लेकिन भारी कष्ट होगा। तुम सभी लोग उनको देखना, तुम लोगों से यह मेरी अंतिम विनती है।" यह कहकर उसकी आँखों से आँसू झरने लगे।

महेश्वरी उसकी छाती पर औंधी गिरकर रो उठी, मुँह से एक भी बात न निकाल सकी।

इसी प्रकार और भी तीन-चार दिन बीत गए। उसके बाद एक दिन सवेरे पति की गोद में माथा रखकर, समूचे मुहल्ले को शोक-समुद्र में निमग्ध करके वह पति-साध्वी स्वर्ग को चली गई।

उपेंद्र शांत और स्थिर भाव से पत्नी का अंतिम संस्कार पूरा करके महेश्वरी को साथ लेकर अपने घर लौट आए। उपेंद्र के पिता शिवप्रसाद बाबू पुत्र के लिए अत्यंत उत्कंठित हो गए थे, लेकिन अब लड़के का मुँह देखकर बहुत कुछ आश्वस्त हुए। मन ही मन बोले, "नहीं, जितना मैं डर गया था, उतना नहीं है।" यहाँ तक कि उन्होंने निकट भविष्य में एक और सुंदर बहू घर में लाने की आशा को भी हृदय में स्थान दिए रखा, लेकिन अंतर्यामी ने संभवतः छिपे रहकर बूढ़े के लिए उस दिन लंबी साँस ले ली।

कुछ ही दिनों के बाद उपेंद्र को कोर्ट के लिए घर से निकलते देखकर शिवप्रसाद ने अत्यंत संतोष का अनुभव किया, यहाँ तक कि आनंद की अधिकता से पुत्र को कुछ क्षण के लिए

अपने पास बुलाकर संसार की अनित्यता के विषय में बहुत सी हितकर बातें कहकर अंत में बोले, "उपेंद्र, तुमको और क्या समझाऊँ बेटा, तुम स्वयं ही सबकुछ जानते हो, सब समझते हो। इस संसार में कुछ भी चिरस्थायी नहीं है, आज जो है, कल वह नहीं रहेगा, सब ही माया है। इस बात को सदा स्मरण रखना बेटा, कभी भविष्य को नष्ट मत करना। प्राणपण से उन्नति करने का यही तो समय है। कौन किसका है? शास्त्रों में लिखा है, 'चलाचलमिदं सर्व कीर्तियस्य स जीवति!" अर्थात् सम्मान कहो, प्रतिष्ठिता कहो, सबकुछ है रुपया। रुपया कमाने पर ही सबकुछ निर्भर है। देखो न सतीश के बाबूजी किस प्रकार रुपया रख गए हैं बताओ तो?" यह कहकर गंभीर भाव से वह सिर हिलाने लगे। उपेंद्र मुँह झुकाए चुपचाप सब सुनकर 'जैसी आज्ञा' कहकर कचहरी चले गए।

कचहरी में सतीश के भैया से भेंट हो गई। उन्होंने इस दुर्घटना के लिए अत्यंत दुःख प्रकट करके अंत में सतीश की चर्चा छेड़ दी। उपेंद्र की धारणा थी कि सतीश पिता की मृत्यु के बाद से घर पर ही है, लेकिन अब उसने सुन लिया कि वह घर पर तो है अवश्य, लेकिन यहाँ नहीं, गाँव के घर पर है। टुनू बाबू सतीश के सौतेले बड़े भाई हैं। किसी दिन भी उन्होंने अच्छी दृष्टि से नहीं देखा, एक घर में रहते हुए भी कभी उसका सामचार तक भी लेने की आवश्यकता उन्होंने नहीं समझी। वस्तुतः सतीश के साथ उनका संबंध नहीं था, यह कहना भी अनुचित नहीं है। पिता की मृत्यु होने से आधे का हिस्सेदार बनकर वह भैया की और भी विषदृष्टि में पड़ गया है। वह बोले, "इसके बीच ही प्रायः तीस हजार रुपया खर्च करके उसने खूब ही बड़ी दो डिस्पेंसरियाँ खोल दी हैं, सौ रुपए मासिक वेतन पर डॉक्टर रख लिया है। इसके अतिरिक्त मकान तक को भी अस्पताल में परिणत कर दिया है।"

उपेंद्र ने सहज भाव से कहा, "हाँ यह उसकी इच्छा बहुत दिनों से थी, केवल रुपए के अभाव से ही वह इतने दिनों तक यह काम न कर सका था।" टुनू बाबू ने व्यंग्य करके तनिक हँसकर कहा, "ऐसा तो मुझे भी जान पड़ता है उपेन, लेकिन केवल डिस्पेंसरी खोलने की इच्छा ही तो तुम जानते थे, उसके साधन-भजन का अर्थ तो तुम नहीं जानते थे भैया।"

उपेंद्र ने आश्चर्य में पड़कर पूछा, "साधन-भजन कैसा?"

टुनू बाबू बोले, "यही जैसे चक्र, कारण, पंचमकार इत्यादि। केवल फिलानथेरेपिष्ट नहीं है जी, 'सतीश स्वामी' अब एब उच्चकोटि के साधक हैं, गेरुआ वस्तु पहनते हैं, बड़ी-बड़ी दाढ़ी-मूँछ है, रुद्राक्ष की माला, ललाट पर सिंदूर का तिलक, सदा ही घूमते हुए नेत्र। उसका एक हस्ताक्षर लेने के लिए रासबिहारी को मैंने भेजा था, वह तो डर के मारे दो दिन पास तक जा नहीं सका था और इस चिट्ठी को पढ़कर देखो, उसके नौकर बिहारी ने मेरे पास लिख भेजी है, अभी तक उत्तर नहीं दिया गया है, इसलिए पॉकेट में ही यह घूम रही है।" यह कहकर उन्होंने एक पीले रंग का मुड़ा हुआ कागज निकालकर उपेंद्र के सामने रख दिया। निरुपाय होकर बिहारी ने सतीश के बड़े भाई के पास उपाय करने की याचना करके चिट्ठी भेजी है। संभवतः उसने गाँव के किसी अनजान लड़के को पकड़कर चिट्ठी लिखवा ली है। आदि से अंत तक चिट्ठी पढ़ी न जा सकी, लेकिन जितनी पढ़ी गई, उतनी ही ने उपेंद्र को बड़ी देर तक स्तंभित कर रखा।

उसके बचपन का सुहृत, उसका दायाँ हाथ, उसका छोटा भाई, वही सतीश आज अधःपतन के इतने निम्नस्तर पर उतर गया है कि गाँव में खुले तौर से यह सब वीभत्स

कीर्तियाँ करते घूमते रहने में लज्जा अनुभव तो करता ही नहीं वरन् धर्म-साधना कर रहा है। संभवतः उस कुलटा दासी से भी सहयोग कर लिया है। इसके अतिरिक्त बिहारी की चिट्ठी के भाव से यह भी समझने में आता है कि गाँव के निकम्मे, कुछ लोग भी उसके साथ जुट गए हैं।''

उपेंद्र अन्यमनस्क होकर चिट्ठी पॉकेट में डालकर कचहरी से घर लौट आए। टुनू बाबू को लौटा देने की बात उसको स्मरण न रही।

बिहारी ने चिट्ठी डाक में छोड़ दी। आरंभ में कई दिनों तक वह स्वयं टुनू बाबू की प्रत्याशा में उतावला हो रहा था। बाद को एक उत्तर के लिए अधीर होकर दिन बिताने लगा, लेकिन दिन पर दिन बीत गए, नहीं आए बड़े बाबू, नहीं आया उनका उत्तर।

विशेषतः 'थाको बाबा' के अत्याचार से ही बिहारी परेशान हो उठा है। ये हैं तांत्रिक साधु सिद्ध पुरुष, सतीश के मंत्रगुरु हैं। आठों पहर मदिरा और गाँजा सेवन करने से स्वभाव दुर्वासा से भी उग्र हो चला है। मुँह इतना खराब है कि केवल क्रोध करने की दशा में ही नहीं, उनकी स्वाभाविक मानसिक अवस्था की बातचीत में भी कानों में उँगली देनी पड़ती है।

लेकिन यही है संभवतः तांत्रिक सिद्ध साधु का लक्ष्य। इसके अतिरिक्त सतीश के गुरु भी तो हैं। बिहारी अपनी ओर से इनके प्रति कम श्रद्धा-भक्ति नहीं रखता था, लेकिन पहले ही बताया जा चुका है कि सतीश के किसी प्रकार के अनिष्ट की गंध पाते ही बिहारी हिताहित का ज्ञान खो बैठता है।

गुरु बाबा के प्रशिक्षण में सतीश और उसके दल के निशीथ की निभृत चक्र-साधना और उससे भी अधिक निभृत अनुसार्गिक अनुष्ठान इतने दिनों तक बिहारी ने किसी प्रकार सहन कर लिया था, लेकिन जिस दिन मदिरा और गाँजा बाबा का प्रसाद पा गया, उस दृश्य को यह बूढ़ा नौकर किसी तरह भी सह न सका। सतीश की अनुपस्थिति में वह कमरे में घुसकर उनकी पदधूलि लेकर हाथ जोड़ भक्तिपूर्वक बोला, ''बाबा, आप दिन के समय फिर कभी बाबू को गाँजा-शराब मत पिलाइएगा।'' आग में घृताहुति पड़ गई। बाबा एक ही क्षण में सातवें सुर पर चढ़कर चिल्ला उठे, ''तू साला मदिरा कहता है!''

बिहारी ने विनीत स्वर से कहा, ''क्या जानूँ बाबा, हमारे देश में तो उसे मदिरा ही कहते हैं।''

बाबा ने कहा, ''मदिरा! लेकिन साले, इससे तेरा क्या बनता-बिगड़ता है? तू बोलनेवाला कौन है!''

बिहारी को भी बाबाजी की बातें असह्य होती जा रही थीं, उसने भी दृढ़-स्वर से कहा, ''मैं हूँ बाबू का नौकर।''

''वाह रे मेरे नौकर!'' कहकर बाबाजी अश्लील गाली-गलौज सुनाकर दाँत कटकटाकर बोल उठे, ''लेकिन मैं हूँ तेरे बाबू का भी बाबा, यह क्या तू नहीं जानता है?''

बिहारी बैठा हुआ था। झटपट उठा और चिल्लाकर बोला, ''खबरदार! मेरे सामने तुम ये सब बातें मत कहो, बताए देता हूँ।''

थाको बाबा तो यों ही दिन-रात प्रायः बदहवास ही रहा करते थे, बिहारी के तिरस्कार से बिल्कुल ही कर्तव्य-ज्ञान से शून्य हो गए। बोले, ''तू क्या करेगा रे साले!'' यह कहकर

सामने की खड़ाऊँ उठाकर बिहारी का सिर ताककर उन्होंने जोर से फेंक दिया। बिहारी की नाक से रक्त की धारा बहने लगी और क्षणमात्र में ही उसके हृदय के किसी अज्ञात स्थान से चालीस साल पहले का गरम खून बिल्कुल ही मस्तिष्क में चढ़ गया। पलभर में उसने कमरे के कोने से बाबा का चार हाथ लंबा त्रिशूल बाबा के माथे पर तान दिया। डरकर अपने दोनों हाथ सामने रखकर बाबा कुत्ते की तरह चिल्ला उठे और उस अमानुषिक चिल्लाहट से बिहारी भी सँभल गया। वह हाथ का त्रिशूल यथास्थान रखकर नाक का खून पोंछते-पोंछते चला गया।

एक घंटा बीत जाने पर सतीश ने पूछा, "क्या यह सच है?"

बिहारी ने कहा, "हाँ!" लेकिन उसने अपने रक्तचाप का उल्लेख नहीं किया।

सतीश क्षण भर चुप रहकर बोला, "तुझे अब मैं इस घर में न रहने दूँगा, लेकिन तुझे जवाब भी न दूँगा। दो सौ रुपए लेकर तू अपने घर चला जा, मैं तेरा वेतन हर महीने तेरे घर भेज दिया करूँगा।"

बिहारी ने सिर झुकाकर कहा, "जो आज्ञा!"

उसने दुःख प्रकट नहीं किया। क्षमा-याचना नहीं की, दो सौ रुपए चादर के छोर में बाँधकर, मालिक के चरणों की धूलि माथे पर चढ़ाकर संध्या के पहले ही गाँव छोड़कर चला गया।

जब तक वह दिखाई पड़ता रहा, सतीश ऊपर के बरामदे में उसकी ओर निहारता रहा। क्रमशः विधुपाल की दुकान की ओट में जब वह ओझल हो गया, तब वह लंबी साँस लेकर बोला, "जाने दो, इतने दिनों में बिहारी भी चला गया!"

इस बार आश्विन के प्रथम सप्ताह में ही महामाया की पूजा है। अभी उसमें विलंब है, लेकिन सतीश की मित्र-मंडली में अभी से ही आलोचना चल रही है कि इस बार देवी की पूजा में क्या-क्या करना चाहिए। महाअष्टमी के लिए अभी से तैयार हो जाना चाहिए, लेकिन भादों के मध्य में मलेरिया का प्रकोप अत्यंत बढ़ गया, यहाँ तक कि दो-चार सान्निपातिक ज्वर के कारण भी डॉक्टर की दौड़-धूप आरंभ हो गई।

आज कई दिनों से सतीश की तबीयत अच्छी नहीं है। बिहारी जिस दिन चला गया, उसी रात को उसने ज्वर का लक्षण स्पष्ट अनुभव किया। संभवतः एकादशी के कारण ऐसा हो गया है, सोचकर उसने दूसरे दिन सवेरे उसे उड़ा देना चाहा, लेकिन जो यथार्थ में है, जिसका भार है, उसे इस तरह सहज में उड़ाया नहीं जा सकता। सारा दिन उसको मानना ही पड़ा कि वह स्वस्थ नहीं है।

तीनों दिन के बाद पूर्व प्रथानुसार चतुदर्शी की रात को ही धूम-धाम से पूजा की तैयारी हुई थी, लेकिन सतीश ने स्वयं सम्मिलित होना अस्वीकार किया। तीसरे पहर गुरु बाबा ने आकर सतीश के माथे पर शांति का जल छिड़ककर कमंडल दिखाकर हँसते हुए कहा, "बेटा, इस पर तो यम का भी अधिकार नहीं है। इसके अतिरिक्त तुम्हीं तो मूलाधार हो, तुम्हारे न रहने से तो सब ही चौपट है।"

गुरुजी की बात को सतीश टालता नहीं था। इसीलिए अपनी इच्छा के विरुद्ध ही वह सहमत हो गया। वास्तव में बिहारी को विदा करने के बाद से कुछ भी उसे अच्छा नहीं लग रहा था। यद्यपि किसी प्रकार उसको विश्वास नहीं होता था कि बिहारी बिल्कुल ही चला

गया है, फिर न आएगा, तथापि जितना शीघ्र हो सके, उसको फिर पाने के लिए उसका हृदय व्याकुल हो उठा। इसके अतिरिक्त एक और चिंता उसको भीतर ही भीतर कष्ट दे रही थी। कौन जाने, बिहारी अपने घर ही गया है या हम लोगों के पश्चिमवाले मकान पर गया है। कहीं ऐसा न हो कि सारी बातों का प्रचार करके कोई बखेड़ा मचाने की चेष्टा करता हो या और कोई चाल चल रहा हो। जो भी हो, उसे फिर एक बार आँखों से देखे बिना सतीश बिना किसी प्रकार भी चैन नहीं पा रहा था।

संध्या के पूर्व ही दुमंजिले के कमरे में एकत्र होकर दो-एक प्याले पी लेने पर सतीश का वह निर्जीव भाव कट गया था, लेकिन फिर भी हृदय की ग्लानि उसे भीतर-ही-भीतर पीड़ा दे रही थी। ठीक उसी समय पास के कमरे में बिहारी की आवाज सुनकर सतीश पुलकित हो उठा और आश्चर्य से चौंक पड़ा।

उसने पुकारा, "बिहारी है क्या रे?"

बिहारी दरवाजे के निकट आकर श्रद्धा के साथ बोला, "जी हाँ, क्या आज्ञा है?"

गुरु बाबा का चेहरा काला पड़ गया। उन्होंने कहा, "यह उल्लू फिर आ गया बेटा? तो यह साला इस कमरे में घुस क्यों आया?"

इसी कमरे में उनके निथीशचक्र का आयोजन हो रहा था।

सतीश ने इन सब प्रश्नों का उत्तर न देकर बिहारी से पूछा, "क्या तू अपने घर नहीं गया था रे?"

"जी नहीं, मैं काशी गया था।"

"काशी? काशी क्यों गया था?"

"माँजी को लाने।"

सतीश चौंक उठा। बिहारी किसको 'माँ' कहता है, सतीश यह जानता था। उसने कहा, "वह क्या काशी में रहती है?"

"जी हाँ!"

"तू उसका पता-ठिकाना जानता था?"

बिहारी ने कहा, "नहीं, लेकिन मैं जानता था, माँजी जहाँ कहीं भी क्यों न हों, विश्वनाथ बाबा के मंदिर में किसी दिन भेंट हो ही जाएगी।"

"भेंट हुई थी?"

"जी हाँ!"

सतीश के हृदय के अंदर हलचल सी मचने लगी। कुछ क्षण शांत रहकर अपने को सँभालकर रूखे स्वर से उसने कहा, "लेकिन मुझे खबर न देकर वहाँ जाना तेरा अच्छा काम नहीं हुआ। उन स्त्रियों में मान-सम्मान, लज्जा-शरम कुछ भी नहीं है। तेरे जैसे अहमक को पाकर यदि वह तेरे साथ चली आती, तो आज तू किस विपत्ति में पड़ जाता, बता तो?"

बिहारी चुपचाप खड़ा रहा।

सतीश तब आप ही आप फिर कहने लगा, "घर में घुसने तो देता ही नहीं, फाटक के बाहर से ही दरबान से निकलवा देता। उसको लेकर इतनी रात को तू कैसी विपत्ति में पड़ जाता, सोच तो ये भला, क्या अकारण ही लोग तुझे गँवार-मूर्ख कहते हैं। कालीचरण, जरा ठीक से एक प्याला दे देना भैया।"

आज्ञा मिलते ही कालीचरण ने मूल साधक के हाथ में एक प्याला दे दिया।
बिहारी ने कहा, ‘‘बाबू माँजी आपको बुलाती हैं।’’
सतीश प्याला मुँह से लगाने जा रहा था। चौंककर बोला, ‘‘कौन बुला रही है? तू क्या कहता है?’’
बिहारी बोला, ‘‘माँजी।’’
सतीश हतबुद्धि की भाँति हाथ की प्याली को नीचे उड़ेलकर बोला, ‘‘तेरे साथ आई हैं क्या? तो तूने पहले क्यों नहीं बताया?’’
बिहारी ने उसका उत्तर न देकर फिर कहा, ‘‘वह इसी क्षण आपको बुला रही हैं।’’
सतीश ने धीमे स्वर से कहा, ‘‘तू जाकर कह दे बिहारी, बाबू को बुखार हो आया है, इसीलिए बाहर के कई इष्ट-मित्र उनको देखने आए हैं। आध घंटे बाद आऊँगा, जा कह दे।’’
बिहारी ने अपने हाथ से दरवाजे की ओर संकेत से दिखाकर धीरे से कहा, ‘‘माँजी यहीं तो खड़ी हैं, एक बार बाहर चले आइए।’’
सतीश ने चौंककर उँगली के संकेत से पूछा, ‘‘इसी कमरे में?’’
बिहारी ने गरदन हिलाकर कहा, ‘‘हाँ, यहीं तो हैं।’’
सतीश झटपट दो-चार लौंग-इलायची मुँह में डाल उठ पड़ा। धीरे-धीरे बाहर जाकर उसने देखा कि उसके पास के दरवाजे की आड़ में ही सावित्री के आँचल का छोर दिखाई पड़ रहा है। वह अपने कानों से सब बातें सुन चुकी है, इसमें कुछ भी संदेह उसे नहीं रहा। उसकी इच्छा हो रही थी कि मूर्ख बिहारी के गाल पर अच्छी तरह दो थप्पड़ जमा दे। सावित्री से झाँककर धीरे से कहा, ‘‘भीतर आओ!’’
इस कंठ-स्वर के सुर से मानो उसके हृदय के सब तार बँधे थे। सभी एक ही साथ बज उठे। उसके कमरे में घुसते ही सावित्री ने कहा, ‘‘तुम कह रहे थे कि बुखार हो आया है?’’
सतीश ने सिर हिलाकर कहा, ‘‘बुखार तो आ ही गया है!’’
‘‘कहाँ, देखूँ?’’ कहकर सतीश के पास आकर हाथ बढ़ाकर उसके ललाट का ताप अनुभव करके वह चौंक पड़ी। बोली, ‘‘हाँ, सचमुच ही बुखार है, शरीर मानो जल रहा है। आओ, मैं बिछौना बिछा देती हूँ, चलो, कमरे में सो रहो। बिहारी, बाबू के कमरे में जाकर बत्ती जला दे।’’ यह कहकर तिमंजिले की सीढ़ियों की ओर बढ़ चली। उसने इस घर में आते ही बाबू का शयन-गृह बिहारी से पूछ लिया था।
पलंग पर बिछौना तैयार ही था। केवल आँचल से जरा झाड़ते ही सतीश शांत बालक की भाँति नेत्र बंद करके लेट गया। सिरहाने और पैरों की ओर की दोनों खिड़कियाँ बंद करके उसने बिहारी से पूछा, ‘‘साधु बाबा किस कमरे में रहते हैं?’’
बिहारी ने पास का कमरा दिखा दिया, तो सावित्री ने कहा, ‘‘उनकी क्या-क्या वस्तुएँ हैं, वहाँ नीचे रख आओ बिहारी। बाहर तो कितने ही कमरे खाली पड़े हैं, उनमें से किसी एक में वह खूब अच्छी तरह रह सकते हैं।’’ बिहारी चला जा रहा था। सावित्री ने पुकारकर कहा, ‘‘और बाबू को जो लोग देखने आए थे, उनको भी जाने को कह देना। कहना, बाबू को खूब ज्वर आया है, अब नीचे उतर न सकेंगे।’’
सतीश किसी बात में भी सम्मिलित नहीं हुआ। मुँह छिपाए लेटा रहा।
बिहारी वीर की भाँति दर्प दिखाता हुआ आदेश का पालन करने चल पड़ा। उसके चले

जाने पर सावित्री ने कहा, "अब तुम उठना मत। मैं खाने-पीने की व्यवस्था ठीक करके आती हूँ।" यह कहकर द्वार बंद करके वह दबे पाँव चली गई। उसे भय था कि साधु बाबा विद्रोह कर बैठेंगे। इसीलिए वह छिपे तौर से दरवाजे की आड़ में जा खड़ी हुई थी।

दूसरे ही क्षण उस ओर के दरवाजे से प्रवेश करके बिहारी ने जोर से कहा, "माँजी ने कहा है, आप लोग घर चले जाइए। बाबू का ज्वर बढ़ गया है, आज वह नीचे न उतरेंगे।" फिर बाबाजी को लक्ष्य करके बोला, "महाराजजी, तुम्हारी चीज-वस्तु, नीचे निवारण के कमरे के पासवाले कमरे में रख देने की आज्ञा माँजी ने दे दी है। तुमको वहीं रहना पड़ेगा।"

बाबा ने उग्रता नहीं दिखाई। उन्होंने शांत भाव से पूछा, "माँजी कौन हैं बिहारी?"

बिहारी ने कड़े स्वर से उत्तर दिया, "इस पूछताछ की तुम्हें क्या आवश्यकता है, महाराजजी? जो कह रहा हूँ, वही करो।" मन ही मन बोला, "कौन हैं, इसका पता तुमको लग जाएगा। बिना पैसा खर्च किए ही शराब-गाँजा पीकर खड़ाऊँ मारने की कसर कल मैं निकालूँगा।"

सभी हतबुद्धि की भाँति एक-दूसरे के मुँह की ओर ताकने लगे और उठने की तैयारी करने लगे। कोई भी समझ न सका कि क्या बात है, लेकिन आदेश जब सच्चे आदेश के रूप में अकुंठित रूप से निकल आता है तो वह किसी के ही मुँह से क्यों न आया हो, लोग निश्चित रूप से समझ जाते हैं कि इसको न मान लेने से काम नहीं चलेगा।

बिहारी ने रसोईघर में जाकर देखा, सावित्री रसोइया महराज से दूध गरम कराने का उद्योग कर रही है। उसने कहा, "रात हो गई, अभी तो तुमने स्नान-संध्या पूजा नहीं की। दिनभर गाड़ी में एक बूँद पानी तक तुमने नहीं पिया। चलो, पहले तुमको स्नान की जगह दिखा दूँ, तब तक बाबू का दूध गरम हो जाएगा।" यह कहकर वह सावित्री को एक प्रकार बलपूर्वक ही ले गया।

उसको भेजकर बिहारी ने बाबू के लिए तंबाकू चढ़ाया। हाथ में गुड़गुड़ी लेकर चुपके से किवाड़ ठेलकर बाबू के कमरे में चला गया। सतीश चुपचाप खड़ा हुआ था। आँखें खोलकर बोला, "कौन? बिहारी है क्या?"

"हाँ बाबू, तंबाकू चढ़ाकर लाया हूँ।"

"यहाँ आ। वह कहाँ है रे?"

बिहारी ने कहा, "अभी तक एक बूँद पानी उनके मुँह में नहीं गया है। इसीलिए बरबस स्नान के लिए भेजकर; तब आया हूँ बाबू!"

सतीश ने कहा, "अच्छा किया है, लेकिन तुझे मैं ढूँढ़ रहा था बिहारी।"

बिहारी घबरा उठा, बोला, "क्यों, बाबू, इस समय तबीयत कैसी है?"

सतीश ने सिर हिलाकर कहा, "अच्छी नहीं बिहारी। इसलिए मैं तुझे ढूँढ़ रहा था। दरवाजे में चिटकनी लगाकर मेरे पास आकर जरा बैठ।"

बिहारी दरवाजा बंद करके शंकित चित्त से मालिक के पैरों के पास आकर भूमि पर घुटने के बल बैठ गया।

सतीश ने पूछा, "अच्छा बिहारी, तू ग्रहकोप मानता है?"

बिहारी ने आश्चर्य से कहा, "ग्रहकोप? ग्रहों का दोष भला मैं न मानूँगा? पोथी-पत्रा का लिखा क्या कभी झूठ हो सकता है बाबू?"

सतीश जरा चुप रहकर बोला, "इस बार मेरा एक बहुत बड़ा ग्रहकोप है बिहारी।"
बिहारी सिहर उठा, बोला, "नहीं, नहीं, ऐसी बात आप मत कहिए बाबू।"
सतीश ने दो बार सिर हिलाकर कहा, "मुझे पता लग गया है बिहारी, यह ज्वर मेरा अंतिम ज्वर है इस बार मैं बचूँगा नहीं।"
पलभर में बिहारी मालिक के दोनों पैर पकड़कर बोल उठा, "इस बात को मुँह से मत निकालिए बाबू, आपकी सारी विपत्ति लेकर मैं ही मर जाऊँ तो ठीक हो। मेरी परमायु लेकर आप जीवित रहिए बाबू, नहीं तो हम सभी लोग मर जाएँगे।" यह कहते-कहते बिहारी जोर से रोने लगा।
सतीश ने गंभीर होकर कहा, "मरने-जीने की बात तो ठीक बताई नहीं जा सकती बिहारी, यदि मैं न भी बचूँ, तुझसे मैं जो कुछ पूछता हूँ, सच-सच बताएगा तो?"
बिहारी ने रोते-रोते कहा, "मैं आपके पाँव छूकर, शपथ खा रहा हूँ बाबू, एक भी बात मैं झूठ न बोलूँगा।"
"कुछ भी तू छिपाएगा नहीं, बता।"
"नहीं बाबू, कुछ भी नहीं।"
सतीश ने कहा, "अच्छा, बैठ जा।"
बिहारी आँखें पोंछकर अपनी जगह पर बैठ गया। सतीश ने पूछा, "सावित्री तुझे कहाँ मिली, बता तो?"
"वह तो मैं कह चुका हूँ, काशी में।"
"वहाँ विपिन बाबू के साथ तेरी भेंट हुई थी?"
बिहारी जीभ काटकर घृणा के साथ बोल उठा, "राम! राम! वह हारामजादा हम लोगों का कौन है कि उससे भेंट होती बाबू।"
सतीश ने कहा, "लेकिन तूने तो अपनी आँखों से उनको उसके बिछौने पर...!"
बिहारी ने दोनों हाथ उठाकर सतीश की बात पूरी भी न होने दी। एकाएक अत्यंत उत्तेजित होकर अपने गालों पर मुँह पर कई चपतें जड़कर कहने लगा, "उसका दंड यही है। यही! यही! तो भी बिना जाने ही कह दिया था, इसलिए अब भी पाँच आदमियों के सामने मुँह दिखा सकता हूँ, नहीं तो मेरी यह जीभ इतने दिनों में सड़कर गिर गई होती।
सतीश ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "क्या हो गया है तुझे!"
बिहारी तब लज्जित होकर स्थिर भाव से बैठ गया और एक-एक करके सारी बातें कहने लगा। कुछ भी उसने बढ़ाया नहीं। एक बात भी छिपाई नहीं।
स्वयं जो कुछ जानता था, मोक्षदा के मुँह से, चक्रवर्ती से जो कुछ सुन चुका था, सावित्री से जो-जो बातें जान सका था, सब एक-एक करके उसने स्पष्ट रूप से सुना दी।
सतीश पत्थर की मूर्ति की भाँति स्तब्ध होकर बैठा रहा। बिहारी के मुँह में भी अब कोई बात नहीं रही।
बहुत देर के बाद सतीश ने एक लंबी साँस लेकर कहा, "इतने दिनों से ये सब बातें तूने मुझे बताई क्यों नहीं बिहारी?"
बिहारी ने कहा, "कितने ही दिनों से बताने के लिए मेरी छाती मानो फटती जा रही थी बाबू, लेकिन किसी तरह मुँह खोल नहीं सकता था।"

“क्यों, सुनूँ तो?”

‘माँजी ने ही सिर की शपथ दिलाकर मना कर दिया था बाबू।”

सतीश फिर कुछ देर चुप रहकर बोला, “अच्छा, मान लेता हूँ कि यही बात है, लेकिन उस दिन रात को सावित्री अपने ही मुँह से कह गई थी कि वह विपिन के अतिरिक्त और किसी को नहीं चाहती, उनके ही साथ वह चली जा रही है। इसका क्या अर्थ है बताओ तो?”

बिहारी बोला, “यह बात मैं स्वयं भी समझ नहीं सकता बाबू। फिर भी मैं ठीक जानता हूँ, यह झूठ है! झूठ! बिल्कुल झूठ है! यदि यह झूठ न हो तो मेरा एक भी लड़का न बचे बाबू। माँजी के जाते समय रोकर मैंने कहा था—क्यों, इस मिथ्या कलंक के बोझ को तुमने स्वयं ही अपने सिर पर उठा रखा माँ? तो भी माँजी ने मुझे बता देने की आज्ञा नहीं दी, स्वयं भी रोते-राते उन्होंने मुझसे कहा, बिहारी, मेरे सिर की शपथ है भैया, ये सब बातें बाबू से तुम मत कहना। वे मुझसे घृणा करें, और कभी मेरा मुँह न देखें, वही मेरे लिए अच्छा होगा, तो भी उनसे मत बताना कि मैं अपने ही पाँवों पर कुल्हाड़ी मारकर चली गई हूँ।”

यह कहकर उस रात की करुण स्मृति की पीड़ा में बिहारी टपटप आँसू गिराकर रोने लगा।

लेकिन स्वामी की आँखों से भी आँसू की धारा बह रही थी, बूढ़ा नौकर वह देख न सका।

बहुत देर बाद सतीश ने धीरे से आँसू पोंछकर कहा, “तू समझ नहीं सकता बिहारी, लेकिन मैं समझ गया हूँ कि किसलिए उसने अपने ही पाँवों पर कुल्हाड़ी मार दी थी, लेकिन असत्य की तो जीत नहीं होती बिहारी।” तभी द्वार पर हाथ का आघात पड़ा, “यह क्या! दरवाजा बंद करके सो गए क्या? सिटकनी खोल दो।”

बिहारी ने स्वामी के मुख की ओर देखा, लेकिन स्वामी नेत्र बंद करके चुपचाप लेटे रहे।

बाहर से फिर आवाज आई, “दरवाजा खोल दो न। हाथ जल रहा है।”

बिहारी ने उठकर दरवाजा खोल दिया और वहाँ से चुपचाप चला गया।

चालीस

कटोरी में गरम दूध लिए सावित्री ने कमरे में आकर तिपाई पर झट से रख दिया। वह सफेद चमकती हुई रेशमी साड़ी पहिने थी, स्नान करने से लंबे भीगे बाल पीठ पर लहराकर नीचे लटक रहे थे, कई छोटी-छोटी लटें मुँह पर ललाट पर आ पड़ी थीं। सतीश ने कनखियों से उसको देखा। उसको एकाएक जान पड़ा मानो उसने सावित्री को आज ही पहले-पहल देखा हो।

लेकिन वह सतीश के भीगे नेत्रों को उस दीपक के क्षीण प्रकाश में देख न सकी। तनिक और भी उनके निकट आकर मुसकराकर बोली, “दरवाजा बंद करके मालिक-नौकर में क्या परामर्श हो रहा था, सुनूँ तो! इस निर्लज्ज संकट को किस प्रकार बाहर निकाल दिया जाए, यही न?”

सतीश कुछ नहीं बोला। कहीं बातें कहने से भीतर की दुर्बलता पकड़ में न आ जाए, इस

भय से वह चुप ही रहा।

सावित्री ने कहा, "बचपन में बिल्ली के गले में घंटी बाँधने की कहानी तुम पढ़ चुके हो न? मैं भी देखना चाहती हूँ कि घंटी बाँधने के लिए कौन आगे आता है। तुम स्वयं या तुम्हारे वह साधुजी?"

इस पर भी सतीश ने कोई बात नहीं कही, जैसे चुप पड़ा था, वैसे ही पड़ा रहा।

एक कुरसी खींचकर सावित्री पास ही बैठ गई, लेकिन इस बार उसका परिहासयुक्त स्वर गंभीर हो उठा। बोली, "परिहास छोड़ो। बात क्या है, मुझे समझा सकते हो, उपेन भैया के साथ तुमने झगड़ा किया, अंत में सुनती हूँ कि सरोजिनी के साथ भी झगड़ा करके तुम चले आए। वह तो किसी दिन मिट ही जाएगा, मैं जानती हूँ, लेकिन यह क्या हो रहा है! मेरा शरीर छूकर तुमने शपथ खाई थी, शराब न छुओगे। शराब तो भाड़ में जाए, गाँजा भी पीने लगे हो, वह भी लुक-छिपकर, साधारण रूप से नहीं, कितने ही अभागों के झुंड बटोरकर गेरुआ वस्त्र पहनकर तंत्र-मंत्र का ढोल पीटकर खुल्लम खुल्ला छाती फुलाकर पीना चल रहा है।"

सावित्री के मुँह से सरोजिनी का नाम सुनकर सतीश का शरीर जल उठा। वह समझ गया कि बिहारी ने कुछ भी बताना शेष नहीं छोड़ा है। एक बार उसके होंठों पर यह बात आई कि तुम्हारे ही कारण मेरा यह सर्वनाश हुआ है। तुम ही मेरे शनिग्रह हो! लेकिन उस बात को दबाकर गंभीर स्वर से उसने संक्षेप में कहा, "छाती फुलाकर शराब-गाँजा पीने में दोष क्या है?"

"दोष क्या है, तुम नहीं जानते?"

"नहीं।"

"अच्छा, यदि नहीं जानते, तो यह तुम जानते हो कि मेरा शरीर छूकर तुमने प्रतिज्ञा की थी कि नहीं पिओगे?"

"तुम मेरी कौन हो कि कभी बरबस मुझसे शपथ खिला ली थी तो वही एक बड़ी बाधा हो गई।"

सावित्री ने किसी प्रकार हँसी दबाकर सिर हिलाकर कहा, "कोई नहीं हूँ मैं? बिल्कुल ही कोई नहीं?"

सतीश ने भी सिर हिलाकर कहा, "नहीं।"

"फिर मदिरा का गिलास पीकदानी में उड़ेलकर इलायचीदाने चबाते-चबाते क्यों चले आए थे?"

"केवल तुम बकने-झकने लगोगी, इसी भय से।"

सावित्री ने हँसकर कहा, "फिर भी सावित्री कोई नहीं है। अच्छा, अब तनिक दूध पीकर सो जाओ।" यह कहकर वह उठ पड़ी और दूध की कटोरी हाथ में लेकर सतीश के सामने आ खड़ी हुई। सतीश ने आपत्ति नहीं की। वह उठ बैठा और सब दूध पीकर सो रहा।

सावित्री कटोरी हाथ में लिये चली जा रही थी। सतीश ने पुकारकर पूछा, "तुम्हारी संध्या-पूजा हो चुकी?"

सावित्री ने घूमकर कहा, "हाँ।"

"क्या खाया?"

"अभी तक खाया नहीं। अब जाकर खा लूँगी।"

"सोओगी कहाँ?"

"देखती हूँ, फाटक के बाहर कोई स्थान है या नहीं, न होगा तो पेड़ के नीचे सो रहूँगी।" यह कहकर वह आप ही आप हँसकर बोली, "अच्छा, यह बात मुँह से निकलते तुम्हें तनिक भी कष्ट नहीं होता? धन्य हो तुम!" यह कहकर अत्यंत स्नेह से सतीश के ललाट पर लटके हुए बालों को हाथ से हटाते समय उसके ललाट का ताप अनुभव कर वह चौंक पड़ी। बिहारी ने कमरे में घुसते ही पूछा, "माँजी, तुम्हारा बिछौना...।"

सावित्री ने पास के कमरे को दिखाकर कहा, "इसी कमरे में मेरा बिछौना ठीक कर दो बिहारी, बाबू का ज्वर कुछ अधिक जान पड़ रहा है। मैं इसी पासवाली कोठरी में सोऊँगी। बीच का दरवाजा खुला रहेगा, तुमको भी आज इसी कमरे के फर्श पर सोना होगा।"

सतीश से उसने कहा, "अब रात को जागते मत रहो, तनिक सोने की चेष्टा करो।" यह कहकर वह धीरे-धीरे द्वार बंद करके चली गई।

थोड़ी देर बाद साधारण सा कुछ खा-पीकर सावित्री लौट आई। वह पासवाली कोठरी में ही एक चटाई बिछाकर लेट रही और उसकी दोनों थकी आँखें देखते-देखते गाढ़ी नींद से मुँद गईं।

बड़े तड़के ही नींद टूट जाने पर हड़बड़ाकर सावित्री उठ पड़ी और उस कमरे में जाकर उसने देखा कि सतीश थोड़ा सा छटपटा रहा है। ललाट पर हाथ रखकर उसने देखा ज्वर के ताप से जल रहा है। उसके शीतल स्पर्श से सतीश ने आँखें खोल दीं। उसकी दोनों आँखें उड़हुल के फूल की तरह लाल हो उठी थीं।

ज्वर की दशा देखकर सावित्री भय के मारे उसी बिछौने पर झट से बैठ गई, पूछने की शक्ति उसमें नहीं रह गई थी।

सतीश ने उसका हाथ खींचकर अपने जलते हुए ललाट पर रखकर कहा, "मैं कल ही जान गया था। कल ही मैंने बिहारी से कहा था—यही ज्वर मेरा अंतिम ज्वर है, इस बार न बचूँगा।"

ज्वर की पीड़ा से उसने इस प्रकार ये बातें हाँफते-हाँफते कहीं कि उसे सांत्वना देने की बात तो दूर रही, रुलाई न रोक सकने के कारण सावित्री का ही गला रुँध गया। वह सारी रात निश्चिंत होकर सोती रही, इसी कारण मन ही मन पश्चात्ताप करने लगी।

सतीश ने कहा, "मुझे यही एक भरोसा है कि तुम मेरे पास हो।" यह कहकर वह करवट बदलकर लेट रहा।

कल रात को उसने जिसको कहा था, "तुम मेरी कौन हो?" वह आज उसका सबसे बड़ा अवलंब है।

लेकिन थोड़ी देर के लिए सावित्री में इतनी भी सामर्थ्य नहीं रही कि बिहारी को डॉक्टर बुलाने के लिए कह दे। केवल सतीश की बाँह पर हाथ रखकर वह पत्थर की मूर्ति की तरह बैठी ही रह गई।

थोड़ी ही देर बाद सतीश ने फिर करवट बदली। फिर सावित्री का हाथ खींचकर अपनी छाती पर रखकर बोला, "मैंने भी तो कुछ डॉक्टरी पढ़ी है, मैं निश्चित जानता हूँ कि उस समय तक मुझे यह ज्ञान न रहेगा लेकिन अभी तक मुझे खूब होश है, लेकिन इतना ज्ञान

फिर मुझे न हो जाए तो उपेन भैया से कहना, उस दराज में मेरा वसीयतनामा है। मैं जानता हूँ वह मेरा मुँह न देखेंगे, लेकिन यह भी जानता हूँ कि मेरी मृत्यु के बाद वह मेरी अंतिम इच्छा का अपमान भी न करेंगे। सावित्री, संसार में तुम्हारे अतिरिक्त उनसे बढ़कर मेरा और कोई स्वजन संभवतः नहीं है।"

वसीयतनामे का नाम सुनकर सावित्री आत्मविस्मृत सी हो गई। इतने दिनों के उसके संयम का बाँध क्षण भर के आवेश में ही टूट गया। सतीश की छाती पर माथा रखकर वह बच्चे की तरह रोने लगी।

बिहारी लगभग सारी रात जागता रहा और भोर में सो गया था। वह चौंककर उठ बैठा और हतबुद्धि की भाँति निहारता रहा।

तब सतीश ने दोनों हाथों से बलपूर्वक सावित्री का मुँह ऊपर उठाया और क्षण भर टकटकी बाँधे निहारता रहा और उसकी दोनों आँखों से बहते हुए आँसू के खोल को अपने आग की तरह जलते हुए होंठों से पोंछकर चुपचाप पड़ा रहा।

उसका मुँह, उसकी ठुड्डी दोनों सावित्री के अश्रुप्रवाह से डूब जाने लगे। उस प्रवाह ने उसके प्रचंड ज्वर के ताप को भी कितना शीतल कर कर दिया, यह अंतर्यामी से छिपा नहीं रहा, लेकिन संसार में उस बूढ़े बिहारी के विस्मय-विमुग्ध नेत्रों के अतिरिक्त उसका अन्य कोई साक्षी नहीं रहा।

बाहर शरत् का स्निग्ध प्रवाह उस समय प्रकाश से खिलखिला रहा था।

सावित्री अपने को सँभालकर उठ बैठी और आँचल से अपने नेत्र पोंछकर प्रियतम के मुँह से आँसू के चिह्न यत्नपूर्वक पोंछ डालने के बाद उठकर उसने कमरे के सब दरवाजे और खिड़कियाँ खोल दीं। खोलते ही सुनहरी किरणों से सारा कमरा भर उठा।

बिहारी के नेत्रों से उस समय आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें झर रही थीं। सावित्री अपने मुँह का भाव सँभालकर सहज कंठ से बोली, "डर क्या है बिहारी, मेरे रहते उनको कोई भय नहीं है, बाबू अच्छे हो जाएँगे। मैं बाबू के कपड़े बदलकर बिछौना बदल दूँ, तब तक तुम डॉक्टर साहब को बुला लाओ।" यह कहकर वह फिर लौट गई।

डिस्पेंसरी के डॉक्टर साहब आकर भली प्रकार सतीश की जाँच करके मुँह बिगाड़कर बोले, "यह तो निमोनिया के लक्षण देख रहा हूँ। डर नहीं है, रोग अभी तक बढ़ा नहीं है।"

सांत्वना देकर डॉक्टर साहब अपने हाथों से दवा तैयार करने के लिए नीचे चले गए। सतीश ने पीड़ा से तनिक हँसकर सावित्री के मुँह की ओर देखकर कहा, "मैं तिल भर भी नहीं डरता।" यह कहकर तकिए के नीचे से चाभियों का गुच्छा निकालकर, दिखाकर उसने कहा, "इसे पहचान सकती हो सावित्री? अपनी इच्छा से किसी दिन जिसे तुमने आँचल से बाँधा था, आज मैं ही तुम्हारे आँचल में बाँध देता हूँ।" यह कहकर सावित्री के आँसू से भीगे आँचल को खींचकर धीरे-धीरे चाभियों का गुच्छा उसने बाँध दिया। फिर साँस लेकर करवट बदलकर वह लेटा रहा।

सावित्री पर बिहारी का दृढविश्वास था। उससे सांत्वना पाकर पहले वह प्रफुल्ल हो उठा, लेकिन वह तो कोई उसका लड़का था नहीं। कुछ ही दिनों के बाद सावित्री का मुख देखकर वह मन ही मन डर गया। वह स्पष्ट देख रहा था इस कर्मनिष्ठ सहनशील रमणी के शांत मुख पर एक पीली छाया क्रमशः गाढ़ी होती जा रही है।

आठ-दस दिनों के बाद एक दिन संध्या को सावित्री को एकांत में पाकर उसने स्वाभाविक कंठ से पूछा, ‘‘माँजी, इस बूढ़े को भुलावे में डालकर क्या होगा? तुम्हारा वह कोमत हृदय जो कुछ सह लेगा, उसको क्या इस बूढ़े की हड्डी न सह पाएगी? इससे तो यही अच्छा है कि सब बातें मुझसे खोलकर कह दो, मैं देखूँ यदि कुछ उपाय कर सकूँ।’’

सावित्री ने स्थिर रहकर कहा, ‘‘तुमको अभी तक मैंने बताया नहीं बिहारी, लेकिन तुम्हारे नाम से उपेन बाबू के पास आज सवेरे मैंने चिट्ठी लिख दी है। दो दिन प्रतीक्षा करके देखती हूँ, यदि वह न आवें तो तुमको स्वयं एक बार उनके पास जाना होगा बिहारी।’’

बिहारी ने उत्कंठित होकर कहा, ‘‘मुझसे पूछे बिना यह काम तुमने क्यों किया माँ?’’

क्यों बिहारी, क्या वह न आवेंगे?’’

बिहारी ने सिर हिलाकर धीसे से कहा, ‘‘वह आ भी सकते हैं, लेकिन एक बार मुझसे क्यों नहीं बता दिया माँ?’’

‘‘क्यों बिहारी?’’

बिहारी संकोच से चुप रह गया। बात कहना आवश्यक था, लेकिन वह अत्यंत अपमानजनक बात उसके मुँह से सहसा बाहर न निकल सकी।

सावित्री ने कहा, ‘‘इस समय उनका आना बहुत जरूरी है बिहारी!’’

बिहारी ने बड़े कष्ट से संकोच दूर करके कहा, ‘‘यह तो मैं जानता हूँ माँ, लेकिन तुम्हारे उनके पास न रहने पर संसार के सब लोग यदि बाबू का बिछौना घेरे रहें तो भी उनको बचाया न जा सकेगा, इस बात पर तुम विचार क्यों नहीं करती माँ?’’

सावित्री ने कहा, ‘‘मैंने सोचा है बिहारी। मैं घर में जहाँ भी हो, छिपी रहकर अपना काम करती रहूँगी, उपेन बाबू के आए बिना काम न चलेगा। इस विपत्ति में भला-बुरा भी क्या मैं नहीं समझती हूँ? नहीं, बिहारी, उनको आने दो।’’

बिहारी ने सिर हिलाते हुए कहा, ‘‘उपेन बाबू की बात तो मैं नहीं जानता, लेकिन बाबू की बात जानता हूँ। मैं मूर्ख अवश्य हूँ, लेकिन इन साठ वर्षों से तो संसार देख रहा हूँ! कितने पुरुष तुमसे अधिक भली-बुरी बात समझते हैं माँ? इसे जाने दो, तुम्हारे उनके पास से हट जाने से इस बार बाबू को अच्छा न कर सकूँगा, यह बात मैं तुम्हारे पाँव छूकर शपथ खाकर कह सकता हूँ। ऐसा कार्य तुम मत करो, तुम मेरे बाबू को छोड़कर और कहीं मत जाओ।’’

यह बात बिहारी की अपेक्षा सावित्री कुछ कम जानती थी, ऐसी बात नहीं है, लेकिन वह मौन रही। उसको अपने पास न पाने पर सतीश की विकलता कितनी बढ़ जाएगी, इसे सतीश ही जाने, लेकिन इस भयंकर रोगशैया पर पड़े रहने की दशा में सतीश को नेत्रों से ओझल करके सावित्री स्वयं भी कैसे जीवित रह सकेगी? उससे और सतीश से, उपेन की उसके प्रति घृणा छिपी नहीं थी। उनके आने पर उसे अपने को छिपा ही रखना होगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। इन सभी बातों पर उसने मन ही मन विचार करके देख लिया था, लेकिन जिसके कारण इतने दिन उसने इतना कष्ट सहन किया है, उनके कारण यह दुःख भी सहेगी, यह सोचकर ही उसने सतीश की बीमारी का पूरा विवरण उपेंद्र के पास लिख भेजा था, आने के लिए अनुरोध भी किया था।

सावित्री ने दृढ़ कंठ से कहा, ‘‘नहीं बिहारी, यह मैं न होने दूँगी। यदि वे परसों तक न आएँगे तो तुमको स्वयं जाकर उनको लाना होगा।’’

बिहारी ने मलिन मुख से कहा, "यह बात तुम क्यों कह रही हो माँ। मैं हूँ नौकर, जो आज्ञा होगी, मुझे करना पड़ेगा, लेकिन मैं भी तो मनुष्य हूँ। चोर की भाँति तुम्हारा छिपा रहना यदि मैं किसी दिन न सह सकूँ तो तुम मुझे गाली न दे सकोगी माँ, यह मैं पहले ही बता देता हूँ।" यह कहकर वह उदास चित्त से चला गया।

लेकिन सावित्री की वह चिट्ठी उपेंद्र को मिली ही नहीं। पिता और महेश्वरी के बार-बार के अनुरोध से वह एक महीना पहले अपनी इच्छा के बिल्कुल ही विरुद्ध हवा-पानी बदलने के लिए पुरी जाने को बाध्य हुए थे। वहाँ किसी से परिचय न रहने के कारण प्रथम रात्रि तो उन्हें एक छोटे से होटल में काटनी पड़ी थी। इच्छा थी कि दूसरे दिन सवेरे कोई अच्छा स्थान ढूँढ़ लेंगे, लेकिन होटल के मालिक भुवन मुखर्जी ने उनकी पूरी आवभगत की, अलग कोठरी में बिछौना ठीक करा दिया और विश्वास दिलाया कि जितने दिन चाहे यहाँ रहने पर भी, सेवा में कोई त्रुटि न होगी।

सवेरे एक प्रौढ़ा स्त्री कमरे में झाड़ू देने आई। उपेंद्र का बार-बार निरीक्षण करके अंत में उसने झाड़ू एक ओर फेंक दी और बोली, "बाबू को क्या कोई बीमारी हुई थी? बहुत ही निर्बल देख रही हूँ! पहले का वह चेहरा नहीं है, शरीर का वह रंग भी नहीं है।"

उपेंद्र ने आश्चर्य के साथ पूछा, "तुम क्या मुझे पहचानती हो?"

उस स्त्री ने कहा, "मैं तो मोक्षदा हूँ, आपको नहीं पहचानती?"

उपेंद्र को स्मरण आ गया कि वह स्त्री मोक्षदा है, जो बहुत दिन पहले सतीश के मकान में नौकरी करती थी, उन्होंने कहा, "तुम यहाँ नौकरी करती हो?"

मोक्षदा ने लज्जित होकर कहा, "नहीं...हाँ...एक तरह की नौकरी ही तो है। मुखर्जी ने कहा था अब कलकत्ता में रहना क्यों? चलो, किसी तीर्थस्थान में चलकर रहो। जो भी हो, एक होटल खोलकर...।"

उपेंद्र ने बीच में रोककर कहा, "होटल अच्छी तरह चल रहा है न?"

उनकी विरक्ति मोक्षदा से छिपी न रही। उसने कहा, "यों ही चल रहा है। बाबू, इस उम्र में नौकरी क्यों करनी होगी और मुखर्जी का आश्रय ही कैसे छोड़ देती! सच कहा जाए तो एक तरह से मैंने ही लड़की को पाला-पोसा था। वह मुझे मौसी कहकर पुकारती थी, सच्ची मौसी की तरह मैंने उसे गोद में सदा रखा था, इस बात को कौन नहीं जानता। सावित्री ने कहा, "मौसी, मुझसे यह सब न होगा।' यही सही। मैंने बाबू लोगों के मेस में नौकरी लगा दी। वे लोग उसे नौकरानी नहीं समझते थे। घर की मालकिन की तरह मानते थे। न वह जाती और न मुझे यह सब करना पड़ता, लेकिन जो कुछ भी कहो, हम लोगों के छोटे बाबू के ही कारण आज मुझे इतना दुःख है।"

उपेंद्र ने उत्सुक होकर पूछा, "छोटे बाबू कौन? सतीश?"

मोक्षदा ने सिर हिलाकर कहा, "हाँ, छोकड़ी ने किस दृष्टि से छोटे बाबू को देखा कि उसके लिए उन्होंने अपना सर्वस्व त्याग दिया? और इतना ही नहीं, छोटे बाबू को उसने अपना शरीर छूने भी नहीं दिया। विपिन बाबू लखपति जमींदार हैं। मेरे डेरे पर दिन-रात दौड़-धूप, रोना-धोना मचाकर पाँवों के तलवे तक घिसते रहे। सोना-चाँदी के जड़ाऊ गहनों के लिए दस हजार रुपए रख देना चाहा, लेकिन छोकरी ने उनका मुँह तक भी नहीं देखा! कैसा तेज उस लड़की के चेहरे पर दिखाई पड़ रहा भैया, दस हजार रुपए की माया को

फेंककर घर-द्वार, आवश्यक सामान वस्त्र तक छोड़कर एक साड़ी पहने चली गई और चेतला के किसी एक ब्राह्मण के घर छह महीने तक नौकरी करती रही। वहाँ काम करते-करते हड्डी-पसली तक निकल आई। अंत में वह कहाँ चली गई, दुर्गा माता ही जानती हैं, अभागिनी मर गई या जीती है!" यह कहकर मोक्षदा ने अपने पहले की स्मृति के आवेग से आँचल से आँखें पोंछ डालीं।

उपेंद्र मौन रहकर उसकी ओर निहारते रहे।

मोक्षदा ने आँखें पोंछकर रोने के स्वर से पूछा, "हाँ बाबू, छोटे बाबू अब कहाँ हैं? एक बार भेंट हो जाती तो मैं उनसे पूछती, उसका कोई समाचार जानते हैं या नहीं?"

उपेंद्र ने मृदु स्वर से कहा, "सतीश इस समय कहाँ है, यह मैं भी नहीं जानता। सुना है अपने गाँव के मकान पर है। अच्छा, यह सावित्री नाम की औरत कौन है मोक्षदा?"

मोक्षदा एक ही क्षण जल-भुनकर बोली, "कौन है? कुलीन ब्राह्मण की लड़की है बाबू! नौ वर्ष की उम्र में विधवा होकर उस घर में ही रहती थी। यही ब्याह कराऊँगा, राजरानी बनाऊँगा, कहकर फुसलाकर निकाल लाया, अंत में हाँड़ी की तरह उसे फेंककर भाग गया। मैं ही ऐसी हूँ कि उसका मुँह देखती हूँ, नहीं तो वह ब्राह्मण नहीं है, शूद्र है! शूद्र के हाथ का पानी हम पी सकते हैं, पर उसके हाथ का नहीं!"

उपेंद्र समझ न सके कि वह क्या कह रही है। पूछा, "किसकी बात कह रही है मोक्षदा?"

मोक्षदा ने उद्धत भाव से कहा, "मुँहजला भुवन मुखर्जी! नहीं तो दोनों लोक में ऐसा चमार दूसरा कौन है? यही उसकी बड़ी बहन का पति है, इसी का ऐसा काम!"

उपेंद्र ने अत्यंत आश्चर्य में पड़कर पूछा, "जिनका यह होटल है, वे ही?"

मोक्षदा ने कहा, "हाँ बाबू, यही दरिद्र, मनहूस आदमी।" इसके बाद अनुपस्थित मुखर्जी को संबोधन कर कहने लगी, "लेकिन तू उसका क्या कर सका! अपार सागर में तूने उसे डुबो दिया, इसके अतिरिक्त किसी दिन उसका शरीर क्या तू छू सका? ले जाकर, आज नहीं, कल करके एक महीना बिताकर जिस दिन तूने कहा कि ब्याह नहीं होगा, उसी दिन मुँह पर लात मारकर उसने तुझे दूर किया! नादान लड़की थी, बुद्धि कम थी, तो भी क्या, फिर कभी उसके घर की चौखट तक भी तू लाँघ सका! वह तो कोई मोक्षदा नहीं थी कि दो-चार प्रेम की बातें कहकर भुलावे में डाल देता, दस हजार रुपए के जड़ाऊ गहनों को लात मारकर चली गई।"

उपेंद्र बड़ी देर तक मौन रहकर बोले, "अपने मुखर्जी को एक बार बुला सकती हो, दो बातें उनसे पूछूँगा?"

मोक्षदा ने कहा, "वह बाजार गया है।" फिर ठहरकर बोली, "बीच में एक दिन रास्ते में चक्रवर्ती महराज से भेंट हो गई। वह रोता था और कहता था, उस मेरी बेटी को सभी प्यार करते थे। जैसा रूप था, वैसा ही गुण था, वैसी दया-माया भी उसमें थी!"

उपेंद्र ने पूछा, "चक्रवर्ती महराज कौन हैं?"

मोक्षदा ने कहा, "वह बाबू लोगों के डेरे पर रसोई बनाते थे। सभी बातें जानते थे। बिहारी के मुँह से सुनकर सब बातें उन्होंने मुझसे कहीं। चेतला के एक ब्राह्मण के घर में काम करते समय बीमार पड़कर उसने छुट्टी माँगी। बाबू क्या सभी ब्राह्मण ऐसे निष्ठुर होते हैं? उसने कहा, "तुम्हारी दवा में सात रुपए खर्च हुए हैं। तुम देकर जाओ।' उन रुपयों को

चुकाने के लिए सावित्री पैदल ही सतीश बाबू के डेरे पर गई। छोटे बाबू का स्वभाव खूब ऊँचा है। रुपया-पैसा माँगने पर वह जितना ही क्यों न हो, वह कभी 'नहीं' तो कहते ही नहीं, लेकिन उनका भाग्य ऐसा ही फूटा था कि उसी रात को कोई एक उनका मुँहजला मित्र अपने परिवार के साथ आ गया। दिन भर के बाद स्नान करके मेरी बेटी ज्यों ही घर में गई, त्यों ही वे लोग आ पहुँचे। इष्टमित्र आ गए थे, तो रात भर रह जाते! सो नहीं, क्रोध करके अपनी स्त्री का हाथ पकड़कर वापस चले गए। छोटे बाबू तो स्तंभित हो गए, लेकिन मेरी सावित्री बड़ी अभिमानिनी लड़की है। क्या यह अपमान सह सकती थी? पानी तक न पीकर बेटी जो चली गई, फिर तो कोई उसकी खबर नहीं मिली।"

उपेंद्र स्तब्ध होकर बैठे रहे। उस रात का निष्ठुर इतिहास नेत्रों के आगे स्पष्ट हो उठा और बार-बार यही ध्यान आने लगा, मोक्षदा की कही यदि आधी भी सच हो तो, जिसके नाम से वह घृणा करते आए हैं, वह कैसी अद्‌भुत नारी है!

मोक्षदा अपने काम पर चली गई, लेकिन उपेंद्र वहीं चुपचाप गूँगे की तरह बैठे रहे। छह महीने पहले वह वह सब बातें सुनते भी नहीं थे। जो असत्य है, जो मिथ्या है, लेशमात्र भी कलंक के पाप से कलुषित है, वह सर्वदा ही उनके लिए विषवत् त्याज्य है। सतीश को जो छोड़ सका है, मोक्षदा की बातों से उसकी आँखों की पलकें भारी हो गईं और दृष्टि धुँधली हो गई। उनका संगमरमर सा शुभ्र हृदय पत्थर की तरह कठोर था, फिर क्यों आज एक अज्ञात नारी की कलंकित प्रणय-वेदना की कथा सुनकर उस निष्कलंक शुभ्रता पर छाया आ पड़ी, इस पर विचार कर देखने से ज्ञात हो जाता है कि यह दुर्बलता उसी पत्थर के बीच दबी हुई थी। केवल सुरबाला जब उनकी आधी शक्ति हरण करके चली गई, तब सुयोग पाकर ये ही सब विशाल झरने की भाँति उसकी पत्थर सदृश छाती को भेदकर बाहर निकल आए हैं। सुरबाला उनको कितना शक्तिहीन बना गई है, यह बात जान लेने पर उपेंद्र आज भयभीत हो जाते हैं।

लेकिन उस ओर उनका लक्ष्य नहीं था। वह केवल शून्य दृष्टि से सामने की ओर निहारते हुए बैठे रहे और किसी अनजान सावित्री के प्रेम का इतिहास उनकी सुरबाला की उन अनिर्वचनीय करुण दोनों आँखों की भाँति उनकी आँखों पर आँखें रखकर स्थिर हो गया।

उनको चेत हुआ भुवन मुखर्जी का कंठ-स्वर सुनकर। उसने आहट देकर कमरे में घुसकर कहा, "बाबू, आपने क्या मुझे बुलाया था?"

उपेंद्र ने कहा, "बैठो! तुम सावित्री को जानते हो?"

मुखर्जी ने सिर झुकाकर कहा, "हाँ जानता हूँ।"

"उसके संबंध में तुम जो कुछ जानते हो, मुझे बता सकते हो?"

"जी हाँ, बता सकूँगा।" यह कहकर इस निर्लज्ज मनुष्य ने अपने गंभीर अपराध का इतिहास एक-एक करके बता दिया। अंत में बोला, मैं भी भले आदमी का लड़का हूँ बाबू, लेकिन पहले यदि मैं उसे पहचान सकता, तो इस मार्ग में कदम रखकर रसोईदार ब्राह्मण का काम करके दिन बिताने न पड़ते। केवल मेरी यही धारणा है कि उसके शरीर में प्राण रहते कोई भी उसका बिगाड़ न कर सकेगा।"

उपेंद्र ने पूछा, "उसके प्रति तुम्हारी क्या धारणा है?"

मुखर्जी ने कहा, "फिर भी मैं यह कह सकता हूँ कि वह भ्रष्ट नहीं हुई है।"

उसको विदा कर उपेंद्र पूर्ववत् निर्जीव मूर्ति की भाँति बैठे रहे। केवल उनका मन लगातार यह कहकर उन्हें कोसने लगा, तुमने अच्छा नहीं किया उपेन, अच्छा नहीं किया। निरुपाय नारी इतने बड़े प्रलोभनों को अनायास ही जीतकर चली जा सकती है, उसका अपमान करने का तुम्हें अधिकार नहीं था।

उसी दिन अपराह्न में उपेंद्र भुवन मुखर्जी के यहाँ से चले गए।

लेकिन किसी प्रकार भी समुद्र की जलवायु उन्हें खड़ा न कर सकी। ज्यों-ज्यों दिन चढ़ता जाता था, आँख-मुँह में जलन होने लगती थी और ज्वर भी आ जाता था और प्रतिदिन उन्हें तिल-तिल करके परलोकवासिनी पतिहीन सुरबाला के निकट ही ले जाने को बढ़ता जा रहा है, यही मानो वह अपने हृदय में स्पष्ट अनुभव करने लगे।

इस प्रकार समुद्र-तट के इस निर्जन स्थान में उनकी इस लोक की अवधि जब प्रतिदिन समाप्त होने लगी, तब एक दिन प्रातः की डाक से बिहारी की चिट्ठी घर के पते से पुनः भेजी जाने पर उपेंद्र के हाथ में आ पहुँची।

जिसका स्मरण आते ही उनकी छाती में सुई चुभ जाने की भाँति पीड़ा होने लगती थी, अपने उसी चिरकाल के मित्र का अपमान उसके त्याग देने का दुःख उनके हृदय में दिन-पर-दिन कितना बढ़ता जा रहा था, इसे केवल अंतर्यामी ही जान रहे थे, लेकिन जब उसी मित्र की बीमारी का समाचार लेकर बिहारी के पत्र ने चिकित्सा और शुश्रूषा की अभावपूर्ति का निवेदन किया, तब अनेक दिनों बाद उपेंद्र के सूखे होंठों पर हँसी आ गई। वह बेचारा तो जानता नहीं है कि जिसके जीवन के दिन अब गिने जाने की दशा पर आ पहुँचे हैं, उसी के हाथ में एक और मनुष्य की सेवा का भार सौंपना चाहता है! फिर भी उपेंद्र उसी दिन अपना सामान बाँधकर पुरी से रवाना हो गए।

इकतालीस

ज्योतिष ने हाईकोर्ट से वापस लौटकर घर में पाँव रखते ही देखा कि सामने के बरामदे में दो आरामकुर्सियों पर शशांक और सरोजिनी दोनों आमने-सामने बैठकर बातचीत कर रहे हैं।

शशांक उठ खड़ा हुआ और हँसकर लापरवाही से बोला, “आज काम-काज कुछ जल्दी पूरा हो गया। मैंने सोचा कि यहाँ ही चाय पीकर एक साथ ही क्लब चले जाएँगे।”

“अच्छा, अच्छा!” कहकर ज्योतिष अपनी हँसी को दबाकर घर के अंदर चला गया।

सरोजिनी भैया के साथ अंदर जाने की तैयारी करने लगी तो ज्योतिष घूमकर खड़ा हो गया और बनावटी भर्त्सना के स्वर से बोला, “अतिथि को अकेला छोड़कर, यह तेरी बुद्धि कैसी हो गई है सरोजिनी?”

सरोजिनी लाल मुँह किए फिर कुरसी पर बैठ गई। बहन की यह लज्जा ज्योतिष की आँखों से छिपी न रही।

माँ के आदेश से उसे कचहरी से लौट आने पर कपड़े बदलकर हाथ-मुँह धोकर जलपान करना पड़ता था। माँ से भेंट होते ही उसने कहा, “शशांक आए हैं, आज जलपान की वस्तुएँ बाहर ही भेज दो ना।”

माँ ने कहा, "अच्छा! सरोजिनी संभवतः बाहर है?"

ज्योतिष ने सिर हिलाकर बताया। फिर कुछ चुप रहकर बोला, "अच्छा माँ, ऐसा आदमी तुम्हारी समझ में नहीं है, जिसमें कोई दोष न हो, केवल गुण ही गुण हों?"

इस प्रश्न को जगत्तारिणी प्रसन्नचित्त से ग्रहण न कर सकीं। बोली, "क्यों तू मुझसे बार-बार यही बात पूछता रहता है ज्योतिष? मैं तो अनेक बार कह चुकी हूँ, अब मुझे कोई आपत्ति नहीं। तू अच्छा समझे तो उसके ही हाथ में सरोजिनी को सौंप दे न।"

ज्योतिष ने कहा, "दोष के बिना कोई मनुष्य नहीं है माँ। मैंने अनेक प्रकार से विचार करके देख लिया है, सरोजिनी दुखी न रहेगी। इसके अतिरिक्त वह बड़ी भी हो चुकी है। उसकी सम्मति के बिना काम करना भी उचित नहीं है।" यह कहकर उसने देखा कि सरोजिनी आकर धीरे-धीरे भैया की पीठ के पास खड़ी हो गई है।

माँ भंडारघर के भीतर से ही बातें कर रही थीं, इसीलिए कन्या के आने का उन्हें पता न चला। ज्योतिष की बात के उत्तर में उन्होंने विरक्ति के स्वर में कहा, "यह बात तो मैंने कभी नहीं कही ज्योतिष कि इस लड़की का ब्याह उसकी सम्मति के बिना ही हो। मेरी जो इच्छा थी, उसे जब तुम दोनों भाई-बहनों ने मिलकर पूरा न होने दिया, तभी क्या लड़की के मन का भाव मैं नहीं समझ गई बेटा। मैं सब समझती हूँ। समझकर ही तो मुँह बंद किए बैठी हूँ। अब मुझे झूठमूठ का उलाहना देना व्यर्थ है ज्योतिष।" यह कहकर वह जलपान की वस्तुएँ सजाने लगीं। संकोच से, लज्जा से सरोजिनी गड़ सी गई, लेकिन माँ को कुछ भी ज्ञात न हुआ। ज्योतिष ने उत्तर देने के पूर्व ही वह अपनी बात की पुनरावृत्ति के रूप में फिर कहने लगीं, "जिसको देने से तुम्हारी बहन सुखी रहे, उसे ही दे दो बेटा। मेरी सम्मति अब बार-बार जानने की आवश्यकता नहीं है। मेरा मत जो है, मैं तुमसे कहे देती हूँ।"

बहन के अत्यंत संकोच से ज्योतिष स्वयं बड़ा ही संकुचित हो रहा था। फिर भी बरबस मुसकराकर बोला, "लेकिन मत प्रसन्न मन से देना चाहिए माँ।"

जगत्तारिणी ने कहा, "प्रसन्न मन से ही दे रही हूँ बेटा, प्रसन्न मन से ही दे रही हूँ। मुझे अब तुम लोग तंग मत करो।"

ज्योतिष ने क्षणभर मौन रहकर सोचकर स्थिर किया कि बात जब यहाँ तक पहुँच गई हैं, तब माँ की विरक्ति रहते भी आज ही इसका निर्णय कर लेना ठीक है, क्योंकि उनके क्लब में, लाइब्रेरी में आजकल प्रायः ही इस बात की चर्चा हो रही है, पर उचित क्या होगा, यह बात भी समझ में नहीं आ रही है। घर में यह बात प्रायः ही उठ जाती है, लेकिन इसी प्रकार रुक जाती है, आगे बढ़ने नहीं पाती। शशांक को भी इस तरह अनिश्चित अवस्था में बहुत दिनों तक छोड़कर रखा नहीं जा सकता। इसीलिए वर-कन्या को सुनिश्चित इच्छा के विरुद्ध माँ की स्पष्ट अनिच्छा को ज्योतिष ने सिर पर धारण करके जो कुछ भी हो, इसी क्षण निश्चय कर डालने के लिए कहा, "तो मैंने सोच लिया है माँ कि दो-चार इष्ट मित्रों के सामने परसों तक रविवार को ही यह बात पक्की हो जाए। क्या कहती हो?"

माँ ने कहा, "अच्छा तो है।"

सरोजिनी धीरे-धीरे अपने कमरे में चली गई।

रविवार को सवेरे से ही ज्योतिष का बैठकखाना इष्ट मित्रों से भरता जा रहा था। नवदंपती की विवाह-संबंधी बात पक्की हो जाने पर वहीं दोपहर के भोजन का भी आयोजन किया गया था। आज शशांक की वेशभूषा में ही केवल विशेष सजावट नहीं दिखाई पड़ रही थी, बल्कि उसके अंग-अंग से ऐसी कुछ श्री फूट उठी थी, जिससे वह अत्यंत सुंदर दिखाई दे रहा था। कई स्त्रियाँ भी उपस्थित थीं, लेकिन उपस्थित नहीं थी केवल सरोजिनी। बेयरे से बुलवाने के बाद ज्योतिष स्वयं जाकर उसके कमरे के दरवाजे पर कराघात करके शीघ्र आने के लिए अनुरोध कर आया था। किसी दूसरे दिन उसके इस व्यवहार की गणना अपराध में की जा सकती थी, लेकिन आज उसे क्षमा पाने का अधिकार है, जानकर भी अतिथिगण केवल स्नेहपूर्ण कौतुक से ज्योतिष को डाँट रहे थे।

उसके बाद अनेक बुलाहट-पुकार आने पर लगभग दस बजे जब सरोजिनी उपस्थित हुई, तब उसका मुख देखकर सभी आश्चर्य में पड़ गए। उसका मुँह पीला पड़ गया था, नेत्रों के नीचे स्याही छा गई थी, मानो सारी रात वह एक क्षण भी नहीं सोई। ज्योतिष निर्वाक् होकर केवल बहन के मुख की ओर निहारता हुआ बैठा रहा, बहन की आकृति देखकर वह मानो हतबुद्धि हो गया, लेकिन इसकी अपेक्षा भी सौ गुना बड़ा विस्मय क्षणभर बाद ही उसके भाग्य में बदा था, इसे वह जानता नहीं था। वह विस्मय मानो उपेंद्र की छाया लेकर घर के अंदर आ गया। ज्योतिष ने चौंककर कहा, "उपेंद्र हो क्या?"

सरोजिनी ने कहा, "उपेंद्र बाबू!"

वस्तुतः दिन का समय न रहता तो उसको संभवतः ये लोग पहचान ही न सकते। सहसा अपनी आँखों को मानो विश्वास नहीं होता, मानो सोचा ही नहीं जाता कि मनुष्य का चेहरा इतना बदल सकता है। उपेंद्र एक कुरसी पर बैठकर बोले, "शरीर अच्छा नहीं है, पुरी से आ रहा हूँ। आज यहाँ क्या है?"

सरोजिनी ने आकर उपेंद्र का हाथ अपने हाथ में लेकर उनके मुँह की ओर देखकर कहा, "क्या कोई बीमारी हो गई है उपेन बाबू?" कहते ही उसकी दोनों आँखें अश्रुपूर्ण हो गईं। उपेंद्र ने अपने मुरझाए हुए होंठों पर हँसी लाकर कहा, "बीमारी तो कोई नहीं है बहन।"

उपेंद्र ने आज यही पहले-पहल सरोजिनी को बहन कहकर संबोधित किया। सरोजिनी ने झटपट आँखों के आँसू पोंछकर कहा, "चलिए, उस कमरे में चलकर बैठें।" यह कहकर उनका हाथ पकड़कर उस जानकीर्ण कमरे से वह धीरे-धीरे बाहर चली गई और उसके साथ ही इस कमरे का आनंदोत्सव मानो बुझ सा गया। ज्योतिष ने आकर जब सरोजिनी से कहा, "उपेंद्र थोड़ी देर तक विश्राम करें, तुम एक बार उस कमरे में तो चलो।"

सरोजिनी ने सिर हिलाकर उसी क्षण कहा, "नहीं, आज रहने दो।"

जगत्तारिणी ने समाचार पाकर कमरे में घुसकर रोने के स्वर में कहा, "कैसे इतना दुबला हो गया, लेकिन और कहीं तुम्हारा रहना न होगा उपेन, मेरे ही यहाँ रुककर डॉक्टर को दिखाना पड़ेगा। नहीं तो, यह बीमारी अच्छी न होगी।"

सरोजिनी ने जोर देकर कहा, "हाँ उपेन भैया, तुमको हम लोगों के यहाँ ही रहना होगा।" उसने भी आज ही पहले-पहल उपेंद्र को भैया कहकर पुकारा। उपेंद्र चिकित्सा कराने के लिए पुरी से चले आए हैं, यह बात पूछे बिना ही सब लोग समझ गए थे।

उपेंद्र ने हँसकर कहा, "फिर लौटकर हो सका तो आप लोगों के ही यहाँ रहूँगा, लेकिन

आज मुझे एक घंटे के भीतर ही छोड़ देना होगा।''
जगत्तारिणी ने आश्चर्य से कहा, ''आज ही, इसी क्षण? क्यों उपेन?''
उपेन ने सतीश की बीमारी का उल्लेख करके उसके दातव्य का, चिकित्सालय आदि का समाचार जितना जानता था, सुनाकर जेब से बिहारी की चिट्ठी को निकालकर सरोजिनी के हाथ में देकर कहा, ''साढ़े ग्यारह बजे की ट्रेन है, जो कुछ भी हो, थोड़ा सा खा-पीकर उसी से मुझे जाना पड़ेगा। यदि लौटकर आ सका तो आप लोगों के ही आश्रय में रहूँगा।''
जगत्तारिणी का मातृ-हृदय पिघल उठा। उनके नेत्रों में फिर आँसू दिखाई पड़े। सतीश को वह मन ही मन अत्यंत स्नेह करती थीं। वही सतीश आज बीमार पड़ा है, लेकिन उपेंद्र यह शरीर लेकर उसकी सेवा करने चला है, सुनकर उनकी छाती फटने लगी। वे आँखें पोंछते-पोंछते उपेंद्र के खाने की व्यवस्था करने के लिए कमरे से बाहर चली गईं।
सरोजिनी ने चिट्ठी को आदि से अंत तक दो बार पढ़ डाला, फिर उसे लौटाकर वह कुछ क्षण तक स्तब्ध होकर बैठी रही। उसके बाद बोली, ''तुम्हारे साथ मैं भी चलूँगी उपेन भैया!''
उपेंद्र ने कहा, ''इतना दिन चढ़ आने पर व्यर्थ ही स्टेशन जाकर क्या करोगी बहन?''
सरोजिनी ने कहा, ''स्टेशन नहीं, सतीश बाबू के घर। मुझे तुम अपने साथ ले चलो।''
उपेंद्र ने अवाक् होकर कहा, ''पागल हो गई हो क्या? तुम वहाँ कैसे जाओगी?''
''तुम्हारे साथ।''
उपेंद्र ने कहा, ''छिह! यह क्या हो सकता है? ये लोग तुमको क्या जाने देंगे? और तुम भी वहाँ क्यों जाओगी?''
सरोजिनी ने दृढता से सिर हिलाकर केवल कहा, ''नहीं, मैं जाऊँगी अवश्य।'' यह कहकर वह चली गई।
ऑफिस के कमरे में कोच पर बैठे ज्योतिष एकांत में शशांक से बातचीत कर रहा था, संभवतः इसी विषय पर आलोचना हो रही थी। सरोजिनी ने धीरे-धीरे जाकर भैया की पीठ के पास खड़ी होकर उनके कंधे पर हाथ रखा। ज्योतिष चौंक उठे, मुँह फेरकर बोले, ''क्या है रे सरोजिनी?''
सरोजिनी ने भैया के कानों के पास मुँह ले जाकर धीरे से कहा, ''सतीश बाबू बहुत बीमार हैं।''
ज्योतिष ने सिर हिलाकर दुःखित होकर कहा, ''यही तो मैंने भी सुना है। उपेन इसी ग्यारह बजे की गाड़ी से जा रहा है क्या?''
सरोजिनी ने कहा, ''हाँ, मैं भी उनके साथ जाऊँगी।''
ज्योतिष ने चौंककर कहा, ''तुम जाओगी? कहाँ जाओगी?''
सरोजिनी ने कहा, ''वहीं।''
ज्योतिष उसकी ओर घूमकर बैठ गया, बोला, ''वहाँ कहाँ? सतीश के घर पर क्या?''
सरोजिनी ने कहा, ''हाँ!''
शशांक दोनों आँखें विस्फारित करके निहारता रह गया। ज्योतिष ने उत्तेजित स्वर से कहा, ''तू पागल हो गई क्या रे? तू क्यों जाएगी?''
सरोजिनी ने शांत-दृढ कंठ से कहा, ''मैं न जाऊँगी तो कौन जाएगा? नहीं, भैया, वह

बहुत बीमार हैं। मुझे जाना ही होगा।" और कुछ वह बोल न सकी, रुलाई से गला रुँध जाने के कारण वह भैया के कंधे पर मुँह छिपाकर सिसक-सिसककर रोने लगी।

ज्योतिष के नेत्रों पर से बहुत दिनों का एक काला परदा मानो प्रचंड आँधी के आ जाने से पलभर में फटकर उड़ गया। कुछ क्षण वह मौन बैठा रहा, फिर बहन के माथे पर हाथ रखकर धीरे-धीरे सहलाते हुए बोला, "अच्छा, जा। साथ में दासी और दरबान जाएँ। वह किस दशा में रहता है, पहुँचकर तुरंत ही तार भेज देना। कल-परसों तक मैं भी डॉक्टर को साथ लेकर आ जाऊँगा।" यह कहकर उसने ज्योंही उसको सामने खींच लाने की चेष्टा की, त्योंही सरोजिनी दोनों हाथों से मुँह ढँककर कमरे से दौड़ती हुई भाग गई।

शशांक ने मूढ़ की भाँति निहारते रहने के बाद वही प्रश्न किया, "सतीश बाबू बीमार हैं, तो वह क्यों जाएँगी, यह तो मैं समझ नहीं सका ज्योतिष बाबू? यह सब क्या बात है, बताइए तो?"

ज्योतिष के कानों में यह प्रश्न पहुँचा या नहीं, बताना कठिन है। वह मानो स्पष्ट देखकर आवेश में उठनेवाले मनुष्य की भाँति कहते-कहते बाहर चला गया, "उसके लिए यह इतनी व्याकुल हो उठेगी, यह तो मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। यह कहती है एक तरह, करती है कुछ दूसरी तरह, ये सब कैसी बातें हैं!"

स्टेशन से उतरकर उपेंद्र ने जिस भद्र युवक से सतीश के गाँव का मार्ग पूछा, भाग्य से यह उसी की डिस्पेंसरी का कंपाउंडर था। उसके किसी काम से स्टेशन आया था। अपने बाबू के ही मकान पर ये लोग जानेवाले हैं, सुनकर, वह दौड़-धूप करके केवल एक पालकी सरोजिनी के लिए ठीक कर सका और उपेंद्र से बोला, "वह महेशपुर दिखाई पड़ रहा है, चलिए न बातचीत करते-करते पैदल ही चले चलें! जाने में आध घंटा भी न लगेगा। नहीं तो बैलगाड़ी से जाने में बहुत देर लगेगी।"

उपेंद्र की अवस्था पैदल चलने की नहीं थी, लेकिन बैलगाड़ी के भय से उन्होंने पैदल चलना ही स्वीकार कर लिया।

सरोजिनी को पालकी में बैठाकर और दरबान तथा दासी को उसके साथ करके उपेंद्र उसके साथ रवाना हो गए। उसकी अवस्था सत्रह-अठारह वर्ष से अधिक नहीं थी, खूब चुर और फुर्तीला था। नाम एककौड़ी था। उसे आशा थी, अपने पास किए डॉक्टर साहब के साथ और एक साल तक रहने से वह भी अलग प्रैक्टिस कर सकेगा। उसके मत से डॉक्टरी कोई विद्या नहीं है, केवल हाथ में थोड़ा सा यश रहना चाहिए। नहीं तो जिसे बचना है, वह बचता है, जिसको मरना है, वह किसी प्रकार भी नहीं बचता।

उपेंद्र ने उससे कहा कि इस विषय में उसके साथ उसका कोई मतभेद नहीं है, इसके बाद उन्होंने पूछा, "तुम्हारे बाबू अब कैसे हैं?"

एककौड़ी ने कहा, "बाबू? आज बाईस दिन हुए, वे तो अच्छे हो गए हैं। महाशय, सभी दवाइयाँ मैंने ही दी हैं।" कहकर उसने कई बार अपनी छाती आप ही ठोकी।

उपेंद्र ने बहुत कुछ निश्चिंत होकर पूछा, "बीमारी क्या बहुत बढ़ गई थी एककौड़ी बाबू?" एककौड़ी ने कहा, "बहुत। वह तो मर ही गए थे। माँजी आ नहीं जातीं तो वह शिवजी के लिए भी असाध्य रोग था। होगा नहीं महाशयजी, दिन-रात थाको बाबा के साथ रहकर शराब और गाँजा। कालीजी को सिद्ध कर रहे थे न? खाक कर रहे थे। इन सब बातों

पर क्या हम डॉक्टर लोग विश्वास करते हैं महाशय! हम लोग हैं साइंटिफिक मैन, लेकिन माँजी ने आते ही थाको बाबा की बाबागिरी खत्म कर दी, खींचकर उनका त्रिशूल फेंक दिया। उस उल्लू ने कई दिनों तक क्या कम उपद्रव किया? विश्वास कीजिए, सबको बाबू मारने-खदेड़ने दौड़ता था। एक दिन साधारण सी बात पर मेरे ऊपर ऐसा दाँत कटकटा दिया महाशय! लेकिन मैं तो बहुत भला आदमी हूँ, किसी से मैं झगड़ा-विवाद करना नहीं चाहता, नहीं तो दूसरा कोई होता तो उस उल्लू का सिर काट लेता।" कहकर एककौड़ी ने अपना छाता आकाश में उछाल दिया।

उपेंद्र ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "माँजी कौन हैं?"

एककौड़ी ने कहा, "यह क्या मैं जानता हूँ महाशय! सभी लोग कहते हैं माँजी, मैं भी कहता हूँ माँजी।"

उपेंद्र ने कहा, "उनको तुमने देखा है?"

एककौड़ी ने कहा, "हाँ, मैं एक प्रकार से देखता ही तो हूँ!"

उपेंद्र ने पूछा, "उनकी उम्र क्या होगी बता सकते हो?"

एककौड़ी ने सोचकर कहा, "संभवतः चालीस-पचास की होंगी, नहीं तो दूसरा कोई क्या बाबू को नियंत्रण में रख सकता था महाशय? डॉक्टर साहब तो कहते हैं कि वह न आतीं तो सब समाप्त हो चुका था।"

एककौड़ी के साथ उपेंद्र जब सतीश के घर पहुँचे, तब दिन डूब ही रहा था। सरोजिनी पहले ही पहुँच गई थी। फाटक के बाहर बरगद के पेड़ के नीचे उनकी पालकी रखवाकर दरबान प्रतीक्षा कर रहा था। सामने ही दातव्य चिकित्सालय था, वहाँ लोगों की बहुत भीड़ लगी हुई थी।

एककौड़ी सबको साथ लिए नीचे के बैठकखाने में बिठाकर बिहारी को बुलाने गया, लेकिन उससे भेंट नहीं हुई। डॉक्टर साहब भी बाहर रोगी देखने के लिए गए हुए थे। सभी लोग भीड़ लगाकर उनके लिए प्रतीक्षा कर रहे थे।

उपेंद्र को इन माँजी के विषय में अत्यंत संदेह था, इसीलिए सरोजिनी को वहीं रुकने के लिए कहकर वह सीधे सीढ़ियों से ऊपर चढ़ गए।

सतीश बिछौने पर सो रहा था। उसके सिराहने बैठकर सावित्री ध्यान से कागज देख रही थी। उस ओर को खुली खिड़की से सूर्यास्त की लाल आभा फर्श पर बिखर रही थी।

ऐसे ही समय में दरवाजे का भारी परदा हटाने की आवाज सुनकर सावित्री ने मुँह ऊपर उठाकर देखा एक अपरिचित भले आदमी आ गए हैं।

घबराहट के साथ माथे का घूँघट ऊपर खींचकर उठकर खड़ी होने की चेष्टा करते ही आगंतुक ने निकट आकर कहा, "आप उठिए मत, मैं हूँ उपेन। आप सावित्री हैं न!"

सावित्री ने सिर हिलाकर बताया, "हाँ।" लेकिन भय से, लज्जा से संकोच से वह मानो मर सी गई।

उपेंद्र ने पूछा, "सतीश सो रहा है? अब कैसा है?"

सावित्री ने पहले की ही तरह सिर हिलाकर बताया, "अच्छा है।"

उपेंद्र तब धीरे-धीरे आकर पलंग के कोने पर बैठ गए। अपना कर्तव्य उन्होंने पहले ही निश्चित कर लिया था। बोले, "मुझे वह चिट्ठी आपने ही लिखी थी, यह मैं अब समझ गया

हूँ। मुझे आने के लिए लिखकर अपने सुख-दुःख, अपने भले-बुरे को आपने कितना तुच्छ बना दिया था, आप यह मत समझिए कि इन बातों को मैं समझता नहीं हूँ। यह तो स्वजन का परिचय है।''

सावित्री को ऐसा जान पड़ा मानो वह स्वप्न देख रही हो। यह मानो कोई दूसरा ही व्यक्ति है, सतीश का वह उपेन भैया नहीं है।

उपेंद्र ने थोड़ी देर तक मौन रहकर कहा, ''तुमसे मैं उम्र में बड़ा हूँ। तुमको मैं सावित्री कहकर पुकारूँगा। तुम मुझे भैया कहकर पुकारना। आज से मेरी छोटी बहन हो।''

सावित्री ने चुपचाप उठकर उपेंद्र के पाँवों के पास झुककर प्रणाम किया और दोनों हाथ बढ़ाकर उपेंद्र के जूते का फीता खोलते-खोलते सिर झुकाए हुए पूछा, ''आने में इतनी देर क्यों हुई? चिट्ठी क्या ठीक समय पर नहीं मिली?''

उपेंद्र ने सावित्री के काम में बाधा नहीं दी। सहज भाव से बोले, ''नहीं बहन, मिली नहीं। परसों पुरी में तुम्हारी चिट्ठी पाकर चला आ रहा हूँ, लेकिन तुमको एक बहुत ही सहज काम करना है बहन...!''

यहीं पर उपेंद्र के मुँह की बात रुक गई।

सावित्री ने जूते खोलकर एक ओर रख दिए। मोजा खोलते-खोलते उसने पूछा, ''कौन काम है भैया?''

फिर भी उपेंद्र चुप ही रहे। इसके बाद मानो जोर लगाकर भीतर का संकोच दूर करके बोले, ''लेकिन तुम्हारे अतिरिक्त और किसी में यह काम करने की शक्ति नहीं है। एक और इस काम को कर सकती थी, वह थी सुरबाला।''

सावित्री चुपचाप प्रतीक्षा कर रही है, देखकर उपेंद्र ने कहा, ''सरोजिनी का नाम सुना है?''

सावित्री ने सिर हिलाकर कहा, ''सुना है।''

''संभवतः सबकुछ सुन चुकी हो?''

सावित्री ने उसी प्रकार सिर हिलाकर बताया, उसे सबकुछ मालूम है।

तब उपेंद्र ने धीरे-धीरे कहा, ''सतीश की बीमारी की बात सुनकर उसे किसी प्रकार भी रोका नहीं जा सका। मेरे साथ वह भी चली आई है। नीचे के कमरे में बैठी हुई है। उसका कोई उपाय करो बहन।''

सावित्री शीघ्रता से उठ खड़ी हुई। बोली, ''वह आई हैं। मैं अभी जाकर...लेकिन मैं क्या उनके पास जा सकती हूँ भैया?''

इस संकेत को उपेंद्र समझ गए। दोनों आँखें फैलाकर मुक्त कंठ से बोल उठे, ''तुम जा नहीं सकतीं? मेरी छोटी बहन क्या संसार में किसी भी स्त्री से छोटी है कि कहीं भी उसे सिर ऊँचा करके खड़ी रहने में संकोच होगा? मेरी बहन होना क्या संसार में साधारण परिचय है बहन?''

सावित्री और न रुकी। पलभर में उसका सिर उपेंद्र के दोनों पाँवों पर गिर पड़ा। बार-बार उन दुबले-पतले दोनों पाँवों की धूल सिर पर चढ़ाकर जब वह उठ खड़ी हुई, तब उसके मुँह पर आवरण नहीं था, दोनों आँखों से आँसू झर रहे थे। आँसू से भीगे हुए उस मुख पर नारी चरित्र की वृहत् महिमा उपेंद्र टकटकी बाँधे निहारने लगे।

आँखें पोंछकर जब सावित्री कमरे से बाहर आई, तब उपेंद्र ने पीछे से कहा, ''जिसको बहन कहकर अपना परिचय दोगी, उससे कहना कि हम दोनों भाई-बहन ने आज तक कभी संसार में छोटा काम नहीं किया है।''

सावित्री के चले जाने पर उन्होंने सोए हुए सतीश की ओर देखकर पुकारा, ''सतीश! ओ सतीश!''

सतीश की नींद टूट गई। हड़बड़ाकर वह उठ बैठा। आँखें मलकर निहारता रहा।

''तेरा उपेन भैया हूँ, मुझे तू पहचान नहीं रहा है?''

''उपेन भैया!'' सतीश विह्वल नेत्रों से निर्वाक् होकर निहारता रहा।

''क्यों रे, अभी तक तू मुझे पहचान न सका?''

सतीश ने मानो नींद के नशे में बात कही। मानो अभी तक उसका नशा टूटा नहीं था, इस प्रकार के रुख से बोला, ''पहचान गया। तुम आ गए उपेन भैया!''

''हाँ भाई, मैं आ गया हूँ।''

''तो अपने दोनों पाँवों को एक बार ऊपर उठाओ न उपेन भैया। बहुत दिनों से तुम्हारे पाँवों की धूल सिर पर मैं चढ़ा नहीं सका हूँ।''

उपेंद्र ने दोनों हाथ बढ़ाकर अपने मित्र को छाती से लगा लिया। कुछ देर तक अचेतन मूर्ति की भाँति दोनों एक-दूसरे की छाती से लगे रहे। फिर उपेंद्र ने धीरे-धीरे कहा, ''अब और देरी मत कर सतीश, कुछ शीघ्र ही रोगमुक्त हो जा भाई, मेरे बहुत से काम तेरे लिए पड़े हुए हैं।''

''कौन काम उपेन भैया?'' कहकर सतीश ने किसी के पाँवों की आहट सुनकर पीछे की ओर देखा तो स्तंभित हो गया। सावित्री का हाथ पकड़े सरोजिनी चली आ रही थी।

वह एक बार उपेंद्र की ओर देखकर फिर एक बार अच्छी तरह आँखें मलकर इन दोनों रमणियों के मुँह को चुपचाप निहारता रहा। वह अपनी आँखों पर विश्वास नहीं कर पा रहा है, यह बात उपेंद्र और सावित्री दोनों ही समझ गए।

सरोजिनी क्षणभर सतीश के कंकाल जैसे पीले मुख की ओर देखकर जल्दी से आगे बढ़कर उसके पाँवों के पास बिछौने पर औंधी पड़कर अपनी रुलाई के वेग को रोकने लगी। किसी ने कोई बात नहीं कही, लेकिन इस रुलाई के भीतर बड़ी वेदना और क्षमा-याचना थी, वह किसी को समझना शेष नहीं रहा। सतीश चुपचाप मूर्ति की भाँति बैठा रहा। उसके हृदय का एक अंश अव्यक्त आनंद की बाढ़ से जिस प्रकार तरंगित हो उठने लगा, दूसरा अंश उसी प्रकार कठिन समस्या के घात-प्रतिघात से भीत और क्षुब्ध हो उठा। बहुत देर किसी के मुँह से कोई बात नहीं निकली। संध्या के अंधकारपूर्ण शांत कमरे में केवल सरोजिनी की दुर्निवार रुलाई का वेग उसके प्राणपण से दबा रखने के कारण रह-रहकर और भी उच्छ्वसित हो उठने लगा। यह नीरवता भंग हुई उपेंद्र के कंठ-स्वर से। उन्होंने सरोजिनी के माथे पर धीरे-धीरे अपना दाहिना हाथ फेरकर कहा, ''अपराध चाहे जिससे भी क्यों न हुआ हो सतीश, मेरी इस बहन को आज तू क्षमा कर दे। उसके हृदय के भीतर के अनेक दिनों से संचित दुःखों ने आज तेरी सेवा के लिए ही मेरे साथ उसे भेज दिया है, लेकिन सावित्री बहन, इस प्रकार मुँह उदास बनाए खड़ी रहने से तो काम ही न चलेगा। तुम्हारे इस मरणोन्मुख भाई के अनेक उत्पातों और बोझों को आज से तुमको ही सहन करना पड़ेगा

बहन। आओ, मेरे पास आकर बैठो।''

सावित्री का नाम सुनकर सरोजिनी लज्जा, पीड़ा, वेदना सबकुछ भूलकर मुँह ऊपर उठाकर खड़ी हो गई, इतनी देर तक वह उपेंद्र की कोई आत्मीय ही समझ रही थी। सावित्री चुपचाप आकर उपेंद्र के निकट भूमि पर बैठ गई। उपेंद्र ने उसके सिर पर हाथ फेरकर कहा, ''तुम यह खयाल मत करना बहन कि तुमसे क्षमा माँगकर मैं तुम्हारी अमर्यादा करूँगा, लेकिन सतीश, तू मुझे क्षमा कर दे। तेरा जितना अपमान, जितना अनिष्ट मैंने किया है, सब भूल जा भाई।''

सतीश क्या कहता। वह अवाक् होकर टकटकी लगाए निहारता रहा।

उपेंद्र ने म्लान हँसी हँसकर कहा, ''मैं समझ गया हूँ सतीश, तुम लोग क्या सोच रहे हो। सोच रहे हो कि गंभीर उपेन भैया बच्चों की तरह इतना बक क्यों रहा है! लेकिन तुम लोग तो जानते नहीं हो भाई, कितने दिनों तक तुम लोगों के उपेन भैया का मुख एकदम ही मूक हो गया था। इसीलिए जितनी बातें इकट्ठी हो गई थीं, सभी आज मतवाले की तरह बाहर निकल रही हैं।''

उपेंद्र के वार्त्तालाप के ढंग से सतीश का हृदय एक प्रकार की अज्ञात आशंका से उथल-पुथल मचाने लगा, कोई एक बात उसने जान भी लेनी चाही, लेकिन न तो उसे प्रश्न ही स्मरण पड़ा, न तो उसके मुँह से बात ही निकली, वह जैसे निहार रहा था, वैसे ही निहारता रहा।

दूसरे ही क्षण सरोजिनी के मुँह की ओर देखकर उपेंद्र ने सतीश से कहा, ''तुम अच्छे हो जाओ। आशीर्वाद देता हूँ; तुम सुखी बनो, मैं अपनी इस बहन को लेकर चला जाऊँगा।'' यह कहकर उपेंद्र ने धीरे-धीरे सावित्री के सिर पर उँगली से थपथपाकर कहा, ''तुम्हारे अतिरिक्त मेरा भार लेनेवाला और कोई नहीं है बहन और जैसी बीमारी है और किसी को अपने पास बुलाने का साहस भी नहीं होता। होना उचित भी नहीं। केवल तुम्हारी तरह, जिसका जीवित रहना दूसरों की भलाई के ही लिए है, बहन को ही अपने को सौंप दे सकता हूँ। चलोगी बहन, मेरे साथ? सतीश को छोड़ जाने में कष्ट होगा। होने दो। उसकी अपेक्षा भी कितना अधिक दुःख-कष्ट भगवान् मनुष्य से सहाते हैं तब उसे सच्ची मानवता तक पहुँचा देते हैं।''

सतीश के मन में इतनी देर का भूला हुआ प्रश्न मानो बिजली की भाँति नाच उठा। वह सहसा बोल पड़ा, ''उपेन भैया, हमारी भाभी कैसी हैं? उनकी बीमारी सुनकर ही मैं चला आया था।''

उपेंद्र ने एक क्षण के लिए दाँतों से होंठों को जोर से दबाया। उसके बाद अपने अभ्यास के अनुसार ऊपर की ओर देखकर बोले, ''पशु अब नहीं है, चली गई है।''

सरोजिनी चिल्ला उठी, ''सुरबाला भी नहीं है?''

''नहीं।''

सतीश मोटे तकिए पर कुहनी टेककर मूर्च्छा से आहत हुए की भाँति शून्य दृष्टि से बैठा देखता रहा।

''सुरबाला नहीं है, वह चली गई।'' यह बात उपेंद्र के मुँह से सहज ही में निकल पड़ी, लेकिन यह 'नहीं' रहना कैसा है। यह 'जाना' कैसा जाना है। सतीश से अधिक कौन जानता

है! सरोजिनी की अपेक्षा किसने अधिक देखा है। सावित्री की अपेक्षा किसने अधिक सुना है।"

फिर भी सुरबाला नहीं है, वह मर गई है। सतीश के मुँह की ओर देखकर उपेंद्र ने हँसकर कहा, "भगवान् ने ले लिया, उसकी फिर नालिश क्या! लेकिन इस समय यदि दिवाकर पास रहता! माँ-बाप नहीं हैं, बचपन से पाल-पोसकर इतना बड़ा किया, वह भी जाने कहाँ चला गया। मालूम नहीं मरने से पूर्व एक बार देख पाऊँगा या नहीं।"

सतीश ने उसी प्रकार मूर्च्छाहत की भाँति पूछा, "दिवाकर का क्या हुआ उपेन भैया?"

उपेन ने कहा, "क्या जाने उसका क्या हुआ। कलकत्ता में हारान बाबू के घर में रहकर पढ़ने को ठीक कर दिया था। यह अत्यंत लज्जा की बात किसी से कही भी नहीं जाती, कहने की इच्छा भी नहीं होती। घर के लोग आज तक जानते हैं कि कलकत्ता में पढ़ रहा है, सुरबाला उसको बहुत स्नेह करती थी, उस बेचारी ने मरने के पूर्व उसे देखना चाहा था, लेकिन उसकी यह साध भी मैं पूरी न कर सका। हारान बाबू की स्त्री के साथ वह कहाँ चला गया, इसका कुछ पता नहीं है।"

तीनों श्रोता एक ही साथ अव्यक्त कंठ से "क्या!" कहकर चिल्ला उठे, स्पष्ट रूप से कुछ भी समझ में नहीं आया।

इसके बाद सभी चुप हो रहे। समूचा कमरा एक शून्य श्मशान की भाँति नीरव हो गया।

कोई भी उपेंद्र के मुँह की ओर निहार भी न सका, लेकिन प्रत्येक को ही यह ज्ञात होने लगा कि उन लोगों का इतने दिनों का दुःख-कष्ट, मान-अभिमान मानो इस आकाशभेदी वेदना के सामने अत्यंत तुच्छ हो गया है। सावित्री, सतीश से सभी बातें सुन चुकी थी। सभी बातें वह जानती थी। वह सोचने लगी, इस विपुल शून्यता को इस मनुष्य ने किस वस्तु से भर रखा है! इस व्यथा को वह किस तरह अपने प्रतिदिन की जीवन यात्रा में ढोल फिरता है।

उसने पाँवों पर धीरे-धीरे हाथ फेरते-फेरते कहा, "भैया, इन सब बीमारियों में तुम्हारे लिए पहाड़ की हवा खूब अच्छी होगी, ठीक है न?"

उपेंद्र ने उसके माथे पर हाथ रखकर कहा, "हाँ बहन, यही बात तो डॉक्टर भी कहते हैं, लेकिन भगवान् जिसको बुलाते हैं, उसको कुछ भी फायदा नहीं करता। जाना ही पड़ता है।"

सावित्री ने कहा, "कुछ भी हो भैया, लेकिन हम लोग पहाड़ पर ही जाकर रहें।"

उपेंद्र ने हँसकर कहा, "अच्छा, ऐसा ही करना।"

महामाया की पूजा निकट आ गई और सतीश के स्वस्थ होने के पूर्व ही बंगालियों के सर्वश्रेष्ठ आनंदोत्सव के दिन सुख-स्वप्न की भाँति बीत गए और भी कुछ दिन यहाँ रहने की बात थी, लेकिन उपेंद्र के शरीर की अवस्था देखकर सावित्री ने त्रयोदशी के दिन यात्रा करने का दिन निश्चित कर लिया। उपेंद्र की आपत्ति के विरुद्ध उसने हठ करके कहा, "यह नहीं होगा भैया। सतीश बाबू की बीमारी अब नहीं है। उनका शरीर सबल हो जाने तक प्रतीक्षा करने से तुमको मैं ढूँढ़कर न पाऊँगी। परसों हम लोगों को यहाँ से जाना होगा। तुम बाधा मत दो भैया।"

उपेंद्र ने मुसकराकर कहा, "अच्छा, देखा जाएगा, लेकिन ऐसा होने से क्या तुम मुझे

ढूँढ़कर पा जाओगी बहन?”

सावित्री तर्क न करके चली गई। उपेंद्र के दिन यहाँ शांति से बीत रहे थे, इसलिए जाने के लिए उनको कोई शीघ्रता नहीं थी और यात्रा का दिन इतना निकट है, यह भी संभवतः उन्होंने विश्वास नहीं किया, लेकिन सतीश का मुँह सूख गया, क्योंकि इस हठ के साथ उसका घनिष्ठ परिचय था। इसे वह भली प्रकार जानता था कि यह कोई बाधा नहीं मानती और जो कोई उसके संपर्क में है, उसी को अब तक दबकर रहना पड़ता है। इसीलिए त्रयोदशी किसी प्रकार भी न टलेगी। इसमें उसके मन में तनिक भी संदेह नहीं रहा, लेकिन उसने बात नहीं कही। दूसरे दिन भी इस संबंध में वह मौन ही रहा। उसके सामने ही बिहारी ने जब सजल नेत्रों से पूछा, “अब कितने दिनों में दर्शन दोगी माँ,” तब भी सतीश चुप रहा।

सावित्री ने सतीश के मुँह की ओर कनखियों से देखकर गंभीरता से कहा, “तुम्हारे बाबू का जिस दिन विवाह होगा बिहारी, उसी दिन फिर भेंट होगी। अवश्य तुम्हारे बाबू यदि कृपा करके बुलाएँगे तब।”

लगभग दस दिन पूर्व सरोजिनी को ले जाने के लिए जब ज्योतिष स्वयं आए थे, तभी उपेंद्र की मध्यस्थता में विवाह की बात पक्की हो गई थी।

सतीश ने कुछ भी आपत्ति नहीं की। स्थिर हो गया था कि उसका समयाशौच बीत जाने पर ही विवाह हो जाएगा। सावित्री ने उसी बात की ओर संकेत किया और सतीश ने मौन रहकर सुन लिया।

जाने के दिन उपेंद्र ने चिंता में पूछा, “तेरी तबीयत क्या अच्छी नहीं है सतीश? कल से क्यों तू बहुत ही उदास दिखाई पड़ रहा है।”

सतीश ने उदास कंठ से कहा, “नहीं, खूब अच्छी तरह तो हूँ।”

उपेंद्र के चले जाने पर सावित्री कमरे में आई। उसकी दोनों आँखें लाल थीं, पलकें भीगकर भारी हो गई थीं, उसकी ओर देखने से ही ज्ञात हो गया। सिर की शपथ की बात बार-बार स्मरण दिलाकर उसने कहा, “बात रखोगे न?”

सतीश ने कहा, “रखूँगा।”

“शराब-गांजा हाथ से भी न छुओगे?”

“नहीं।”

“मुझसे पूछे बिना तंत्र-मंत्र की ओर भी न जाओगे?”

“नहीं।”

“जितने दिनों में शरीर एकदम ठीक न हो जाएगा, तब तक दो दिन के अंतर से चिट्ठी लिखते रहोग?”

“लिखूँगा।”

“उसमें कोई बात न छिपाओगे?”

“नहीं।”

“तो अब मैं जा रही हूँ।” कहकर सावित्री शीघ्रता से नमस्कार करके बाहर चली गई।

सतीश बिछौने पर बैठा हुआ था, लेट गया। विदा करने के लिए नीचे उतरने की चेष्टा नहीं की।

बाहर दो पालकियाँ तैयार थीं। पास खड़े रहकर उपेंद्र डॉक्टर साहब के साथ धीरे-धीरे बातचीत कर रहे थे। मोटी चादर से सारा शरीर ढँककर सावित्री धीरे-धीरे ज्योंही दूसरे कमरे में जाने लगी, त्योंही बिहारी ने दौड़ते हुए आकर चुपके से कहा, ''एक बार लौट चलो माँ, बाबू विशेष काम से बुला रहे हैं।''

सावित्री लौट गई। उपेंद्र ने बातें करते-करते उस पर लक्ष्य किया। सावित्री ठीक इसी भय में थी। कमरे में प्रवेश करके उसने देखा, सतीश दूसरी ओर मुँह किए लेटा है। बिछौने के निकट जाकर हँसी का मान करके उसने कहा, ''बात क्या है? हम लोगों की ट्रेन छुड़वा दोगे क्या?''

सतीश ने मुँह फेरकर हाथ बढ़ाकर सावित्री की चादर को जोर से पकड़कर कहा, ''बैठो। तुमको जाने न दूँगा। यह मेरा गाँव है, मेरा मकान है, मेरी इच्छा के विरुद्ध तुमको बरबस कोई ले जा सके, यह सामर्थ्य दस उपेंद्रों में भी नहीं है।''

सावित्री अवाक् हो गई। उसने देखा, सतीश की आँखों में एक ऐसी तीव्र हिंस्र दृष्टि है, जो किसी प्रकार भी स्वाभाविक नहीं कही जा सकती।

सावित्री समझ गई, जबरदस्ती करने से काम न चलेगा। बिछौने के एक छोर पर बैठकर भर्त्सना के स्वर में उसने कहा, ''छिह! छिह! यह कैसी बात तुम कर रहे हो, वह तो मुझे बरबस नहीं ले जा रहे हैं। उनकी स्त्री नहीं है, भाई नहीं है, तुम नहीं हो, इतनी बड़ी भयंकर बीमारी में सेवा करनेवाला कोई नहीं है, इसीलिए तो वह तुमसे माँगकर मुझे ले जा रहे हैं। इसको क्या बरबस ले जाना कहते हैं?''

सतीश ने जोर से सिर हिलाकर कहा, ''यह झूठी बात है, बहलाना है। वह अपने मित्र ज्योतिष बाबू का मुँह देखकर ही केवल तुमको मेरे पास से हटा लेना चाहते हैं। इधर दो दिनों से दिन-रात भली प्रकार सोच-विचारकर मैंने देख लिया है, जो मौन रहकर सहता रहता है, सभी उसके ऊपर अत्याचार करते हैं। इसका कोई भी कारण क्यों न हो, मैं तुमको जाने न दूँगा। कुछ भी हो, इस बात को लेकर तर्क-वितर्क करके मैं माथा खपाना नहीं चाहता। बिहारी से कहलवा दो कि तुम्हारा जाना न होगा। बिहारी...।''

सावित्री ने अपने हाथ से उसका मुँह दबाकर कहा, ''तुम क्या पागल हो गए हो? अच्छा, मान लेती हूँ कि उनका मतलब अच्छा नहीं है, लेकिन तुम ही मुझे लेकर आज क्या करोगे, बताओ तो भला?''

सतीश ने क्षण भर मौन रहकर कहा, ''यदि मैं कहूँ कि तुमसे ब्याह करूँगा?''

सावित्री ने कहा, ''यदि मैं कहूँ कि इस काम में मेरा मत नहीं है।''

सतीश ने कहा, ''तुम्हारे मतामत से कुछ नहीं होता।''

सावित्री ने भयभीत होकर हँसकर कहा, ''क्या तुम बरबस मुझसे ब्याह करोगे?'' यह कहकर अपने मुँह की हँसी को गंभीरता में परिणत करके ललाट पर से रूखे बालों को स्नेह से धीरे-धीरे हटाती हुई बोली, ''छिह! ऐसी बात कभी भ्रम से भी विचार में मत लाना। मैं हूँ विधवा, मैं हूँ कुलत्यागिनी, मैं हूँ समाज में लांछिता, मुझसे ब्याह करने का दुःख कितना बड़ा है, इसे तुम तो समझने ही नहीं हो, लेकिन जो जन्म से ही शुद्ध हो, शोक की आग ने जिन्हें जलाकर हीरे की तरह निर्मल बना दिया है, वह समझ गए हैं, इसीलिए इस भागिनी को आश्रय देने के लिए ही अपने साथ लिये जा रहे हैं। उनकी मंगलकामना को आज तुम

आवेग में रहने के कारण देख न सकोगे, लेकिन इसी कारण उन पर झूठ-मूठ दोषारोपण करके तुम अपराधी न बनो।'' यह कहते-कहते आँखों से आँसू लुढ़क पड़े।

आँखों के ये आँसू आज सतीश को शांत न कर सके। वह और भी उत्तेजित होकर बोला, ''झूठ है। तुमने इसी प्रकार अपने को मुझसे अलग रखकर मेरा सर्वनाश किया है। उपेन भैया ने ही कहा है, तुम संसार में किसी की अपेक्षा छोटी नहीं हो, यह सच है।''

सावित्री ने कहा, ''नहीं, यह बात नहीं है। भैया अब समाज से परे हैं, इस लोक से परे हैं, उनके मुँह की जो बात सच है, दूसरे के मुँह से दूसरे की आवश्यकता के अनुसार सच नहीं है। तुम कहोगे, सच हो या झूठ, मैं समाज को नहीं चाहता, मैं तुमको चाहता हूँ, लेकिन मैं तो यह नहीं कह सकती। समाज मुझे नहीं चाहता, यह मैं जानती हूँ, लेकिन मैं तो समाज को चाहती हूँ। मैं तो उसे मानती हूँ, मैं तो जानती हूँ, श्रद्धा के अतिरिक्त प्रेम टिक नहीं सकता। समाज जिस स्त्री को उसके सम्मान का आसन नहीं देता, किसी भी स्वामी की सामर्थ्य नहीं है कि अपने बल से उसके उस आसन को बचाकर रख सके। अजी, इस असाध्य साधना की चेष्टा मत करो।''

सतीश दोनों हाथ से सावित्री के दोनों हाथ जोर से दबाकर बोल उठा, ''सावित्री, इन सब बातों को सुनने का धैर्य आज मुझमें नहीं है, समझने की शक्ति भी नहीं है। आज केवल मुझे छूकर तुम यह सच बात सीधे तौर से कह दो कि तुम मुझे प्यार करती हो या नहीं?'' यह कहकर वह मानो समस्त इंद्रियों को, समूचे शरीर तक को, उन्मत्त करके सावित्री के मुँह की ओर निहारता रहा।

इन अत्यंत व्यग्र-व्यथित दोनों नेत्रों की ओर देखकर सावित्री की आँखों से फिर आँसू झरने लगे। उसने कहा, ''प्यार करती हूँ या नहीं, नहीं तो किस बल से तुम्हारे ऊपर मेरा इतना जोर है? जिसके लिए मेरा इतना सुख है, मेरा इतना बड़ा दुःख है? अजी, इसीलिए तो तुमको मैंने इतना दुःख दिया, लेकिन किसी प्रकार अपना यह शरीर तुमको दे न सकी।'' यह कहकर आँचल से अपनी आँखें पोंछकर बोली, ''आज मैं तुमसे कोई बात न छिपाऊँगी। यह मेरा शरीर आज तक नष्ट अवश्य नहीं हुआ है, लेकिन तुम्हारे पाँवों में सौंप देने की योग्यता भी तो इसमें नहीं है। इसी शरीर से जो मैंने इच्छापूर्वक बहुतों का मन मोहित किया है, यह बात मैं किसी प्रकार भी भूल न सकूँगी। इससे चाहे जिसकी सेवा हो, पर तुम्हारी पूजा न हो सकेगी। आज किस प्रकार तुमको वह बात समझाऊँ। इतना प्यार यदि तुम्हें न करती तो इस प्रकार तुमको छोड़कर आज मुझे जाना न पड़ता।'' यह कहकर सावित्री ने बार-बार आँखें पोंछीं।

सतीश स्तब्ध भाव से कुछ क्षण पड़ा रहा, फिर एकाएक बोल उठा, ''तो मैं और कुछ नहीं चाहता, लेकिन तुम्हारा मन? इससे तो तुमने किसी को कभी मोहित नहीं किया, यह तो मेरा है।''

''नहीं। इससे किसी दिन किसी को मैंने मोहित करना नहीं चाहा, यह तुम्हारा ही है। यहाँ तुम ही चिरकाल से प्रभु हो।'' यह कहकर उसने छाती पर हाथ रखकर कहा, ''अंतर्यामी जानते हैं, जितने दिन मैं जीवित रहूँगी, जहाँ, जिस दशा में रहूँगा, चिर दिन तुम्हारी ही दासी बनी रहूँगी।''

सतीश ने तुरंत उसका हाथ अपने दाएँ हाथ में लेकर कहा, ''भगवान् का नाम लेकर

तुमने यह जो स्वीकृति दे दी है, यही मेरे लिए यथेष्ट है, इससे अधिक मैं कुछ नहीं चाहता।"

उनकी बातों के ढंग से सावित्री मन ही मन फिर शंकित हो उठी।

ऐसे ही समय में बिहारी ने दरवाजे के बाहर से पुकारकर कहा, "माँजी, बाबू ने कहा है, अब तो देर हो रही है।"

"चलो, आ रही हूँ।" कहकर सावित्री उठ रही थी, सतीश ने उसे जोर से पकड़कर कहा, "कभी तुमसे मैंने कुछ नहीं माँगा। आज जाते समय मुझे एक भिक्षा देती जाओ।"

"मेरे पास क्या है, जो मैं तुमको दूँगी? लेकिन क्या चाहिए, बताओ।"

सतीश ने कहा, "मैं यह भिक्षा चाहता हूँ, यदि कोई कभी हम दोनों के संबंध की बात पूछे, तो मेरा स्वामित्व स्वीकार करोगी, बताओगी?"

सावित्री इस अद्‌भुत अनुरोध से हँस पड़ी। बोली, "क्यों, बताओ तो गवाहों के बल से अंत में मुझे घर में डाल तो नहीं दोगे?"

सतीश ने कहा, "तुम्हारे हृदय में रहनेवाले अंतर्यामी ही मेरे साक्षी हैं, दूसरे साक्षी की मुझे आवश्यकता नहीं है और बाहर के बल से अंत में तुमको घर में डाल लूँगा, यही डर तुमको है? लेकिन अपने जोर से आज ही यदि मैं तुमको घर में डाल लूँ, तो कौन मुझे रोकनेवाला है, बताओ तो?"

सावित्री ने फिर कुछ नहीं कहा। सतीश ने कहा, "तुम्हारा जहाँ-तहाँ अपनी ही इच्छा के अनुसार रहना मुझे पसंद नहीं है।"

सावित्री का मुख उत्तरोत्तर पीला पड़ता जा रहा था, लेकिन इस अवस्था में सतीश को उत्तेजित करने के भय से वह मौन ही रही। सतीश बोला, "उपेन भैया हैं, पत्थर के देवता, नहीं तो रक्त-माँस के देवता होते तो मैं साथ न भेजता। अच्छा, आज जा रही हो तो जाओ, लेकिन जान पड़ता है कि वहाँ अधिक दिनों तक तुम्हारे रहने से मुझे सुविधा न होगी।"

"तुम्हारी जैसी इच्छा!" कहकर सावित्री नमस्कार करके चली गई।

बयालीस

संध्या को साढ़े पाँच बजे लकड़ी के कारखाने से छुट्टी पाने पर दिवाकर अराकान की एक सड़क पर जा रहा है। धूल से, धुएँ से, लकड़ी के बुरादे से उसका संपूर्ण शरीर भर उठा है। गले पर चादर नहीं है, कुरता फटा और मैला है। धोती की भी वही दशा है। दाएँ पाँव के जूते की एड़ी घिस जाने से मिट्टी सी बन गई है, बाएँ पाँव का अँगूठा जूते के बाहर से दिखाई पड़ रहा है। सारा दिन पेट में अन्न नहीं गया है। इसी दशा में हाँफते-हाँफते वह मकानवाली के मकान में आ पहुँचा। चार रुपए मासिक किराए पर वह निचले तल्ले की एक कोठरी में रहता है। पतले बरामदे के एक कोने में रसोई बनती है। एक ओर लकड़ी, उपलों, पानी की बालटी आदि आस-पास रखी हुई हैं।

दिवाकर के पाँवों की आहट पाकर पास की एक कोठरी से मकानवाली ने निकलकर कड़े स्वर से कहा, "आ गए, अच्छा हुआ! यह सब तुम लोग क्या कर रहे हो बाबू! रसोई-पानी नहीं, नहाना-खाना नहीं, रात-दिन केवल झगड़ा, लड़ाई, दाँत पीसना। यह तो हमारे घर की लक्ष्मी को हटाने का उपाय कर रहे हो तुम लोग।"

दिवाकर उदास मुख से सिर झुकाए रहा। वह दोपहर को खाना खाने आया था, पर किरणमयी के साथ झगड़ा करके बिना नहाए-खाए अपने काम पर चला गया था, लेकिन उसकी अवस्था देखकर मकानवाली का क्रोध ठंडा नहीं हुआ। उसने फिर कहा, "यह तो तुम्हारी ब्याही हुई स्त्री भी नहीं है बाबू कि इस पर इतना जोर-जुलुम चला रहे हो। जैसे निकालकर ले आए थे, वैसे ही उसने भी अपना धर्म रखा है। अब तो तुम्हारी भी नौकरी लग गई है। अब तुम अलग हो जाओ। अब इसको दुःख क्यों देते हो बाबू? ऐसी जवान औरत खाए-पिए बिना सूखकर काँटा बन गई।" थोड़ी देर तक मौन रहकर वह बोली, "नहीं तो इसकी चिंता ही क्या है। वही मोड़ पर जो मारवाड़ी बाबू है, वह रोज ही मेरे पास आदमी भेजता है। कहता है, सोने से सारा शरीर मढ़ दूँगा और तुमको भी औरत के लिए चिंता क्या है बाबू? भात बिखेर देने से क्या कौए का अभाव रहता है? जाओ। हट जाओ, मेरी बात मानो। कई दिनों से कह रही हूँ तुम लोगों में मेल-जोल अब नहीं होगा।"

दिवाकर ने बीच ही में रोककर कहा, "रहने दो, रहने दो। मेरी बात उठाने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन उनका भी क्या यही मत है? तुम ही उनकी मंत्राणी हो क्या?"

ठीक उसी समय किरणमयी अपनी कोठरी से बाहर निकल आई। अवस्था के परिवर्तन से मनुष्य का शारीरिक, मानसिक सब प्रकार का परिवर्तन कितना शीघ्र हो जाता है, यह देखने से अवाक् रह जाना पड़ता है। आज उसकी ओर देखकर कौन कहेगा यह वही सौंदर्य की प्रतिमा किरणमयी है।

छह मास पूर्व वही तो एक दिन समाज के धर्म को व्यंग्य करके मनुष्यत्व को पददलित करके, एक नासमझ युवक को सौंदर्य और प्रेम के मोह से फाँसकर उसे सब प्रकार की सार्थकताओं से दूर करके ले आई थी, वही धोखाधड़ी की रस्सी स्वयं किरणमयी के ही गले में लग गई है।

पाप के साथ अकारण क्रीड़ा करते रहने के कारण दिवाकर के हृदय से जो वासना का राक्षस निकल पड़ा है, उससे आत्मरक्षा करने के लिए दिन-रात लड़ाई करती हुई किरणमयी आज घायल हो चुकी है।

उसके सिर के बाल सूखे, इधर-उधर बिखरे हुए हैं, वस्त्र मैला है, फटा-पुराना है। मुँह पर एक प्रकार की सूखी हुई क्षुधा मानो निराशा की चरम सीमा को पहुँच गई है। संपूर्ण शरीर की श्रीहीनता देखने से दुःख होता है। मूर्तिमती अलक्ष्मी की भाँति वह धीरे-धीरे आकर बरामदे में एक खंभे पर टिककर दोनों की ओर देखती हुई चुपचाप खड़ी हो गई।

उसे देखते ही भूख से व्याकुल दिवाकर गरज उठा।

निर्लज्जता की सीमा नहीं रही। वह मुँहजोर दिवाकर आज घर भर के लोगों के सामने ऐसी भाषा में चिल्ला-चिल्लाकर बोल सकता है, इस पर विश्वास करना सरल नहीं है, लेकिन वास्तव में उसने यह जो कहा, "क्या भाभी, यही बात है? अब मारवाड़ी, मुसलमान, बर्मी, मद्रासी, इनकी ही आवश्यकता है क्या? ओह, इसीलिए दिन-रात झगड़ा हो रहा है, इसीलिए मैं आँखों का जहर हो गया हूँ?"

किरणमयी पहले तो जैसे कुछ समझी ही नहीं, इसी भाव से केवल उसकी ओर निहारती रही, लेकिन उसका उत्तर दिया मकानवाली ने। वह थोड़ा सा और आगे बढ़कर हाथ हिलाकर आँख-मुँह मटकाकर बोली, "वह क्या न चाहेगी, बताओ। हम लोग तो गृहस्थी

की कुलवधू हैं नहीं कि एक आदमी को पकड़कर बैठी रहेंगी। हम लोग हैं सुख के कबूतर, एकदम स्वतंत्र, जहाँ जिसके पास सुख मिलेगा, सोना-दाना मिलेगा, उसके पास चली जाएँगी। इसमें लज्जा ही क्या और छिपाना क्यों?"

दिवाकर ने क्रोध से जलकर उसको धमकाकर कहा, "तू चुप रह बेबकूफ कहीं की! जिससे पूछ रहा हूँ, वही बोले।"

इस बार मकानवाली बारूद की तरह भभक उठी। मारने को तैयार सी होकर बोली, "मेरे ही मकान में रहकर मुझे ही बेबकूफ कह रहा है। निकल जा मेरे मकान से।"

दिवाकर भी क्रुद्ध हो उठा। छह महीने पूर्व अपने बहुत बड़े दुःस्वप्न में भी संभवतः यह कल्पना करना संभव न होता कि वह एक अछूत गणिका द्वारा इतना अपमानित होने के बाद भी कमर कसकर तू-तू मैं-मैं कहकर झगड़ा कर सकता है? लेकिन वह तो अब उपेंद्र सुरबाला के स्नेहपूर्ण आदर-प्यार से पोषित होनेवाला दिवाकर रह नहीं गया है। इसीलिए वह भी नेत्र लाल करके गरज उठा, "क्या! मुझे निकल जाने को कहती है, क्या तू किराया नहीं लेती?"

मकानवाली ने भी वैसे ही गरजकर कहा, "वाह! बड़ा आया है किराया देनेवाला! तुझे धिक्कार है, तुझे तो गले में डालने को भी रस्सी नहीं जुटती रे! कहती हूँ, निकल, नहीं तो झाड़ू मारकर निकाल दूँगी।"

"अच्छा, निकलवा रहा हूँ!" कहकर दिवाकर ने दाँत पीसकर पागल की भाँति दौड़कर किरणमयी को धक्का लगा दिया। सारा दिन भूख-प्यास से थकी किरणमयी उस धक्के को सँभाल न सकी। पहले तो वह रंग की एक खाली बाल्टी पर जा गिरी, फिर वहाँ से लुढ़ककर गोबर के ढेर पर मुँह के बल जा गिरी।

उन्मत्त दिवाकर बोला, "जा, निकल जा! कौन है तेरा मारवाड़ी, दूर हो!" यह कहकर वह घर के अंदर घुस गया।

मकानवाली भयंकर रूप से चिल्ला उठी। कारखाने से अभी-अभी लौटनेवाले मजदूरों का दल हाथ-मुँह की कालिख धो रहा था, चिल्लाहट से चौंककर हाथ का साबुन फेंककर वे दौड़ पड़े। मकानवाली नकनकाकर पुकार मचाने लगी, "बहू को मार डाला रे! इस बदमाश छोकरे को तुम लोग मारते-मारते निकाल बाहर करो, फिर मेरे घर में आने न पाए।"

मकानवाली के कहने पर वे लोग कमरे में घुसने को ज्यों ही तैयार हुए, त्यों ही किरणमयी माथे का घूँघट खींचकर उठकर बैठ गई और दृढ़ स्वर से बोली, "झगड़ा-वगड़ा किसके घर में नहीं होता? मेरे शरीर पर हाथ लगाया है तो तुम लोगों का क्या? तुम लोग अपने घर जाओ।" यह कहकर वह तुरंत उठ खड़ी हुई और कमरे में जाकर किवाड़ बंद कर दिए।

बल-विक्रम दिखाने का सुयोग खोकर लोग उदास मन से लौट गए। मकानवाली बाहर खड़ी होकर गाल पर हाथ रखकर बोली, "गजब हो रहा है!"

दरवाजा बंद करके किरणमयी ने दियासलाई से बत्ती जलाई। लकड़ी का घर चौड़ा न रहने पर भी लंबा था। एक ओर मूँज से बुनी चारपाई पर दिवाकर का बिछौना है, दूसरी ओर काठ के फर्श पर किरणमयी का बिछौना लपेटा हुआ है। पाँव की ओर कुछ मिट्टी के बरतन एक के ऊपर एक करके रखे हुए हैं और उसी कोने में लकड़ी के सिकहरे पर रसोई

की हाँडी, कड़ाही, कलछुल आदि रखे हुए हैं। यही उनकी गृहस्थी के सामान हैं।

बत्ती जलाकर किरणमयी दरवाजे के पास फर्श पर स्थिर होकर बैठ गई। किसी के मुँह से कोई बात न निकली! चारपाई पर दिवाकर सिर झुकाए चुपचाप बैठा था। इसी प्रकार बड़ी देर तक दोनों मौन बैठे रहे। फिर धीरे-धीरे उठकर किरणमयी आकर सामने खड़ी होकर सहज भाव से बोली, ''हाँडी में भात रखा है, परोस देती हूँ, चलो, खा लो।''

दिवाकर ने रुँधे स्वर से कहा, ''नहीं।''

उसके गले के स्वर जान पड़ा कि वह अब तक रो रहा था।

किरणमयी ने कहा, ''नहीं, क्यों? सारा दिन तुमने कुछ खाया नहीं। आज न खाने पर भी कल तो खाना ही होगा। खाने-पहनने में क्रोध करने से काम नहीं चलता। मैं भात परोस देती हूँ।''

दिवाकर उत्तर तक न दे सका। लज्जा तथा पश्चात्ताप से वह जल रहा था। सचमुच ही वह किरणमयी को प्यार करता था।

यहाँ आने के बाद से बहुत दिनों तक बाहर के लोगों के जानने पर भी, अंदर-ही-अंदर बहुत ही गुप्त रूप से दोनों के बीच आसक्ति और विरक्ति का जो संग्राम प्रतिदिन चल रहा था, उसका प्रत्येक आघात दिवाकर चुपचाप सह रहा था।

कुछ दिनों से यह लड़ाई प्रकट और अत्यंत घोर हो जाने पर भी ऐसी उत्तेजना बहुत बार हुई थी, लेकिन अब से पूर्व किसी दिन उसने इस प्रकार आत्मविस्मृत होकर पाशविक आचरण नहीं किया था। वास्तव में, किसी कारण से, किसी भी अत्याचार के कारण वह किरणमयी के शरीर पर हाथ उठा सकता है और सचमुच ही उसने अभी-अभी उठा दिया है, इसे वह अब तक ठीक प्रकार से मन में समझ नहीं पा रहा था। इसीलिए कमरे में घुसकर वह स्वप्नाविष्ट की भाँति बिछौने पर आ बैठा था, लेकिन थोड़ी ही देर बाद जब किरणमयी ने अपनी सभी लांछनाओं को झाड़-फूँककर मकान में लोगों के आक्रमण और उत्पीड़न से उसे बचा लिया और कमरे में घुसकर अंदर से किवाड़ बंद कर दिया, तब उसको होश हो गया। किरणमयी का अनुरोध समाप्त भी नहीं हुआ था कि लहरें जिस प्रकार पहाड़ की जड़ पर टकराती हैं, उसी प्रकार उस रमणी के पाँवों पर मुँह के बल गिरकर उच्छ्वासित आवेग से वह रो उठा। बोला, ''मैं पशु हूँ। मुझे क्षमा कर दो भाभी।''

किरणमयी ने निर्विकार स्तब्ध रहकर पहले की ही भाँति सहज कंठ से कहा, ''केवल तुम्हारा ही दोष नहीं है। मनुष्य मात्र को ही ये सब काम पशु बना देते हैं। मुझे भी पशु बना देने में एक तिल भी कसर नहीं रखी है बबुआ।''

दिवाकर ने जोर से सिर हिलाकर कहा, ''नहीं-नहीं, और किसी की बात से मुझे मतलब नहीं है भाभी, लेकिन मेरे आज के इस आचरण का प्रायश्चित्त कैसे होगा? मुझे बता दो, मैं वही करूँगा।''

किरणमयी ने कहा, ''इसमें अपराध ही क्या है। क्या सुना नहीं है, क्रोध में मनुष्य मनुष्य की हत्या तक कर डालता है। तुमने तो केवल धक्का लगा दिया है। मैंने क्या अपराध नहीं किया? सब दोष क्या केवल तुम्हारा ही है, लेकिन जाने दो इन बातों को। सभी अभियोगों का आज अंत हो गया। इससे भविष्य में तुमको भी आवश्यकता न पड़ेगी, मुझे भी नहीं। अब जाओ, हाथ-मुँह धोकर भात खाने बैठ जाओ। मैं खड़ी भी नहीं रह सकती।''

दिवाकर धीरे-धीरे उठ बैठा। किरणमयी के कंठ-स्वर से वह समझ गया था कि वह और बातें करना भी नहीं चाहती।

सारा दिन उपवास करने के बाद दिवाकर खाना खाकर बाहर मुँह धोने गया। उसके मन की ग्लानि भी घटती जा रही थी। मुँह धोकर प्रसन्नचित्त से कमरे में आकर कुछ आश्चर्य में पड़कर उसने देखा, किरणमयी ने उसका बिछौना समेटकर नीचे रख दिया है। उसने पूछा, "नीचे क्यों उतार दिया?"

किरणमयी ने अविचलित स्वर से कहा, "पहले बताने से संभवतः तुम्हारा खाना नहीं होता, इसलिए नहीं कहा, आज से हम लोगों की फिर कभी भेंट-मुलाकात नहीं होगी। बहुत रात नहीं हुई है। आज कालीबाड़ी में जाकर सो रहो, कल सुविधा के अनुसार एक डेरा ढूँढ़ लेना और यदि इस देश में न रहना चाहो तो परसों स्टीमर छूटेगा। मैं रुपया दे दूँगी, घर लौट जाना। सारांश यह है कि तुम्हारी जो इच्छा हो, वही करो। मेरे साथ अब तुम्हारा कोई संबंध न रहेगा।"

दिवाकर हतबुद्धि की भाँति सुनता जा रहा था। उसको जान पड़ रहा था कि किरणमयी का ममताहीन एक-एक शब्द मानो पत्थर के टुकड़ों की भाँति उन दोनों के बीच सदा के लिए एक अभेद्य दीवार खड़ी कर रहा है।

उसकी बातें समाप्त होने पर उसने कहा, "और तुम?"

"मेरी बात सुनने से तुमको कुछ भी लाभ नहीं, फिर भी यदि इस देश में रहोगे तो कल-परसों तक सुन ही लोगे!"

दिवाकर ने कहा, "तो मकानवाली की बात ही सच है? वही गँवार मारवाड़ी...।"

किरणमयी ने कड़े स्वर से उत्तर दिया, "हो भी सकता है! लेकिन और जो कुछ भी हो, तुम्हारे कंधे पर निर्भर होकर नीचे के मार्ग में उतर पड़ी थी, इसीलिए उसकी अंतिम सीमा तक तुम्हारे ही आश्रय में उतरना पड़े, तो यह जरूरी नहीं है। मेरी तबीयत ठीक नहीं है, अब सोने जाती हूँ और तुम व्यर्थ देर मत करो। कल सवेरे तुम्हारी चीजें तुम्हारे पास भेज दूँगी।"

दिवाकर ने कहा, "इतनी जल्दी? आज रात को मुझे यहाँ रहने न दोगी?"

"नहीं।"

दिवाकर ने थोड़ी देर तक रुके रहकर कहा, "तो क्या केवल मेरा सर्वनाश करने के लिए ही मुझे इस विपत्ति में खींच लाई थीं? किसी दिन तुमने प्यार भी नहीं किया?"

किरणमयी ने कहा, "नहीं, लेकिन तुम्हारा नहीं, एक और मनुष्य का सर्वनाश कर रही हूँ, ऐसा सोचकर ही मैंने तुम्हारा नुकसान किया है, और मेरा? जाने दो मेरी बात। आदि से अंत तक सब मुझसे भूलें ही हुई हैं, और इन्हीं भूलों के लिए आज मैं तुम्हारे पाँव पड़कर तुमसे क्षमा माँग रही हूँ बबुआजी।"

इस निर्विकार पत्थर की प्रतिमा की भाँति मुख की ओर देखकर दिवाकर ने लंबी साँस लेकर कहा, "मेरे सर्वनाश की धारणा तुमको नहीं है, इसीलिए तुम इतनी सरलता से क्षमा माँग सकती हो, लेकिन इस सर्वनाश की अपेक्षा भी आज मेरा प्रेम बहुत बड़ा है। इसीलिए अभी तक मैं जीवित हूँ, नहीं तो छाती फट जाने से मैं मर गया होता, लेकिन एक बात तुम मुझे समझाकर कहो, जिसके पास तुम जाओगी, उसको भी तो तुम प्यार नहीं करतीं,

संभवतः उसे तुम पहचानती भी नहीं। तो भी मुझे छोड़कर तुम वहाँ क्यों जाना चाहती हो? मैंने तो किसी दिन तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं किया, लेकिन सचमुच ही क्या तुम जाओगी।''

किरणमयी ने सिर हिलाकर कहा, ''सचमुच ही जाऊँगी।'' इसके बाद वह बड़ी देर तक भूमि की ओर निहारती रही, फिर मुँह ऊपर उठाकर बोली, ''नहीं, आज मैं कुछ भी छिपाऊँगी नहीं। मैं भगवान् को नहीं मानती, न आत्मा को मानती हूँ। यह सब मेरे लिए व्यर्थ हैं। एकदम असत्य हैं। मैं मानती हूँ केवल इहकाल को और इस शरीर को। जीवन में केवल एक व्यक्ति के सामने मैंने हार मानी थी, वह थी सुरबाला, लेकिन जाने दो इस बात को, सच कहती हूँ बबुआजी, मैं मानती हूँ केवल इहकाल को और इस सुंदर शरीर को, लेकिन मेरा ऐसा फूटा भाग्य है, इसी से अनंग की भाँति पतंग को भी मैंने मोहित करना चाहा था।'' यह कहकर लंबी साँस छोड़कर किरणमयी चुप हो गई।

दो क्षण चुप रहकर उसने मानो सहसा जागकर कहा, ''उसके बाद एक दिन, जिस दिन सचमुच ही मैंने प्यार किया बबुआ, उसी दिन मैं जान गई, क्यों मेरा सारा शरीर इतने दिनों तक इसके लिए उत्कंठित होकर प्रतीक्षा कर रहा था।''

दिवाकर ने व्यग्र होकर कहा, ''किसके लिए भाभी?''

किरणमयी हँसकर मानो अपने मन में ही कहने लगी, ''मैंने सोचा था, मेरे इस प्रेम की तुलना संभवतः तुम्हारे स्वर्ग में भी नहीं है, लेकिन वह स्वर्ग टिक न सका। उस दिन महाभारत की कहानियों के विषय में जिस स्त्री से मैं हार आई थी, फिर उसी से हार मान लेनी पड़ी। प्रेम के द्वंद्व में भी सिर झुकाकर मैं चली आई। मोह का नशा हट गया, मैंने स्पष्ट देख लिया कि उसको सौंदर्य के भुलावे में टालने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है।''

दिवाकर को एक बार ऐसा जान पड़ा कि उसका निविड़ अंधकार मानो स्वच्छ होता चला जा रहा है।

किरणमयी कहने लगी, ''उस स्त्री से एक विषय सीखने का मुझे लोभ हुआ था, वह था अपने पति को प्यार करना, संभवतः मैं सीख भी सकती थी, लेकिन ऐसा फूटा भाग्य है कि वह मार्ग भी दो दिनों में बंद हो गया। अच्छी बात है, तुमने क्या पूछा था बबुआ, तुमको मैं प्यार क्यों करती? प्यार तो किया था अवश्य, लेकिन मैं उम्र में बड़ी हूँ इसीलिए जिस दिन तुम्हारे उपेन भैया मेरे हाथ में तुमको सौंप गए थे, उसी दिन से मैंने तुमको छोटे भाई की तरह प्यार किया था। इसीलिए तो छह महीने से अपनी ही छलना से मैं क्षत-विक्षत हो रही हूँ। तुम्हारी आँखों की भूख से, तुम्हारे मुँह की प्रार्थना से मेरा सारा शरीर घृणा से, लज्जा से काँप उठता है, इसे क्या तुम एक दिन भी समझ न सके बबुआ? जाओ, अब तुम हट जाओ। मुझे पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक कुछ भी न रहे, लेकिन इस शरीर पर तुम्हारी लोलुप दृष्टि मैं अब सह नहीं सकती।'' यह कहकर उसने बिछौना उठाकर दिवाकर के सामने फेंक दिया और बोली, ''अब तुम पर मेरा विश्वास नहीं रहा। मेरा एक और छोटा भाई आज भी जीवित है। उसी सतीश का मुँह देखकर मुझे तुमसे आत्मरक्षा करनी पड़ेगी। तुम जाओ।''

दिवाकर फिर दुबारा कुछ न कहकर बिछौना उठाकर बाहर के अंधकार में विलीन हो गया।

तैंतालीस

सवेरे किरणमयी थके अलसाए शरीर से काम कर रही थी। कामिनी मकानवाली आकर दरवाजे के सामने खड़ी होकर खूब हँसकर बोली, ''चला गया छोकरा? आफत दूर हुई। कल तो मुझे मारने को ही तैयार हो गया था! अरे तेरा काम है औरत रखना? बकरों से यदि जौ पर दंवरी चल सकती, तो लोग बैल क्यों पालते?''

किरणमयी ने पूछा, ''किसने कहा कि वह चला गया?''

मकानवाली ने हँसकर आँखें मटकाकर कहा, ''लो, अब नखरा करने की आवश्यकता नहीं है। किसने कहा? मैं हूँ मकानवाली, मुझसे कहेगा कौन? मैंने अपने कानों से सुना है। नहीं तो क्या इतने दिनों तक मैं यह मकान रख सकती थी? किस समय इसे पाँच भूत मिलकर खा गए होते, यह क्या तुम जानती हो?''

किरणमयी चुपचाप घर का काम करने लगी। उत्तर न पाकर मकानवाली स्वयं कहने लगी, मैं तो इतने दिनों से कह रही थी बहू कि निकाल बाहर करो इस आफत को। यह नहीं, रहने दो, कहाँ जाएगा? अरे कहाँ जाएगा, यह मैं क्या जानूँ इतना सोचते रहने से तो काम नहीं चलता। खाओ-पहनो, सुगंधित तेल लगाओ, सोना-दाना शरीर पर चढ़ाओ, साथ ही साथ मौज उड़ाओ, ऐसा करोगी नहीं, तो देश की दुनिया से बाहर आकर यह कैसा प्रेम करना है बेटी?''

किरणमयी ने केवल एक बार मुँह ऊपर उठाकर अपनी आँखें झुका लीं। मकानवाली ने समझा कि उसकी बहुदर्शिता की उपदेशावली काम कर रही है। ''और यह क्या बेटी, तुम्हारा प्रेम करने का समय है? अभी तो चढ़ी जवानी है, इस समय तो दोनों हाथों से लूटोगी। इसके बाद दो पैसे हाथ में रखकर चैन से बैठना, उमर चढ़ जाने पर प्रेम करना। तुमको मना कौन करता है? हाथ में पैसे रहने पर क्या छोकड़ों का अभाव रहेगा? कितने चाहिए? तब तो दोनों पाँव एकत्र करके उठ न सकोगी।''

किरणमयी अन्यमनस्क थी। क्या पता सभी बातें उनके कानों में पहुँचीं या नहीं। लेकिन उसने कोई बात नहीं कही।

मकानवाली को अपने घर का काम-धंधा करना था। इसीलिए वह देर न कर सकने के कारण दोपहर को फिर आने को कहकर चली गई।

इस मकान में रहनेवाले प्रायः सभी कारखाने में नौकरी करते हैं। सवेरे काम पर जाते हैं, दोपहर को खाने की छुट्टी मिलने पर घर चले आते हैं और स्नान-भोजन करके फिर काम पर चले जाते हैं। संध्या के कुछ ही पूर्व उन्हें छुट्टी मिलती है।

आज भी सवेरे उनके काम पर चले जाने पर दो-ढाई बजे के बाद मकानवाली आकर फिर दरवाजे के पास खड़ी हो गई। मधुर कंठ से उसने कहा, ''खाना-पीना हो गया बहू! क्या रसोई बनी थी?''

किरणमयी ने आज चूल्हे में आग तक नहीं जलाई थी, तो भी मकानवाली के पूछने पर बोली, ''हाँ हो गया है। आओ, बैठो।''

मकानवाली दरवाजे के पास ही बैठ गई। वह कमरे में घुसते ही समझ गई थी कि किरणमयी का मन ठीक नहीं है। इसलिए सहानुभूति के स्वर से बोली, ''यह तो होगा ही बेटी, दो दिन मन खराब रहेगा। एक पशु-पक्षी को पालने-पोसने से मन कैसा उदास हो

जाता है और यह तो आदमी है। जैसे भी हो, छह-सात महीने तक उसके साथ घर-गृहस्थी भी तो चलानी पड़ी। यह दशा दो-चार दिन ही रहेगी, फिर तो कोई नाम तक नहीं लेता बहू, आँखों से बहुत सी ऐसी घटनाएँ मैंने देखी हैं।''

किरणमयी ने बरबस हँसकर कहा, ''यह तो सच ही है।''

मकानवाली ने आँखें मुँह नचाकर कहा, ''सच नहीं है? तुम ही बताओ न बेटी, क्या सच नहीं है? फिर नया आदमी आए, नए ढंग से आमोद-प्रमोद करो। बस, सब ठीक हो जाएगा। क्या कहती हो, यही बात है न?''

किरणमयी ने सिर हिलाकर सम्मति तो अवश्य प्रकट कर दी, लेकिन इस प्रकार इच्छा के विरुद्ध उसके वार्त्तालाप से उसका चित्त उद्भ्रांत होता जा रहा था।

एकाएक मकानवाली ने आँखें-मुँह सिकोड़कर कंठ-स्वर को धीमा करके कहा, ''अच्छी बात स्मरण पड़ गई बहू, उस गँवार मनुष्य के पास तो मैंने सवेरे ही खबर भेज दी थी। उससे तो अब सहा नहीं जाता, कहता है लोग काम पर चले जाएँगे तो दोपहर को ही आऊँगा। कौन जाने, वह इसी समय न आ जा...।''

किरणमयी ने भयभीत होकर कहा, ''यहाँ क्यों?''

मकानवाली ने इस बात को अत्यंत कौतुकजनक समझकर बनावटी क्रोध दिखाकर कहा, ''मर जा छोकरी, वह न आएगा तो क्या तू वहाँ जाएगी? तेरी बातें सुनने से तो हँसते-हँसते पेट की अंतड़ी तक टूट जाती है।'' यह कहकर सूखी हँसी की छटा से लुढ़ककर बिल्कुल ही किरणमयी के ऊपर जा गिरी।

किरणमयी ने कोई बात नहीं कही, केवल थोड़ा सा सरककर बैठ गई। मकानवाली ने आत्मीयता के आवेश में आज पहलेपहल उसे 'तू' कहकर संबोधन किया था।

लेकिन सखीत्व का यह अत्यंत घनिष्ठता बढ़ानेवाला संभाषण इस नीचे औरत के मुँह से निकलकर किरणमयी के हृदय के भीतर जाकर एकदम तीर की भाँति बिंध गया। उसके हृदय में आज भी जो महिमा मूर्च्छाहत की भाँति पड़ी हुई थी, इस एक ही शब्द के आघात से उसकी नींद टूट गई, और क्षणभर में भद्र कुलवधू की लुप्त मर्यादा उसके मन में प्रदीप्त हो उठी, लेकिन फिर भी, अपने को सँभालकर चुप हो रही।

मकानवाली ने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। वह अपनी ही झक में कहने लगी, ''तू देख लेना बहू, छह महीने में यदि मैं तेरा भाग्य न पलट दूँ, तो मेरा नाम कामिनी मकानवाली नहीं। तू केवल मेरे कहने के अनुसार चलना। मैं और कुछ भी नहीं जानती।''

किरणमयी को ज्ञात हुआ, मानो वह स्त्री उसके कानों की समस्त स्नायुशिराओं को जलती हुई सँड़सी से खींचकर निकाल रही है, लेकिन मना करने की बात उसके मुँह से नहीं निकली। केवल चुपचाप वह सुनती रही।

मकानवाली ने कहा, ''गँवार मारवाड़ी है, दो पैसे पास हैं, जोश में आ गया है, दोनों हाथों से दुह ले। उसके बाद वह उल्लू चला जाए भाड़ में और कितने ही आ फँसेंगे। तूने इस प्रकार अपने को बना रखा है, नहीं तो तेरा रूप क्या साधारण रूप है बहू!''

उसी समय बाहरी बरामदे से किसी के टूटे गले से पुकार आई, ''मकानवाली।''

''अब तो जाती हूँ,'' कहकर मकानवाली जाने लगी, लेकिन किरणमयी ने दोनों हाथ बढ़ाकर उसका आँचल जोर से पकड़कर कहा, ''नहीं-नहीं, यहाँ किसी प्रकार भी नहीं, इस

कमरे में कोई भी आने न पाए।"

मकानवाली ने हतबुद्धि होकर कहा, "क्यों, कोई है यहाँ?"

किरणमयी ने कहा, "कोई रहे या न रहे, यहाँ नहीं, किसी प्रकार भी नहीं...।"

आगंतुक का पद-शब्द क्रमशः निकट आने लगा।

मकानवाली ने कहा, "तू तो अब किसी की कुलवंती बहू नहीं है। लोग तेरे घर में आएँगे, बैठेंगे, इसमें डर किसका है, सुनूँ तो? तू है वेश्या।"

किरणमयी चिल्ला उठी, "क्या हूँ मैं? मैं वेश्या हूँ?"

उसको जान पड़ा जैसे आग की धारा उसके पैरों के तलवे से उठकर उसके मस्तक को छेदती हुई बाहर निकल गई।

उसकी लाल आँखें और तीव्र कंठ-स्वर से मकानवाली ने विस्मित हो चिढ़कर कहा, "वह नहीं तो और क्या? नखरा देखने से शरीर जलने लगता है। अब हम लोग जो हैं, तुम भी वही हो। भला आदमी आ रहा है। ले, घर में बैठा।"

इस भले आदमी से मकानवाली पहले ही रुपया ले चुकी थी और भी कुछ पाने की आशा कर रही थी। भला आदमी दरवाजे के निकट आकर खड़ा हो गया और दाँत निकालकर हँसकर बोला, "क्यों मकानवाली, सब ठीक है?"

मकानवाली ने अपना आँचल खींचकर विनय के साथ कहा, "सब तुम लोगों की मेहरबानी है। जाओ, कमरे में जाकर बैठो। मैं पान लगाकर ला रही हूँ।" जरा हँसकर बोलीं, "अब तो यह घर-द्वार सब तुम्हारा ही बाबूजी, इसे अच्छी तरह सजाना पड़ेगा, यह मैं बताए देती हूँ।"

"अच्छा-अच्छा, यह सब हो जाएगा।" यह कहकर वह आदमी जरा भी संकोच न करके कमरे में घुसकर खटिया पर बैठने लगा।

किरणमयी की स्नायु-शिराओं में लोहे से भी कड़ी दृढ़ता थी, इसीलिए इतनी देर तक वह सहन कर सकी थी, लेकिन अब न कर सकी। उसके रूप-यौवन पर लुब्ध इस अपरिचित हिंदुस्तानी ग्राहक के कमरे में घुसते ही वह बेहोश होकर वायु के झोंके से उखड़े हुए केले के वृक्ष की भाँति भूमि पर गिर पड़ी।

वह मनुष्य चौंककर देखने लगा और इस आकस्मिक विपत्ति के आने से हतबुद्धि सा हो गया। मकानवाली की चिल्लाहट से मकान की सभी स्त्रियों की कच्ची नींद टूट गई, तुरंत ही वे दौड़कर चली आईं और कोई जल लाकर, कोई पंखा लाकर उस अभागिनी की शुश्रूषा करने में लग गईं।

और मकानवाली दरवाजे पर बैठकर ऊँचे स्वर से लगातार घोषणा करने लगी कि इसी काम में उसने अपने बाल पका दिए, लेकिन आज तक इस तरह के नखरे और ढोंग न सीख सकी। आज तक भी नागर को देखकर दाँत लगाने की युक्ति उसने नहीं सीखी।

एकाएक इस दुर्घटना के बीच फिर एक नई गड़बड़ी सुनाई पड़ी। खबर मिली कि मुख्य द्वार पर कोई एक नया बाबू आया है और दिवाकर तथा भाभी कहकर बड़ा शोर-गुल मच रहा है। नौकर से मकानवाली इस आगंतुक बाबू का विशेष परिचय पूछ रही थी कि उसी समय एक लंबे शरीर का पुरुष एक बहुत बड़ा चमड़े का बैग हाथ में लिए सामने आकर गंभीर स्वर में पुकार उठा, "भाभी!"

उसके दाएँ हाथ की उँगली में एक हीरे की अँगूठी सूर्य की किरणों से चमक उठी। मकानवाली ने आदर के साथ खड़ी होकर पूछा, ‘‘किसको खोज रहे हैं?’’

‘‘दिवाकर यहाँ रहता है?’’

मकानवाली ने कहा, ‘‘नहीं।’’

‘‘मेरी भाभी? किरणमयी किस कमरे में रहती हैं?’’

मकानवाली के साथ ही साथ और भी दो-चार स्त्रियाँ गरदन बढ़ाकर देख रही थीं। उनमें से किसी ने कहा, ‘‘वही तो मूर्च्छित होकर पड़ी हुई है जी।’’

‘‘मूर्च्छित हुई है? कहाँ? देखूँ! कहकर आगंतुक सज्जन भीड़ को ठेलकर कमरे में जा पहुँचा।

बेहोश किरणमयी उस समय भी भूमि पर पड़ी हुई थी। सारा शरीर पसीने से तर हो रहा है, आँखें मुँदी हैं, चेहरा पीला पड़ गया है, बाल भीगे-बिखरे हुए हैं, शरीर का कपड़ा खिसक गया है...।

आगंतुक था सतीश। उसकी दृष्टि उस हिंदुस्तानी पर जा पड़ी। इस समय वह पास आकर टकटकी लगाए किरणमयी को देख रहा था। सतीश ने विस्मित और अत्यंत क्रुद्ध होकर पूछा, ‘‘ऐं तू कौन है?’’

उसकी ओर से मकानवाली ने उत्तर दिया, ‘‘अहा! ये तो हमारे मारवाड़ी बाबू हैं। वही तो...।’’

लेकिन परिचय देना समाप्त होने के पूर्व ही सतीश ने उस व्यक्ति को दरवाजा खोलकर कहा, ‘‘बाहर जाओ।’’

मारवाड़ी के पास रुपए हैं, यह है नवीन प्रेमिक, विशेषतः इतनी स्त्रियों के सामने वह हीन भी नहीं हो सकता। इसलिए साहस के साथ उसने कहा, ‘‘क्यों?’’

असहिष्णु सतीश ने तख्ते के फर्श पर जोर से पैर पटककर धमकाकर कहा, ‘‘बाहर जाओ, उल्लू!’’

सब लोगों के साथ मकानवाली तक चौंक उठी, और फिर कुछ न कहकर मारवाड़ी बाहर चला गया।

सतीश किरणमयी के शरीर को उसके खिसके हुए कपड़े से ढँककर एक पंखा लेकर जोर से हवा करने लगा और दोनों को घेरकर उपस्थित स्त्रियाँ विचित्र कलरव करने लगीं। इन लोगों की तरह-तरह की आलोचना से थोड़ी ही देर में सतीश बहुत सी बातें जान गया। मकानवाली क्षोभ और अत्यंत आश्चर्य प्रकट करके बार-बार कहने लगी, ‘‘इतनी बड़ी उमर बीत जाने पर भी ऐसी औरत मैंने कभी नहीं देखी कि वेश्या कहने से वह आँखें उलटकर दाँत लगाकर बेहोश हो जाए।’’

कुछ देर के बाद होश आने पर किरणमयी माथे का कपड़ा सँभालकर उठ बैठी। क्षण भर देखती रहकर क्षीण स्वर से बोली, ‘‘बबुआजी!’’

सतीश ने प्रणाम करके पाँव की धूल सिर पर चढ़ाकर कहा, ‘‘हाँ भाभी, मैं ही हूँ, लेकिन बात क्या है, बताओ तो। जैसा पहनावा है, वैसा ही घर-द्वार है, वैसी ही शरीर की शोभा है, कौन कहेगा कि यही हैं सतीश की दीदी! मानो कहीं की एक अनाथ पगली है। लड़कपन तो बहुत किया, अब कल के जहाज से घर चलो।’’ स्त्रियों की ओर देखकर कहा, ‘‘अब तुम

लोग जाओ।''

किरणमयी निश्चल पत्थर की मूर्ति की भाँति मुँह झुकाए निहारती रही। उसके हृदय की बात अंतर्यामी ही जानें, लेकिन बाहर से कुछ भी प्रकट नहीं हुआ। स्त्रियों के बाहर चले जाने पर सतीश ने कहा, ''वह सुअर कहाँ है भाभी!''

किरणमयी ने मुँह ऊपर उठाए बिना ही कहा, ''इतने दिनों तक तो यहीं था, कल रात को दूसरी जगह चला गया है।''

''क्यों?''

''मैंने चले जाने को कहा था, इसलिए।''

''लेकिन बुलाने से क्या एक बार आएगा नहीं?''

''बुलाकर देखती हूँ।'' यह कहकर किरणमयी बाहर जाकर घर के नौकर को कालीबाड़ी भेजकर फिर लौट आईं। बोलीं, ''तुम आओगे, यह बात मेरे लिए स्वप्न से भी बाहर की बात थी बबुआ।''

सतीश ने कहा, ''मेरा आना क्या मेरे लिए भी स्वप्न से भी बाहर की बात नहीं है भाभी?''

''यह तो है ही।'' कहकर किरणमयी फिर गरदन झुकाए बैठी रही। उसको बहुत सी बातें जानने की आवश्यकता थी। सतीश अपने घर की दासी से पता लगाकर आया है, यह समझना कठिन नहीं है लेकिन एकाएक इतने दिनों के बाद पता लगाकर लौटा ले जाने के लिए इतनी दूर आने का यथार्थ कारण अनुमान करना सचमुच ही कठिन था, लेकिन आने का कारण सतीश ने स्वयं ही प्रकट कर दिया। बोला, ''कल जहाज छूटेगा। मैं तुम लोगों को लिवा ले जाने के लिए आया हूँ, भाभी।''

किरणमयी ने मुँह ऊपर उठाकर कहा, ''उपेन बबुआ ने भेजा है? बहुत अच्छा, दिवाकर को ले जाओ। मैं प्रार्थना करती हूँ, वह चला जाए तो अच्छा है।''

सतीश ने कहा, ''केवल दूसरों की आज्ञा पूरी करने के लिए ही इतनी दूर नहीं आया हूँ, अपनी ओर से भी मुझे इसकी आवश्यकता है। सोचती हो तो फिर इतने दिनों के बाद क्यों? मुझे कोई पता ही नहीं मिलता था। उसके बाद बाबूजी मर गए, स्वयं मैं भी जानेवाला ही था, संभवतः कभी भेंट ही न होती।''

किरणमयी ने मुँह ऊपर उठाकर देखा। उसकी दोनों आँखों से संसार का समस्त स्नेह मानो सतीश के शरीर पर बरस पड़ा। क्षण भर के बाद वह करुण कंठ से बोली, ''मैं किसके पास जाऊँगी बबुआ, मेरा अपना कौन है?''

''मेरे पास चलोगी भाभी, मैं हूँ।''

''लेकिन मुझे आश्रय देना क्या अच्छा होगा?''

सतीश ने कहा, ''तुमको स्मरण नहीं है भाभी? बहुत दिन पूर्व इस भले-बुरे का सदा के लिए निश्चय हो चुका था, जिस दिन तुमने मुझे छोटा भाई कहकर पुकारा था। यदि तुमने कोई अन्याय किया होगा तो उसका उत्तर तुम दोगी, लेकिन मेरी जवाबदेही यही है कि मैं तुम्हारा छोटा भाई हूँ, तुम्हारा विचार करने का मुझे अधिकार नहीं है?''

ये बातें सुनकर किरणमयी का मन करने लगा कि कहीं भागकर एक बार जी भरकर रो ले, लेकिन अपने को सँभालकर कहा, ''लेकिन बबुआ, समाज तो है?''

सतीश ने बीच में रोककर कहा, "नहीं, नहीं है। जिसके पास रुपया है; जिसके शरीर में बल है, उसके विरुद्ध समाज नहीं रह सकता। ये दोनों वस्तुएँ मुझे कुछ परिमाण में मिल गई हैं भाभी।"

उसके बातें कहने के ढंग से किरणमयी को हँसी आ गई। फिर कुछ मौन रहकर बोली, "बबुआ, रुपया और शरीर के बल से तुम समाज को भले ही न मानो, लेकिन अपनी अश्रद्धा के साथ से इस पापिष्ठा को बचाओगे किस प्रकार?"

सतीश आवेश के साथ बोल उठा, "मैंने लिखना-पढ़ना नहीं सीखा है, मैं हूँ गँवार, मूर्ख आदमी भाभी, इतने तर्कों का उत्तर भी मैं नहीं दे सकता। इतनी छानबीन करके भले-बुरे का हिसाब भी मैं करना नहीं जानता और यह क्या सतयुग है कि दुनियाभर के लोग उपेन भैया की भाँति युधिष्ठिर बन जाएँगे? यह तो कलिकाल, अन्य, कुकर्म तो लोग करेंगे ही, इनका लेखा-जोखा लिखकर कौन बैठा हुआ है? मेरा विचार उलटा है, उसे चाहे तुम अच्छा कहो या बुरा कहो भाभी, मैं देखता हूँ कि कौन क्या काम करता है, हारान भैया को मृत्यु के समय तुम्हारी वह पति-सेवा तो मैंने अपनी आँखों से देखी थी। वही तुम अब असती हो जाओगी, इस बात पर मैं मर जाने पर भी विश्वास न कर सकूँगा। चाहे जो कुछ भी हो, मैं तुमको लेकर ही जाऊँगा। बीमारी ने मुझे जरा सुस्त तो अवश्य बना दिया है, फिर भी इस मुहल्ले के लोगों में सामर्थ्य नहीं है कि तुमको सहायता देकर मेरे हाथ से तुम्हें छीन लें। कल तुमको कंधे पर उठाकर मैं जहाज पर अवश्य चढ़ाऊँगा, चाहे तुम कितनी ही आपत्ति क्यों न करो।"

किरणमयी हँस पड़ी। अपराध की समस्त कालिमा धुल के मिट गई। सरल स्निग्ध हँसी की छटा से समूचा मुँह खिल उठा। क्षणभर के लिए जान पड़ा, मानो कोई भी निंदनीय कार्य उसने नहीं किया, केवल रुष्ट होकर दो दिन के लिए ससुराल से अपने मैके चली आई थी। स्नेहमय देवर लौटा ले जाने के लिए प्रार्थना कर रहा है।

उसी समय किवाड़ के बाहर से पुकारकर दिवाकर कमरे में आया। उसने कहा, "मुझे तुमने बुलवाया था?" यह कहने के साथ ही खटिया पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह इस प्रकार चौंक पड़ा मानो भूत देखने से कोई चौंक पड़ता है। बाहर के उजाले से कमरे के अंधकार में प्रवेश करके उसने पहले सतीश को नहीं देखा था। अब पहचानकर उसका चेहरा पीला पड़ गया।

सतीश ने हँसकर कहा, "मैं उपेन भैया नहीं हूँ, सतीश भैया हूँ, कुकर्मों का राजा। बैठ, उपेन भैया का परवाना लेकर आया हूँ, कल प्रातः ही साढ़े छह बजे के पहले पहला जहाज छूटेगा, स्मरण रखना।"

दिवाकर वहीं बैठ गया, दोनों घुटनों के बीच मुँह छिपाकर बड़ी देर के बाद उसने कहा, "मैं न जाऊँगा, सतीश भैया!"

सतीश ने कहा, "तेरा सिर जाएगा। उपेन भैया की आज्ञा है—जीवित या मृत विद्रोही दिवाकर का सिर चाहिए ही।"

दिवाकर ने कहा, "तो उसका सिर ही ले जाना सतीश भैया। उसे मैं सवेरे छह बजे के भीतर ही लाकर दे दूँगा।"

सतीश ने एक प्रकार की आवाज निकालकर कहा, "अरे बाप रे! लड़के का क्रोध तो देखो!

लेकिन तू जाएगा क्यों नहीं?''

दिवाकर ने कहा, ''तुम क्या पागल हो सतीश भैया? संसार में क्या मेरा कोई हक है, जिसके पास मैं अब जाकर सिर ऊँचा करके खड़ा हो सकूँ?''

सतीश ने कहा, ''ठीक है। सिर ऊँचा करने में आपत्ति हो तो झुकाकर ही खड़ा रहना, लेकिन तुझे जाना तो होगा ही। अरे तूने ऐसा कौन सा बहुत बुरा काम किया है कि लज्जा से मरता जा रहा है? इतने ही दिनों में जो सब विचित्र कर्म मैंने कर डाले हैं, वहाँ चलकर, उन सबका हाल सुन लेना। पंचमकार तब सब। भूत सिद्धि, बैताल सिद्धि, इन सबका नाम तुमने सुना है कभी? ले, चल, उपेन भैया अब वही उपेन भैया नहीं हैं। हम पाँच आदमियों ने मिलकर उनको एक तरह से ठीक बना दिया है। भाभी, जो कुछ ले चलना है, ले लो, मैं टिकट खरीदने जा रहा हूँ।''

उसकी अंतिम बात किरणमयी के कानों में खटक गई। उसने पूछा, ''ठीक बना देने का क्या अर्थ है बबुआ?''

सतीश ने हँसकर कहा, ''चलने पर ही तुम देख सकोगी भाभी।''

उसकी सूखी हँसी को लक्ष्य कर क्षणभर मौन रहकर किरणमयी ने कहा, ''लेकिन मैंने तो तुमको कह दिया बबुआ, मैं न जा सकूँगी।''

दिवाकर ने भी दृढ़ स्वर से कहा, ''मैं भी किसी प्रकार नहीं जाऊँगा सतीश भैया, तुम झूठमूठ मेरे लिए रुपया नष्ट मत करो।''

सतीश उठने जा रहा था। हताश भाव से बैठ गया। उपेंद्र की बीमारी की बात अब तक उसने छिपा रखी थी, लेकिन अब छिपा रखना संभव नहीं रहा। उसने कहा, ''मैं बड़े गर्व के साथ कह आया हूँ कि उन लोगों को लाऊँगा ही। मेरी बात तुम लोग भले ही न रखो, लेकिन उन्होंने क्या तुम लोगों के प्रति कोई ऐसा बड़ा अपराध किया है कि उनको यह कष्ट तुम लोगों को देना पड़ेगा? मेरे अकेले लौट जाने से उनका कितना दुःख होगा, यह तो मैं अपनी आँखों से ही देख आया हूँ। दिवाकर, ऐसा अधर्म मत कर रे! तुझे देखने के लिए ही उनका प्राण अभी तक अटका हुआ है, नहीं तो बहुत पहले ही चला गया होता।''

दोनों सुननेवाले एक ही साथ धीरे से चीख उठे।

सतीश कहने लगा, ''इसी माघ के अंत में यक्ष्मा रोग से पशु भाभी स्वर्ग को सिधार गईं, तभी समझ गया कि उपेन भैया भी चले जाएँगे, लेकिन उनके जाने की इतनी शीघ्रता है, यह बात हम लोगों में से कोई भी नहीं जानता था। वे बराबर से ही कम बातें करते हैं, स्वर्ग का रथ बिल्कुल ही दरवाजे पर न आने तक उन्होंने एक भी खबर नहीं दी कि उनका सबकुछ तैयार है। तुझे डर नहीं है रे दिवाकर, निर्भय होकर तू चल। हमारे वह उपेन भैया अब नहीं हैं। अब सहस्रों अपराधों को भी वह अपराध नहीं मानते, केवल मुसकराते रहते हैं। छिह! छिह! इस धूल बालू पर इस प्रकार तुम मत लेटो भाभी। अच्छा, हम लोग बाहर जा रहे हैं, तुम लेटो, उठो मत।'' यह कहकर झटपट उठकर सतीश उसके पाँवों को जोर से छूकर ही समझ गया कि किरणमयी बेहोश होकर पड़ी हुई है, स्वेच्छा से भूमि पर लेटी हुई नहीं है।

सतीश और दिवाकर दोनों ही एक-दूसरे के मुँह की ओर निहारते स्तब्ध भाव से खड़े रहे। कुछ देर बाद सतीश ने धीरे से कहा, ''ठीक यही भय था मुझे दिवाकर! मैं जानता था कि ये

खबर वे सह न सकेंगी। दिवाकर ने चकित होकर सतीश के मुँह की ओर देखा। सतीश ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "इतने निकट रहकर भी तुझे मालूम नहीं हुआ दिवाकर और भय होता है कि संभवतः भाभी को मार डालने के लिए ही ले जा रहा हूँ, लेकिन तो भी ले जाना ही पड़ेगा। इस संसार में दो आदमी इस शोक को सह न सकेंगे, लेकिन एक तो स्वर्ग में हैं और दूसरी... लेकिन जा, तू पानी ले आ दिवाकर। मैं हवा करता हूँ, यह क्या रे! तू कुछ बोलता क्यों नहीं?"

एकाएक दिवाकर सिर से पैर तक काँप उठा। दूसरे ही क्षण वह अचेतन किरणमयी के पैरों पर औंधा होकर गिरकर कहने लगा, मैं अब समझ गया हूँ भाभी, तुम मेरी पूजनीया गुरुजन हो। तो फिर क्यों इतने दिन छिपाकर तुमने मुझे नरक में डुबोया। मैं इस महापाप से कैसे छुटकारा पाऊँगा भाभी!"

चौवालीस

उपेंद्र ने कहा था, "सावित्री मेरी इन थोड़ी सी हड्डियों को गंगाजी में डाल देना बहन, बहुत सी ज्वालाओं से जल रहा हूँ, कुछ भी तो ठंडा हो सकूँगा।"

सावित्री को वह आजकल कभी तो 'तुम' कभी 'तू', जो भी मुँह से निकलता था, वही कहकर पुकारते थे। सावित्री ने उनकी इस अंतिम इच्छा और अंतिम चिकित्सा के लिए कुछ दिन हुए, कलकत्ता के जोड़ासाखूँ मुहल्ले में एक मकान किराए पर ले रखा था। आज संध्या के बाद वर्षा की एक झड़ी हो गई थी, पर आकाश के बादल फटे नहीं थे। उपेंद्र ने बहुत देर के बाद अपनी थकी हुई दोनों आँखें खोलकर कहा, "सामने की खिड़की तू जरा खोल दे बहन, उस बड़े तारे को एक बार देख लूँ।"

सावित्री ने उनके माथे पर से रूखे बालों को धीरे-धीरे हटाते हुए मृदु स्वर से कहा, "शरीर में ठंडी हवा लगेगी भैया।"

"लगने दो न बहन! अब उससे मुझे भय क्या है?"

आज ही केवन उसे भय नहीं है, ऐसा नहीं, जिस दिन सुरबाला चली गई, उसी दिन से नहीं है; लेकिन इसीलिए तो सावित्री का भय दूर नहीं हुआ है। 'जब तक साँसा तब तक आशा' संभवतः यही उसे मान्य है। इसी कारण, जबकि मृत्यु सिरहाने के पास उसके साथ समान आसन जमाकर बैठ गई है, तब भी वह तुच्छ ठंडी हवा नाक के अंदर आने देने का साहस नहीं कर पा रही है। अनिच्छुक कंठ से उसने कहा, लेकिन तारा तो दिखाई नहीं पड़ता भैया, आकाश में तो बादल छाए हुए हैं।"

उपेंद्र ने दोनों मलिन नेत्रों को उत्साह से विस्फारित करके कहा, "बादल? अहा! असमय का बादल बहन, खोल दे, खोल दे, एक बार देख लूँ, फिर तो देख न सकूँगा।"

बाहर ठंडी हवा बड़े वेग से बह रही थी। सावित्री ने ललाट पर, छाती पर हाथ रखकर देखा, ज्वर बढ़ रहा है। प्रार्थना करके वह बोली, "अच्छे ही जाओ, बादल तो कितने ही देखोगे भैया। बाहर आँधी चल रही है, आज मैं खिड़की न खोल सकूँगी।"

उसका हाथ अपने हाथ में लेकर उपेंद्र ने रुष्ट होकर कहा, "भला चाहती है तो खोल दे सावित्री, नहीं तो बरसात के दिनों में जब बादल उठेंगे, तब तू रो-रोकर मरेगी, यह मैं

कहकर ही जा रहा हूँ। मैं अब देखने का समय न पाऊँगा।"

सावित्री ने फिर कोई प्रतिवाद नहीं किया। उसने एक बूँद आँखों का आँसू पोंछकर उठकर खिड़की खोल दी।

उस खुली खिड़की के बाहर उपेंद्र टकटकी बाँधे देखते रहे। आकाश के किसी अदृश्य छोर से रह-रहकर बिजली चमक उठती थी। उसकी चमक की छटा से सामने के गाढ़े काले बादल झलक उठते थे। उन्हें देखते-देखते उपेंद्र की साध किसी प्रकार भी मिट नहीं रही है, ऐसा जान पड़ रहा था।

सावित्री स्वयं भी एक क्षड़ पकड़कर उसी ओर देखती हुई मौन खड़ी थी। उपेंद्र की दृष्टि एकाएक उस पर पड़ गई तो मन ही मन हँसकर वह बोले, "बंद कर दे, बंद कर दे, खिड़की बंद करके मेरे पास आकर बैठ, लेकिन इतनी माया तो अच्छी नहीं है बहन! तनिक भी हवा शरीर पर तू लगने देना नहीं चाहती, लेकिन मेरे चले जाने पर तू क्या करेगी बता तो?"

सावित्री खिड़की बंद करके पास आकर बैठ गई। बोली, "तुम तो कह चुके हो कि मुझे काम देकर जाओगे। मैं जीवन भर उसी को करती रहूँगी। तुम मेरी आँखों के सामने ही दिन-रात रहोगे?"

"कर सकोगी?"

सावित्री ने धीरे से कहा, "कर क्यों न सकूँगी भैया। तुम्हारी बात के लिए तो वह 'नहीं' न कहेंगे।"

उपेंद्र ने हँसते हुए कहा, "वह कौन? सतीश?"

सावित्री सिर झुकाए मौन ही रही।

उपेंद्र ने उसके सलज्ज मौन मुख की ओर देखकर लंबी साँस लेकर कहा, "सावित्री, सतीश मेरा कौन है, यह दूसरों के लिए समझना कठिन है। बाहर से जो दिखाई पड़ता है, उससे तो वह मेरा साथी है, मेरा आजन्म का सखा है, लेकिन जो संबंध दिखाई नहीं पड़ता, उससे सतीश मेरा छोटा भाई है, मेरा शिष्य है, मेरा सदा का सेवक है। उसी रात को बहन, यदि तू अपना पूरा परिचय देकर हम लोगों को लौटा ले जाती तो संभव है, मेरा अंतिम जीवन इतने दिन दुःख में न बीतता। दिवाकर भी संभवतः मुझे इतनी व्यथा देने का सुयोग न पा सकता।"

अश्रुभरे नेत्रों से सावित्री ने कहा, "मैंने तुम लोगों को लौटाना चाहा था भैया, लेकिन उन्होंने किसी प्रकार भी मुझे जाने नहीं दिया, दोनों चौखटों पर हाथ रखकर मेरा मार्ग उन्होंने रोक दिया। कहा, "उनके सामने जाने से उनका अपमान करना होगा।"

"उनकी इच्छा।" कहकर उपेंद्र चुप हो गए।

घर पर उपेंद्र के पिता शिवप्रसाद गठिया रोग से शैया पर पड़े हुए थे। गृहस्थी का काम-धंधा छोड़कर महेश्वरी उनके साथ न आ सकी थी, लेकिन मझले भाई अभिभावक बनकर कलकत्ता के डेरे पर थे। उनके और एक दूसरे मनुष्य के पैरों की आहट सीढ़ी पर सुनाई पड़ी।

दूसरे ही क्षण वह कविराज को साथ लिए कमरे में आ गए। कविराज ने उपेंद्र की नाड़ी देखकर ज्वर की परीक्षा करके ज्यों ही दवा बदलने का प्रस्ताव किया, त्यों ही उपेंद्र ने हाथ जोड़कर कहा, "इसके लिए तो मुझे क्षमा करें वैद्यजी। आपसे छिपा तो कुछ नहीं है। तो फिर जाते समय और क्या दुःख दीजिएगा?"

बूढ़े चिकित्सक के नेत्र भर आए। बोले, "हम लोग हैं चिकित्सक, अंतिम क्षण तक हमें निराश न होना चाहिए बेटा। इसके अतिरिक्त भगवान् यदि सारी आशाएँ समाप्त कर दे, फिर भी कष्ट दूर करने के लिए दवा तो चाहिए ही।"

उपेंद्र और प्रतिवाद न करके चुप हो गया।

"तब दवा बदलकर प्रयोगविधि बताकर चिकित्सक चला गया। उनको भरोसा तो रंच मात्र भी न था, बल्कि आज वे खूब अच्छी तरह जान गए कि रोगी की मृत्यु का समय क्षण-प्रतिक्षण तीव्र गति से निकट आ रहा है।"

तीन दिन बाद सोमवार को सवेरे सावित्री एक तार हाथ में लिये आई और बोली, "कल प्रातःकाल वे लोग जहाज पर चढ़ चुके हैं।"

"किसी का नाम सतीश ने नहीं दिया है? कहाँ है, देखूँ?"

उपेंद्र के पसारे हुए हाथ पर सावित्री ने तार रख दिया।

तार के कागज को उन्होंने उलट-पुलटकर देखा, फिर सावित्री को लौटाकर एक लंबी साँस ली।

जाते समय सतीश उससे एकांत में कह गया था कि किरणमयी से भेंट हो जाने पर जैसे भी होगा, वह उसको अवश्य लौटा लाएगा। अपना भाई-बहन का संबंध भी बताकर गया था।

इस परम आश्चर्यमय रमणी को एक बार देखने का कौतूहल सावित्री को बहुत दिनों से था, लेकिन नासमझ सतीश कहीं उसको इस घर में ही न ले आए, यह आशंका भी उसको थी। उसने कहा, "वे सब ओर से विचार करके काम नहीं करते, मुझे भय होता है कि वे किरणमयी भाभी को यहीं न ले आएँ।"

उपेंद्र के होंठों पर वेदना की सूखी हँसी दिखाई पड़ी। उन्होंने कहा, "इस घर में वह आएगी क्यों बहन? इस देश में यदि वह लौट भी आए तो समझना होगा कि उसका दूसरा कारण है, लेकिन यह तो सावित्री नहीं है, वह तो कोई नासमझ नहीं है, तेरी तरह वह इस लोक और परलोक को समान बनाकर नहीं बैठी है, वह क्यों जान-बूझकर इस भयंकर व्याधि के गर्त में गिरने आएगी बता तो।"

सावित्री ने आँखें झुकाकर बड़े कष्ट से आँसू रोके। अपने को सँभालकर उपेंद्र ने फिर कहा, "एक आश्चर्य की बात तो यह देख सावित्री, किसी समय उसने सचमुच ही मुझसे प्रेम किया था।"

यह सुनकर सावित्री सचमुच ही आश्चर्य में पड़ गई, क्योंकि यह बात उसने सतीश के मुँह से भी नहीं सुनी थी।" तो क्या वह बात सच नहीं थी भैया?"

उपेंद्र ने कहा, "वह बात भी सच थी बहन। वह एक अद्‌भुत बात है। तुझे और सुरबाला को न जान लेने से मुझे ज्ञात होता कि ऐसी सेवा भी संभवतः और कोई स्त्री नहीं कर सकती। पति को इतना अधिक प्यार करना भी संभवतः किसी की सामर्थ्य में नहीं है।"

सावित्री ने कहा, "लेकिन यह तो छलना नहीं हो सकती।"

उपेंद्र ने सहमति जताकर कहा, "नहीं, छलना तो नहीं है, उसने तो कभी किसी को दिखाना नहीं चाहा, उसकी पति-सेवा के साक्षी केवल भगवान् ही थे और हम दोनों—सतीश और मैं।"

थोड़ी ही देर के बाद उनको डॉक्टर अनंगमोहन की बात स्मरण पड़ गई। स्थिर रहकर वह बोले, ''आज तो मेरा किसी पर क्रोध नहीं, घृणा नहीं, विद्वेष नहीं, विराग नहीं, आज मुझे बड़ी व्यथा के साथ ऐसा खयाल आ रहा है कि वह सारा जीवन केवल इधर-उधर टटोलती हुई ही घूमती रही है, लेकिन किसी दिन उसे कुछ भी नहीं मिला। उसने मुझे भी कभी प्यार नहीं किया। कुछ भी प्यार करती तो क्या इतनी व्यथा दे सकती? दिवाकर हम लोगों का क्या था, इसे तो वह जानती थी। उसके हाथ में ही तो मैं उसे सौंप गया था। मैंने सोचा था, मेरे स्नेह की वस्तु को वह भी स्नेह की दृष्टि से देखेगी। ओह! कितनी बड़ी भूल मुझसे हुई थी!''

उपेंद्र ने कुछ देर तक मौन रहकर कहा, ''इसीलिए सोच रहा हूँ, सतीश बिना सोचे-समझे उसको साथ लिये कहीं यहीं न आ पहुँचे।''

सावित्री ने कहा, ''नहीं, यह किसी प्रकार भी न हो सकेगा भैया। अपनी बहन के रहने की व्यवस्था वे कहीं करें, लेकिन यहाँ नहीं।''

उपेंद्र कोई बात कहने ही जा रहे थे, लेकिन मुँह की बात मुँह में ही रह गई। अघोरमयी किसी प्रकार बीमारी की खबर पाकर उपेंद्र के गुणों की प्रशंसा करते हुए रोते-रोते कमरे में आ गईं।

इस बीमारी की भयंकरता की उनको विशेष कुछ धारणा नहीं थी, तो भी, यह कहकर वह विलाप करने लगीं, ''इस मुझ मुँहजली का जबकि भीख माँगते फिरने का समय आ गया है और जबकि बिना खाए सूखकर मर जाना ही अनिवार्य हो गया है, तब उपेंद्र की सभी विपत्तियों को लेकर मैं ही क्यों नहीं मर जाती!''

उपेंद्र ने इतने दुःख में भी हँसकर कहा, ''तुमको खाना क्यों न मिलेगा मौसी?'' सावित्री को दिखाकर कहा, ''मेरे जाने पर भी, अपनी इस बहन को रख जाता हूँ, यह तुम लोगों को कष्ट न देगी।''

बृहस्पतिवार को दिन में दस-ग्यारह बजे सतीश जहाजघाट पर उतरकर गाड़ी किराए पर ले रहा था। उसने देखा कि बिहारी खड़ा है। मालिक को देखकर उसने पास आकर प्रणाम किया। किरणमयी पास ही खड़ी थी। बिहारी को संदेह हुआ कि यह वह ही हैं! उसने इसके पहले कभी देखा नहीं था, केवल सुना था कि वह असाधारण सुंदरी हैं! लेकिन मैले-कुचैले कपड़े पहने इस साधारण स्त्री में सौंदर्य का विशेष कुछ भी न देखकर उसने समझा कि यह कोई दूसरी ही स्त्री है। उसने धीरे-धीरे कहा, ''माँजी, बाबू ने कहा है, यदि वह बहू आ गई हो तो उसे और कहीं रखकर दो आदमी डेरे पर आएँ, उसको साथ लेकर न आएँ।''

सतीश भूख-प्यास और थकावट से यों ही दुःखी हो रहा था। बिहारी का यह अपमानजनक प्रस्ताव किरणमयी के मुँह पर ही सुनकर वह जल उठा, बोला, ''क्यों? उनको पेड़ के नीचे छोड़कर हम लोग उनके घर जाएँगे? जाकर कह दे, हम लोग वहाँ जाना नहीं चाहते।''

बिहारी का मुख उदास हो गया। किरणमयी ने निकट आकर रूखी हँसी हँसकर कहा, ''यह तो ठीक बात है बबुआ। इसमें रुष्ट होने की तो कोई बात ही नहीं है। अब बाबू कैसे हैं बिहारी?''

बिहारी के उत्तर देने के पूर्व ही सतीश ने और भी रुष्ट होकर कहा, ''तुझे किसने यह बात

कहने के लिए भेजा है? सावित्री ने? देखता हूँ, उसका दिमाग बहुत चढ़ गया है।''

सावित्री के प्रति इस कड़ी बात को सुनकर बिहारी ने व्यथित होकर किरणमयी के मुँह की ओर देखकर कहा, ''आप ठीक कह रही हैं माँजी। बाबू बिना समझे ही क्रोध कर रहे हैं। इन सब बीमारियों में कोई भी क्या वहाँ जाना चाहेगा? उपेंद्र बाबू ने कल रात को सावित्री को बुलाकर स्वयं ही कहा था, डरने की बात नहीं है, किरणमयी मेरी बीमारी का नाम सुनकर इस मकान में ही क्यों, इस मुहल्ले में भी न आएगी। सावित्री की तरह सभी को मरने-जीने...।''

किरणमयी का मुख वेदना से एकदम विकृत हो गया। उसने कहा, ''यह बात क्या बाबू ने कही थी बिहारी?''

बिहारी सिर हिलाकर उत्साह से कोई बात कहने ही जा रहा था कि सतीश ने धमकाकर कहा, ''तू चुप रह। अभागा कहीं का!''

धमकी खाकर बिहारी सहम गया। किरणमयी ने कहा, ''उस पर रुष्ट होने से क्या होगा बबुआ?'' उसके बाद बिहारी की ओर देखकर कहा, ''अपने बाबू से कहो, भय की बात नहीं है। उनकी आज्ञा पाए बिना मैं वहाँ न जाऊँगी।'' सतीश से कहा, ''बबुआ, आज मुझे किसी होटल में रखकर क्या कोई छोटा सा मकान किराए पर नहीं मिल सकता?''

सतीश ने उत्तेजित होकर कहा, ''कलकत्ता शहर में मकान की क्या चिंता है भाभी! एक घंटे में सब ठीक कर दूँगा। आ रे दिवाकर, जरा जल्दी-जल्दी चल।'' यह कहकर उसने किरणमयी को गाड़ी पर चढ़ा दिया और स्वयं कोच-बक्स पर चढ़ बैठा।

गाड़ी के चले जाने पर क्षुब्ध और लज्जित बिहारी उदास मुख से धीरे-धीरे मकान की ओर चला गया।

सुविधा मिलते ही सावित्री भोर में झटपट गंगाजी में जाकर डुबकी लगा आती थी। सतीश के लौट आने के बाद, इधर लगातार कई दिनों से वह प्रतिदिन ही गंगा स्नान करने जाती है।

चार-पाँच दिन बाद, एक दिन सवेरे स्नान-पूजा करके उठते ही उसने देखा, फाटक पर कुछ हल्ला-गुल्ला मचा हुआ है। एक बूढ़े ब्राह्मण स्नान करने के बाद नामावली ओढ़े मंत्र जपते-जपते घर जा रहे थे, कहीं से एक पगली ने आकर उनका मार्ग रोक लिया। कहीं छूकर गंगा-स्नान का सब पुण्य वह मिट्टी में न मिला दे, इस भय से बूढ़े घबरा गए। पगली विनय के साथ अद्भुत प्रश्न कर रही थी, ''महाराज, आप भगवान् पर विश्वास करते हैं? उनको पुकारने से वे आते हैं?'' कैसे आप लोग उन्हें पुकारते हैं? मैं पुकार नहीं सकती? मुझे विश्वास क्यों नहीं होता?''

प्रत्युत्तर में ब्राह्मण छूतछात के भय से संकुचित होकर कह रहे थे, ''देख, अभी पहरेदार को पुकारता हूँ। राह छोड़ दे।''

दो-चार प्रौढ़ा स्त्रियाँ भी खड़ी होकर कौतुक देख रही थीं। उनमें से किसी ने कहा, ''यह पागल नहीं है। इसने रात भर शराब पी है।''

यह सुनकर पगली ने कातर होकर कहा, ''मैं भले घर की लड़की हूँ, मैं शराब नहीं पीती। वहीं तो मेरा घर है। मैं केवल तुम लोगों से हाथ जोड़कर पूछती हूँ, क्या सचमुच ही भगवान् हैं? तुम लोग क्या उनका चिंतन कर सकती हो, उनकी भक्ति कर सकती हो? मैं

क्यों नहीं कर सकती? मैं परसों से उनको कितना पुकार रही हूँ।" यह कहते-कहते उसकी दोनों आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे।

सावित्री ने भी उसे पागल समझा, लेकिन फिर भी इस अपरिचिता-उन्मादिनी के अश्रुजल से भीगी हुई व्याकुल प्रार्थना उसके सैकड़ों दुःखों की वेदना से परिपूर्ण हृदय पर मानो हाहाकार करके जा पड़ी और पल भर में उसकी भी दोनों आँखें आँसू से भर गईं। पगली की दृष्टि एकाएक इस ओर पड़ते ही बूढ़े को छोड़कर सावित्री के सामने आकर वह बोली, "तुम भी तो संध्या-वंदना करती हो, तुम मुझे बता सकती हो?"

चारों ओर भीड़ हो रही है, देखकर सावित्री ने झट से उसका हाथ पकड़ लिया। ज्यों ही उसने हाथ पकड़ लिया, त्यों ही उसने चौंककर कहा, "आपने मुझे छू दिया!"

सावित्री ने कहा, "इसमें कोई दोष नहीं है। आप मेरे घर चलिए, मार्ग में चलते-चलते आपका उत्तर दूँगी।" यह कहकर उस अभागिनी का हाथ पकड़े वह सड़क पर चली गई।

दो-एक बात कहते ही समझ गई कि यह स्त्री पागल नहीं है, लेकिन किसी ओर मन लगाने योग्य, मन की अवस्था भी इसकी नहीं है। बातचीत के बीच में ही वह एकाएक बोल उठी, "मैं भगवान् से दिन-रात प्रार्थना करती हूँ कि उनके प्रति मैंने अनेक अपराध किए हैं, इसीलिए उनकी बीमारी मुझे देकर उनको अच्छा कर दो। अच्छा बहन, ऐसा क्या हो सकता है? उपवास करके दिन-रात पुकारते रहने से क्या वास्तव में ही उनको दया आती है? तुम जानती हो?" कहकर उसने तीव्र दृष्टि से सावित्री के मुँह की ओर देखा। सावित्री की समझ में नहीं आया कि इसका क्या उत्तर देना चाहिए। उसने कहा, "जाती हूँ, गंगा-स्नान करके आती हूँ। गंगा-स्नान करने से बहुत पाप कट जाते हैं।" कहकर उत्तर के लिए प्रतीक्षा न कर चली गई।

पैंतालीस

सावित्री के नेत्रों से सावन की धारा की भाँति आँसू की धारा बह रही है। आज उसकी ही गोद पर उपेंद्र ने मृत्युशैया बिछा दी है। दुबले-पतले ठंडे पाँवों पर मुँह रखकर दिवाकर चुपचाप भीतर ही भीतर रोता हुआ अपने हृदय का असह्य दुःख प्रकट कर रहा है। उसका परिताप, उसकी व्यथा, अंतर्यामी के अतिरिक्त और कौन जानेगा? उस ओर कौन जानेगा? उस ओर के कमरे में माहेश्वरी भूमि पर पड़ी हुई करुण कंठ से रो रही हैं। इस घोर दुःख से भरे शोक में केवल सतीश ही अकेला स्थिर भाव से बैठा हुआ है।

आज प्रातःकाल से ही उपेंद्र के मुँह से रह-रहकर रक्त गिर रहा है। हजार प्रयत्न करने पर भी उसे रोका न जा सका। सांस क्रमशः भारी और तीव्र होती जा रही थी। उसी का दुस्सह क्लेश सहकर उपेंद्र नेत्र बंद किए चुपचाप पड़े हुए थे। एक बार नेत्र खोलकर सावित्री के मुँह की ओर देखकर उन्होंने अस्फुट स्वर से पूछा, "रात कितनी है बहन, यह क्या बीतेगी नहीं?"

सावित्री ने आँचल से उनके होंठों पर से रक्तरेखा को पोंछकर-झुककर कहा, "अब अधिक नहीं है भैया! क्या बहुत कष्ट हो रहा है?"

उपेंद्र ने कहा, "नहीं बहन, सबको जैसा होता है, वैसा ही हो रहा है, अधिक क्यों

होगा?''

जरा चुप रहकर उन्होंने उसी प्रकार कहा, ''सतीश, भाभी का क्या पता नहीं लगा?''

आज चार दिनों से किरणमयी एकदम लापता है। कलकत्ता पहुँचने के दिन ही सतीश पास ही एक मकान किराए पर लेकर एक नौकरानी रखकर सब आवश्यक प्रबंध ठीक कर आया था, लेकिन उपेंद्र की बीमारी बहुत बढ़ जाने से वह दो-तीन दिनों तक स्वयं आकर खोज-खबर न ले सका था। तीन दिनों के बाद जाकर उसने देखा कि किरणमयी ने किसी वस्तु को छुआ तक नहीं है। नई हाँड़ी खरीदकर वह जहाँ रख आया था, वहाँ उसी अवस्था में पड़ी हुई है। चूल्हे में कालिख का दाग भी नहीं है।

नौकरानी ने आकर कहा, ''काम किसका करूँ बाबू? बहू उस दिन जो आई, खिड़की की छड़ पकड़े राह की ओर निहारती हुई बैठी रही, फिर तो वह उठी ही नहीं, स्नान भी नहीं किया, मुँह में पानी तक भी नहीं डाला। बिछाया बिछौना पड़ा रहा, सोई भी नहीं। उसके बाद कल सवेरे से तो उसे देख भी नहीं रही हूँ। साज-सम्मान का जो कुछ करना हो, करो बाबू, मैं सूने घर में पहरा न दे सकूँगी।''

यह सुनकर सतीश माथे पर हाथ रखकर थोड़ी देर तक बैठा रहा। अंत में दासी के हाथ में और पाँच रुपए देकर लौट आया। तभी से आदमी भेजकर पता लगाने में उसने त्रुटि नहीं की, लेकिन कुछ भी फल नहीं हुआ।

सभी बातें उपेंद्र के कानों तक पहुँच चुकी थीं।

अत्यंत व्यथा के साथ बीच-बीच में सावित्री के मन में यह बात उठ खड़ी होती थी कि उस दिन प्रातःकाल गंगाघाट पर उसने जिसे देखा था, कहीं वही किरणमयी तो नहीं है? लेकिन किरणमयी तो असाधारण सुदंरी है! उस पगली में भी सुंदरता थी, लेकिन उसे सुंदरी तो कहा नहीं जा सकता, लेकिन वह क्यों चली गई, कहाँ गई, किसलिए गई?

उपेंद्र के उत्तर में सतीश ने सिर हिलाकर कहा, ''नहीं।''

फिर उन्होंने कोई प्रश्न नहीं किया और दूसरे ही क्षण वह तंद्रा से आच्छन्न हो गए। इस प्रकार शेष रात बीत गई।

दिन में दस बजे के लगभग फिर एक बार नेत्र खोलकर, गौर से देखकर, मानो पहचानकर वह क्षीण कंठ से बोले, ''यह कौन है, सरोजिनी है?''

सरोजिनी भूमि पर घुटनों के बल बैठकर बिछौने में मुँह छिपाकर रोने लगी। उपेंद्र ने धीरे-धीरे दायाँ हाथ उठाकर उसके माथे पर रखकर कहा, ''तुम आ गई बहन? तुमको ही मैं मन ही मन ढूँढ़ रहा था, लेकिन किसी प्रकार भी स्मरण नहीं कर पा रहा था। आज न आने से संभवतः भेंट भी न होती।'' यह कहकर वह मानो कुछ देर तक कोई चिंता करने लगे। स्पष्ट ही ज्ञात हो गया कि अब सभी बातें स्मरण करने की उनमें शक्ति ही नहीं है। एकाएक मानो स्मरण पड़ते ही उन्होंने पुकारा, ''सतीश कहाँ है रे?''

सतीश उस ओर की खिड़की पकड़े बाहर की ओर देखता हुआ चुपचाप खड़ा था। पास आने पर उपेंद्र ने कहा, ''तुम लोगों का ब्याह आँखों से देख जाने का समय नहीं मिला सतीश, लेकिन मेरी इस लक्ष्मी रूपिणी बहन को तू कभी दुःख नहीं देना। अपना हाथ एक बार दे तो रे।'' यह कहकर उन्होंने कंकाल सदृश हाथ को ऊपर उठाया। सावित्री के झुके मुँह की ओर देखकर क्षण भर के लिए सतीश की छाती धड़क उठी, लेकिन दूसरे ही क्षण

उपेंद्र के काँपते हुए हाथ को अपने बलिष्ठ दाएँ हाथ से पकड़ लिया।

उपेंद्र ने मन ही मन जगत्तारिणी की बात स्मरण करके कहा, "तू सरोजिनी को तो जानता है। उनको मैंने वचन दिया था कि अपने सतीश भाई को मैं तुमको दूँगा! देखना रे, मेरे मर जाने के बाद कोई यह बात न कह सके कि तूने मेरी बात नहीं मानी।"

सतीश अपने आँसू रोक न सका। रोकर बोला, "नहीं उपेन भैया, कोई भी यह बात न कहेगा कि तुम्हारी बातों की अवज्ञा मैंने की है, लेकिन फिर भी छिपाने से तो काम न चलेगा, सभी बातें खोलकर बता देने की तो मुझे आवश्यकता है। मैं अच्छा नहीं हूँ, मुझमें बहुत से दोष हैं, मैं बहुत से अपराधों का अपराधी हूँ, इस पर भी किस प्रकार सरोजिनी ग्रहण करेंगी, बल्कि तुम मुझे यह अधिकार देकर जाओ कि किसी के भय से, किसी लोभ से, किसी दुर्बलता से उसको मैं अस्वीकार करूँ जिसने मुझे प्यार करना सिखाया है।" यह कहकर उसने ज्योंही सावित्री के मुँह की ओर मुँह घुमाया, चारों आँखें मिल गईं, लेकिन उसी क्षण दोनों ने आँखें झुका लीं।

उपेंद्र हँस पड़े, बोले, "आज भी क्या वह बात मुझे जान लेने को शेष है सतीश? मैं सब जानता हूँ! सब जानकर ही मैं तुम लोगों को एक करके जाना चाहता हूँ।"

सतीश बोला, "लेकिन मुझे लेकर सरोजिनी सुखी हो सकेंगी?"

उत्तर देने की इच्छा से उपेंद्र ने सतीश के मुँह की ओर देखा। देखते ही सावित्री उच्छ्वासित आवेग से बोल उठी, "यह भार तो मैंने अपने ऊपर ले लिया भैया। तुम निश्चिंत रहो।"

उपेंद्र चुप रहे। वह केवल उसके मुँह की ओर ताकते रहे।

कुछ देर बाद बोले, "आसक्ति का बंधन अब तुम्हारे लिए नहीं है सावित्री। दुर्भाग्य ने यदि तुमको कुल के बाहर ही निकाल दिया है बहन, तो तुम फिर उसके भीतर जाने की चाह मत करना, मेरा अनुरोध है।"

सुनकर सावित्री पत्थर की मूर्ति की भाँति नेत्र झुकाए बैठी रही। आज सतीश एक और का है, उस पर उसका तनिक भी अधिकार नहीं रहा। उसकी भावनाओं की, उसकी वासनाओं की, उसके परम सुख की, चरम दुःख की, उसकी दुस्सह वेदना की आज उसके नेत्रों के सामने ही समाप्ति हो गई, लेकिन उसने लंबी साँस तक भी न निकलने दी। व्यथा से छाती के अंदर ऐंठन पैदा होने लगी, लेकिन सब सहनेवाली वसुमती जैसे अपने हृदय की दुर्गम अग्नि ज्वाला को सहती है, ठीक उसी प्रकार सावित्री शांत मुँह से सब सहकर स्थिर बैठी रही।

उपेंद्र ने कहा, "मैं समझ रहा हूँ बहन, लेकिन भार सँभाल न सकती तो क्या मैं तुझे यह भार दे जाता?"

प्रत्युत्तर में सावित्री ने केवल उनके माथे से ऊपर पड़े हुए बालों को हटा दिया।

एकाएक सतीश चिल्ला उठा, "ऐं, यह तो भाभी हैं!"

सावित्री ने चौंककर मुँह उठाकर देखा, यह तो वही गंगाघाट की पगली है, बहुत धीरे-धीरे कदम बढ़ाती हुई अत्यंत सावधानी से कमरे में आ रही है। पल भर में कमरे के लोग चकित हो गए।

किरणमयी के रूखे बाल मुँह पर, ललाट पर, पीठ पर, सर्वत्र बिखरे पड़े थे। साड़ी फटी

हुई मैली थी, चितवन शून्य थी, यह मानो उन्माद शोक-मूर्ति धारण करके एकाएक कमरे में आ खड़ी हुई है।

सतीश की ओर देखकर धीरे-धीरे कहा, "खोजते-खोजते मुझे मकान मिलता ही नहीं था बबुआ। कितने ही लोगों से मैंने पूछा, कोई भी न बता सका कि मकान कहाँ है। आज मैं कालीबाड़ी से आ रही थी, भाग्य से बिहारी से भेंट हो गई, इसी से उसके पीछे आ सकी?"

उपेंद्र की ओर घूमकर उसने पूछा, "अब कैसे हो बबुआजी?"

उपेंद्र ने हाथ हिलाकर बताया, "अच्छा नहीं हूँ।"

किरणमयी ने अत्यंत वेदना के साथ कहा, "आह! मैं मर जाऊँ! सुरबाला अब नहीं है, सुनकर रोते-रोते मैं मर रही हूँ। वही तो मेरी गुरुआनी थी। उसी ने तो मुझसे कहा था भगवान् हैं।"

एकाएक उसकी आँखें दिवाकर के पीले चेहरे पर जा पड़ीं। तुरंत ही बोल उठी, "अहा! तुम ऐसे लज्जित क्यों हो रहे हो बबुआ, तुमको क्या इन लोगों ने लज्जित किया है?" यह कहकर उसने उपेंद्र की ओर तीव्र दृष्टि निक्षेप करके कहा, "इसको तुम लोग दुःख मत देना बबुआ, मेरे हाथ में जैसे तुमने इसे सौंप दिया था, उस सत्य को मैंने एक दिन के लिए भी नहीं तोड़ा, उसकी प्राणपण से रक्षा करती आई हूँ, लेकिन, अब मेरे पास समय नहीं है, फिर तुम लोग इनको वापस ले लो।"

फिर एकाएक शांत होकर स्निग्ध कंठ से बोली, "मेरे आँचल में काली माई का प्रसाद बंधा हुआ है बबुआ, थोड़ा सा खाओगे? संभवतः अच्छे हो जाओगे। सुना है, इस प्रकार कितने ही लोग अच्छे हो गए हैं।"

एक दिन जिस रमणी के रूप की सीमा नहीं थी, विद्या-बुद्धि का भी अंत नहीं था, यह क्या वही किरणमयी है। आज वह क्या कह रही है, वह स्वयं भी नहीं जानती!

सतीश और सह न सका 'ओह!' कहकर कमरे से चला गया और इतने दिन बाद उपेंद्र के नेत्रों से किरणमयी के लिए आँसू लुढ़क पड़े।

किरणमयी ने झुककर आँचल से उन आँसुओं को पोंछकर कहा, "ओह! रोओ मत बबुआजी, अच्छे हो जाओगे।"

इस बार सावित्री पर उसकी दृष्टि पड़ी। उसे अच्छी प्रकार क्षण भर देखकर उसने कहा, "उस दिन गंगाघाट पर तुम्हीं से भेंट हुई थी न! जरा हट न जाओ बहन, तुम्हारी ही तरह मैं भी बबुआ के पास बैठूँ!"

सरोजिनी ने उसका हाथ पकड़कर कहा, "मुझे तो तुम पहचानती हो?"

किरणमयी ने कहा, "पहचानती क्यों नहीं, तुम तो सरोजिनी हो।"

सरोजिनी ने कहा, "चलो भाभी हम लोग उस कमरे में चलकर बातचीत करें।" यह कहकर वह उसे पास के कमरे में खींच ले गई।

उनके कमरे के बाहर जाते ही उपेंद्र अचेत हो गए। संभवतः वेदना और उत्तेजना उन्हें असह्य हो गई थी।

सावित्री वैसे ही उनको गोद में लिये बैठी रही। पानी तक मुँह में डालने के लिए वह न उठी।

दोपहर का सारा समय बेहोशी की ही दशा में बीत गया, लेकिन संध्या के बाद ज्वर बढ़

जाने के साथ ही साथ उनकी चेतना लौट आई।

नेत्र खोलते ही उनकी दृष्टि पड़ी सावित्री पर। क्षीण स्वर से बोले, ''तू बैठी हुई है बहन! तुझे छोड़कर जाने की बात स्मरण आते ही मेरी आँखों में आँसू आ जाते हैं सावित्री!''

सावित्री ने रोककर कहा, ''मुझे भी अपने साथ-साथ ले चलो भैया!''

उपेंद्र ने उसका उत्तर न देकर सतीश से कहा, ''भाभी कहाँ हैं?''

सतीश ने कहा, ''नीचे सो रही हैं, मेरी नजर में ही हैं।''

''दृष्टि में ही बराबर रखना भाई, जितने दिनों में फिर उनका स्वभाव ठीक न हो जाए, लेकिन तुझे कोई भय नहीं है सतीश। उनके हृदय में कितना बड़ा आघात दुस्सह हो उठा है, उसे समझने की शक्ति हम लोगों में नहीं है, लेकिन वह आघात जितना ही प्रचंड क्यों न हो, वह इतनी बड़ी बुद्धि को चिर दिन आच्छन्न करके न रख सकेगा।''

सतीश बोला, ''यह तो मैं जानता हूँ, उपेन भैया। फिर तुम्हारे दिवाकर का भी भार मैं ही लेता हूँ, यदि विश्वास करके तुम दे जाओ?''

प्रत्युत्तर में उपेंद्र हँसने की चेष्टा करके करवट बदलकर लेट रहे। बहुत सी बातों ने, बहुत सी उत्तेजनाओं ने जीवन-दीप के अंतिम बचे-खुचे तेल को भी जलाकर समाप्त कर दिया। थोड़ी देर में देखा गया मुँह से रक्त निकलकर बह रहा है, साँस है या नहीं, संदेह की बात है।

सब लोगों ने पकड़कर उनको नीचे उतार दिया। उपेंद्र के निष्पाप, विरह-जर्जर प्राण अपनी सुरबाला की खोज में निकल पड़े।

तभी सभी गला फाड़-फाड़कर रो पड़े। उनके गगनभेदी क्रंदन से सारा घर काँप उठा, लेकिन नीचे के कमरे में किरणमयी उद्वेग-रहित अवस्था में पड़ी सो रही थी।

❑❑❑